कृष्णदास संस्कृत सीरीज–१५४

क्रमदीपिका

[‘विवरण’-संस्कृत-‘सरला’-हिन्दीटीकासहिता]

‘गुरुभक्तिमन्दाकिनी’-व्याख्यासहितं

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

सुधाकर मालवीयः

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

११४

******

काश्मीरिकश्रीकेशवभट्टप्रणीता

क्र म दी पि का

विद्याविनोदश्रीगोविन्दभट्टाचार्यकृतविवरणसहिता

डॉ० सुधाकर मालवीय कृत सविमर्श 'सरला' हिन्दी व्याख्यायुता च

श्रीमद्वैष्णवाचार्य श्रीश्रीनिवासाचार्यप्रणीतम्

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

श्रीमद्वैष्णव पुरुषोत्तमप्रसाद कृतया

'गुरुभक्तिमन्दाकिन्याख्यया' व्याख्यया समलङ्कृतम्

संपादकः एवं व्याख्याकारः

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्यः

संस्कृत-विभागः, कलासंकायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८९

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०४६
मूल्य : रु० १००-००

पो० बा० नं० १११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
114

****

KRAMADĪPIKĀ

By

KASMIRIKA KESHAVA BHATTA

With the Sanskrit Commentary 'Vivarana' by
Sri Govinda Bhattacharya
With a Hindi Translation 'Sarala'

And

Laghustavarāja Stotram

By Sri Niwasacharya With a Commentary
'Gurubhakti Mandākini by Purushottam Prasada

Edited & Translated by
Dr. Sudhakar Malaviya
M. A., Ph. D., Sahityacarya
Department of Sanskrit, Arts faculty
Banaras Hindu University



KRISHNADAS Academy

VARANASI-221001

1989

Oriental Publishers & Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(India)

First Edition

1989

Price : Rs. 100-00

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

पूज्य गुरुवर्य

पद्मभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

को

सादर

श्रद्धा सुमन

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥

(ऋ० १.१५६.३)

प्रस्तावना

भारत में बौद्ध संस्कृति के अभ्युदय से जब वेदों का बहिष्कार होने लगा, तब भगवान् शङ्कर के अवतार श्री आदिशङ्कराचार्य का उदय भारत के गगन में उज्ज्वल भास्कर सदृश हुआ। उन्होंने वेदों की मर्यादा स्थापित की। शून्यवाद से मिलते-जुलते 'अद्वैत-वाद' का प्रचार किया तथा उसकी स्थापना की। इस प्रकार श्री आदिशङ्कराचार्य ने वैदिक-धर्म का पुनरुद्धार किया।

उनके पश्चात् वेदोपदिष्ट परतत्त्व का प्रचार करने के लिए क्रमशः श्रीरामानुजाचार्य (विशिष्टाद्वैतवाद), श्रीमध्वाचार्य (द्वैतवाद), श्रीनिम्बार्काचार्य (द्वैताद्वैतवाद) और श्रीविष्णुस्वामी (शुद्धाद्वैतवाद) का प्राकट्य हुआ। इन प्रधान वैष्णवाचार्यों के शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा वैष्णवधर्म भारतवर्ष में अत्यधिक प्रचारित हुआ। 'शक्ति और शक्तिमान्' का भेद स्वीकार करने पर भी शक्ति स्वरूप के ही अन्तर्भुक्त है। इसी से श्रीरामानुजाचार्य का 'विशिष्टाद्वैतवाद' प्रकाशित हुआ है। भेद तथा अभेद—दोनों ही समान भाव से सत्य, नित्य, स्वाभाविक तथा अविरुद्ध हैं। इस प्रकार प्रतिपादन करने वाले श्रीनिम्बार्काचार्य ने स्वाभाविक ही 'द्वैताद्वैतवाद' की स्थापना की है। इसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित भक्त महाकवि काश्मीरिक श्रीकेशव भट्ट १३वीं शती में हुए जिन्होंने वैष्णवधर्म से सम्बन्धित 'श्रीकृष्ण' की पूजा एवं अर्चना के लिए 'क्रमदीपिका' की रचना की।

इदंप्रथमतया—हिन्दी व्याख्या के साथ यह 'क्रमदीपिका' सम्प्रदाय के जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत है। इसमें विद्याविनोद श्रीगोविन्द भट्टाचार्य कृत 'विवरण' टीका भी मुद्रित है। स्थल-स्थल पर 'विशेष' के माध्यम से ग्रन्थ को समझाने का प्रयास किया गया है।

इस ग्रन्थ में उपयोगी 'लघुस्तवराजस्तोत्रम्' भी अलग से जोड़ा गया है। यह निम्बार्क सम्प्रदाय के ही श्री श्रीनिवासाचार्य द्वारा अपने गुरु श्री नियमानन्द की स्तुति में प्रयुक्त है।

श्रीकृष्ण की पूजा में मुद्राओं का प्रयोग अत्यावश्यक है। अतः केशवार्चन से सम्बन्धित मुद्राओं के लक्षण का एक परिशिष्ट भी इसमें मुद्रित किया गया है। अन्त में श्लोकानुक्रमणी, इस तन्त्र में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का एक कोश एवं टीका में उद्धृत ग्रन्थकारों तथा ग्रन्थों की सूची अनुसन्धाताओं की सुविधा के लिए प्रस्तुत की गई है।

वैष्णव सम्प्रदाय के इस ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या करके मैं अपने को अत्यन्त भाग्यशाली समझता हूँ कि कुछ गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण के मनन एवं संयोजन में समय का सदुपयोग हुआ। इस ग्रन्थ में जो-कुछ भी मेरी गति हो सकी है या मैं इसे समझ सका हूँ उसमें मेरे पूज्य गुरुवर्य पं० हीरामणि मिश्र जी का ही कृपा-प्रसाद है। तन्त्र-साहित्य में मुझे गतिशील बनाने वाले उन गुरुवर्य के चरणों में मेरा शतशः प्रणाम है। सम्भव है पुस्तकाकार रूप में मुद्रित इस ग्रन्थ से उनसे प्राप्त ज्ञान के ऋण से मैं कुछ उऋण हो सकूँगा।

यह वैष्णवतन्त्र जो इस रूप में आज विद्वानों के समक्ष आ सका है उसके लिए कृष्णदास अकादमी के संयोजक वर्ग का मैं आभारी हूँ। ये ही प्रेरणा-स्रोत हैं। इन्हीं की लगन एवं तन्त्र-ग्रन्थों को हिन्दी के माध्यम से सर्वजन सुलभ कराने की रुझान की परिणति है यह क्रमदीपिका—

'क्लीँ कृष्णाय नमः'

३१/२१ लंका, वाराणसी
दीपावली २९-१०-१९८९
सं० २०४६

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीयः

भूमिका

अव्याद् व्याकोशनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः ।
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ।।

सामान्य रूप से तन्त्र' का शाब्दिक अर्थ विधि, नियम अथवा शास्त्र है ।[1] व्युत्पत्ति के अनुसार 'तन्त्र' शब्द या तो 'तन्' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'प्रसार' या 'फैलाना', अथवा यह 'तत्र' या 'तन्त्र' से भी व्युपादित होता है जिसका अर्थ है 'व्युत्पादन'। पहली व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ है 'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन, इति तन्त्रम्' अर्थात् वस्तुतः इससे ज्ञान का विस्तार किया जाता है अतः इसे 'तन्त्र' कहते हैं। इस सम्बन्ध में शैवसिद्धान्त की एक उक्ति इस प्रकार है –

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान् ।
त्राणञ्च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते ।।[2]

'इसको 'तन्त्र' नाम से इसलिए अभिहित किया जाता है क्योंकि यह तत्त्व [ज्ञान] एवं मन्त्र सम्बन्धी विपुल अर्थों का विस्तार करता है; और इसलिए भी क्योंकि यह हमारी रक्षा भी करता है ।'

तन्त्र' शब्द से एकाएक हमारा ध्यान शाक्तों' के प्रति चला जाता है। वस्तुतः तन्त्र न केवल शाक्तों के हैं अपितु यह आगम के अन्य सम्प्रदायों के भी हैं, अर्थात् शैवों के भी और वैष्णवों के भी। आगम से अभिप्राय उन शास्त्रों से है जिनमें सगुण ईश्वर की भक्ति-साधना प्रतिपादित है। आगम के उपयोग का अधिकार प्रत्येक वर्ण, पुरुष अथवा नारी सभी के लिए समान रूप से है। यह वैदिक आचार के बन्धन से मुक्त है। आगम

---

१. उदाहरणतः शंकराचार्य ने सांख्यशास्त्र के लिए 'सांख्य-तन्त्र' शब्द का उल्लेख किया है ।

२. कामिक-आगम, तन्त्रान्तर पटल ।

के तीन वर्ग प्राप्त होते हैं, जो क्रमशः शक्ति, शिव अथवा विष्णु की उपासना का विधान करते हैं। इन्हीं को शाक्तागम, शैवागम एवं वैष्णवागम के नाम से अभिहित किया जाता है। 'क्रमदीपिका' वैष्णवागम से सम्बन्धित है। यह भगवान् कृष्ण सम्बन्धी तत्त्वज्ञान एवं मन्त्रों के विपुल अर्थों का विस्तार करता है अतः यह 'तन्त्र' है और इसमें भगवान् कृष्ण की सगुण 'भक्ति साधना' प्रतिपादित है अतः यह 'आगम' भी है।

आगमों में कुछ को वैदिक (वेद के आचारों से सम्बन्ध रखने वाला) और कुछ को अवैदिक (वैदिक आचारों के विरुद्ध) माना जाता है। कूर्म पुराण के अनुसार निम्न आगमों को अवैदिक माना गया है—

कपाल, लाकुल, वाम, भैरव, पूर्व, पश्चिम पञ्चरात्र और पाशुपत इत्यादि। लाकुल के समान पाशुपत भी वैदिक और अवैदिक दोनों हैं।

तन्त्र अथवा आगम—

तन्त्र शब्द लोक जीवन में बहुत ही गर्हित अर्थ में जाना जाता है। परन्तु ऐसा अज्ञान के कारण ही है। 'तन्त्र' शब्द का अर्थ है—शास्त्र, सिद्धान्त अनुष्ठान, विज्ञान आदि। देवता के स्वरूप, गुण, कर्म आदि का जिसमें चिन्तन किया गया हो तथा पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र—इन पाँच अङ्गों वाली पूजा का जहाँ विधान हो—उन ग्रन्थों को 'तन्त्र' कहते हैं। तन्त्र को ही 'आगम' भी कहते हैं। निगम' और 'आगम' भारतीय ज्ञान के मूल स्रोत हैं। 'निगम' का अर्थ है 'वेद' और आगम का अर्थ है 'तन्त्र' ग्रन्थ।

ज्ञान का अक्षुण्ण भण्डार होकर भी 'तन्त्र भारतीय जीवन में कुत्सित क्यों समझा जाने लगा? इसका कारण 'तन्त्र' पूजा में—मत्स्य, मांस मीन, मुद्रा और मैथुन—इन पञ्च मकारों का विधान होना है। वास्तव में इनका अपना एक पवित्र और रहस्यात्मक आध्यात्मिक अर्थ है। लोक जीवन में इन शब्दों का भौतिकता प्रधान अर्थ लेकर इस साधना को भी गर्हित बना दिया गया। बस, गतानुगतिक रूप में 'तन्त्र' कुत्सित ही समझा जाने लगा। परन्तु मूल तान्त्रिक पूजा अत्यन्त सात्त्विक है।

आगम साहित्य—

विभिन्न देवों की विधि-विधान द्वारा उपासना, मन्दिरों से संबद्ध पूजा-पाठ, उपासना के स्थान तथा विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं का वर्णन

आगमों में हुआ है। इन्हीं को 'तन्त्र' के नाम से जाना जाता है। देवता भेद से तन्त्र तीन प्रकार के हैं—

१. वैष्णव तन्त्र, इसे 'पञ्चरात्र' भी कहते हैं।

२. शैवतन्त्र, इसे पाशुपत सिद्धान्ती तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन आदि तीनों रूपों में प्रतिष्ठा दी गई है।

३. शाक्त तन्त्र—शक्ति पूजा से सम्बन्धित हैं। इसके दो मुख्य सम्प्रदाय 'कौलाचार' और 'समयाचार' हैं। इन सम्प्रदायों में शक्तिरूपा भगवती की उपासना प्रमुख है। 'शिव' एवं 'शक्ति' का सामञ्जस्य ही इस साधना का मूल तत्त्व है।

देवता भेद से तीन प्रकार के तन्त्रों के भी कालान्तर में कई सम्प्रदाय चल पड़े। सम्प्रदाय का अर्थ है गुरुपरम्परागत अथवा आचार्य परम्परागत संघटित संस्था। भरत के अनुसार शिष्टपरम्परा प्राप्त उपदेश ही सम्प्रदाय है। इस प्रकार सम्प्रदाय शब्द का सम्प्रति प्रचलित अर्थ है 'गुरुपरम्परा से सदुपदिष्ट व्यक्तियों का समूह।' पद्मपुराण में वैष्णव सम्प्रदायों की नामावली दी हुई है। ये चार सम्प्रदाय हैं—१. श्रीसम्प्रदाय, २. ब्रह्म-सम्प्रदाय, ३. रुद्र सम्प्रदाय और ४. सनक सम्प्रदाय।

इनमें श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीरामानुज, ब्रह्म-सम्प्रदाय के श्रीमध्वाचार्य, रुद्रसम्प्रदाय के श्रीविष्णु स्वामी तथा सनक सम्प्रदाय के श्री निम्बर्काचार्य माने गये हैं—

रामानुजं श्रीः स्वचक्रे माधवाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः॥
—पद्मपुराण

इस प्रकार सम्प्रदायविहीन रहकर अर्थात् बिना गुरुपरम्परा से प्राप्त मन्त्र निष्फल होते हैं। अतः कलियुग में चार सम्प्रदाय कहे गए हैं।[1]

'शक्तिसंगम-तन्त्र' में सम्प्रदायों की सूची इस प्रकार दी हुई है—

वैखानः सामवेदादौ श्री राधावल्लभी तथा।
गोकुलेशो महेशानि तथा वृन्दावनी भवेत्॥

---

१. सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥
श्रीमध्व-रुद्र-सनका-वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥

पाञ्चरात्रः पञ्चमः स्यात् षष्ठः श्रीवीरवैष्णवः ।
रामानन्दी हविष्याशी निम्बार्कश्च महेश्वरि ॥
ततो भागवतो देवि दश भेदाः प्रकीर्तिताः ।
शिखी मुण्डी जटी चैव द्वित्रिदण्डी क्रमेण च ॥
एकदण्डी महेशानि वीरशैवस्तथैव च ।
सप्त पाशुपताः प्रोक्ताः दशधा वैष्णवा मताः ॥
(शक्तिसंगमतन्त्रे)

इनमें से कुछ का विवेचन इस प्रकार है—

वैष्णव सम्प्रदाय

वैखानस सम्प्रदाय—

भगवान् विष्णु सकल देवताओं के स्वरूप हैं। श्री हरि की अर्चा से सकल देवताओं की अर्चा का फल मिलता है और सकल देवतार्चन का फल विष्णु पद-प्राप्ति ही है–

'विष्णुर्वै सर्वा देवताः। विष्णु सर्वेषामधिपतिः परमः। ···पुराणः। परो लोकानाम् अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः।' परमस्तदन्तरेण अन्या देवताः ॥ (ऐतरेय ब्राह्मणम् १.१)

स्मृति के अनुसार भी श्रीहरि ही सभी सत्कर्मों का फल देते हैं–

सर्वेऽपि वैदिकाचारास्सर्वे यज्ञास्तपांसि च ।
विष्णुपूजाविधेर्भेदाः सत्कर्मफलदो हरिः ॥

इस प्रकार विष्णु ही परमाराध्य हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से विष्णु की अर्चना के दो प्रधान भेद प्राचीन हैं– १. वैखानस और २. पाञ्चरात्र। इनमें वैखानस सम्प्रदाय भगवान् विखना मुनि के द्वारा भगवान् विष्णु के उपदेशानुसार प्रचलित है। भगवान् विष्णु ने लोक कल्याण के लिए अर्चा रूप में इस धरती पर अवतार लेकर उक्त अर्चावतार की पूजा-अर्चना की परम्परा को स्थापित करने के हेतु स्वांश से विखना को प्रकट किया। श्री विखना मुनि ही विश्व के आदि वैष्णव धर्म के प्रवर्तक आचार्य हुए। श्री विखना मुनि साक्षात् ब्रह्मा ही हैं। ब्रह्मा जी ने ही भगवान् विष्णु के संकल्पानुसार विखना रूप से सृष्टि के आदि में यजुर्वेद की वैखानसी शाखा के अनुसार वैखानससूत्र का निर्माण किया—

आदिकाले तु भगवान् ब्रह्मा तु विखना मुनिः ।
यजुशाखानुसारेण चक्रे सूत्रं महत्तरम् ॥
(भार्गवसंहिता)

वैखानसी महाशाखां स्वसूत्रे विनियुक्तवान् ।
पद्मभूः परमो धाता तस्मिन्नाराधनत्रयम् ॥

(स्कन्दपुराण)

उन विखना मुनि ने भगवान् विष्णु द्वारा उपदिष्ट विस्तृत आगम को संक्षिप्त किया और फिर भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि आदि शिष्यों को उसका उपदेश किया। उक्त वैखानस भगवच्छास्त्र को पुनः इन मुनियों ने चार लाख श्लोकों में संक्षिप्त करके भारतभूमि पर प्रकट किया—

पश्चादपश्यद्विष्णूक्तमागमं विस्तरात्तदा ।
संक्षिप्य सारमादाय शाणोल्लिखितरत्नवत् ॥
धाता विखनसो नाम्ना मरीच्यादिसुतान् मुनीन् ।
अबोधयदिदं शास्त्रं सार्द्धकोटिप्रमाणतः ।
मुनिभिस्तैश्च संक्षिप्तं चतुर्लक्षप्रमाणतः ॥
(श्रीपाञ्चरात्र)

वैखानस शास्त्रोक्त रीति से विष्णु पूजा की विधि का सविशेष विवरण 'अर्चना नवनीत', 'विष्णवार्चनसार संग्रह', 'भगवदर्चा प्रकरण' आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से पाया जाता है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय—

राधा के प्रिय श्रीकृष्ण का उपासक एक प्रेममार्गी सम्प्रदाय है जिसकी स्थापना देवबन्द सहारनपुर के पूर्व निवासी गोस्वामी हरिवंश ने वृन्दावन में की। इनका उपनाम हित जी है। आरम्भ में ये मध्वों तथा निम्बार्कों के घनिष्ठ सम्पर्क में थे। किन्तु इन्होंने अपना नया सम्प्रदाय १५८५ ई० में स्थापित किया जिसे 'राधावल्लभीय' कहते हैं। इस सम्प्रदाय का सबसे प्रमुख मन्दिर वृन्दावन में है जो राधा के वल्लभ श्रीकृष्ण का मन्दिर है। राधावल्लभीय भक्त राधा की पूजा आराधना द्वारा कृष्ण की कृपा प्राप्त करना अपना लक्ष्य मानते हैं। 'राधा-सुधानिधि' इनका ग्रन्थ है जो संस्कृत में पद्यात्मक मधुर काव्य है।

निम्बार्क सम्प्रदाय –

ये वैष्णव आचार्य थे जो आन्ध्रप्रदेश के एक विद्वान् भागवतधर्मी

थे। व्रज में आकर बस गए थे। इन्होंने राधा की पूजा को मान्यता दी तथा अपना एक सम्प्रदाय स्थापित किया। निम्बार्क का प्रारम्भिक नाम भास्कर था। निम्बार्क रामानुज से काफी प्रभावित थे तथा उन्हीं की तरह ध्यान पर अधिक जोर देते थे। निम्बार्कों के कृष्ण विष्णु के अवतार मात्र नहीं हैं, वे ब्रह्म हैं तथा उन्हीं से राधा, गोप या गोपी जन्म लेते हैं, जो उनके संग गोलोक में लीला करते हैं।

निम्बार्क द्वारा प्रवर्तित मत को मानने वाले 'निम्बार्क-वैष्णव' कहलाते हैं, इनमें गृहस्थ और विरक्त दोनों प्रकार के अनुयायी होते हैं। गुरुगद्दी के संचालक आचार्य भी दोनों ही वर्गों में पाए जाते हैं जो शिष्यों को मन्त्रोपदेश करते हुए कृष्णभक्ति का प्रचार करते रहते हैं। आचार्य एवं भक्त गण प्रायः भजन, ध्यान तथा राधा कृष्ण की युगल उपासना की ओर ही उन्मुख रहते हैं। दार्शनिकता की ओर अभिरुचि नहीं पाई जाती। इसीलिए इनका समन्वयः चैतन्य सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, प्रणामी सम्प्रदाय, धर्मदासी कबीरशाखा, रामानन्दीय, खालसादल आदि के साथ भी सौहार्द के साथ होता आया है। व्रजमण्डल, प्रयाग, काशी, नेपाल, बंगाल, उडीसा राजस्थान, द्वारका आदि में निम्बार्कियों की गृहस्थ और विरक्त गुरुगद्दियाँ और मठ एवं मन्दिर पाए जाते हैं। इस सम्प्रदाय की एक विशेषता यह है कि इसके आचार्यों ने अन्य मतों के आचार्यों के समान दूसरे मतों का खण्डन नहीं किया है।

पाञ्चरात्र सम्प्रदाय —

पाञ्चरात्र मत वैष्णव सम्प्रदाय का एक रूप है। पाँच प्रकार की ज्ञानभूमि पर विरचित होने के कारण यह मत 'पाञ्चरात्र' कहा गया है—

रात्रं ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।

इस मत के सिद्धान्तानुसार सृष्टि की सब वस्तुएँ पुरुष, प्रकृति, स्वभाव, कर्म और दैव – इन पाँच कारणों से उत्पन्न होती है।[1] पाञ्चरात्र मत की मुख्य शिक्षा कृष्ण की भक्ति ही है। परमेश्वर के रूप में कृष्ण की भक्ति करने वाले उनके समय में भी थे जिनमें गोपियाँ मुख्य थीं। पाञ्चरात्र मतानुसार वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का श्रीकृष्ण के चरित्र से अति घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पाञ्चरात्र संहिताओं में वैष्णवों के धर्म और आचार का विस्तृत

---

१. गीता १८ - १४।

वर्णन है। इनके भी दो विभाग है—पाञ्चरात्र और वैखानस। किसी मन्दिर में पाञ्चरात्र तथा किसी में वैखानस संहिताए प्रमाण मानी जाती हैं। पाञ्चरात्र के विभिन्न अर्थ हैं जिनका संग्रह निरुक्ति के आधार पर इस प्रकार है—

१. सांख्य योग, बौद्ध, अर्हित और कापाल–नामक पाँच शास्त्र जिसके सामने फीके पड़ जायँ, वह 'पञ्चरात्र' है।

२. सूर्य के उदय होने पर जिस प्रकार रात्रियाँ पञ्चत्व को प्राप्त हो हो जाती हैं, उसी प्रकार जिस शास्त्र के उदय होने पर अन्यान्य शास्त्र पञ्चत्व को प्राप्त हो जायँ, वह 'पञ्चरात्र' है।

३ 'रात्र' नाम ज्ञान का है और वह वैषयिक, यौगिक, भक्तिप्रद, मुक्तिप्रद और तत्व भेद से पाँच प्रकार का है, अतएव ज्ञान-प्रतिपादक शास्त्र का नाम पञ्चरात्र' है।

४. 'रात्रि' नाम अज्ञान का है और पञ्चन का अर्थ है—नाशन। इससे अज्ञानविनाशक शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

५. परमेश्वर के पाँच (पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चा नाम के) रूपों का निरूपण करने वाला शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

६ परमेश्वर को प्राप्त करके जीव की पाँच रात्रियाँ (भौतिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) नष्ट हो जाती हैं। इस विषय को समझाने वाला शास्त्र 'पञ्चरात्र' है।

७ नारायण भगवान् ने पाँच रात्रियों में क्रमशः अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन, ब्रह्मा और रुद्र को जो उपदेश दिया था उसका नाम 'पञ्चरात्र' है।

८. अपने पाँच आयुधों के अंशस्वरूप शाण्डिल्य, औपगायन, मौञ्ज्यायन कौशिक और भारद्वाज में से प्रत्येक को जगत्प्रभु भगवान् ने पृथक् पृथक् जिस शास्त्र को पढ़ाया था, वह 'पञ्चरात्र' है।

इस प्रकार निरुक्तियाँ संस्कृत-साहित्य में बहुधा मिलती हैं : 'महत्वाद् भारतत्वाच्च महाभारतमुच्यते' यह 'महाभारत' शब्द की निरुक्ति भी इसी कोटि की है।

पञ्चरात्र न केवल वेद-मूलक हैं, प्रत्युत स्वयं 'एकायनवेद' नाम से अभिहित है। महर्षि शाण्डिल्य ने इसी एकायन वेद को द्वापर के अन्त में

और कलियुग के आदि में स्वयं संकर्षण से प्राप्त करके सुमन्तु, जैमिनि, भृगु, औपगायन और मौञ्च्यायन को पढ़ाया था।

पञ्चरात्र में जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया है वे ये हैं—

१. (ज्ञान) दार्शनिक तत्व, मन्त्र एवं यन्त्र,

२. (योग) ध्यान विधि,

३. (क्रिया) मूर्ति और मन्दिरों के निर्माण की विधि,

४. (चर्या) ऊर्ध्वपुण्ड्र, व्रत एवं उत्सव आदि की विधि।

महाभारत में पञ्चरात्र को 'महोपनिषद्' कहा गया है, जैसा कि 'इदं महोपनिषदं सर्ववेदसमन्वितम्'—इस वचन से स्पष्ट है। इससे पञ्चरात्र का प्राचीन काल में अधिक आदर सूचित होता है। इस माहात्म्यातिशय का हेतु है—इसका नारायण भगवान् के श्रीमुखारविन्द से निर्गमन। महोपनिषद् के अतिरिक्त इसके लिए 'शास्त्र', 'तन्त्र', 'आगम', और 'संहिता' शब्दों का प्रयोग भी होता है—यथा 'पञ्चरात्रशास्त्र', 'पञ्चरात्रतन्त्र', 'पञ्चरात्रागम' और 'पञ्चरात्रसंहिता'।

पञ्चरात्र तन्त्र के मुनियों ने अनेक ग्रन्थ बनाये। उन-उन मुनियों के नामों के अनुसार पञ्चरात्र का नाम पड़ता गया। नारदपञ्चरात्र में सात प्रकार के पञ्चरात्रों का उल्लेख है यथा—ब्राह्म पञ्चरात्र, शैवपञ्चरात्र, पञ्चरात्र, वसिष्ठ पञ्चरात्र कापिल पञ्चरात्र गौतमीय पञ्चरात्र और कौमार नारदीय पञ्चरात्र। अग्निपुराण में पञ्चरात्रों के पचीस नाम मिलते हैं, यथा—हयशीर्ष, त्रैलोक्यमोहन, वैभव पौष्कर, प्रह्लाद, गार्ग्य, गालव, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ऐश्वर, सत्योक्त शौनक, वसिष्ठ, ज्ञानसागर, स्वायम्भुव, कापिल, तार्क्ष्य, नारायणीय आत्रेय, नारसिंह, आनन्द, आरुण, बौधायन और अष्टाङ्ग।

पञ्चरात्रसम्बन्धी उपदेश और प्रवचनों के संग्रह संहिताओं के नाम से प्रसिद्ध हुए। बनते-बनते इनकी संख्या दो सौ से भी आगे पहुँची, किंतु साम्प्रदायिकों में १०८ संहिताओं का ही आदर है।

संहिताओं के सात्विक, राजस और तामस-भेद से तीन वर्ग हैं। इनमें से भगवत्प्रोक्त संहिताओं को 'दिव्य' कहा जाता है। इस अष्टोत्तरशत संहिता-माला में तीन संहिताएँ सुमेरु मणि के समान है। वे हैं—१-सात्वत-संहिता, २- जयाख्य-संहिता और ३- पौष्कर-संहिता। ईश्वर-संहिता सात्त्वत संहिता का व्याख्यानरूप है। पाद्म संहिता जयाख्य-संहिता

का विवरण है। परमेश्वर संहिता पौष्कर का विवर्चन है। सात्वत, जयाख्य और पौष्कर तीन होकर भी एक शास्त्र हैं। उनमें पारस्परिक विरोध नहीं है।

यदुशैल पर 'सात्वत सहिता' का, श्री रङ्ग में 'पौष्कर' का और हस्ति-शैल में 'जयाख्य' का बहुमान है; किन्तु हस्तिशैल में 'पाद्म' के अनुसार, श्रीरङ्ग में परमेश्वर के अनुसार और यादवाद्रि में 'ईश्वरसंहिता' के आदेशानुसार विधि-विधान होता है।

इन संहिताओं में से बहुत थोड़ी संहिताओं का ही मुद्रण अभी तक हो सका है।

पञ्चरात्र को मानने वाला पुरुष पाञ्चरात्रिक' कहलाता है। भक्त के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'आगम'-साहित्य में हुआ है।

यामुनाचार्य ने 'आगम-प्रामाण्य' पुस्तक लिखकर पञ्चरात्र शास्त्र के माहात्म्य की सिद्धि की थी। रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसूत्र के द्वितीयाध्याय के द्वितीय चरण के अन्तिम दो सूत्रों के भाष्य में 'पञ्चरात्रतन्त्र' का प्रामाण्य स्थापित किया था। तदनन्तर वेंकटनाथ ने 'पञ्चरात्ररक्षा' नामक ग्रन्थ लिखकर इस शास्त्र की महिमा को विस्तृत किया था।

वैष्णवों में पञ्चरात्रोक्त सिद्धान्तों का परम आदर है।

शैव सम्प्रदाय

ई० स० पहली शताब्दी में श्री विष्णु उपासना के 'पाँचरात्र' नामक साम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। उसका अनुसरण कर ई० स० दूसरी शताब्दी में 'लकुलिन्' नामक आचार्य ने 'पाशुपत' नामक शिव-उपासना के आद्य संप्रदाय की स्थापना की और इस हेतु 'पंचार्थ' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा। आगे चलकर इसी पाशुपत साम्प्रदाय से शिव-उपासना के निम्नलिखित तीन प्रमुख सम्प्रदायों का निर्माण हुआ.—१. कापालिक २. पाशुपत और ३. शैव।

१. **कापालिक सम्प्रदाय**—रामानुज के अनुसार, शरीर के छः मुद्रिका का ज्ञान पाकर, एवं स्त्री के जननेद्रिय में स्थित आत्मा का मनन कर, जो लोग शिव की उपासना करते हैं, उन्हें 'कापाल' सम्प्रदायी कहते हैं। (रामानुज २.२ ३५)। अपने इस हेतु के सिध्यर्थ इस सम्प्रदाय के लोग निम्नलिखित आचारों को प्राधान्य देते हैं १. खोपड़ी में भोजन लेना, २. चिताभस्म सारे शरीर में लगाना, ३. चिताभस्म भक्षण करना,

४. हाथ में डण्डा धारण करना, ५. मद्य का चषक साथ में रखना ६. मद्य स्थित रुद्र देवता की उपासना करना।

ये लोग गले में रुद्राक्ष की माला पहनते हैं एवं जटा धारण करते हैं, गले में मुण्डमाल धारण करने वाले भैरव एवं चण्डिका की ये लोग उपासना करते हैं, जिन्हें ये लोग शिव एवं पार्वती का अवतार मानते हैं।

इसी सम्प्रदाय की एक शाखा को 'कालमुख' अथवा 'महाव्रतधर' कहते हैं जो अन्य सम्प्रदायिकों से अधिक कर्मठ मानी जाती है।

२- पाशुपत सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के लोग सारे शरीर में चिताभस्म लगाते हैं, एव चिताभस्म में ही सोते हैं। भीषण हास्य, नृत्य, गायन, हु हुक्कार एवं अस्पष्ट शब्दों में ॐ कार का जाप, आदि छः भागों से ये शिव की उपासना करते हैं।

इस सम्प्रदाय की सारी उपासना पद्धति अनार्य लोगों के उपासना से आयी हुई प्रतीत होती हैं।

३. शैव सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय कापालिक एवं पाशुपत जैसे अति-मार्गिक सम्प्रदायों से तुलना में अधिक बुद्धिवादी है, जिस कारण इन्हें 'सिद्धान्त वादी' कहा जाता है। इस सम्प्रदाय में मानवी आत्मा को पशु' कहा गया है, जो इन्द्रिय पाशों से बँधा हुआ है। पशुपति अथवा शिव की मंत्रोपासना से आत्मा इन पाशों से मुक्त होता है। ऐसी इस सम्प्रदाय के लोगों की कल्पना है।

(क) **काश्मीर शैव सम्प्रदाय**— इस सम्प्रदाय की निम्नलिखित दो प्रमुख शाखाएं मानी जाती है:—१-स्पंदशास्त्र, जिसके जनक वसुगुप्त एव उसके शिष्य कल्लाट माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के दो प्रमुख ग्रन्थ 'शिवसूत्रम्' एवं 'स्पन्दकारिका' हैं। इसका प्रारम्भ काल ई० स० ९वीं शताब्दी माना जाता है; २· प्रत्यभिज्ञानशास्त्र; जिसके जनक सोमानंद एवं उनके शिष्य उदयाकर माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' है, जिसकी विस्तृन टीका अभिनवगुप्त के द्वारा लिखी गयी है। इस सम्प्रदाय का उदयकाल ई० स० १०वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है।

इन दोनों सम्प्रदायों में कापालिक एवं पाशुपत जैसे प्राणायाम एवं अघोर आचरण पर जोर नहीं दिया गया है, बल्कि चित्तशुद्धि के द्वारा 'आनव' 'मायिय' एवं 'काय' आदि मलों (मालिन्य) को दूर करने को कहा गया है। इस प्रकार ये दोनों सिद्धान्त अघोरी रुद्र उपासकों से कतिपय श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं।

राजतरंगिणी के अनुसार, काश्मीर का शैव सम्प्रदाय अत्यधिक प्राचीन है, एवं सम्राट अशोक के द्वारा काश्मीर में शिव के दो देवालय बनवाये गये थे। काश्मीर के सुविख्यात राजा दामोदर (द्वितीय) शिव के अनन्य उपासक थे। इस प्रकार प्राचीन काल से प्रचलित रहे शिव उपासना के पुनरुत्थान का महत्त्वपूर्ण कार्य 'स्पन्दशास्त्र' एवं 'प्रत्यभिज्ञान शास्त्र' वादी आचार्यों के द्वारा ई० स० १०वीं शताब्दी में किया गया।

(ख) **वीरशैव (लिंगायत) सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय के आद्य प्रसारक आचार्य 'बसव' माने जाते हैं, जिनकी जीवन गाथा 'बसवपुराण' में दी गयी है। इस सम्प्रदाय के मत शैव दर्शन अथवा सिद्धान्तदर्शन से काफी मिलते जुलते हैं। इस पुराण से प्रतीत होता है कि, प्राचीन काल में विश्वेश्वराध्य, पण्डिताराध्य, एकोराम'आदि आचार्यों के द्वारा प्रसृत किये गये सम्प्रदाय को 'बसव' ने ई० स० १२ वीं शताब्दी में आगे चलाया।

इस सम्प्रदाय के अनुसार, ब्रह्मन् का स्वरूप 'सत्' 'चित्' एवं 'आनन्द' मय है, एवं वही शिवतत्त्व है। इस आद्य शिवतत्त्व के लिङ्ग (शिवलिङ्ग), एवं अग (मानवीं आत्मा) ऐसे दो प्रकार माने गये हैं, एवंदोनों का संयोग शिव की भक्ति से होता हैं, ऐसा कहा गया है।

इस तत्वज्ञान में लिंग के महालिंग, प्रसादलिंग, चरलिंग, शिवलिंग, गुरुलिंग एव आचारलिंग ऐसे छः प्रकार कहे गये हैं, जो शिव के ही विभिन्न रूप हैं। इसी प्रकार अग की भी 'योगांग', 'भोगांग' एवं 'त्यागांग'—ऐसी तीन अवस्थाएँ बतायी गयीं हैं, जो शिव की भक्ति की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं।

लिंगायतों के आचार्य स्वयं को लिंगी ब्राह्मण (पंचम) कहलाते हैं, एवं इस सम्प्रदाय के उपासक गले में शिवलिंग की प्रतिमा धारण करते हैं।

लिङ्गायत शिव को ही सर्वेश्वर मानते हैं तथा एकमात्र शिव की पूजा करते हैं। वे शिव की पूजा दो प्रकार से करते हैं : अपने गुरु जङ्गम की पूजा तथा गले में लटकने वाले छोटे लिङ्ग की पूजा। जब बच्चा पैदा होता है तो पिता अपने गुरु को बुलाता है, वह बच्चे की रक्षा के लिए अष्टवर्ग संस्कार करता है। इसके आठ विभाग हैं- गुरु लिङ्ग, विभूति, रुद्राक्ष, मन्त्र, जङ्गम तीर्थ और प्रसाद। इस संस्कार से बालक लिङ्गायत बन जाता है।

लिङ्गायतों में प्रचलित महत्त्वपूर्ण कन्नड़ भाषा की शिक्षाएँ 'वचन' कहलाती हैं। कुछ कन्नड़ी पुराण भी इस सम्प्रदाय के हैं जिनमें राघवाङ्करचित 'सिद्धराम' बहुत प्रसिद्ध है।

शैवागम—

सनत्कुमारसंहिता के अनुसार शैवागम दो प्रकार का है—श्रौत और अश्रौत। श्रौत को श्रुतसारमय कहा गया है, और यह दो प्रकार का है—स्वतन्त्र और इतर। स्वतन्त्र के दस भेद हैं। इसके बाद सिद्धान्त को अट्ठारह प्रकार का बताया गया है। 'इतर' को 'श्रुतिसार' कहा गया है जिसके सैकडों भेद हैं—

श्रौताश्रौतविभेदेन द्विविधस्तु शिवागमः।
श्रुतिसारमयः श्रौतः पुनर्द्विविधो मतः॥

यद्यपि प्रत्येक आगम अपना मूल स्रोत श्रुतियों को ही बताते हैं फिर भी आचार विचार के अनुसार सब में बहुत से भेदोपभेद हो गए हैं। शैवों के कई उप सम्प्रदाय हैं। शाक्तों के नौ आम्नाय और चार सम्प्रदाय १- केरल, २- काश्मीर, ३- गौड और ४- विलास हैं। इनके पुनः दो-दो भेद 'सम्मोहन तन्त्र' में वर्णित हैं। उत्तर भारत के काश्मीर का शैवतन्त्र 'त्रिक्' कहलाता है। दक्षिण का शैवतन्त्र 'शैवसिद्धान्त' कहलाता है।

शाक्त समस्त देश में फैले हुए हैं यद्यपि प्रधानतया वे बंगाल और आसाम में हैं। वस्तुतः 'अर्धनारीश्वर' मूर्ति के 'शिव' पार्श्व की शैव और 'शक्ति' पार्श्व की शाक्त उपासना करते हैं। आगमवादी शैव एव शाक्त दोनों ही छत्तीस तत्त्व मानते हैं। इनमें पृथ्वी से प्रकृति तक २४ तत्त्व हैं जिनमें पुरुष, माया, पांच कञ्चुक (कला, काल, नियति, विद्या और राग) शुद्ध विद्या (या सद् विद्या) शक्ति और शिव सम्मिलित हैं। इन्हें तीन वर्गों में बाटा गया है—१- शिवतत्त्व, २- विद्या तत्त्व और ३- आत्मतत्त्व अथवा, शुद्ध, शुद्धाशुद्ध, तथा अशुद्धतत्व। शिव शक्ति तत्व से लेकर सद्विद्या तत्व तक सब 'शुद्ध तत्व' कहलाते हैं। प्रकृति से पृथ्वी तक के २४ तत्व 'अशुद्ध तत्व' कहलाते हैं और इन दोनों के बीच के तत्व शुद्धाशुद्ध तत्व' कहलाते हैं।

दूसरे विभाजन के अनुसार शिवतत्त्व के वर्ग में शिव-तत्व और शक्ति तत्व आते हैं। विद्यातत्व से अभिप्राय सदाशिव से लेकर सद्विद्या तक है; और आत्मतत्व से अभिप्राय माया और कञ्चुकों से लेकर पृथिवी तक

के तत्वों से है।

शाक्तों के तीन वर्ग बताए गए हैं उनमें—१ कौल या शाक्त शास्त्र के चौसठ तन्त्र हैं २- मिश्र के आठ तन्त्र हैं, और ३. समय वर्ग के पाँच तन्त्र हैं। शाक्त आगम तीन प्रकार के हैं १- सात्विक, अधिकारियों के लिए जिन आगमों का उपदेश किया गया है उन्हें 'तन्त्र' कहते हैं, २. जो राजस प्रवृत्ति वालों के लिए हैं उन्हें यामल' कहा जाता है और ३ तामस प्रवृत्ति वालों के लिए जो हैं उन्हें 'डामर' कहा जाता है।

तान्त्रिकों के सर्वश्रेष्ठ 'कौलाचार' को ही अवधूत मार्ग बताया गया है। तान्त्रिकों और अवधूतों में भी बहुधा भेद किया जाता है। तान्त्रिक लोग पहले बहिरंग उपासना करते हैं और अन्त में क्रमशः सिद्धि प्राप्त करते हुए कुण्डलिनी शक्ति की उपासना करते हैं, जो वस्तुतः सर्वथा अवधूत मार्ग की उपासना है। अवधूतों एवं कापालिकों और इसी प्रकार के अन्य तान्त्रिकों के मूल उपास्य देवता शिव हैं, इन्हें आदिनाथ कहा जाता है। शङ्कराचार्य के अद्वैतमत का पराभव एक कापालिक के द्वारा हुआ, जिसका उल्लेख 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में हैं। कापालिक और अवधूत दोनों इस अर्थ में 'नाथ मत' मे हैं कि श्री नाथ ने ही दोनों को प्रकट किया। कापालिकों के बारह आचार्यों में प्रथम नाम आदिनाथ का ही है, और बारह शिष्यों में से कई नाथ मार्ग के आचार्य भी हैं। कापालिकों के बारह आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—आदिनाथ, अनादि, काल, अतिकाल, कराल, विकराल, महाकाल, कालभैरव, नाथ, बटुकनाथ, वीरनाथ, और श्रीकण्ठ। कापालिकों के बारह शिष्यों के नाम इस प्रकार है—नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्ष, चर्पट, अवद्य, वैरागी, कन्थाधारी, जालन्धर, और मलयार्जुन।

सप्त आचार—

कुछ तन्त्र ग्रन्थों में वेद, वैष्णव, शैव, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त और कुल ये सात प्रकार के आचार बतलाए गए हैं। ये सातो आचार तीन यानों (देवयान, पितृयान एवं महायान) के अन्तर्गत माने जाते हैं। ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं। महाराष्ट्र के वैदिकों में वेदाचार, रामानुज और इतर वैष्णवों में वैष्णवाचार, शङ्करस्वामी के अनुयायी दाक्षिणात्य शैवों में दक्षिणाचार, वीर शैवों में शैवाचार और वीराचार, तथा केरल, गौड़, नेपाल और कामरूप के शाक्तों में क्रमशः वीराचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार एवं कौलाचार देखे जाते हैं। पहले तीन आचारों के प्रतिपादक

थोड़े ही तन्त्र हैं। किन्तु पिछले चार आचारों के प्रतिपादक तन्त्रों की तो गिनती नहीं है। पहले तीनों के तन्त्र ग्रन्थों में पिछले चारों आचारों की निन्दा की गई है।

इनमें कौलाचार श्रेष्ठतम है। कौलमार्ग ही अवधूत मार्ग है। तान्त्रिकों का कौलमार्ग और कापालिक मत दोनों ही नाथ मत के अनुयायी कहे जाते हैं।

नाथ-पन्थी—

नाथ पन्थियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का है। इन्हें साधारणतया कनफटा और दर्शनी साधु कहा जाता है। कनफटा इन्हें इसलिए कहते हैं क्योंकि ये कान फाड़कर उनमें मुद्रा धारण करते हैं; और मुद्रा के नाम पर ही इन्हें दर्शनी कहा जाता है।

नाथ सम्प्रदाय

जब तान्त्रिकों और सिद्धों के चमत्कार एवं अभिचार बदनाम हो गये, शाक्त मद्य, मांसादि के लिये तथा सिद्ध, तांत्रिक आदि स्त्री सम्बन्धी आचारों के कारण घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे तथा जब इनकी यौगिक क्रियाएं भी मन्द पड़ने लगीं तब इन यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिये ही उस समय 'नाथ सम्प्रदाय' का उदय हुआ। इनमें नव नाथ मुख्य कहे जाते हैं:—गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणनाथ, गहिनिनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, और गोपीचन्द्रनाथ। गोरक्षनाथ ही गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस सम्प्रदाय के परम्परा संस्थापक आदिनाथ स्वयं शङ्कर के अवतार माने जाते हैं। इसका सम्बन्ध रसेश्वरों से है और इसके अनुयायी आगमों में आदिष्ट योग-साधना करते हैं। अतः इसे अनेक इतिहासज्ञ शैव सम्प्रदाय मानते हैं। परन्तु अन्य शैवों की तरह ये न तो लिङ्गार्चन करते हैं और न तो शिवोपासना के और अंङ्गों का निर्वाह करते हैं। किन्तु तीर्थ, देवता आदि को मानते हैं, शिवमन्दिर और देवी मन्दिरों में दर्शनार्थ जाते हैं। कैलादेवी जी तथा हिंगलाज माता के दर्शन विशेषतः करते हैं, जिससे इनका शाक्त सम्बन्ध भी स्पष्ट है। योगी भस्म भी रमाते हैं, परन्तु भस्मस्नान का एक विशेष तात्पर्य है—जब ये लोग शरीर में श्वास का प्रवेश रोक देते हैं तो रोमकूपों को भी भस्म से बन्द कर देते हैं। प्राणा-

याम की क्रिया में यह महत्व की युक्ति है। फिर भी इनका मार्ग शुद्ध योगसाधना का पन्थ है। इसलिये इसे महाभारत काल के योग सम्प्रदाय की परम्परा के अन्तर्गत मानना चाहिये। विशेषतया इसलिये कि पाशुपात सम्प्रदाय से इसका सम्बन्ध हलका सा ही देख पड़ता है। साथ ही योग साधना इसके आदि, मध्य और अन्त में है। अतः यह शैव मत का शुद्ध योग सम्प्रदाय है।

इस पन्थ वालों की योग-साधना पातञ्जलविधि का विकसित रूप है। उसका दार्शनिक अंश छोड़कर हठयोग की क्रिया जोड़ देने से 'नाथपन्थ' की योग क्रिया हो जाती है। 'नाथपन्थ' में ऊर्ध्वरेता या अखण्ड ब्रह्मचारी होना महत्त्व की बात है। माँस-मद्यादि सभी तामसी भोजनों का पूरा निषेध है। यह पन्थ चौरासी सिद्धों के तान्त्रिक 'वज्रयान' का सात्विक रूप में परिपालक प्रतीत होता है।

उनका तात्त्विक सिद्धान्त है कि परमात्मा 'केवल' है। उसी परमात्मा तक पहुँचना मोक्ष है। जीव का उससे चाहे जैसा सम्बन्ध माना जाय, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उससे सम्मिलित ही कैवल्य, मोक्ष या योग है। इसी जीवन में इसकी अनुभूति हो जाय, यही इस पन्थ का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रथम सीढी काया की साधना है। कोई काया को शत्रु समझकर भाँति-भाँति के कष्ट देता है और कोई विषय वासना में लिप्त होकर उसे अनियंन्त्रित छोड़ देता है। परन्तु नाथपन्थी काया को परमात्मा का आवास समझ कर उसका उपयुक्त शोधन करता है। काया उसके लिये वही यन्त्र है जिसके द्वारा वह इसी जीवन में मोक्षानुभूति कर लेता है और इस तरह जरा-मरण व्याधि और काल पर विजय भी पा जाता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वह पहले काया शोधन करता है इसके लिये वह यम-नियम के साथ हठयोग के षट्कर्म (नेती, धौती, बस्ती; नौली, कपालभाती और त्राटक) करता है कि काया शुद्ध हो जाये। यह नाथपन्थियों का अपना आविष्कार नहीं है, हठयोग पर लिखित 'घेरण्ड संहिता' नामक प्राचीन ग्रन्थ में वर्णित सात्विक योग प्रणाली का ही यह उद्धार नाथपन्थियों ने किया है।

इस मत में शुद्ध हठयोग तथा राजयोग की साधनाएँ अनुशासित हैं। योगासन, नाड़ीज्ञान, षट्चक्र-निरूपण तथा प्राणायाम द्वारा समाधि की प्राप्ति इसके मुख्य अङ्ग हैं। शारीरिक पुष्टि तथा पञ्च महाभूतों पर विजय की सिद्धि के लिये रस विद्या का भी इस मत में एक विशेष स्थान है।

इस पन्थ के योगी जीवित समाधि लेते हैं। वे जलाये नहीं जाते। यह माना जाता है कि उनका शरीर योग से ही शुद्ध हो जाता है। उन्हें जलाने की आवश्यकता नहीं। नाथपन्थी योगी अलख (अलक्ष) जगाते हैं। इसी शब्द से इष्टदेव का ध्यान करते हैं और इसी से भिक्षाटन भी करते हैं। इनके शिष्य गुरु के 'अलक्ष' कहने पर 'आदेश' कहकर सम्बोधन का उत्तर देते हैं। इन मन्त्रों का लक्ष्य वही प्रणवरूपी परम पुरुष है जो वेदों और उपनिषदों का ध्येय है।

नाथपन्थी जिन ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं उनमें सबसे प्राचीन हठयोग सम्बन्धी ग्रन्थ 'घेरण्ड-संहिता, और 'शिवसंहिता' है। गोरखनाथ कृत हठयोग', गोरक्षनाथ ज्ञानामृत,' 'गोरक्षकल्प,' गोरक्षसहस्रनाम,' 'चतुरशीत्यासव', 'योगचिन्तामणि,' 'योगमहिमा,' 'योगमार्तण्ड,' योग-सिद्धान्त पद्धति,' 'विवेकमार्तण्ड', 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति,' 'गोरखबोध,' 'दत्त गोरक्षसंवाद' गोरखनाथ जी के पद,' गोरखनाथ के स्फुट ग्रन्थ,' ज्ञानसिद्धान्त योग,' 'ज्ञानबिक्रम,' 'योगेश्वरी साखी,' 'नरवैबोध,' 'विरह पुराण' और 'गोरखसार ग्रन्थ' भी नाथ सम्प्रदाय के प्रमाणिक ग्रन्थ हैं।

शाक्त साम्प्रदाय

(क) कौलाचार

'कौल' शाक्तों के वाममार्गी सम्प्रदाय में एक शाखा है। इसका आधारभूत साहित्य 'कौलोपनिषद्' तथा 'परशुराम–भार्गव–सूत्र' है। दूसरे ग्रन्थ में कौल प्रणाली की सभी शाखाओं का सम्पूर्ण विवरण है। दिव्य, घोर और पशु-इन तीन भागों में से दिव्य भाव में लीन ब्रह्मज्ञानी को 'कौल' कहते हैं। 'कुलार्णव तन्त्र' में कौल की परिभाषा इस प्रकार है—

'दिव्यभावरतः कौलः सर्वत्र समदर्शनः।'

दिव्यभाव में रत, सर्वत्र समान रूप से देखने वाला 'कौल' होता है।

'महानील-तन्त्र' में 'कौल' को और भी विशिष्ट रूप से परिभाषित किया गया है—

परोर्वक्त्राल्लब्धमन्त्रः पशुरेव न संशयः।
वीराल्लब्धमनुर्वीरः कौलाच्च ब्रह्मविद् भवेत्॥

'पशु के मुख से मन्त्र प्राप्त कर मनुष्य निश्चय ही पशु रहता है; वीर से मन्त्र पाकर 'वीर' और 'कौल' के मुख से मन्त्र पाकर ब्रह्मज्ञानी होता है।'

तान्त्रिक गण सात प्रकार के आचारों में विभक्त हैं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार वेद, वैष्णव शैव, दक्षिण वाम, सिद्धान्त एवं कौल—ये सात आचार हैं। 'कौलाचार' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। किन्तु प्रथम तीन अन्तिम चार की निन्दा भी करते हैं। प्रत्येक आचार के अनेक तन्त्र-ग्रन्थ हैं। कौलाचार का वर्णन नित्या-तन्त्र' में इस प्रकार है—

'देश एवं काल का नियम नहीं है[1], तिथि आदि का भी नियम नहीं है। हे देवेशि ! महामन्त्र साधन का भी नियम नहीं है। कभी शिष्ट, कभी भ्रष्ट और कभी भूतपिशाच के समान, इस तरह नाना वेशधारी कौल महीतल पर विचरण करते हैं। कर्दम (कीचड़) और चन्दन में, मित्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में, स्वर्ग और तृण में, जिनका भेदज्ञान नहीं है उन्हें ही 'कौल' कहा जाता है।

कौलों के विषय में एक अन्य कथन इस प्रकार है—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये तु वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥

भीतर से शाक्त, बाहर से शैव, सभा में वैष्णव, इस प्रकार नाना रूप धारण करके कौल लोग पृथ्वी पर विचरण करते हैं।'

कौलाचार में जो वस्तुएँ मूल में रूपकात्मक थीं, वे आगे चलकर व्यवहार में अपने भौतिक रूप में प्रयुक्त होने लगीं। कौलों की साधना में पञ्च मकार [मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, और मैथुन] का उन्मुक्त प्रयोग होता है। इन पञ्च मकारों से जगदम्बिका का पूजन होता है। काली अथवा तारा का मन्त्र ग्रहण करके जो पञ्च मकार का सेवन नहीं करता है वह कलियुग में पतित है। वह, जप होम आदि कार्यों में अनधिकारी होता है। तथा मूर्ख कहलाता है। उसका पितृतर्पण श्वान मूत्र के समान है। काली

---

१. दिक्कालनियमो नास्ति तिथ्यादिनियमो न च।
नियमो नास्ति देवेशि महामन्त्रस्य साधने॥
क्वचित् शिष्टः क्वचिद् भ्रष्टः क्वचिद् भूतपिशाचकः।
नानावेशधराः कौलाः विचरन्ति महीतले॥
कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं मित्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि तथैव काञ्चने तृणे॥
न भेदो यस्य देवेशि स 'कौलः' परिकीर्तितः॥
(नित्यातंत्र)

और तारा का मन्त्र पाकर जो वीराचार नहीं करता वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है। सुरा सभी कार्यों में प्रशस्त मानी जाती है। पृथ्वी में यह एकमात्र मुक्तिदायिनी समझी जाती है इसका नाम ही तीर्थ है और यही भौतिक प्रयोग इनके गर्हित होने का मूल कारण बना।

'कौलोपनिषद्' कौलमार्ग का आधार ग्रन्थ है। यह संक्षिप्त है और सरल गद्य में किन्तु संकेतों के साथ लिखा गया है। अतः पहेली के समान सरलता से समझ में न आने वाला है तथा इसका निर्देश अस्पष्ट है। इसके कथनानुसार पूजा-पाठ एवं यज्ञादि से मुक्ति नहीं मिलेगी। इसे प्राप्त करने के लिए सामाजिक परम्परा से चले आ रहे अन्धविश्वासी बन्धनों से मुक्ति पानी चाहिए। कौल धर्म वीरों का मार्ग हैं कायरों का नहीं।

(ख) समयाचार

समय का अर्थ है—हृदयाकाश में चक्र की भावना कर पूजा विधान[1], अथवा शक्ति के साथ अधिष्ठान, अनुष्ठान, अवस्थान, नाम, तथा रूप भेद से पञ्च प्रकार के साम्य को धारण करने वाले शिव (=शिव एवं शक्ति का सामरस्य]। समयाचार में मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर स्वाधिष्ठानादि चक्रों से होकर सहस्रार चक्र में विराजमान सदाशिव के साथ संयोग कर देना ही प्रधान आचार है।[2] इस प्रकार समयाचार 'श्री विद्या' के उपासकों का एक अन्य ही आचार है। इस मार्ग में अन्तर्याग का प्राधान्य है।

भास्कर राय ने 'ललितसहस्रनाम' के भाष्य के आरम्भ में ही 'कुल' शब्द का अर्थ बताया है – मूलाधारचक्र'। लक्ष्मीधर के कथनानुसार आधार चक्र या योनि की प्रत्यक्षरूपेण पूजा करने वाली तान्त्रिक 'कौल' तथा उसकी भावना करने वाले उपासक 'समयमार्गी' कहे जाते हैं। लक्ष्मीधर ने कौलों के दो मतों का भी उल्लेख किया है—पूर्वकौल तथा उत्तरकौल। पूर्वकौल श्रीचक्र के भीतर स्थित योनि की पूजा करते हैं। परन्तु उत्तरकौल सुन्दरी तरुणी की प्रत्यक्ष योनि के पूजक होते हैं। वे अन्य मकारों का भी प्रत्यक्ष प्रयोग करते हैं उत्तरकौलों के इसी

१. 'दहराकाशावकाशे चक्रं विभाव्य तत्र पूजादिकं समय इति रूढ्या उच्यते'—भास्कर राय। (ललितसहस्रनाम पृ० ५४ का भाष्य)

२. कुः पृथिवीतत्त्वं लीयते यस्मिन् तदाधारचक्रं कुलम्। इसकी 'त्रिकोण' या 'योनि' भी अन्यतम संज्ञा है। भास्करराय (ललितसहस्रनामभाष्य)।

वामाचार के कारण तान्त्रिक विधि-विधान सर्वसाधारण में गर्हित होने लगा था। किन्तु कौलो के प्रधान तन्त्र ग्रन्थ 'कुलार्णव-तन्त्र' में मद्य-मांसादि के प्रत्यक्ष प्रयोग की बड़ी कड़ी निन्दा की गई है।[1] वस्तुतः कौल वही है जो शक्ति (=कुल) को शिव (=अकुल) के साथ मिलन करने में समर्थ होता है। योगक्रिया से कुण्डलिनी का अभ्युत्थान कर सहस्रार में स्थित शिव के साथ सम्मेलन कराना ही 'कौल' है। स्वच्छन्दतन्त्र में यही कहा भी है—

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते॥

ग्रन्थकार केशव काश्मीरी

इस 'कमदीपिका' के रचयिता काश्मीरी कवि श्री केशव भट्ट हैं। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वान् थे। निम्बार्कों का इतिहास १३५० ई० से १५०० ई० तक अज्ञात है। किन्तु १५०० ई० से इनका पुनरुन्मेष होता है। इस सम्प्रदाय के दो प्रकार के आचार्य हुए हैं १. गृहस्थ, तथा २. सन्यासी। इन आचार्यों में केशव काश्मीरी का नाम सर्वप्रमुख रूप से आता है। पुन विकास काल के आरम्भिक नेताओं का युग्म केशव काश्मीरी, जो निम्बार्कों में अग्रणी थे, तथा उनके भगिनीपति हरि व्यास देव का था जो निम्बार्कों के अन्य नेता थे। ये कृष्ण चैतन्य एवं वल्लभाचार्य के समकालीन थे। केशव काश्मीरी प्रसिद्ध तार्किक विद्वान् एवं निम्बार्कदर्शन के भाष्यकार हैं। उपासना के क्षेत्र में उनकी 'क्रमदीपिका' की विशेष प्रतिष्ठा है जो विशेषकर गौतमीय तन्त्र के आधार पर निर्मित हुई है।

वस्तुतः केशवाचार्य निम्बार्काचार्य के शिष्य श्रीनिवास द्वारा कृत 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' के व्याख्याता विद्वान् थे। निम्बार्काचार्य के 'वेदान्तपरिजात सौरभ' का भाष्य 'वेदान्तकौस्तुभ' नाम से श्रीनिवासाचार्य ने लिखा था। उस 'वेदान्तकौस्तुभ' की टीका केशवाचार्य ने लिखी है। निम्बार्काचार्य की परम्परा में ये अत्यन्त प्रौढ़ विद्वान् माने जाते हैं। इन्हें केशव भट्ट के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार निम्बार्काचार्य की परम्परा के उत्तरार्द्ध में उनके दो शिष्य केशव भट्ट और हरिव्यास से दो श्रेणियाँ निकलीं। ये गृहस्थ और सन्यासी थी, जो आपसी भेदों के होते हुए भी बड़े आदृत थे।

---

१. कलार्णव २. १-११७-१३६।

केशवभट्ट का काल

केशव काश्मीरी के देशकाल का भलीभाँति परिचय नहीं प्राप्त होता है। सुना जाता है कि इन्होने तीन बार दिग्विजय कर 'दिग्विजयी' की उपाधि प्राप्त की थी। काश्मीर में अधिक दिनों तक निवास के कारण काश्मीरी नाम से विख्यात हुए थे। ये अलाउद्दीन खिलजी (शासनकाल १२९६ ई०-१३२० ई०) के समकालीन माने जाते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि मथुरा के किसी मुसलमान सूबेदार के आदेशानुसार एक फकीर ने लाल दरवाजे पर एक मन्त्र टाँक दिया था, जिसके प्रभाव से जो भी हिन्दू उधर से निकलता था उसकी शिखा कट जाती और वह मुसलमान बन जाता था। हरि-भक्त काश्मीरी कवि भी सूचना पाकर उस स्थान पर अपने शिष्यों के साथ पहुँचे। वहाँ अपने प्रभाव से उस यन्त्र को उन्होंने व्यर्थ बना डाला। ये मथुरा में ध्रुवटीले पर निवास करते थे। इनका जन्मोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता है। इनके एक शिष्य संकर्षणशरणदेव ने 'वैष्णवधर्मसुरद्रुममञ्जरी' की रचना की, जिसमें इस मत की श्रेष्ठता तथा व्रतादि का वर्णन है। काश्मीरी कवि के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध—

वागीशा यस्य ,वदने हृत्कञ्जे श्रीहरिःस्वयम्।
यस्यादेशकरा देवा मन्त्रराजप्रसादतः॥

नाभादास जी ने इनके पूर्वोक्त चमत्कार तथा सर्वत्र दिग्विजय की सूचना पाकर यह छप्पय लिखा था—

कासमीर की छाप पाय तापन जगमण्डल
दृढ़ हरि भक्ति कुठार आनमत विटप विहंडन।
मथुरा मध्य मलेच्छ बदल करि वर बट जीते
काजी अजित अनेक देखि परचे भय भीते।
विदित बात संसार सब सन्त साखि नाहिन दुरी।
'श्री केशवभट' नरमुकुटमणि जिनकी प्रभुता निस्तरी॥
(छप्पय ७५)

इस प्रकार केशव काश्मीरी निम्बार्क सम्प्रदाय के महनीय आचार्य एवं विशिष्ट सिद्ध पुरुष थे।[1] इनके जीवन के अनेक अलौकिक चमत्कार

१. इनके जीवन चरित के विशेष अध्ययन के लिए श्री नारायण देवाचार्य द्वारा संगृहीत 'आचार्य चरित्र' एवं सर्वेश्वर का 'वृन्दावनाङ्क' देखना चाहिए।

सम्प्रदाय के इतिहास में बहुश चर्चित हैं। इनके प्रमुख शिष्य 'श्रीभट्ट' थे। इन्होंने 'युगल शतक' की रचना १३५२ विक्रमी (~१९९५ ई०) में की थी– इस प्रकार इस सम्प्रदाय की मान्यता है। अतः केशव काश्मीरी का समय ई० की १३ वीं शती का पूर्वार्ध होना चाहिए। 'युगल शतक टीका' बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण है तथा इसमें भागवत के पद्यों की व्याख्या में वेद तथा उपनिषदों से प्रचुर प्रमाण उद्धृत किए गए हैं।

क्रमदीपिका और उसका काल

इस प्रकार 'क्रमदीपिका' केशव काश्मीरी निम्बार्कों के एक दिग्विजयी नेता, विद्वान् एवं भाष्यकार के द्वारा रचित है। यह तन्त्र ग्रन्थ यजन, पूजार्चन आदि पर एक गौरवपूर्ण रचना है, जो गौतमीय तन्त्र की चुनी हुई सामग्रियों का संग्रह है। इसके विषय कुछ 'गोपालपूर्वतापनीयोपनिषत्' से भी लिए गए हैं। किन्तु उन सभी पूजा के ही विषयों को उपासना के क्रम में रक्खा गया है और यह स्वतन्त्र रचना उस 'उपासना क्रम' की 'दीपिका' हो गई है जिसे स्वयं कवि ने पुस्तक के अन्तिम पटल[1] में इस इस प्रकार व्यक्त किया हैं—

न्यासजपहोमपूजातर्पणमन्त्राभिषेकविनियोगात् ।
दीपिकयैव मयोद्भाषितः क्रमः कृत्स्नमन्त्रगणकथितानाम् ॥

'श्रीकृष्ण विषयक अनुष्ठान के लिए न्यास, जप, होम, पूजा, तर्पण, मन्त्र और अभिषेक की तथा सम्पूर्ण मन्त्रों की दीपावली के समान मैंने क्रमपूर्वक यह दीपिका प्रकाशित की है।'

इसकी रचना १३वीं शती के प्रारम्भ में हुई थी।

केशव काश्मीरी के ग्रन्थ

इनके जो ग्रन्थ मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

१. **तत्त्वप्रकाशिका** –गीता का निम्बार्कमतानुयायी भाष्य मुद्रित है।

२. **कौस्तुभप्रभा** - यह वेदान्त कौस्तुभ का नितान्त पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यान है जिसमें परमत का खण्डन बड़ी युक्तियों के साथ साग्रह किया गया है। यह ग्रन्थ भी मुद्रित है।

३. **प्रकाशिका**– यह दशोपनिषद् पर भाष्य है। जिसमें से मात्र मुण्डक का ही भाष्य प्रकाशित है।

---

१. क्रम० ८.११३।

४ **भागवती टीका**– मात्र वेदस्तुति का भाष्य उपलब्ध है और प्रकाशित भी है।

५. **क्रमदीपिका**—'विवरण' नामक टीका के साथ मुद्रित है।

क्रमदीपिका के टीकाकार

'क्रमदीपिका' पर श्रीगोविन्द भट्टाचार्य कृत 'विवरण' नामक टीका है जिसका प्रकाशन इस ग्रन्थ में किया गया है। पुष्पिका[1] में इन्हें 'विद्या-विनोद' विशेषण दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि ये अत्यन्त विद्याव्यसनी थे।

टीका में इन्होंने अन्य आचार्यों के मतों का संग्रह भी किया है। इन आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—परमानन्द भट्टाचार्य, भैरवत्रिपाठी, रुद्रधर, विद्याधराचार्य आदि। इनके अतिरिक्त मन्त्रमुक्तावलीकार और लघु-दीपिकाकार का भी उल्लेख किया गया है। जिन ग्रन्थों के नाम यहाँ आए हैं वे हैं—प्रपञ्चसार, प्रपञ्चसारविवरण, शारदातिलक, शारदातिलकोद्योत (टीका), वैशम्पायन संहिता, नारदीय पाञ्चरात्र, गौतमीय तन्त्र और सनत्कुमार कल्प आदि।

टीकाकार का परिचय कहीं भी टीका में प्राप्त नहीं है। इनकी इस टीका के बिना ग्रन्थ को समझना अत्यन्त कठिन है। इन्होंने एक 'होमा-नुष्ठानविधि' नामक हवन विषयक ग्रन्थ भी लिखा था जिसका उल्लेख टीका में प्राप्त है।[2]

क्रमदीपिका-विषय-विवेचन

इस तन्त्र ग्रन्थ में गोपाल की पूजार्चना का क्रमपूर्वक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसलिए इसका नाम 'क्रमदीपिका' है इसमें तान्त्रिक क्रम से पूजा के उपचारों को इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है—

१. न्यास, २. जप, ३. होम, ४. पूजा, ५. तर्पण, ६. मन्त्र, और ७. अभिषेक।

पूजा क्रम की इस 'दीपिका' के आठ पटलों में इसी का क्रम बद्ध वर्णन है।

---

१. इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया विवरणे प्रथमः पटलः ॥ १ ॥ क्रम० पृ० २८।

२. होमादेश्चानुष्ठानप्रकारो मत्कृतहोमानुष्ठानपद्धतेरवगन्तव्यः। क्रमदीपिका टीका०, पृ० १४२।

प्रथम पटल—

इस पटल में ग्रन्थ की उपादेयता, गोपाल मन्त्र की सिद्धि, भूतशुद्धि, मातृका न्यास, केशवादि मूर्ति और कीर्त्यादि शक्ति का न्यास, उनका ध्यान, तत्त्वों के नाम, न्यास के प्रयोजन, मन्त्रविशेष में प्राणायाम के प्रकार, पीठ शक्ति का दिग्दर्शन एवं कर-शोधन वर्णित है।

इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के पूजा-होमादि रूप यजन विधियों का प्रतिपादन नारद एवं गौतम प्रभृति महर्षियों के ग्रन्थों में कहे गये विवेचनों पर आधारित है। इसके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी किंवा स्त्रियाँ भी अधिकारी हैं।[१] इस घोर कलि काल में श्रीकृष्ण के मन्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य मन्त्र का जप, हवन, एवं तर्पण तथा अनुष्ठान शायद ही कभी फलप्रद होता है।[२] पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति के लिए विष्णु और गुरु की भक्ति ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

पूजा के लिए भूत अर्थात् देह की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। अतः साधक अपने गृह्योक्त विधि से अथवा आगमविधि से स्नान कर निर्मल एवं शुद्ध (प्रक्षालित) वस्त्र धारण करे। तदनन्तर पुनः हाथ मुँह एवं पैर धोकर आचमन करे तथा पवित्री धारण करे। श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र का तिलक लगावे। पुनः पूर्वाभिमुख हो पद्मासन तथा स्वस्तिकासन से दृढ़तापूर्वक बैठकर हाथ जोड़कर गुरुओं तथा गणपति की वन्दना करे। दोनों पैरों को जानु के अन्दर करके सीधे-सादे एवं सरल विधि से बैठना 'स्वस्तिकासन' है। गौतमीय तन्त्र के अनुसार वाम भाग में गुरु की, दक्षिण में गणेश की, अग्र भाग में दुर्गा की तथा पृष्ठ भाग में क्षेत्रपति की वन्दना करनी चाहिए।[३] शारदातिलक के अनुसार दक्षिणभाग में पूजा-द्रव्यों को रक्खे, वामभाग में जलकुम्भ, पीछे करप्रक्षालन का पात्र और आगे दीप एवं चामर आदि अन्य पूजोपचार के उपकरण रक्खे।

साधक 'ॐ हुं फट्' इस अस्त्र मन्त्र से गन्ध पुष्प आदि लगाकर हाथ शुद्ध करे। उसी मन्त्र से तीन बार ऊपर की ओर ताली बजावे।[४] उसी

---

१. सर्वेषु वर्णेषु तथाऽश्रमेषु नारीषु मानाह्वयजन्मभेषु (१-४)।
२. फलति हि कश्चनकस्यचित्कथंचित् — (१-३)।
३. 'वामे गुरुं दक्षिणतो गणेशं दुर्गां पुरः क्षेत्रपतिं च पश्चात्।'
—गौतमीयतन्त्र।
४. 'करन्यासं समासाद्य कुर्यात्तालत्रयं ततः'—शारदातिलक।

से दसो दिशाओं का दिग्बन्धन करे। उसी से जल द्वारा अपने को अग्नि तत्त्व से परिवेष्टित करे। इस प्रकार जैसे चावल को पकाने से पूर्व उसे बिनकर एवं धोकर शुद्ध किया जाता है वैसे ही बुद्धि को शुद्ध कर पञ्च-भूतात्मक अपने शरीर का क्रमशः शोधन करना चाहिए।

प्राणायाम से मन की एकाग्रता होती है। अतः साधक कुम्भक, रेचक एवं पूरक प्राणयाम करे? वायु कृष्ण वर्ण वाले पञ्चभूतात्मक सम्पूर्ण संसार का शोषण करने वाला है। अतः १. वायु बीज 'यँ' का सोलह बार जप करते हुए बाईं नासिका के छिद्र से उस वायु को ऊपर खींचे। फिर उस वायु के द्वारा अपने को पूर्ण बनाकर उससे शरीर का शोषण हुआ जानकर चौसठ बार जप करते हुये 'कुम्भक' करे और बत्तीस बार जप करके दक्षिण नासिका से उस वायु को बाहर निकाले। २. पुनः इसी प्रकार दक्षिण नासिका से अग्नि वर्ण वाले 'रम्' बीज का सोलह बार जप करते हुये वायु ऊपर खींचे। पुनः उसी मन्त्र का चौसठ बार जप करते हुये कुम्भक करे और बत्तीस बार जप करते हुये बाई नासिका से वायु बाहर निकाले।

३. अब 'ढकार' रूप अत्यन्त श्वेत एवं शुद्ध चन्द्र बीज का सोलह बार जप करते हुए बाई नासिका से पूरक करे। इसी समय यह ध्यान करे कि मैं ललाट स्थित चन्द्रमा से ब्रह्मरन्ध्र स्थित चन्द्रमा को मिला रहा हूँ और इस प्रकार ध्यान में ही दोनों में ऐक्य हो जाने पर ४. वरुण बीज 'वम्' का चौसठ बार जप करते हुए कुम्भक करे। इस समय यह सोंचे कि सम्पूर्ण मातृका स्वरूप अमृतपूर्ण वृष्टि से इस शरीर को आप्लावित कर रहे हैं। ५. पुनः पीले वर्ण वाले पृथ्वी बीज 'लम्' का सोलह बार जप करते हुए दाहिनी नासिका से उस वायु को निकालते हुए 'रेचक' करे और यह सोंचे कि हमने अपने शरीर को शुद्ध (=एकाग्र) कर दिया है और 'सोऽहम्' (=वहीं ईश्वर मैं हूँ) इस मन्त्र का जप करके ब्रह्मरन्ध्रस्थान से जीव को नीचे उतारकर हृत्कमल में स्थापित करे।

न्यास

न्यास अर्थात् उपस्थापित करना। प्राणायाम के बाद एकाग्र होकर मात्तृकाओं [=स्वर वर्ण और हल वर्ण] का विभिन्न अङ्गों में न्यास करे। बुद्धिमान साधक अपने शरीर की शुद्धि के लिए प्रतिदिन पचास अक्षरों के द्वारा हृदय, दोनों कक्ष, दोनों कन्धे, दोनों हाथ, दोनों पैर, पेट, मुख एवं हृदय प्रदेश का न्यास करे। 'अ' से लेकर 'अः' पर्यन्त सोलह स्वरों के एक एक

अक्षर से न्यास करे। फिर ककार से लेकर नकार पर्यन्त बीस वर्णों से आदर पूर्वक दोनों हाथ-पैर की सन्धियों में तथा उसके अग्रभाग में न्यास करे और पकारादि पाँच वर्णों से दोनों पार्श्व, पृष्ठ, नाभि और पेट का न्यास करे। पुनः यरलवशषह पर्यन्त आठ वर्णों से दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर एवं दोनों गण्डस्थल तथा हृदय का न्यास करे। साधक अपने शरीर की शुद्धि के लिए यह क्रिया अवश्य करे।

न्यास करते हुए सोलह स्वरों की मूर्त्तियों और शक्तियों का ध्यान करना चाहिए और इसी प्रकार पैंतिस हल वर्णों की मूर्त्तियों एवं शक्तियों का भी ध्यान करना आवश्यक है। न्यास के द्वारा वर्णों के माध्यम से साधक अपने विभिन्न अङ्गों में इन मूर्तियों को एवं उनकी शक्तियों को न्यस्त करता है। यह न्यास 'अं केशव कीर्त्तिभ्यां नमः' कहकर ललाट का स्पर्श करते हुए आरम्भ करे और अन्त में 'मं बैकुण्ठवसुधाभ्यां नमः' पर्यन्त न्यास करके य से लेकर क्ष पर्यन्त बचे हुए दस अक्षरों से 'आत्मने' लगाकर त्वक् असृक् मांस, मेद, अस्थि मज्जा, शुक्र, प्राण, जीव एवं क्रोध का न्यास करे। यह न्यास 'यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमवसुधाभ्यां नमः' कहकर त्वचा में, 'रं असृगात्मने बलिपराभ्यां नमः' कहकर असृकादि में 'य' से सात अक्षर पर्यन्त 'स' से 'सं हसप्रभाभ्यां नमः' तक न्यास करे। शेष तीन से 'हं प्राणात्मने वराहनिशाभ्यां नमः', क्षं जीवात्मने विमल अमोघाभ्यां नमः' 'त्रं क्रोधात्मने नरसिंहविद्युदाभ्यां नमः' प्राण, जीव एवं क्रोध का न्यास करे।

यह न्यास साधक को अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही करना चाहिये। 'आत्मने' लगाकर न्यास करना मन्त्रमुक्तावलीकार के द्वारा कहा है। प्रपञ्चसारविवरण में परमानन्दभट्टाचार्य ने भी यही कहा है। इस प्रकार 'अं केशवकीर्तिभ्यां नमः'प्रयोग मन्त्र मुक्तावलीकार और लघु-दीपिकाकार त्रिपाठीरुद्रोपाध्याय, विद्याधराचार्य एवं परमानन्दभटटाचार्य सम्मत है। किन्तु 'अ केशवाय कीर्त्यै नमः' प्रयोग पद्मपादाचार्य सम्मत है। अतः गुरु के अनुसार सम्प्रदाय को ध्यान में रखकर ही प्रयोग करना चाहिये।

न्यास में ध्यान—

उक्त प्रकार के मूर्त्तिसहित शक्ति-मन्त्रों के न्यास में इस प्रकार के विष्णु का ध्यान करना चाहिये—

जिनके शरीर की कान्ति उदित होते हुए सैकड़ो सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही है; अग्नि में डाले गये सुवर्ण के समान जो गौर वर्ण के हैं, जिनके दक्षिण पार्श्व में महालक्ष्मी एवं वाम भाग में भगवती भू देवी विराजमान हैं। जिनके आभूषण नाना प्रकार के रत्नों से जगमगा रहे हैं, तथा जिन्होंने पीताम्बर धारण किया है, जिनके हाथों में शङ्ख, कमल, कौमोदकी गदा एवं चक्र सुशोभित हो रहे हैं।"

इस प्रकार के भगवान् विष्णु की वन्दना करते हुए ध्यान करते रहना चाहिए।

न्यास में ध्यान की फलश्रुति—

इस ध्यान का फल यह है कि जो इस प्रकार के अक्षरों से महाविष्णु का ध्यान करते हुए प्रतिदिन केशवादि मूर्त्ति से युक्त शक्तियों से न्यास करता है वह बहुत काल पर्यन्त मेधा अर्थात् धारणा युक्त बुद्धि, आयु, स्मृति, धैर्य, कीर्ति, कान्ति, लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य और सौभाग्य अर्थात् सर्वप्रियता को प्राप्त कर बहुकाल पर्यन्त समृद्धि को प्राप्त करता है।[1] इस प्रकार इस जीवन में तो वह महती लक्ष्मी (=ऐश्वर्य) प्राप्त करता है और अन्त में विष्णुत्व को प्राप्त कर लेता है।

द्वितीय पटल—

इस पटल में दशाक्षर मन्त्र का उद्धार बताया गया है। उसके ऋषि, देवता का कथन करके मन्त्र के पाँच अङ्ग बताए गए हैं।

१. दशाक्षर मन्त्र है—'**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**।' दस अङ्ग में इनका न्यास बताया गया है। इस प्रकार इस पटल में मन्त्र का बीज, शक्ति अधिष्ठातृ देवता बताकर इसका विनियोग बताया गया है।

(२) द्वादशाक्षर मन्त्र है—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' (पृ० ५३)।

(३) अष्टादशाक्षर मन्त्र है-ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' (पृ० ३९)। इन दोनों मन्त्रों के ऋषि देवता और विनियोग का वर्णन कर मन्त्र का न्यास, पञ्चाङ्ग न्यास आदि बताया गया है।

तृतीय पटल—

इस पटल में देवता का विभिन्न प्रकार का ध्यान वर्णित है। ३८ वें श्लोक से शंख की पूजा विधि कही गई है। वह्नि सूर्य और चन्द्र का मण्डल

---

१. ध्यात्वैवं·········सौभाग्यैश्चिरमुपबृंहितो भवेत् सः—१.२६ पृ० १४।

बनाकर उनकी पूजा विधि कहकर शङ्ख में तीर्थ का आवाहन कहा गया है। स्वदेह में पीठ पूजा का क्रम एवं पुष्पाञ्जलि विधान करके उपचार पूजा वर्णित है। जपविधि इस प्रकार कही गई है—मूल मन्त्र का जप साधक को मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए करना चाहिए। उसे अनन्य भाव से श्रीकृष्ण की हृदय में भावना करनी चाहिए। जपारम्भ से पहले काम बीज को प्रणव से सम्पुटित कर १०८ बार जप करे। जप की समाप्ति पर प्राणायाम करना चाहिये।

चतुर्थ पटल—

इस पटल में मन्त्र के जप में दीक्षित को ही अधिकृत बताया गया है तथा दशाक्षर और अष्टादशाक्षर मन्त्र की सिद्धि को देने वाले दीक्षा-विधान का वर्णन में है। दीक्षा में प्रथमोपस्थितिकत्वात् गुरु के लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है। प्रपञ्चसार में उक्त दीक्षा-विधि को ही यहाँ भी उद्धृत किया गया है। वस्तु बलि, कुण्ड विधान और राशिमण्डल की विधि बताकर पात्रों के स्थापन को कहा गया है। दीक्षा में भगवत् पूजा का विधान फिर आवरणपूजा का क्रम वर्णित है। प्रथम आवरण में दाम, सुदाम, वसुदाम एव किङ्किणी का पूजन, द्वितीय आवरण में कर्णिका के कोणों में अङ्गों का पूजन उनका ध्यान, तृतीय आवरण में अष्टदल कमल के आठ पत्तों पर रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण की पटरानियों का पूजन विहित है। चतुर्थ आवरण में अष्टदल कमल के अग्रभाग में वसुदेव-देवकी, नन्द-गोप यशोदा, बलभद्र सुभद्रा तथा गोप-गोपियों का पूजन करना चाहिये। पञ्चम आवरण में कर्णिका के मध्य मन्दार, सन्तानक, पारिजात, कल्पद्रुम एवं हरिचन्दन के वृक्ष की पूजा, षष्ठ आवरण में इन्द्र अग्नि, यम, निशाचर (निऋृति) वरुण, वायु सोम, ईश्वर, अनन्त और ब्रह्मा की पूजा वाहनसहित, शक्तिसहित तथा परिवारसहित करनी चाहिए। सप्तम आवरण में पूर्वादि दिशाओं में वज्र, शक्ति, दण्ड, कृपाण, पाश, उग्राङ्कुश, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्मों की पूजा करनी होती है। इसके बाद श्रीकृष्ण की पूजा उनके आठ नामों से करे। धूप, दीप, नैवेद्य समर्पित करके मुद्राविशेष को प्रदर्शित करे। दीक्षाङ्गहोम के बाद आत्म-समर्पण करे। इसके बाद अभिषेक मण्डप में गुरु शिष्य को भूत शुद्धयादि से शुद्ध करके उसके आसन का पूजन कर उसे तिलक लगावे। पुनः मङ्गल वाचन द्वारा आचार्यत्वेन अभिवृत गुरु उस कलश को आत्मीय शिष्य के समीप लावे। फिर दशाक्षर मन्त्र को मैं तुम्हें दे रहा हूँ कहते हुए उसे

मन्त्र का उपदेश करे। गुरूपदिष्ट मन्त्र का शिष्य १०८ बार जप करे। इसके बाद मन्त्र देने से स्वयं की हानि न हो इसलिए गुरु स्वयं भी एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करे। इसके बाद शिष्य ब्राह्मणों को नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों से सन्तुष्ट करे।

पञ्चम पटल—

इस पटल में मन्त्र ग्रहण से दीक्षित शिष्य गायत्री जप से अपने को निष्पाप करे और कमल गट्टे के बीज की माला से जप प्रारम्भ करे। मन्त्र जप किये हुए जल से तीन बार अपने को अभिषिक्त करे। ३२ बार जप करके आचमन करे और ७ बार मन्त्र जप कर भोजन करे। ७ बार अभिमन्त्रित जल को नेत्र में लगावे।

जप

आठ स्थान पर जप किया जा सकता है– पर्वत पर, नदी के तट पर बेल के वृक्ष के नीचे, हृदय पर्यन्त जल में, गोष्ठ में, विष्णु मन्दिर में, पीपल के नीचे, और समुद्र तट पर। 'जप संख्या चालीस हजार होनी चाहिये। अष्टादशाक्षर मन्त्र की संख्या बीस हजार होनी चाहिये।

जप के समय आहार, शाक, मूल, फल, गोदुग्ध, दही, भिक्षा से प्राप्त अन्न, सत्तू और खीर होना चाहिये। इन आठ में से कोई एक भोजन ही ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार एक पुरश्चरण समाप्त होने पर पुनः दूसरा जप प्रारम्भ करे।

होम

दशाक्षर मन्त्र का दस लाख जप करे। फिर उसके दशांश एक लाख से लाल कमल से युक्त गुड़, घी, मधु आदि हविष्य से हवन करे। यदि हवन न कर पावे तो १८ हजार और जप कर देवे। होम करने में असमर्थ होने पर ब्राह्मण चार गुना, क्षत्रिय छः गुना और वैश्य आठ गुना जप बढ़ा देवे। स्त्रियों के लिए भी जप संख्या वही होगी।

पुरश्चरण समाप्त होने पर गुरु से पुनः अभिषेक कराके पर्याप्त दक्षिणा देकर ब्राह्मण भोजन करावे। दोनों मन्त्र में से कोई एक को जप, होम, एवं तर्पण से सिद्ध कर लेने पर तीनों समय स्नान कर साधक को श्रीकृष्ण की पूजा अटूटभाव से प्रतिदिन करनी चाहिए। उसे श्रीकृष्ण का ध्यान उनके विभिन्न लीला विग्रह के रूप में करते रहना चाहिए।

पूजा एवं नैवेद्य

साधक को चाहिए कि वह शर्करा, कदली, नवनीत, दही, चावल का बना पायस का नैवेद्य भगवान् कृष्ण को समर्पित करे। नित्य प्रति श्रीकृष्ण का पूजन कर गुड़मिश्रित दही का नैवेद्य निवेदन कर जल में गुड़मिश्रित जल की भावना करते हुए उसी से आचमन द्वारा श्रीकृष्ण को तृप्त कर मूल मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करे।

मध्यन्दिन की पूजा में कृष्ण का ध्यान, होम, नैवेद्य और उसका फल बताकर पुनः तृतीय काल की पूजा का विधान कहते है। आवरण पूजा करके जल में शर्करामिश्रित दूध की भावना कर उसी से श्रीकृष्ण को तृप्त करे। पुनः १०८ बार मूल मन्त्र का जप करे। तीनों कालों की पूजा में हवन करे। अर्घ्य पर्यन्त पूजा कर स्तुति करे एवं साष्टाङ्ग प्रणाम करे।

रात्रि में 'रासक्रीडा' का ध्यान कर पूजन करे। ५३ से लेकर ६२ श्लोक पर्यन्त 'रासगोष्ठी' की लीला वर्णित है। इस प्रकार का ध्यान करते हुए सर्वप्रथम पूर्व में कहे गये उनके पाँच दाम-सुदामादि अङ्गों की पूजा करे। तदनन्तर रास में रहने वाले उनके केशव की कीर्त्यादि द्वन्द्व स्वरूपों का पूजन करे। इस रास-पूजा का फल अतुल सम्पत्ति प्राप्त करना और अन्त में विष्णु सायुज्य बताया गया है।

तर्पण

तीनों काल में श्रीकृष्ण के तर्पण के लिए प्रत्येक काल में तर्पण की संख्या २८ बार बताई गई है। १.४०–४५ में कहे गए 'आधार शक्त्यै नमः' इत्यादि आधार शक्ति के मन्त्रों से पीठाङ्गभूत देवताओं का एक-एक बार जल से अर्चन करे। पुनः उस जलमय पीठ पर श्रीकृष्ण का आवाहन कर जल में ही गन्धादि उपचारों की भावना कर उसी से पूजन करे। धेनु मुद्रा प्रदर्शित कर जल में ही तर्पण की सारी सामग्री की भावना कर उस समस्त द्रव्यमान जल से युक्त अपनी अञ्जलि में सुवर्णपात्र की संभावना करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का तर्पण करे। इस प्रकार तत्तदावरणोक्त देवताओं का भी एक एक बार तर्पण करे। तर्पण के लिए १६ द्रव्य इस प्रकार हैं—पायस, दधि से परिष्कृत अन्न मूँग और चावल, गुड़ में पकाया हुआ चावल, दूध, दही, नवनीत, घी, कदली, मोचा, रजस्वला (कदली विशेष) चोच, लड्डू अपूप, चिवड़ा और लावा। अन्त में लाजा से तर्पण

करने के पश्चात् क्षीर से तर्पण करे। इसके पहले मिश्री की भावना करते हुए जल से श्रीकृष्ण का तर्पण करे। इस विधि से प्रतिदिन प्रातः ७४ बार तर्पण करे। इससे ४९ दिन में ही आकाङ्क्षित सम्पत्ति हस्तगत हो जाती है।

यन्त्र निर्माण की विधि

जो उपासक 'क्लीँ' इस कामबीज को आदि में रखकर 'कृष्णाय' इस पद का 'गोविन्दाय' इस पद का तथा गोपीजनवल्लभाय' इस पद का 'स्वाहा' सहित एक साथ उच्चारण करेगा, उसे शीघ्र ही श्रीकृष्ण-मिलन रूपा सद्गति प्राप्त होगी। उसके लिए दूसरी गति नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति ही भजन है। उस भजन का स्वरूप है—इस लोक तथा परलोक के समस्त भोगों की कामना का सर्वथा परित्याग करके श्रीकृष्ण में ही इन्द्रियों सहित मन को लगा देना। वही नैष्कर्म्य अर्थात् वास्तविक सन्यास भी है। उन सच्चिदानन्दमय भगवान् कृष्ण का वेदज्ञ ब्राह्मण नाना प्रकार से यजन करते हैं। 'गोविन्द' नाम से प्रसिद्ध उन भगवान् की अनेक प्रकार से आराधना करते हैं। वे 'गोपीजनवल्लभ' (=जीवमात्र के अकारण सुहृद् एवं प्रियतम तथा गोप सुन्दरियों के प्राणाधार) श्याम सुन्दर ही सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं और संकल्प रूप उत्तम वीर्य वाले उन भगवान् ने ही 'स्वाहा' (अपनी माया शक्ति) का आश्रय लेकर जगत् को उत्पन्न किया है। जैसे सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ एक ही वायुतत्त्व प्रत्येक शरीर में प्राण आदि पाँच रूपों से अभिव्यक्त हुआ है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण एक होते हुए भी इस उपर्युक्त मन्त्र में भिन्न भिन्न नाम से पाँच नामों वाले प्रतीत होते हैं—वास्तव में 'कृष्ण' आदि पाँच नामों द्वारा एक ही भगवान् का प्रतिपादन होता है।

पञ्चपदी

जलवाचक 'क्', भूमिवाचक 'ल' 'ई', तथा चन्द्रमा के समान आकार धारण करने वाला अनुस्वार इन सबका समुदाय है—'क्लीँ' यही कामबीज है। इसको आदि में रखकर 'कृष्णाय' पद का उच्चारण करे। यह 'क्लीँ कृष्णाय' सम्पूर्ण मन्त्र का एक पद है। 'गोविन्दाय' यह दूसरा पद है। 'गोपीजन' यह तीसरा पद है। 'वल्लभाय' यह चौथा पद है, और 'स्वाहा' यह पाँचवाँ पद है। पाँच पदों का यह 'क्लीँ कृष्णाय गोविन्दाय गोपी-जनवल्लभाय स्वाहा' मन्त्र 'पञ्चपदी' कहलाता है। आकाश, पृथ्वी, सूर्य,

चन्द्रमा और अग्नि—इन सबका प्रकाशक अथवा स्वरूप होने के कारण यह चिन्मय मन्त्र पाँच अङ्गों से युक्त है। अतः—

१. क्लीं कृष्णाय दिवात्मने हृदयाय नमः।

२. गोबिन्दाय भूम्यात्मने शिरसे स्वाहा।

३ गोपीजनसूर्यात्मने शिखायै वषट्।

४. वल्लभाय चन्द्रात्मने कवचाय हुम्।

५. स्वाहा अग्न्यात्मनेऽस्त्राय फट्।

इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करके इस पाँच पद और पाँच अङ्गों वाले मन्त्र का जप करने वाला साधक मन्त्रात्मक होने से परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण को प्राप्त होता है।

यन्त्र

पीठ पर सुवर्णमय अष्टदलकमल बनाए। उसके मध्यभाग (कर्णिका) में दो त्रिकोण लिखे, जो एक दूसरे से सम्पुटित हों। इस प्रकार छः कोण होंगे। इन कोणों के मध्यभाग में स्थित जो कर्णिका है, उसमें आदि अक्षर रूप कामबीज का जो सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि का अमोघ साधन है, उल्लेख करे। फिर प्रत्येक कोण में 'क्लीं' बीजसहित 'कृष्णाय नमः' मन्त्र के एक एक अक्षर का अङ्कन करे। तत्पश्चात् ब्रह्म-मन्त्र अर्थात् अष्टादशाक्षर गोपाल विद्या एवं कामगायत्री का यथावत् उल्लेख करके आठ वज्रों से घिरे हुए भूमण्डल का उल्लेख करे। तत्पश्चात् उक्त मन्त्र को अङ्ग; वासुदेवादि, रुक्मिणी आदि स्वशक्ति एवं इन्द्र आदि, वसुदेव आदि, पार्थ आदि तथा निधि आदि आठ आवरणों से आवेष्टित करके उसकी पूजा करे।

धारण के लिए यन्त्र

यन्त्र की स्पष्ट विधि इस प्रकार समझनी चाहिये। अपने घर पर गोबर और जल से भूमि को लीप दे। फिर उस शुद्ध भूमि में धोया हुआ पीठ स्थापित करके उसके ऊपर सुवर्णमय अष्टदल कमल की स्थापना करे अथवा घिसे हुए चन्दन में रोली या केसर मिलाकर उसी से अष्टदल कमल का रेखाचित्र बना लें। तदनन्तर उस अष्टदल कमल के मध्य भाग (बीच की कर्णिका) में परस्पर सम्पुटित दो त्रिकोण खींच ले। इसी प्रकार छः कोण बन जायँगें। इन कोणों के मध्यभाग में आदि अक्षररूप कामबीज (क्लीं) का, जो सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि का बीज है, उल्लेख करे। साथ ही साध्य व्यक्ति का तथा उसके कार्य का भी उल्लेख

करे (यथा—'अमुकस्य अमुककार्यं सिद्धयतु')। ऐसा उल्लेख तभी आवश्यक है, जब धारण करने के लिए यन्त्र बनाया गया हो। पूजा के लिये निर्मित यन्त्र में साध्य और कार्य का नाम आवश्यक नहीं है। इसके बाद जो छः कोण हैं, उनमें 'क्लीं कृष्णाय नमः' इस मन्त्र के एक एक अक्षर का उल्लेख करे। तत्पश्चात् कोणों के मध्य भाग अर्थात् कर्णिका में लिखे हुये पूर्वोक्त क्लीं" बीज के चारो ओर अष्टादशाक्षर मन्त्र को इस प्रकार लिखे, जिससे वह उसके द्वारा आवेष्टित हो जाय। तदनन्तर छः कोणों में से जो पूर्व, नैर्ऋत्य और वायव्य वाले कोण हैं, उनमें (श्रीं) का उल्लेख करे तथा पश्चिम, अग्निकोण और ईशान वाले कोणों में माया बीज (ह्रीं) को अङ्कित करे। फिर अष्टदलों के केसरों में तीन-तीन अक्षर के क्रम से चौबीस अक्षरों की काम-गायत्री का उल्लेख करे। कामगायत्री इस प्रकार है—'कामदेवाय विद्महे, पुष्पबाणाय धीमहि, तन्नोऽनङ्ग प्रचोदयात्।' इसके बाद प्रत्येक दल में छः-छः अक्षर के क्रम से अड़तालीस अक्षर वाले काम-माला यन्त्र का लेखन करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—'नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदय मम वंश कुरु कुरु स्वाहा।' इसके बाद अष्टदलों के बाहर गोल रेखा खींचकर उसके ऊपर अकारादि इक्यावन अक्षरों की पूरी वर्णमाला को इस प्रकार लिखे, जिससे सम्पूर्ण अष्टदल कमल घिर जाय।

फिर इस समस्त चक्र के बाह्यभाग में चौकोर भूमण्डल बनावे। उसके पूर्वादि दिशाओं में तो श्रीबीज (श्रीं) का उल्लेख करे और कोणों में मायाबीज (ह्रीं) लिखे। तत्पश्चात् इस भूमण्डल की आठ दिशाओं में आठ वज्र अङ्कित करे। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा और शूल—यह वज्रादि-अष्टक ही आठ वज्र कहे गये हैं। इस प्रकार जो यन्त्र बनेगा, वह धारण करने योग्य होगा। इसी में पूर्वकथित साध्य और कार्य का उल्लेख आवश्यक है।

इसके धारण की विधि इस प्रकार है—यन्त्र धारण के समय पहले देव-पूजन करके मन्त्रोच्चारपूर्वक एक सहस्र घी की आहुतियाँ अग्नि में डाले। प्रत्येक आहुति का हुतशेष घृत यन्त्र पर ही डाले। आहुतियाँ समाप्त होने पर यन्त्र का मार्जन करे। फिर दस सहस्र बार अष्टादशाक्षर मन्त्र का जप कर इस उत्तम यन्त्र को धारण करना चाहिये। इसे विधिपूर्वक धारण करने वाले पुरुष को त्रिभुवन का

ऐश्वर्य मिल सकता है तथा वह देवताओं के लिये भी आदरणीय हो जाता है।

पूजन के लिए यन्त्र

जब पूजा के लिये यन्त्रनिर्माण किया जाय, तब भी यन्त्र का स्वरूप तो वैसा ही रहेगा, केवल साध्य और कार्य का नाम नहीं रहेगा। इसके सिवा यन्त्र-पूजा के पहले पीठ की विभिन्न दिशाओं में कुछ देवताओं का पूजन कर लेना आवश्यक होगा तथा पीठस्थ यन्त्र के चारो ओर आवरण-देवताओं की भी स्थापना और पूजा आवश्यक होगी। यहाँ पहले पीठ के सब ओर पूजित होने वाले देवताओं का क्रम बताया जाता है—

पहले पीठ के उत्तर भाग में वायव्यकोण से लेकर ईशान कोण तक चतुर्विध गुरुओं का पूजन करे, यथा—'ॐगुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो नमः, परात्परगुरुभ्यो नमः, परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। फिर पीठ के दक्षिण भाग में गणेश का आवाहन एवं पूजन करे। तत्पश्चात् यन्त्रगत् अष्टदल कमल की कर्णिका के निम्नभाग में—आधारशक्ति प्रकृति, कमठ, शेष, पृथ्वी, क्षीर-सागर, श्वेतद्वीप, रत्नमण्डप तथा कल्पवृक्ष—इन नौ अवयवों की पूजा करे। यह पूजा भावना द्वारा कर्णिका में ही कर ली जायेगी। फिर पीठ (चौकी) के पायों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा करे।

क्रम इस प्रकार होगा—अग्निकोण में धर्म, नैर्ऋत्यकोण में ज्ञान, वायव्यकोण में वैराग्य तथा ईशानकोण में ऐश्वर्य की पूजा होगी। इस प्रकार पीठ के पूर्वादि अवयवों में भी क्रमशः 'अनन्ताय नमः,' 'पद्माय नमः,' 'अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः,' 'ॐ' षोडशकलाव्याप्त-चन्द्रमण्डलात्मने नमः,' मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः,' 'सं सत्वाय नमः,' 'रं रजसे नमः,' 'तं तमसे नमः,' 'आं आत्मने नमः,' 'अं अन्तरात्मने नमः,' 'पं परमात्मने नमः,' 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः'—इन मन्त्रों द्वारा पूजा करे। फिर अष्टदल कमल के प्रत्येक दल में क्रमशः 'विमलायै' नमः' 'उत्कर्षिण्यै नमः,' 'ज्ञानायैः नमः,' 'क्रियायै नमः,' 'योगायै नमः,' 'प्रह्वयै नमः,' 'सत्यायै नमः,' 'ईशानायै नमः'—इन मन्त्रों से विमला आदि आठ शक्तियों की पूजा करके पुनः कर्णिका में 'अनुग्रहायै नमः' इस मन्त्र से नवीं शक्ति की पूजा करे। तत्पश्चात् 'ॐ नमो विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगाय पद्मपीठात्मनो नमः' इस पीठ मन्त्र का अष्टदल कमल के ऊपर विन्यास करके पीठ की पूजा करे। फिर पीठ पर भगवान्

श्रीकृष्ण का आवाहन और ध्यान करके षोडशोपचार से पूजन करना चाहिए।

भगवान् का ध्यान इस प्रकार करे—

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंस प्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गो-गोपसघावृतं
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे॥

स्मरेद् वृन्दावने रम्ये मोदयन्तं मनोरमम्।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं गोपकन्याः सहस्रशः॥
आत्मनो वदनाम्भोजप्रेरिताक्षिमधुव्रताः।
पीडिताः कामबाणेन चिरमाश्लेषणोत्सुकाः॥
मुक्ताहारसत्पीनतुङ्गस्तनभरान्विताः।
स्रस्तधम्मिल्लवसना मदस्खलितभूषणाः॥
दन्तपङ्क्तिप्रभोद्भासिस्पन्दमानाधराञ्चिताः।
विलोभयन्त्यो विविधैर्विभ्रमैर्भावगर्भितैः॥

आवरण पूजा विधान

तत्पश्चात् आवरण पूजा करनी चाहिये। यह आवरण पूजा अष्टदल कमल में ही करना चाहिये। इसका प्रथम आवरण इस प्रकार है-छः कोणों में से आग्नेय कोण में 'हृदयाय नमः,' नैर्ऋत्यकोण में 'शिरसे स्वाहा' वायव्यकोण में 'शिखायै वषट्,' ईशान कोण में 'कवचाय हुम्,' अग्रभाग में 'नेत्रत्रयाय वौषट' तथा पूर्व आदि चारों दिशाओं में 'अस्त्राय फट्' इस प्रकार मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे।

द्वितीय आवरण—पूर्व दिशा में 'वासुदेवाय नमः,' दक्षिण में 'संकर्षणाय नमः,' पश्चिम में 'प्रद्युम्नाय नमः,' उत्तर में 'अनिरुद्धाय नमः'—इन मन्त्रों से पूजा करके अग्निकोण में 'शक्त्यै नमः,' नैर्ऋत्यकोण में 'श्रियै नमः, वायव्यकोण में 'सरस्वत्यै नमः' तथा ईशान कोण में 'रत्यैनमः—इन मन्त्रों द्वारा शक्ति आदि का पूजन करे।

तृतीय आवरण—फिर कमल के आठ दलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों की स्थापना और पूजा करे, यथा—रुक्मिण्यै नमः, सत्यभामायै नमः, जाम्बवत्यै नमः, नाग्नजित्यै नमः, मित्रविन्दायै नमः, कालिन्द्यै नमः, लक्ष्मणायै नमः, सुशीलायै नमः।

चतुर्थ आवरण—यहाँ पूर्व में पीतवर्ण वसुदेव, अग्निकोण में श्यामवर्णा देवकी, दक्षिण में कर्पूरगौरवर्ण नन्द, नैऋत्य में कुङ्कुमसदृश गौरवर्णा यशोदा, पश्चिम में शङ्ख कुन्द एवं चन्द्र के समान उज्ज्वल वर्ण वाले बलदेव, वायव्यकोण में मयूरपिच्छतुल्य श्यामवर्णा सुभद्रा उत्तर में गोपगण तथा ईशानकोण में गोपाङ्गनाओं की क्रमशः पूजा करनी चाहिए। इनके नाम को चतुर्थ्यन्त करके 'नमः' लगा देने से पूजा का मन्त्र हो जाता है।

पञ्चम आवरण—कमल के मध्यभाग में क्रमशः 'अर्जुन, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, सात्यकि, गरुड़, नारद तथा पर्वत की पूजा नाम-मन्त्रों से ही करे।

षष्ठ आवरण—पूर्व में 'इन्द्रनिधये नमः,' अग्निकोण में 'नीलनिधये नमः,' दक्षिण में 'स्कन्दाय नमः', नैऋत्यकोण में 'मकराय नमः' पश्चिम में 'आनन्दाय नमः' वायुकोण में 'कच्छपाय नमः,' उत्तर में 'शङ्खाय नमः, तथा ईशानकोण में 'पद्मनिधये नमः'—इस प्रकार पूजन करे।

सप्तम आवरण—पूर्व में पीतवर्ण इन्द्र, अग्निकोण में रक्तवर्ण अग्नि, दक्षिण में नीलोत्पलवर्ण यम, नैऋत्यकोण में कृष्ण वर्ण राक्षसाधिपति निऋति, पश्चिम में शुक्लवर्ण वरुण, वायव्य में धूम्रवर्ण वायु, उत्तर में नीलवर्ण कुबेर तथा ईशानकोण में श्वेत वर्ण ईशान के नाम-मन्त्र द्वारा ही पूजन करे।

अष्टम आवरण—पूर्व और ईशान के मध्य में गोरोचन वर्ण ब्रह्मा, नैऋत्यकोण और पश्चिम के मध्य भाग में शुक्लवर्ण शेषनाग, पूर्व दल में पीतवर्ण वज्र, अग्निकोण वाले दल में शुक्लवर्णा शक्ति, दक्षिण दल में नीलवर्ण दण्ड, नैऋत्य दल में श्वेतवर्ण खड्ग, पश्चिम दल में विद्युद्वर्ण पाश, वायव्य दल में रक्तवर्ण ध्वज, उत्तर दल में नीलवर्णा गदा तथा ईशान दल में शुक्लवर्ण त्रिशूल की नाममन्त्र द्वारा ही पूजा करे।

षष्ठ पटल

इस पटल में साधित मन्त्रों के प्रयोग आदि का विवेचन किया गयाहै। दोनों मन्त्रों का ध्यान इस प्रकार है—मैं आकाश के समान नील वर्ण वाले बाल-स्वरूप पीताम्बरधारी देवकी पुत्र श्री कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जिनके हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, और कमल शोभित हो रहे हैं। ब्राह्ममुहूर्त में इस प्रकार ध्यान करते हुए दशाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करे। बाद में घृत, मधु एवं शर्करासहित पलाश पुष्पों

से दस हजार आहुति दे। इससे वह साधक श्रेष्ठ कवि होता है।

मन्त्र विशेष के विशिष्ट प्रयोग—

१. मुकुन्द का अष्टादशाक्षर मन्त्र है—'**श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदा शरण-महं प्रपद्ये**'। प्रतिदिन १०८ बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने वाला श्रुतधर हो जाता है। इस मुकुन्द मन्त्र का दस हजार जप और उतने ही मन्त्रों से अग्नि में घृत की आहुति देने वाला भक्ति, श्रद्धा एवं शाश्वत शान्ति प्राप्त करता है।

२. अन्य मन्त्र भी अष्टादशाक्षर के समान है—'**समस्त मकुन्नमित बाललीलात्मने हुँ फट् नमः**।' इससे भी सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

३. '**अन्नरूप रसरूप तुष्टरूप नमो नमः अन्नाधिपतये ममान्नं प्रयच्छ स्वाहा**' इस तीस अक्षर के मन्त्र से भी पूर्वोक्त क्रियाएं की जाती हैं।

४. '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हुँ फट् स्वाहा**' इस षोडशाक्षर मन्त्र का एक हजार जप कर पञ्चगव्य का प्राशन और कलश के जल से यजमान का अभिषेक सभी उपद्रवों को शान्त करता है। इसके बाद मृत्युञ्जय विधि और उसका ध्यान कहा गया है।

५. '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय पुरुषोत्तम आयुर्मे देहि—विष्णवे प्रभ-विष्णवे नमः**'—इस बत्तीस अक्षर के मन्त्र से एक लाख जप करके दस हजार से घृत-दूध से परिप्लुत दूर्वा का हवन साधक को दीर्घायु प्रदान करता है। इसी मन्त्र से अभिषिक्त तेल लगाने से बालक सद्यः सुखी हो जाते हैं।

६. '**बालवपुषे स्वाहा**' अथवा '**गोपालकवेशधराय वासुदेवाय हुँ फट् स्वाहा**'—यह अष्टादशाक्षर मन्त्र बालक और गो की रक्षा के लिए प्रयुक्त होता है। इसी मन्त्र से सर्प का विष भी उतारा जाता है।

७. '**कालिय व्यफणामध्ये इति नृत्यं करोति तं देवकीपुत्रं नमामि नृत्य राजानमच्युतम्**'—इस मन्त्र का एक लाख जप और दस हजार से हवन विष दूर करने के लिए किया जाता है।

दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र के विशिष्टप्रयोग

विषघ्नी क्रिया इस प्रकार है—करञ्ज या सेमर के पञ्चाङ्ग को गाय के मूत्र में पीसकर मुख में लेप करने से सारा विष उतर जाता है। गोवर्धन की लीला का ध्यान कर दशाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्र का जप वर्षा, वात एवं बिजली के भय को दूर करता है। इन्द्र को कम्पित हुआ एवं

भागते हुए-सा श्री कृष्ण का ध्यान कर नमक से दस हजार की आहुति अनावृष्टि उत्पन्न करती है। यमुना जल की धारा से सिच्यमान कृष्ण का ध्यान कर दुग्धसिक्त वेतस की समिधा से दस हजार हवन से अकाल में भी महान् वृष्टि होती है। ज्वर से आर्त व्यक्ति का रोग शान्त हो जाता है। असाध्य ज्वर और त्रिदोषादि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। ज्वर की शान्ति के लिए गुरुच की समिधा से हवन किया जाता है। भीष्म के शर के परिताप को दूर करने वाले कृष्ण का ध्यान कर रोगार्त प्राणी का स्पर्श कर मन्त्र का जप करने से शान्ति मिलती है। सन्तान वृद्धि के लिए समस्त पुत्रों को प्रदान करते हुए अर्जुन सहित श्रीकृष्ण का ध्यान कर जप करना चाहिये। पुत्रार्थिनी नारी का जल से अभिषेक और दस हजार जप कर अभिमन्त्रित घृत का प्राशन पुत्र दिलाता है।

पुत्र चाहने वाली स्त्री प्रातः काल मौन धारण कर पीपल के पत्ते के दोने में १०८ बार दशाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीए तो निश्चय ही पुत्र प्राप्त करती है।

इसी प्रकार कृत्या एवं शरीर के तेज की वृद्धि, परस्पर मित्रो में द्वेष कराने के लिये, शत्रु का उच्चाटन करने के लिए, शत्रु का मारण प्रयोग, शत्रु विनाश का प्रयोग शत्रु पराभव प्रयोग आदि वर्णित हैं। मारण प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। इसमें स्वयं के मर जाने का भय है और यह अत्यन्त घृणित कार्य है।

गीता का उपदेश करते हुए कृष्ण का ध्यान कर मन्त्र का जप धर्म की वृद्धि एवं मोक्ष प्राप्ति के लिये होता है। शर्करा, मधु एवं घृत मिश्रित पलाश पुष्प से एक लाख आहुति देने से व्यक्ति शास्त्रों का व्याख्याता, कवि, एवं वादियों को पराजित करने वाला पण्डित सम्राट् होता है।

इन दोनों मन्त्रों का जप राष्ट्र, ग्राम, नगर गृह की रक्षा के लिए भी बताया गया है। गीता में कहे गए 'स्थाने हृषीकेश' आदि मन्त्र का जप कर घी से दशांश का हवन करे तो सभी प्रकार के उपद्रव शान्त हो जाते हैं और दुःखों से रक्षा हो जाती है।

सप्तम पटल

इस पटल में गोपाल एवं उनकी आठ पटरानियों का ध्यान वर्णित है। अष्टनिधि ध्यान के अनन्तर विभिन्न प्रकार के प्रयोगों का वर्णन है।

(१) 'ह्लीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः' — इस बीस अक्षर के मन्त्र का चार लाख जप और चालिस हजार से आहुति सिद्धि प्रदान करता है। इस बीस अक्षर के मन्त्र की पूजा और मातृका न्यास आदि कहकर षडङ्गन्यास की विधि कही गयी है। इस आत्म पूजा में सर्वप्रथम अभ्यन्तर में परमेश्वराराधन तदनन्तर मूर्तिपञ्जर का फिर सृष्टि, स्थिति न्यास का तदनन्तर षडङ्गन्यास का यजन करना चाहिए।

आत्म पूजा के बाद विष्णु की बाह्य पूजा का विधान है। फिर साध्य नाम लिखकर कार्य की सिद्धि के लिए 'क्लीं अमुकस्य अमुककार्यं सिद्धयतु' लिखकर कार्य सिद्धि का प्रयोग बताया गया है। पुनः यन्त्र निर्माण की विधि बताई गई है जिसका वर्णन पहले ही पञ्चम पटल के साथ कर दिया गया है।

(२) काम गायत्री इस प्रकार है—**कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।**

(३) ४८ अक्षरों का माला मन्त्र इस प्रकार है—'**नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वंश कुरु कुरु स्वाहा।**' इस माला मन्त्र का पूजा अर्चन विनियोग आदि वर्णित है। मन्त्र में पूजा प्रकार बतलाकर श्रीकृष्ण और उनके आयुधों का पूजन बताया गया है। आठ आवरणों में पूजा कहकर घृत युक्त खीर का नैवेद्य अर्पित कर राजोपचार बताया गया है। चार प्रकार के प्रयोग भी कहे गये हैं।

(४) '**श्रीं ह्लीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा**' — इस बारह अक्षर के मन्त्र का जप अर्चन पूर्वोक्त प्रकार से करे।

(५) '**क्लीं ह्लीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**'

(६) '**ह्लीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**'

(७) '**श्रीं ह्लीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**'

इन तीनों मन्त्रों में से एक का पाँच लाख जप और दस हजार से पायस का हवन मन्त्र सिद्ध कर देता है।

(८) '**ऐं क्लीं कृष्णाय ह्लीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा शौः**' — इस ३२ अक्षर के मन्त्र का जप वागीश्वरत्व प्रदान करता है।

(९) '**ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।**' — २८ अक्षरात्मक इस मन्त्र का और

(१०) नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' इस ३२ अक्षर वाले मन्त्र का जप त्रैलोक्य के ऐश्वर्य को देने वाला है।

(११) 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे' इस १९ अक्षरात्मक मन्त्र की सिद्धि से सम्पूर्ण सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

(१२) 'ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा' इस षोडशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए करे।

(१३) 'लीलादण्डगोपीजनसंसक्तदोर्दण्डबालरूपमेघश्याम - भगवन् - विष्णो स्वाहा' २९ अक्षर के इस मन्त्र से पूजन करने वाला समस्त लोकों से पूजित होता है एवं लक्ष्मी सर्वदा उसके साथ रहती है।

(१४) 'गोवल्लभाय स्वाहा' इस सप्ताक्षर मन्त्र का सात लाख जप और सात हजार से होम करने से साधक गो समूह से सम्पन्न हो जाता है।

(१५) 'ॐ नमो भगवते श्री गोविन्दाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का १२ लाख जप और १२ हजार से दूध से हवन सिद्धि प्रदान कराता है। इसके बाद आयतन आदि की पूजा, द्वारपूजा, तथा विष्णु के पार्षदों के नाम, पीठ पूजा, कुमुद आदि दिग्गज के नाम और पूजा का फल वर्णित है।

(१६) 'गोकुलनाथाय नमः' इस अष्टाक्षर मन्त्र का एक लाख जप, पलाश की समिधा अथवा पायस से आठ हजार आहुति देने वाला साधक संपत्तियों से परिपूर्ण हो जाता है।

(१७) ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय श्रीगोविन्दाय श्रीगोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं—यह 'सिद्धिगोपाल मन्त्र' है। (१८) 'कृः'—यह एकाक्षर गोपाल मन्त्र है। (१९) 'कृष्णः' यह द्वयक्षर गोपाल मन्त्र है। (२०) 'क्लीं कृष्णः' यह तीन अक्षर का (२१) 'क्लीं कृष्णाय'—यह चार अक्षर का और (२२) 'कृष्णाय नमः' यह पाँच अक्षर का तथा (२३) 'क्लीं कृष्णाय क्लीं'–यह दूसरे प्रकार का पञ्चाक्षर गोपाल मन्त्र है।

(२४) 'गोपालाय स्वाहा' और (२५) 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' ये दो षडक्षर गोपाल मन्त्र है। (२६) 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' यह सप्ताक्षर मन्त्र हैं। (२७) क्लीं कृष्णायगोविन्दाय'—यह अष्टाक्षर मन्त्र है। (२८) 'दधिभक्षणाय स्वाहा' और (२९) 'सुप्रसन्नात्मने नमः'—यह अष्टाक्षर मन्त्र है। (३०) 'कृष्णाय गोविन्दाय नम.' यह नौ अक्षरात्मक मन्त्र है। (३१) क्लीँ ग्लौँ क्लीँ श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर मन्त्र

है। (३२) **'क्लीं कृष्णाय बालवपुषे स्वाहा'** यह एकादशाक्षर मन्त्र है। पाँच वर्ष की अवस्था वाले कृष्ण का ध्यान कर इन मन्त्रों में से किसी एक का एक लाख जप तदनन्तर घृत, मधु एवं शर्करा युक्त पायस से दस हजार से हवन मन्त्र को सिद्ध कर देता है। दस हजार से तर्पण करे। अन्य २१ मन्त्रों की सिद्धि केवल दस हजार के तर्पण मात्र से हो जाती है।

(३३) **'क्लीं कृष्ण क्लीं'**—यह चार अक्षर का मन्त्र है। इन मन्त्रों के जप में षडङ्गो से, पद्मादि निधियों से, इन्द्रादिकों से तथा वज्रादि आयुधों से युक्त नील श्रीकृष्ण के पूजन का विधान है। मन्त्री जल में त्रिमधु की भावना कर उसी से तर्पण भी करे।

क्लीँ, क्लूँ, क्ले, क्लों, क्लौं, क्लः—इन ६ प्रकार के दीर्घों से युक्त करने पर मन्त्र का षडङ्ग बन जाता है।

मुकुन्द का स्मरण कर मन्त्रों का जप और १०८ बार अग्नि में आहुति करने से पचास दिन में धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। जो पुरुष भक्ति से युक्त हो इन दो मन्त्रो में से किसी एक के द्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण का अर्चन, जप एवं होम के द्वारा यजन करता है वह श्री सम्पन्न हो जाता है।

अष्टम पटल

इस पटल में वशीकरण आदि प्रयोग वर्णित हैं। जो साधक पूर्वोक्त विधि से पूजा कर एक हजार आठ बार दशाक्षर मन्त्र का जप करता है, वह पचास दिन से पहले ही विद्वान् ब्राह्मणों के समुदाय को अपने वश में कर लेता है। जाती पुष्प के पूजन से क्षत्रिय, रक्त करवीर पुष्पों के पूजन से वैश्य एवं नीलकमलों के द्वारा पूजन से शूद्र वश में हो जाता है। श्वेत पुष्प सहित चावलों से सात रात्रि तक एक हजार आहुति से तरुणी स्त्रियों को वश में कर सकता है।

राजद्वार में राजा के समीप व्यवहार लेन-देन, क्रय-विक्रयादि, सभा, द्यूत एवं मुकदमे में १०८ बार जप से विजय प्राप्त होती है। श्रीकृष्ण का ध्यान कर मधुमिश्रित अपामार्ग की समिधाओं द्वारा १०८ बार हवन करने से त्रैलोक्य को वश में कर सकता है। दशाक्षर मन्त्र के जप से साधक एक महीने में सुलक्षणा कन्या प्राप्त कर सकता है। कदम्ब शाखा पर बैठे श्रीकृष्ण का ध्यान कर एक हजार आठ दशाक्षर मन्त्र का जप करने वाली कन्या को अभीष्ट वर प्राप्त होता है। अष्टादशाक्षर मन्त्र का एक लाख

जप और दस हजार हवन अभिलषित कन्या प्राप्त कराता है। सर्षप बीजों से प्रतिदिन रात्रि में तीन हजार होम करने से इन्द्र भी वश में हो जाते हैं। बिल्ववृक्ष के फल, समिधा, पुष्प एवं पत्रों से अथवा श्वेत कमल से तीन हजार हवन करने से महालक्ष्मी को वश में कर लेता है। कदम्ब वृक्ष पर चढ़ श्रीकृष्ण का ध्यान कर प्रतिदिन हजार आहुति देने से दस दिन में उर्वशी को भी पास बुलाने में सक्षम हो सकता है।

दोनों में से किसी एक का बारह लाख जप प्रफुल्लहृतकमल पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए करे और उदुम्बर की समिधा से बारह हजार हवन करे। सायंकाल की विधि से फिर प्रतिदिन तीन हजार जप करे तो जन्म-मरण रूप तरङ्गों वाले संसार सागर को पार कर परमात्मा के परम धाम को प्राप्त करता है।

(१) '**क्लीं हृषीकेशाय नमः**'–मन्त्र पूजा और मातृका न्यास आदि से सिद्ध करना चाहिए। ह्रीं शोषणाय नमः' से शिर और ॐ ह्रीं मोहनाय नमः' से मुख का स्पर्श करे। काम बाण से युक्त तरुण अवस्था सम्पन्न महालक्ष्मी से आलिङ्गित श्री कृष्ण का ध्यान कर पूर्वोक्त एकाक्षर या अष्टाक्षर मन्त्र का बारह लाख जप कर बारह हजार हवन और बारह हजार से ही तर्पण करे। पूर्वोक्त विंशत्यक्षरात्मक यन्त्र में प्रतिदिन भक्ति से अर्चन करे। यन्त्र की पजा का प्रकार बताकर श्रीकृष्ण की आठ शक्तियों का स्वरूप कहा गया है।

(२) '**त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मरायेति धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**' यह 'सम्मोहन-गायत्री' है। सभी जपों के पर्व इसका जप आवश्यक है। मोहन पुष्पों से मिश्रित जल से दो मन्त्रों में से किसी एक से श्रीकृष्ण का प्रतिदिन तर्पण सारे मनोरथों को पूर्ण करता है। उक्त दोनों मन्त्रों में से दस हजार हवन कर हुतशेष घृत को यदि कासुकी स्त्री अपने पुरुष को पिलावे या कामुक पुरुष अपनी स्त्री को पिलावे तो दोनों ही परस्पर वश में हो जाते हैं। वशीकरण के आदि देवता काम हैं। अतः वंशी बजाते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करे।

(३) रुक्मिणीवल्लभमन्त्र इस प्रकार है—'**ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं नीं त्रीं क्ष्रीं जय कृष्ण जय कृष्ण निरन्तरक्रीडासक्त प्रमुदितचेतसे नित्यप्रियाय कृष्णाय क्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं**।' इस मन्त्र के नारद ऋषि, हरि देवता और विराट् छन्द है। इसके अङ्ग और न्यास तथा द्वारकापुरी के कृष्ण का ध्यान कहा गया है। गुरु से दीक्षा ग्रहण कर भक्तिपूर्वक एक

लाख जप करे। प्रयोग काल में स्त्रियों से बात भी न करे। उन्हें देखे भी नहीं। फिर दस हजार से आहुति देकर नित्य दशाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्र की पीठ पर श्रीकृष्ण का पूजन करे। इस प्रकार साधक सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। कर्पूर चन्दन आदि से युक्त मालती के पुष्पों से इस मन्त्र के द्वारा दस हजार हवन करने वाला साधक त्रैलोक्य प्रिय एवं श्रेष्ठ कवि हो जाता है। इस रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र के ध्यान मात्र से देवाङ्गनाएँ वश में हो जाती हैं। लक्ष्मी भी उसकी सेवा करती हैं। सभी वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ हैं। लेकिन सभी में यह सम्मोहन मन्त्र अपरिमेय संपत्तियों को देने वाला है। श्रीकृष्ण का पूजन अर्चन करते हुए जब तक मन भगवान् के मनोहर मन्द स्मित में विलीन न हो जाय तबतक प्राणायामपूर्वक अष्टादशाक्षर या दशाक्षर मन्त्रों में से किसी एक का जप करते रहना चाहिए।

इस प्रकार न्यास, जप, होम, पूजा, तर्पण, मन्त्राभिषेक और विनियोग का क्रमशः वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह दीपिका समस्त साधकों को सदैव साथ में रखनी चाहिए। इससे समस्त सुखों की प्राप्ति होती है।

जिस परमात्मा से यह जगत् पैदा है, जिसका आश्रय ग्रहण कर गोपी अर्थात् माया इस जगत् की रक्षा करती है उस विपुल प्रकाश स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है। सदाशिव द्वारा प्रदत्त चक्र को जगत् की रक्षा के लिए धारण करने वाले और सभी सांसारिक उपद्रवों को नष्ट करने वाले यदुकुलोत्पन्न भगवान् कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।

मुद्राएँ

चतुर्थ पटल में विष्णु पूजा विधि में आवरण पूजा (४.४५) का कथन करने के बाद श्रीकृष्ण के पाठ नाम की पूजा कही गई है। धूप, दीप नैवेद्य का समर्पण मुद्राओं के साथ बताया गया है। नैवेद्य का स्पर्श करके धेनु-मुद्रा दिखाकर नैवेद्य को सर्वथा निर्दोष बनाना चाहिए (४.५३-५४)। नैवेद्य समर्पण के लिए मन्त्र है–'निबेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे।' (४.५६)

अब भोजनोपयोगि मुद्राविशेष को कहते हैं। नैवेद्य समर्पण करके बाएँ हाथ से फूले हुए कमल के सदृश ग्रास-मुद्रा को प्रदर्शित करे। इसके बाद दाहिने हाथ से वक्ष्यमाण प्राणादि-मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए।

दाहिने हाथ के अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग से कनिष्ठा तथा अनामिका अङ्गुलियों को मिलावे तो प्रथमा प्राणमुद्रा तथा तर्जनी और मध्यमा को अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग में मिलावे तो द्वितीया, अपानमुद्रा और अनामिका और मध्यमा मिलावे तो तृतीया व्यान मुद्रा, अनामिका तर्जनी और मध्यमा मिलावे तो चतुर्थी उदान मुद्रा पुनः कनिष्ठा अनामिका मध्यमा एवं तर्जनी अङ्गुलियों को अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग में मिलावे तो पञ्चमी समान मुद्रा हो जाती है। इन पाँच मुद्राओं को बनाते समय क्रमशः वक्ष्यमाण मन्त्रों को भी पढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तदनन्तर दोनों हाथों की अनामिकाओं को दोनों हाथ के अगूठों से स्पर्श कर मन्त्रों का जप करते हुए नैवेद्य मुद्रा प्रदर्शित करे। पुनः धेनुमुद्रा प्रदर्शित करके आचमन के लिए जल प्रदान करे।

इस प्रकार चतुर्थपटल में प्रयुक्त मुद्राओं का चित्र या रेखाङ्कन यहाँ प्रस्तुत करना आवश्यक था जिसे ग्रन्थ विस्तार के भय से न दे सका। फिर भी इनके लक्षणों का एक छोटा सा संग्रह ग्रन्थ के अन्त में प्रथम परिशिष्ट के रूप में जोड़ दिया गया है।

मुद्राएँ भगवान् की प्रसन्नता के लिए प्रदर्शित की जाती हैं। यहाँ पर भगवान् केशव की पूजा में प्रयुक्त होने वाली कुछ मुद्राओं का लक्षण प्रायः इकतालिस श्लोकों में दिया गया है। नवधा भक्ति से सम्बन्धित नव मुद्राएँ इस प्रकार हैं—

१. आवाहनी मुद्रा, २. स्थापनी मुद्रा, ३. सन्निधान मुद्रा, ४. सन्निरोधन मुद्रा, ५. सम्मुखीकरण मुद्रा, ६. सकलीकरणमुद्रा, ७. अवगुण्ठनमुद्रा, ८. धेनु-पीयूषकरणमुद्रा, और ९. परमीकरण मुद्रा।

ये महामुद्राएँ हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी मुद्राएँ हैं जिन्हें पूजा में प्रयोग में लाते हैं। ये इस प्रकार हैं—१. शङ्ख, २. चक्र, ३. गदा, ४. पद्म, ५. मुसल, ६. शार्ङ्ग, ७. खड्ग, ८. पाश, ९. अङ्कुश, १०. वैनतेय, ११ श्रीवत्स, १२. कौस्तुभ, १३. वेणु, १४. अभय-मुद्रा, १५ वर-मुद्रा और १६. वनमालिका मुद्रा।

इनके लक्षणों का प्रतिपादन सत्रहवें श्लोक से लेकर चालिस तक किया गया है। अन्त में प्रणाम के समय 'छोटिका' मुद्रा का निर्देश इकतालिसवें श्लोक में करके इस छोटे से मुद्रा के लक्षणों का परिशिष्ट साधकों के सौविध्य के लिए यहाँ संलग्न है॥

'लघुस्तवराजस्तोत्रम्' दूसरा परिशिष्ट है। यह गुरु की स्तुति है:—

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

भारतीय साहित्य में गुरु सर्वथा वन्दनीय हैं। इसी लिए काव्यारम्भ गुरु-वन्दना से ही होता आया है। समाज में सदैव गुरु का स्थान सम्माननीय है। अपनी महत्ता के ही कारण उसे ईश्वर पद की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए शास्त्र-वाक्य भी है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में होकर शिष्य के लिए मङ्गल कामना करते हैं। वह साक्षात् रूप से परब्रह्म के स्वरूप हैं। तीनों देव वस्तुतः अलग-अलग एक-एक काम करते हैं किन्तु गुरु तीनों ही कार्य करते हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अन्तिम श्लोक में गुरु तथा देवता की समानता स्पष्ट की गई है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

इस प्रकार जैसी भक्ति की आवश्यकता देवता के लिए है, वैसी ही गुरु के लिए भी होनी चाहिए।

जिससे हमें ज्ञान प्राप्त हो वही हमारा गुरु है। अतः मुख्य रूप से इन ज्ञान दाता गुरु के तीन भेद हो जाते हैं—१. कुल गुरु, २. विद्या गुरु, और ३. धर्म गुरु। एक परिवार के गुरु कुलगुरु कहे जाते हैं। पैतृक परम्परा से हम उनके शिष्य बनते जाते हैं। उनका कार्य धार्मिक, अनुष्ठान आदि कराना है। विद्यागुरु से हम शिक्षा प्राप्त करते हैं। ये विद्यागुरु कई हो सकते हैं। किन्तु धर्म गुरु वह है जो हमें धर्म विशेष में दीक्षित करता है। इनका कार्य है मन्त्र की दीक्षा देना।

गुरु का कार्य अत्यन्त पुनीत और श्लाघ्य है। वह ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखलाता है। ईश्वर का ही अंश रूप यह 'जीव' इस संसार में आकर अंशी रूप उस मूल ईश्वर को ही भूल जाता है। माया मोह-लोभ-ईर्ष्या, एवं तृष्णा युक्त इस संसार के, अन्धकार में जीव लक्ष्यहीन भटकता रहता है और निरन्तर आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है। जिस प्रकार बालू से तेल नहीं निकल सकता, पानी के मन्थन से घी नहीं निकल सकता, उसी प्रकार हरिभजन के अभाव में संसार सागर का संतरण नहीं हो सकता, और यह तभी हो सकता है, जब सच्चे गुरु की प्राप्ति हो जाय।

गुरु के ज्ञान के विषय में 'घरेण्डसंहिता' में कहा गया है कि वह ज्ञान का सागर है। वह शिष्य-उपयोगी ज्ञान का उपदेशक है। जिस ज्ञान को सद्गुरु ने अपने मुख से उच्चारित किया है, वह निरर्थक नहीं जाता। स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के कारण ही ज्ञान प्राप्त कर सके और यह तो इसी शताब्दी में हुआ है। इसलिए गुरु की सेवा मनसा, वाचा, कर्मणा करनी चाहिए। वह ज्ञान का भण्डार है। उससे लाभ प्राप्त करना शिष्य की अपनी योग्यता पर निर्भर है और यदि उस ज्ञान का उपयोग शिष्य प्राप्त न कर सके तो गुरु का क्या दोष है? वंशी में तो संगीत उत्पन्न करने की क्षमता तो है ही। किन्तु उस ध्वनि को उत्पन्न करना बजाने वाले योग्य शिष्य का ही कार्य है।

वस्तुतः सद्गुरु मिलने पर शिष्य का नया जन्म होताहै। गुरु अपने शिष्य को अपने स्पर्शमात्र से ज्ञान एवं विद्या प्रदान कर सकता है। शरीर में रहने वाली महाशक्ति का नाम कुण्डलिनी है। यह सुप्तावस्था में शरीर में विद्यमान रहती है। इसे जागृत करना योगी के लिए आवश्यक है। इसके जागृत हो जाने से योगी के लिए कुछ भी अज्ञेय नही रह जाता है। वह सब कुछ जान लेता है। किन्तु इस कुण्डलिनी को जगाने में कई जन्म लग जाते हैं किन्तु गुरु के स्पर्श से यह शीघ्र जगायी जा सकती है। इसके अनेक उदाहरण पुराण आदि में मिलते हैं। ध्रुव को मात्र शङ्ख के स्पर्श से सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति भगवान् विष्णु ने करा दी थी।

भगवान् दत्तात्रेय के चौबिस गुरु थे। उन्होंने उनसे ज्ञान ग्रहण किया था। संसार में समुचित मार्ग दर्शन के लिए गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वप्रथम गुरु माता होती है। यह बालक में जीवन्त शक्ति प्रदान करती है, उसमें संस्कारों को जन्म देती है। इसी प्रकार सद्गुरु भी माँ के ही समान है। माँ तो जन्म देकर आगे बढ़ जाती है किन्तु सद्गुरु रूपी माता शिष्य को पञ्चसंस्कारों से दीक्षित करके जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ाता है।

स्तोत्र के रचयिता श्रीनिवासाचार्य

ये निम्बार्क के प्रधान शिष्य थे। इनका निवासस्थान मथुरा जिला गोवर्धन से एक कोस दूर श्री राधाकुण्ड, ललिता संगम पर माना जाता है। इनका जन्म वसन्तपञ्चमी को हुआ था।

ग्रन्थ

१. 'वेदान्त-कौस्तुभ' नामक शारीरिक मीमांसा भाष्य मुद्रित है।

२. लघुस्तवराजस्तोत्र ('गुरुभक्तिमन्दाकिनी' नामक टीका सहित) मुद्रित है।

३. 'ख्याति-निर्णय' अप्राप्त है।

४. पारिजात कौस्तुभ' भाष्य अप्राप्त है।

५. 'रहस्य-प्रबन्ध' अप्राप्त है।

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

इस स्तोत्र में गुरु की स्तुति की गयी है । वैष्णवाचार्य श्रीश्रीनिवासा-
चार्य विरचित इस स्तोत्र में इकतालिस श्लोक हैं। श्रीनिवासाचार्य के
गुरु श्रीनियमानन्द थे। उन्होंने श्रीपुरुषोत्तमदेव की आज्ञा से अनन्त श्री
विभूषित आद्य वैष्णवाचार्य श्री नियमानन्द की स्तुति की है। उनकी
स्तुति करते हुए फलश्रुति के रूप में 'दासोऽहमिति मां ज्ञात्वा भक्तिं देहि
पदाम्बुजे' (श्लोक ४१) से गुरु से भक्ति प्रदान की प्रार्थना की गयी है।
सिद्धि में गुरुकृपा ही कारण है। उसी समय उस जीव को सब प्रकार की
सिद्धि प्राप्त हो जाती है जब गुरु उसे अपना लेते हैं। वह अपना लेने का
काल ही उत्तम नक्षत्र आदि से युक्त काल है। पुष्यादि नक्षत्र, सिद्धि आदि
योग, उत्तम वार तथा उत्तम तिथि के अभाव में कार्य सिद्धि नहीं होती,
क्योंकि सिद्धि में गुरु की कृपा ही कारण है (श्लोक २५)। गुरु में यह
मनुष्य' है यह बुद्धि नहीं होनी चाहिए। वे सभी प्रकार के मङ्गलों के
स्थान हैं (श्लोक २४)। वस्तुतः गुरु पाँच प्रकार से शिष्य को संस्कृत
करके दीक्षित करते हैं (श्लोक २६)। ये पाँच वैष्णव संस्कार हैं—

१. ताप (श्रीविष्णु के आयुधभूत शङ्खचक्रादि के चिह्न से अङ्कित होना)।

२. पुण्ड्र (विष्णु के पैर की आकृति के समान मस्तक में तिलक धारण करना)।

३. नाम (अपना नाम वैष्णवसम्प्रदायानुसारी रखना)।

४. मन्त्र (गुरु के द्वारा शुद्ध वैष्णव मन्त्रों से दीक्षित होना)।

५. योग (श्रीविष्णु अर्चावतार शालग्रामादि की नियमपूर्वक पूजा करना।)

गुरुभक्तिमन्दाकिनी

इस छोटे से स्तोत्र पर श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद वैष्णव की अत्यन्त विस्तृत टीका है। इस टीका का नाम 'गुरुभक्तिमन्दाकिनी' इसलिए है क्योंकि

टीका को पढ़ने से गुरुभक्तिरूपी गङ्गा प्रवाहित होने लगती है। इस टीका में महाभारत, हरिवंश, भागवत आदि अनेक पुराणों से उद्धरण लिए गये हैं। अनेक वैदिक मन्त्रों का सन्निवेश गुरु के स्तोत्र में प्रयुक्त विशेषणों का अर्थ लगाने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

इस स्तोत्र को 'लघु' अर्थात् मिताक्षर पदों के होने से 'लघु' कहा गया है। बहुत थोड़े से पदों के द्वारा अत्यन्त गूढ़ बातों का सन्निवेश है।

गुरु की पूजा अर्चना के लिए वर्ष में एक बार 'गुरुपूर्णिमा' का दिन निश्चित है। आषाढ़ की पूर्णिमा तिथि को गुरु की पूजा के लिए होने से 'गुरुपूर्णिमा' कही जाती है। इस दिन गुरुरूप से व्यास की पूजा की जाती है। यह विशेषतः संन्यासियों द्वारा की जाती है। (स्मृतिकौस्तुभ पृ० १४४-१४५, पुरुषार्थचिन्तामणि पृ० २८४)। तमिलदेश में व्यास पूजा ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा (मिथुन) पर की जाती है। वस्तुतः लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायण के कलावतार थे। उनका वर्ण घननील था। अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नाम से विख्यात हुए। वे बदरीवन में रहने के कारण 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। महर्षि व्यास मूर्तिमान धर्म थे। हिन्दू जाति तो उनकी चिरऋणी रहेगी। वस्तुतः हिन्दूसंस्कृति का वर्तमान स्वरूप उन्हीं की देन है। भगवान् व्यास इस कल्प के अन्त तक रहेंगे। आद्य शंकराचार्य तथा अन्य कितने ही महापुरुषों ने उनका दर्शन लाभ किया था। श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न अधिकारी महात्मा उनके दर्शन अब भी पा सकते हैं। जिनके कोई गुरु न हों उनके गुरु भगवान् व्यास होते हैं।

शास्त्र में लिखा है कि जो दान का खाता है उसे अपने पुण्य में से कुछ देना पड़ता है। इसलिए किसी से भी मुफ्त का लेने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। इसलिए गुरु को दीक्षा दान के बदले में शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने वैष्णवाचार्य गुरु श्रीनियमानन्द के प्रति कृतज्ञता स्वरूप यह 'स्तवराज' प्रस्तुत किया है। श्रुति में भी कहा है—'आचार्य देवो भव।' इसीलिए पद्मपुराण में कहा है—

भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वद्दिष्टा गुरो यदि।
समास्थितेन सत्येन स्वं दर्शयतु मे हरिः॥

सब समय और सब स्थान में जो परमात्मा का अनुभव करता है वह सद्गुरु है। गुरु सुलभ हैं किन्तु सद्गुरु दुर्लभ हैं। शुकदेव जी राजा परीक्षित को परमानन्द का दान करने के लिए ही गए थे। गुरु निरपेक्ष

थे। अतएव उन्होंने कहा कि मुझे जो मिला है वही मैं देने को आया हूँ। इसी प्रकार श्रीनियमानन्द भी निरपेक्ष थे। अतः शिष्य श्रीनिवासाचार्य उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

विष्णुधर्म पुराण में कहा है—

देवतायां च मन्त्रे च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ।
भक्तिरष्टविधा यस्य तस्य विष्णुः प्रसीदति॥

मन्त्रप्रदाता गुरु में जिसकी भक्ति होती है उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।

श्रीराधिकामाधवयोरपार-
माधुर्यलीलागुणरूपनाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

'अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण के अपार माधुर्य, अपार लीलाओं, अपार गुण, अपार रूप एवं अनन्त नामावलियों का प्रतिक्षण रसास्वादन करने के लिए लालायित रहने वाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ।'

विदुषांवशंवदः
सुधाकर मालवीयः

गुरुपूर्णिमा
१८. ७. १९८९
वि० सं० २०४६
३१/२१, वाराणसी-२२१००५

विषय-सूची

अथ प्रथमः पटलः

॥ इति द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः पटलः

॥ इति तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः पटलः

॥ इति चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमः पटलः

॥ इति पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः पटलः

॥ इति षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः पटलः

॥ इति अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

परिशिष्ट (क)

परिशिष्ट (ख)

—o—

क्रमदीपिका

संपातसिक्तमभिजप्तमिदं महद्भि-
धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम् ।
रक्षायशःसुतमहीधनधान्यलक्ष्मी
सौभाग्यलिप्सुभिरजस्रमनर्घ्यवीर्यम् ॥

इस गोपालयन्त्र को आहुति देने के पश्चात् शेष घृत से सिक्त करे तथा पुनः अभिमन्त्रित करे। इस प्रकार बनाये गये गोपालयन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा करे। पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से छींटा देकर इसे अभिषिक्त करे। पुनः १०८ बार अथवा १००८ बार मूलमन्त्र का जप करे। तब सारे जगत् को वश में करने वाला यह अप्रमेय यन्त्र शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। यह यन्त्र महाभय को दूर करता है, इसलिए यश, पुत्र, पृथ्वी, धन-धान्य, लक्ष्मी और सौभाग्य चाहने वाले महान् पुरुषों को इस अनर्घ्य यन्त्र को धारण करना चाहिये ॥

—क्रमदीपिका ५ ८९

॥ श्रीः ॥

क्रमदीपिका

श्रीमद्भगवत्श्रीकृष्णाराधननिरूपणप्रवण आगमनिबन्धः

विद्याविनोदश्रीगोविन्दभट्टाचार्यकृतविवरणसहिता-

'सरला' हिन्दीव्याख्योपेता

—०—

प्रथमपटलम्

वैणुवादनविनोदलालसं दिव्यगन्धपरिलिप्तवक्षसम् ।
वल्लवीहृदयवित्तहारिणं भावये कमपि गोपनन्दनम् ॥ १ ॥

विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकप्रारिप्सितप्रतिबन्धक - दुरितनिवृत्त्यसाधारणकारणमिष्टदेवताऽनुस्मरणपूर्वकं मङ्गलमाशीर्व्याजेन कृतं शिष्यशिक्षार्थमादौ निबध्नाति—कलात्तमायेत्यादिना ।

कलात्तमायालवकात्तमूर्त्तिः
कलक्वणद्वेणुनिनादरम्यः ।
श्रितो हृदि व्याकुलयंस्त्रिलोकीं
श्रियेऽस्तु गोपीजनवल्लभो वः ॥ १ ॥

गोपीजनवल्लभो युष्माकं श्रिये सम्पदेऽस्तु भूयादिति योजना, गोपीजनस्य गोपाङ्गनाजनस्य वल्लभः स्वामी तथा च गोपीजनस्यैवाविज्ञातविनयप्रकारस्यापि वल्लभः किं पुनः साधकस्याशेषपूजाविधानकोविदस्येति भावः, यद्वा गोपी प्रकृतिर्जनो महदादिः अनयोर्वल्लभः प्रेरक इत्यर्थः । कीदृशः कलायां ज्ञानस्वरूपे स्वस्मिन् आत्तायाः प्राप्ताया अध्यस्ताया मायाया लवकेन लेशेन विक्षेपात्मस्वभावेन आत्ता प्राप्ता मूर्तिर्येन स तथोक्तः, एतेन तस्य शरीरसम्बन्धेऽपि न स्वरूपानुसन्धानप्रच्युतिरावरणशक्तेरप्रामाण्यादिति भावः । अथ वा कल बन्धने, तथा च बन्धनात्मकसंसारप्रवर्तनार्थं स्वीकृतमायालेशात्मकजलतत्त्वात्मनाऽङ्गीकृतमूर्तिरिति तोयेन जीवान् विससर्ज भूम्यामिति । अथ वा संमोहनमन्त्ररूपकं कामबीजं सकलगोपालमन्त्राणांबीजमुद्ध रति कलेति, कश्च लश्च कलौ ताभ्यामात्तौ गृहीतौ सम्बद्धौ

मायालवकौ चतुर्थस्वरानुस्वारौ ताभ्यामात्ता स्वीकृता बीजरूपा मूर्त्तिर्येन सः तथोक्तः कल इत्यत्राकार उच्चारणार्थः। पुनः कीदृशः? कलमव्यक्तं मधुरं यथा स्यात्तथा क्वणन् शब्दायमानः वेणुर्वंशः कलक्वणंश्चासौ वेणुश्चेति कलक्वणद्वेणुः तस्य निनादेन रम्यः सर्वसुखप्रद इत्यर्थः। पुनः कीदृशः? हृदि श्रितः हृत्पङ्कजे स्थितः हृदि ध्येय इत्यर्थः। यद्वा सर्वप्राणिनां हृदयेऽन्तर्यामिरूपेण स्थित इत्यर्थः। किं कुर्वन्? त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी त्रैलोक्यं व्याकुलयन् कर्तव्येषु विचारशून्यं कुर्वन् मायया मोहयन्नित्यर्थः। तदुक्तं गीतायाम्—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ इति

अत्र लघुदीपिकाकारः "कलात्तमायेत्यादिना गोपीजनवल्लभ इत्यनेन च बीजसहितोऽत्र दशाक्षरः सूचितः, कलक्वणदित्यादिना ध्यानं सूचितं, त्रिलोकीं व्याकुलयन्नित्यनेन च वश्यादिप्रयोगाः सूचिता"- इत्याह॥ १॥

* सरला *

उन्मेषननिमेषाभ्यां जगदुदयान्तकारिणीम्।
परमात्मनः महाशक्तिं वन्दे कामप्रदां शिवाम्॥
सुनू रामकुबेरस्य मालवीयः सुधाकरः।
कुरुते विनयोपेतः व्याख्यां तन्त्रविदां मुदे॥

अपने ज्ञानस्वरूप में अध्यस्त माया के लेश मात्र से शरीर धारण करने वाले, (अथवा संसार की सृष्टि के लिये अपनी जलात्मक कला से नारायणस्वरूप, अथवा कला शब्द से निर्मित क्लीँ इत्याकारक बीजमूर्त्ति के स्वरूपभूत), वेणु निनाद से सभी प्राणियों को सुख देने वाले, हृदयरूपी कमल में निवास करने वाले, गोपीजनवल्लभ (गोपीजन का अर्थ है वेदों की ऋचायें उनके वल्लभ) (अथवा गोपजन प्रकृति और महत्तत्त्वादि उन दोनों के स्वामी) त्रिलोकी को अपनी माया से मोहित करने वाले ऐसे परमात्मा श्रीकृष्ण आप लोगों का कल्याण करें॥ १॥

गुरुनमस्कारपूर्वकं कर्तव्यं प्रतिजानीते—गुरुचरणेति।

गुरुचरणसरोरुहद्वयोत्थान्
महितरजःकणकान् प्रणम्य मूर्ध्ना।
गदितमिह विविच्य नारदाद्यै-
र्यजनविधिं कथयामि शार्ङ्गपाणेः॥ २॥

इह ग्रन्थे शार्ङ्गपाणेः श्रीकृष्णस्य यजनविधिं पूजाहोमादिकरणप्रकारं

विविच्य विवेचननं कृत्वा कथयामि आसमाप्तेर्वर्तमानत्वात्, तथा च प्राचीनग्रन्थेभ्यः स्वग्रन्थस्योपादेयता दर्शिता । कीदृशम् ? नारदगौतमप्रभृतिभिर्गदितम् । एतेन स्वोक्तेः स्वातन्त्र्यं निराकृतमिति भावः । किं कृत्वा ? मूर्ध्ना मस्तकेन महिताः पूजिता ये रजःकणका धूलिलेशास्तान् प्रणम्य कीदृशान् गुरुचरणद्वयमेव पद्मद्वय तदुत्थान् तदुद्भवान् । एतेन गुरुभक्त्यतिशयः सूचितः तथा गुरुध्यानं शिरसि कर्तव्यमित्यपि सूचितम् ॥ २ ॥

मैं शिर से पूजा करने योग्य श्री गुरु जी के चरण कमलों से उठी हुई धूलि के कण की वन्दना कर नारद (गौतम) प्रभृति महर्षियों के ग्रन्थों में कहे गये श्रीकृष्ण के (पूजा होम आदि) यजन विधियों का विवेचन कर उसकी विधि कहता हूँ ॥ २ ॥

मन्त्रान्तरेभ्यो गोपालमन्त्रस्यातिशयितं वक्तुं भूमिकां रचयति—क्षितीति ।

क्षितिसुरनृपविट्तुरीयजानां
मुनिवनवासिगृहस्थवर्णिनां च ।
जपहुतयजनादिभिर्मनूनां
फलति हि कश्चनकस्यचित्कथंचित् ॥ ३ ॥

हि यतः मनूनां गोपालमन्त्रव्यतिरिक्तानां मध्ये कश्चन मन्त्रोराश्यादिना शोधितः क्षितिसुरप्रभृतीनां वर्णानां मध्ये मुनिवनवासिप्रभृतीनामाश्रमाणां चकारात् स्त्रीणां मध्ये कस्यचित्कथंचिज्जनस्य भाग्यवशाज्जपहोमादिभिः आदिशब्देन तर्पणादेः परिग्रहः । फलति फलं ददातीति योजना, हि शब्दोऽत्रावधारण इति कश्चित् क्षितिसुरो ब्राह्मणः, नृपः क्षत्रियः, विट् वैश्यः, तुरीयः शूद्रः, मुनिर्यतिः वनवासी वानप्रस्थः, गृहस्थः कृतदारपरिग्रहः, वर्णी ब्रह्मचारी ॥ ३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन वर्णों के द्वारा तथा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यासियों तथा स्त्रियों के द्वारा (इस घोर कलि में) श्रीकृष्ण परमात्मा के मन्त्र के अतिरिक्त अन्य मन्त्रों का किया गया जप, हवन एवं तर्पण का अनुष्ठान कभी किसी का कोई ही सिद्ध होकर फलवान् होता दिखाई पड़ता है । अन्यथा सभी व्यर्थ हो जाते हैं किन्तु श्रीकृष्ण मन्त्र का अनुष्ठान सर्वदा सर्वतोभावेन रूप के द्वारा फलप्रद होता है ।। ३ ॥

अधुना गोपालमन्त्रस्य सर्वेषु सिद्धत्वमाह—सर्वेष्विति ।

सर्वेषु वर्णेषु तथाऽऽश्रमेषु
नारीषु नानाह्वयजन्मभेषु ।
दाता फलानामभिवाञ्छितानां
द्रागेव गोपालकमन्त्र एषः ॥ ४ ॥

सिद्धादिगणनानिरपेक्ष एवैष प्रथमोपस्थितो वक्ष्यमाणदशाक्षरगोपाल-मन्त्रो न तु गोपालविषयको मन्त्रगणोऽतिप्रसङ्गात्—

स्वाहाप्रणवसंयुक्तं मन्त्रं शूद्रे ददद् द्विजः ।
शूद्रो निरयगामी स्याद् द्विजश्शूद्रोऽभिजायते ॥

इत्यागमविरोधात्, लक्षणापत्तेश्च, वाञ्छितानां स्वाभिमतानां फलानां द्रागेव झटित्येव दाता केषु सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणादिषु सर्वाश्रमेषु ब्रह्मचारि-प्रभृतिषु नारीषु नानाह्वयजन्मभेषु नानाप्रकारनामसु तथा नानाप्रकार-जन्मनक्षत्रेषु सत्स्वपीत्यर्थः ॥ ४ ॥

विभिन्न नाम वाले एवं विभिन्न नक्षत्रों में जन्म वाले सभी वर्णों एवं सभी आश्रमियों के लिये तथा स्त्रियों के लिये भी यह गोपाल-मन्त्र शीघ्र ही अभीष्ट फल प्रदान करता है ॥ ४ ॥

एवं सत्यपि गुरुचरणशूश्रूषापरोपस्थिताय मन्त्रो देय इति व्यनक्ति—नूनमिति ।

नूनमच्युतकटाक्षपातने कारणं भवति भक्तिरञ्जसा ।
तच्चतुष्टयफलाप्तये ततो भक्तिमानधिकृतो हरौ गुरौ ॥ ५ ॥

यस्मान्नूनं निश्चितम् अच्युतकटाक्षपातने श्रीकृष्णकृपाऽवलोकने भक्ति-रञ्जसा तत्त्वतः कारणं ततस्तस्मात्कारणात् तच्चतुष्टयफलाप्तये प्रसिद्ध-धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयरूपफलप्राप्त्यर्थं हरौ विष्णौ गुरौ मन्त्रदातरि च भक्तियुक्तपुरुषो दीक्षादावधिकृतोऽधिकारी भवतीत्यर्थः । एतेन गुरुदेवत-योरभेदेन ध्यानं कर्तव्यमिति सूचितम् ॥ ५ ॥

निश्चय ही भगवान् के कृपा कटाक्ष को प्राप्त करने के लिये तत्त्वतः उनकी भक्ति मूलभूत कारण है । अतः मनुष्य को पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति का अधिकार प्राप्त करने के लिये विष्णु और गुरु में भक्ति करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अधुना पूजाक्रममाह—स्नात इत्यादिना ।

स्नातो निर्मलशुद्धसूक्ष्मवसनो धौताङ्घ्रिपाण्याननः
स्वाचान्तस्सपवित्रमुद्रितकरः श्वेतोर्द्धपुण्ड्रोज्ज्वलः ।
प्राचीदिग्वदनो निबद्धचसुदृढं पद्मासनं स्वस्तिकं
वाऽऽसीनःस्वगुरून् गणाधिपमथो वन्देत बद्धाञ्जलिः ॥ ६ ॥

स्नातः स्वगृह्योक्तविधिना आगमोक्तविधिनाऽपीति केचित्, निर्मले विशदे प्रक्षालिते सूक्ष्मे वस्त्रे यस्य स तथोक्तः, धौतेति प्रक्षालितपाणिपादवदनः, स्वाचान्तः स्मृत्युक्तविधिना कृताचमनः, सपवित्रेति पवित्रसहितः मुद्रायुक्तहस्तः, सुपवित्रेतिपाठे अतिशोभनपवित्रेण मुद्रितः मुद्रासम्बद्धो हस्तो यस्येति, श्वेतेति श्वेतश्चासौ ऊर्ध्वश्चेति श्वेतोर्ध्वः । एवम्भूततिलकेनोज्ज्वलः, प्राचीदिग्वदनः पूर्वाभिमुखः । अत्र प्राग्वदनस्य कण्ठोक्तत्वात् प्राग्वदनं मुख्यं तदसम्भवे तूदङ्मुखत्वं रात्रौ तु सर्वपूजास्वेवोदङ्मुखत्वं पुराणे च तथैवाभिधानात्, अनन्तरं सुदृढं यथा स्यात्तथा पद्मासन स्वस्तिकं वा कृत्वा, तत्र पद्मासनं प्रसिद्धं, स्वस्तिक लक्षणं तु—

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायसमासीनं स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

आसीन उपविष्टः स्वगुरून् गणेशं च वन्देत, अथोशब्दश्चार्थेऽनुक्तसमुच्चयेतेनाग्रे दुर्गां पृष्ठे क्षेत्रपाल च वन्देत, तदुक्तं गौतमीये—

वामे गुरुं दक्षिणतो गणेशं दुर्गां पुरः क्षेत्रपतिं च पश्चात् । इति ।

प्रयोगश्च गुं गुरुभ्यो नमः, गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै नमः, क्षें क्षेत्रपालाय नमः, बद्धाञ्जलिः कृताञ्जलिपुटः सन्नित्यर्थः । अत्र शारदातिलकोक्तक्रमेणैतद् बोद्धव्यं दक्षिणे पूजाद्रव्यस्थापनं वामे जलकुम्भस्थापनं पृष्ठे करप्रक्षालनपात्रस्थापनं पुरतो दीपचामराद्युपकरणस्थापनमिति ॥ ६ ॥

मनुष्य अपने गृह्योक्तविधि से अथवा आगमविधि से स्नान कर निर्मल शुद्ध प्रक्षालित एवं सूक्ष्म वस्त्र धारण करे । तदनन्तर पुनः हाथ पैर तथा मुख धोकर आचमन करे एवं पवित्री धारण करे । श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र का तिलक लगावे । पुनः पूर्वाभिमुख हो पद्मासन तथा स्वस्तिकासन से दृढ़तापूर्वक बैठकर हाथ जोड़कर गुरुगणों तथा गणपति की वन्दना करे ॥ ६ ॥

भूतशुद्धेः पूर्वं कृत्यमाह—ततोऽस्त्रमन्त्रेणेति ।

ततोऽस्त्रमन्त्रेण विशोध्य पाणी
त्रितालदिग्बन्धहुताशशालान् ।
विधाय भूतात्मकमेतदङ्गं-
विशोधयेच्छुद्धमतिः क्रमेण ॥ ७ ॥

ततस्तदनन्तरं भूतात्मकं पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतमयमेतदङ्गं शरीरं शुद्धमतिः विशदमतिः विशोधयेद्, देवताऽऽत्मकं कुर्यादित्यर्थः । 'नादेवो देवमर्चयेदिति' वचनात्, क्रमेण वक्ष्यमाणप्रकारेण, किं कृत्वा; अस्त्रमन्त्रेणैव अस्त्राय फडित्यनेन तन्मन्त्राङ्गास्त्रमन्त्रेणैव वा, गन्धपुष्पाभ्यां हस्तौ संशोध्य करन्यासं कृत्वाऽस्त्रमन्त्रेणैवोर्ध्वोर्ध्वंन्तालत्रयं कुर्यात्, तदुक्तं शारदायाम्—

करन्यासं समासाद्य कुर्यात्तालत्रयं तत ।। इति ।

अनन्तरमस्त्रमन्त्रेणैव छोटिकया दशदिग्बन्धनम्, अस्त्रमन्त्रेणैव वह्निप्राकारं जलेनात्मनः परिवेष्टनरूपं विधाय कृत्वा; अत्र सम्प्रदायः हृत्पद्मकर्णिकास्थं दीपशिखानिभं जीवात्मानं हंस इति मन्त्रेण सुषुम्णावर्त्मना मस्तकोपरि सहस्रदलकमलावस्थितपरमात्मनि संयोज्य पृथिव्यादिपञ्चविंशतितत्त्वानि तत्र विलीनानि विभाव्य भूतशुद्धिं कुर्यात् ॥ ७ ॥

फिर साधक 'ॐ हुं फट्' इस अस्त्र मन्त्र से गन्ध पुष्प लगाकर हाथ शुद्ध करे । फिर उसी अस्त्र मन्त्र से तीन बार ऊपर की ओर ताली (छोटिका) बजा पुनः उसी से दशो दिशाओं का दिग्बन्धन करे और पुनः उसी मन्त्र को पढ़कर जल से अपने को अग्नितत्त्व से परिवेष्टित करे। इस प्रकार बुद्धि को शुद्ध कर पञ्चभूतात्मक अपने शरीर का क्रमशः शोधन करे ॥ ७ ॥

भूतशुद्धिमाह—इडावक्त्र इति ।

इडावक्त्रे धूम्रं सततगतिबीजं सलवकं
स्मरेत् पूर्वं मन्त्री सकलभुवनोच्छोषणकरम् ।
स्वकं देहं तेन प्रततवपुषाऽऽपूर्य सकलं
विशोष्य व्यामुञ्चेत्पवनमथ मार्गेण खमणेः ॥ ८ ॥

इडावक्त्रे वामनासापुटे सलवकं बिन्दुसहितं सततगतिबीजं वायुबीजं यमितिरूपं पूर्वं प्रथमं मन्त्री साधकः स्मरेत् । किम्भूतं धूम्रं कृष्णवर्णं, पुनः किम्भूतं सकलेति पञ्चभूतमयदेहशोषकं तथा च वामनासापुटेन वायुमाकर्षन्

षोडशवारं वायुबीजं जपेदिति भावः। अनन्तरं सकलं सर्वं स्वकीयं शरीरं तेन बीजमयेन वायुना प्रततवपुषा विस्तीर्णशरीरेणापूर्य पूरयित्वा देहस्थवायोर्बाह्येनैक्यं विचिन्त्य विशोषं नीत्वा चतुःषष्टिवारं वायुबीजं कुम्भकेन जप्त्वा खमणेः सूर्य्यस्य मार्गेण पिङ्गलया दक्षिणनासापुटेन रेचनेनैव वायुबीजं द्वात्रिंशद्वारं जपन् वायुं व्यामुञ्चेत् त्यजेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

मन्त्र को सिद्ध करने वाला साधक सर्वप्रथम कृष्णवर्ण वाले पञ्चभूतात्मक सारे संसार का शोषण करने वाले वायुबीज (यम) इस मन्त्र का १६ बार जप करते हुये बाईं नासिका के छिद्र से वायु को ऊपर खींचे, फिर उस वायु के द्वारा अपने को पूर्णकर उससे शरीर का शोषण हुआ जानकर ६४ बार जप करते हुये कुम्भक करें, फिर ३२ बार उसी मन्त्र का जप कर सूर्यमार्ग अर्थात् दक्षिण नासापुट से उस वायु को बाहर निकाल देवे ॥ ८ ॥

तेनेति।

तेनैव मार्गेण विलीनमारुतं
बीजं विचिन्त्यारुणमाशुशुक्षणेः।
आपूर्य देहं परिदह्य वामतो
मुञ्चेत्समीरं सह भस्मना बहिः ॥ ९ ॥

तेनैव खमणेः सूर्यस्य मार्गेण दक्षिणनासापुटेन विलीनः सम्बद्धो मारुतो वायुर्यत्र तद् आशुशुक्षणेर्वह्नेर्बीजं रमिति अरुणमरुणवर्णं विचिन्त्य वायुनाऽऽपूर्य तद्बीजस्य षोडशवारजपेन पूरकं कृत्वाऽनन्तर कुम्भकेन चतुर्गुणं रंबीज जपन् देहं परिदह्य तदूर्ध्वं रमिति द्वात्रिंशद्वारं जपन् वामत इडामार्गेण वामनासापुटेन भस्मना सह बहिः समीरं वायुं मुञ्चेदित्यर्थः ॥ ९ ॥

पुनः इसी प्रकार वह साधक दक्षिणनासिका के छिद्र से जहाँ से वायु निकाला गया है उसी से अग्नि के वर्णवाले 'रम्' बीज को १६ बार जप करते हुये वायु को ऊपर खीचें। फिर ६४ बार उसी मन्त्र का जप करते हुये कुम्भक करे। फिर ३२ बार उसी मन्त्र का जप करते हुए बाईं नासिका के छिद्र से भस्म सहित उस वायु को बाहर निकाले ॥ ९ ॥

उत्पत्तिं दर्शयति—टपरमिति।

टपरमतीव शुद्धममृतांशुपथेन विधुं
नयतु ललाटचन्द्रममुतस्सकलार्णमयीम्।

लपरजपान्निपात्य रचयेच्च तया सकलं
वपुरमृतौघवृष्टिमथ वक्त्रकराङ्गमिदम् ॥ १० ॥

टस्य परष्टपरः ठकारस्तमतीव शुद्धं श्वेतं विधुं चन्द्रबीजरूपम् अमृतांशुपथेन वामनासापुटेन षोडशवारजपेन ललाटचन्द्रं ब्रह्मरन्ध्रस्थचन्द्रं नयतु प्रापयतु, ननु सर्वशरीरस्य दग्धत्वात् कथममृतांशुपथेन चन्द्रबीजनयनमिति चेन्न, पूर्वोक्तस्य भावनाऽऽत्मकत्वात्, अथानन्तरम् अमुतः अमृतांशोर्ललाटचन्द्राद् ब्रह्मरन्ध्रस्थशशाङ्कात् सकलार्णमयीं मातृकामयीम् अमृतसमूहवृष्टिं लपरो वकारः वरुणबीजमिति यावत् तज्जपेन कुम्भकेन चतुःषष्टिवारजपेन निपात्य उत्पाद्य तया मातृकामय्या वृष्टया इदं सकलं शरीरं रचयेदारचयेत् । कीदृशं वपुर्वक्त्रकराङ्गं वक्त्रं च करश्च अङ्गम् अवयवरूपं यत्र तत्तथा वक्त्रकराढ्यमिति पाठे वक्त्राढ्यं कराढ्यं चेत्यर्थः, अनन्तरं दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत् लमिति पृथ्वीबीजं पीतवर्णं द्वात्रिंशद्वारं जपन् तत्शरीरं सुदृष्टं चिन्तयेत् तदनु सोऽहमित्यात्ममन्त्रेण ब्रह्मरन्ध्राज्जीवं हृदयाम्भोजमानयेदिति सम्प्रदायः ॥ १० ॥

पुनः 'ठकार' रूप अत्यन्त श्वेत् शुद्ध चन्द्रबीज का बाईं नासिका से १६ बार जप करते हुये 'ललाट स्थित चन्द्रमा को ब्रह्मरन्ध्रास्थित चन्द्रमा के साथ मिला रहा हूँ'—ऐसी बुद्धि करता हुआ पूरक करे। पुनः ललाटस्थ चन्द्र एवं ब्रह्मरन्ध्रस्थित चन्द्र के ऐक्य हो जाने पर वरुणबीज 'वम्' इस मन्त्र को ६४ बार जप कर संपूर्ण मात्तृकास्वरूपों की 'अमृतपूर्णवृष्टि से हाथ और मुख अङ्गवाले इस शरीर को आप्लावित करते हुये' कुम्भक करे। पुनः पीतवर्ण वाले 'लम्' इस पृथ्वी बीज का १६ बार जप करते हुये दाहिने नासिका से उस वायु को निकालते हुये रेचक करे। इस प्रकार अपने शरीर को शुद्ध हुआ जानकर संप्रदायानुसार 'सोऽहम्' इस मन्त्र का जप करते हुये ब्रह्मरन्ध्रस्थान से जीव को नीचे उतार कर हृदयकमल में स्थापित करे ॥ १० ॥

अधुना मातृकान्यासं दर्शयति—शिरोवदनेति ।

शिरोवदनवृत्तदृक्श्रवणघोणगण्डोष्ठदद्-
द्वये च सशिरोमुखेऽच इति च क्रमाद्विन्यसेत् ।
हलश्च करपादसन्धिषु तदग्रकेष्वादरात्
सपार्श्वयुगपृष्ठनाभ्युदरकेषु याद्यानथ ॥ ११ ॥

अत्र शिरःशब्दो ललाटस्योपलक्षकः ललाटमुखमावृतेति शारदादर्शनात् एकत्राक्षरद्वयस्यापि न्यासापाताच्च, वदनवृत्तं मुखमण्डलं दृक्श्रवणघोण-

गण्डौष्ठदन्तानां द्वयमिति समासः, द्वयमिति दृगादावपि सर्वत्र सम्बध्यते । घोणा नासिका, दद्द्वये दन्तपङ्क्तिद्वये, इत्युक्तेषु स्थानेषु अचः षोडश स्वरान् क्रमेणैकाक्षरक्रमेण विन्यसेत् तथा हलश्च कादीनि व्यञ्जनानि च तत्र कादीनि विंशत्यक्षराणि आदरात् आदरपूर्वकं करपादसन्धिषु तदग्रकेषु च विन्यसेद् । अनन्तरं यकारादीनि पञ्चाक्षराणि सपार्श्वयुगपृष्ठनाभ्युदरकेषु पार्श्वयुगेन सह वर्तते यत् पृष्ठनाभ्युदरं तत्र विन्यसेत्, तथाऽनन्तरमनेन वक्ष्यमाणमार्गेण याद्यान् वर्णान् हृदयादिस्थानगतान् अत्रापि करपद्युगयोरुदरवक्त्रयोश्च हृदयपूर्वं यथा स्यात्तथा अन्वहं प्रतिदिनं न्यसतु । करपद्युगादीनां पूर्वैः पदैः समस्तानामपि हृदयपूर्वमिति क्रियाविशेषणेन सह सम्बन्धः सापेक्षत्वादत्रासमास इति तु तुल्यप्रधानसापेक्षविषयं द्रष्टव्यम्, किमर्थं शुद्धकलेवरसिद्धये शुद्धशरीरसम्पादनार्थमित्यर्थः ।। ११ ।।

इसके बाद ललाट मुखमण्डल=२ दोनों नेत्र=४ दोनों कान=६ दोनों नासिका=८ दोनों गण्डस्थल=१० दोनों ओठ=१२ उपर नीचे की दोनों दाँतों की पक्तियाँ=१४, पुनः शिरः और मुख=१६ इन १६ स्थानों पर अकार से लेकर अं अः पर्यन्त १६ स्वरों के एक एक अक्षर से न्यास करे । फिर हल वर्ण से (ककार से लेकर नकार पर्यन्त २० वर्णों से) आदरपूर्वक दोनों हाथ पैर के सन्धियों में तथा उनके अग्रभाग में न्यास करे । पुनः पकारादि पाँच वर्णों से दोनों पार्श्व, पृष्ठ, नाभि और उदर का न्यास करे । फिर य र ल व श ष ह पर्यन्त आठ वर्णों से दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर तथा दोनों गण्डस्थल और हृदय का न्यास करे । यह क्रिया शरीर की शुद्धि के लिये करना चाहिये । अ से लेकर अः पर्यन्त १६ स्वरों का क्रम इस प्रकार है ॐ नमः ललाटे आँ नमः मुखे । इत्यादि इसी प्रकार कं खं गं घं नमः दक्षहस्तसंधौ । चं छं जं झं ञं नमः वामहस्तसंधौ । टं ठं डं ढं णं नमः दक्षपादसंधौ । तं थं दं धं नं नमः वामपादसंधौ । इत्यादि ।। ११ ।।

हृदयकक्षककुत्करमूलदोःपदयुगोदरवक्त्रगतान् बुधः ।
हृदयपूर्वमनेन पथान्वहं न्यसतु शुद्धकलेवरसिद्धये ।। १२ ।।

इस प्रकार बुद्धिमान साधक अपने शरीर की शुद्धि के लिये प्रतिदिन पचास अक्षरों के द्वारा हृदय, दोनों कक्ष, ककुद् दोनों कन्धा, दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर, मुख तथा हृदय प्रदेश का भी न्यास करे ।। १२ ।।

इत्यारचय्येति ।

इत्यारचय्य वपुरर्णशतार्द्धकेन
साद्धक्षपेशसविसर्गकसोभयैस्तैः ।

विन्यस्य केशवपुरस्सरमूर्त्तियुक्तैः
कीर्त्यादिशक्तिसहितैर्न्यसतु क्रमेण ॥ १३ ॥

अथ कथयाम्यर्णानां मूर्तीः शक्तीः समस्तभुवनमयीः ।
केशवकीर्ती नारायणकान्तो माधवस्तथा तुष्टिः ॥ १४ ॥

इत्युक्तप्रकारेण वपुः शरीरम् अर्णशतार्द्धकेन पञ्चाशद्वर्णैः आरचय्य रचयित्वा अनन्तरं तैरेव पञ्चाशद्वर्णैः सार्द्धक्षपेशसविसर्गकसोभयैः अर्द्धक्षपेशेन सह वर्तन्त इति सार्द्धक्षपेशाः अर्द्धचन्द्रसहिताः तैः सानुस्वारैरित्यर्थः, सविसर्गकैः विसर्गसहितैः सोभयैरनुस्वारविसर्गसहितैः विन्यस्य तथा आदौ शरीरसम्पादनार्थं शुद्धैर्मातृकाऽक्षरैर्विन्यस्य तदनन्तरं तेष्वेव ललाटादिषु मातृकास्थानेषु अं नम इत्यादीन् क्षं नम इत्यन्तान् तथा अः नम इत्यादीन् क्षः नम इत्यन्तान् (तथा अंः नम इत्यादीन् क्षंः नम इत्यन्तान्) वर्णान् विन्यस्येदित्यर्थः, एवं चतुर्विधो मातृकान्यास उक्तः । ननु कथमर्णशतार्द्धकेनेत्युक्त वर्णानामेकपञ्चाशत्त्वादित्युच्यते क्षकारेणाक्षरद्वयस्यैकीकरणात् ळत्वेन लकारद्वयस्यैकीकरणाद्वा लोकप्रसिद्धेर्वा प्रकरणेनैकपञ्चाशत्संख्यायास्तात्पर्येऽधिगते पञ्चाशद्वर्ण एवकपञ्चाशत्संख्यापर इति प्रपञ्चसारविवरणे श्रीप्रेमानन्दभट्टाचार्यशिरोमणयः । वस्तुतस्तु अर्णशतार्द्धं च कं चार्णशतार्द्धकं तेनाक्षराणामेकपञ्चाशत्त्वमायातम् । असमविभागे वा अर्द्धशब्दः । केशवन्यासमाह– विन्यस्य केशवेति, केशवः पुरःसरः प्रथमो यासां मूर्तीनां ताः तथा च केशवादिमूर्तिसहितैः कीर्त्यादिशक्तियुक्तैश्च मातृकाक्षरैः ललाटादिषूक्तस्थानेषु यथाक्रमं न्यासः कार्यः ॥ १३-१४ ॥

गोविन्दः पुष्टियुतो विष्णुधृती सूदनश्च मध्वाद्यः ।
शान्तिस्त्रिविक्रमश्च क्रियायुतो वामनो दयायुक्तः ॥ १५ ॥

सूदनश्च मध्वाद्यः मधुसूदन इत्यर्थः ॥ १५ ॥

श्रीधरयुता च मेधा हृषीकनाथश्च हर्षया युक्तः ।
अम्बुजनाभश्रद्धे दामोदरसंयुता तथा लज्जा ॥ १६ ॥

हृषीकनाथो हृषीकेश इत्यर्थः । अम्बुजनाभः पद्मनाभः ॥ १६ ॥

लक्ष्मीः सवासुदेवा संकर्षणकः सरस्वतीयुक्तः ।
प्राद्यो द्युम्नः प्रीतिसमेतोऽनिरुद्धको रतिरिमाः स्वरोपेताः ॥१७॥

प्राद्यो द्युम्नः प्रद्युम्नः ॥ १७ ॥

चक्रिजये गदिदुर्गे शार्ङ्गी प्रभयाऽन्वितस्तथा खड्गी।
सत्या शङ्खीचण्डा हलिवाण्यौ मुसलियुग्विलासिनिका ॥ १८ ॥
शूली विजया पाशी विरजा विश्वान्वितोऽम्बुशीर्भूयः।
विमदा मुकुन्दयुक्ता नन्दजसुनन्दजे स्मृतिश्च नन्दियुता ॥१९॥
नरऋद्धी नरकजितासमृद्धिरथ शुद्धियुग्घरिः कृष्णः।
बुद्धियुतः सत्ययुतभुक्तिर्मतियुक्तः स्यात्ततः शौरिः ॥ २० ॥
क्षमया शूरो रमया जनार्दनो मेचभूधरः क्लेदी।
विश्वाद्यमूर्त्तियुक्ता क्लिन्ना वैकुण्ठयुक्तथा वसुदा ॥ २१ ॥

क्लेदी क्लेदिनीत्यर्थ; छन्दोभङ्गभयात्तथोक्तः। विश्वादिमूर्त्तिरिति विश्वमूर्त्तिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

पुरुषोत्तमश्च वसुधा बलिना च वरा बलानुजोपेता।
भूयः परायणाख्या बालः सूक्ष्मा वृषघ्नसंध्ये च ॥ २२ ॥
सवृषा प्रज्ञा हंसः प्रभा वराहो निशा च विमलोऽमोघा।
नरसिंहविद्युते च प्रणिगदिता मूर्तयो हलां शक्तियुताः ॥ २३ ॥

अमोघेति च्छेदः ॥ २३ ॥

इस प्रकार शरीर शुद्धि के लिये अनुस्वार विसर्ग के साथ पञ्चाशत् मातृकाक्षरों से तत् तत् स्थानों में न्यास कर पुनः अं नमः से क्षं नमः पर्यन्त न्यासकर पुनः अः नमः से क्षः नमः पर्यन्त तथा तृतीय बार अं नमः से क्षं नमः पर्यन्त वर्णों से पूर्वोक्त ललाटादि स्थानों में न्यास करे। इस प्रकार ललाटादि प्रदेश में चार प्रकार का न्यास कहा गया है। तदनन्तर पञ्चाशद्वर्णों के शक्ति सहित मूर्त्तियों से तत्तदङ्गों में न्यास करने के लिये उन वर्णों की शक्ति सहित मूर्त्तियों का वर्णन कहता हूँ। (१३ श्लोक में अर्णशतार्धकेन का अर्थ ५० न कर ५१ अर्थ करना चाहिये।[1]

(प्रसङ्गतः पचासवर्ण का निर्देश इस प्रकार है—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ

---

१. तन्त्र ग्रन्थों में मातृका वर्णो को संख्या ५१ है इसीलिये मातृका वर्णों के अनुसार महाशक्ति के ५१ पाठों का वर्णन है अतः यहाँ उक्त श्लोक में अर्णशतार्धकेन में आया हुआ अर्धपद लक्षानुरोधात् समानांश वाची नहीं मानना चाहिये।

ए ऐ ओ औ अं अः ये १६ स्वर है। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह क्ष त्र—ये ३५ व्यञ्जन वर्ण हैं। कुल योग ५१ हुआ।) १६ स्वरों की मूर्तियाँ—(१) केशव उनकी शक्ति कीर्ति (२) नारायण कान्ति (३) माधव तुष्टि (४) गोविन्द पुष्टि (५) विष्णु धृति (६) मधुसूदन शान्ति (७) त्रिविक्रम क्रिया (८) वामन दया (९) श्रीधर मेधा (१०) हृषीकेश हर्षा (११) पद्मनाभ श्रद्धा (१२) दामोदर लज्जा (१३) वासुदेव लक्ष्मी (१४) संकर्षण सरस्वती (१५) प्रद्युम्न प्रीति (१६) अनिरुद्ध रमा—ये १६ स्वरों की मूर्त्ति तथा शक्तियाँ है।

अब ३५ हल वर्णों की मूर्त्ति तथा शक्तियाँ कहता हूँ–(१) चक्री जया (२) गदी दुर्गा (३) शार्ङ्गी प्रभा (४) खड्गी सत्या (५) शङ्खी चण्डा (६) हली वाणी (७) हलयुक् विलासिनिका (८) शूली विजया (९) पाशी विरजा (१०) अम्बुशीः विश्वा (११) मुकुन्द विमदा (१२) नन्दन सुनन्दा (१३) नन्दी स्मृति (१४) नर ऋद्धि (१५) नरकजित् समृद्धि (१६) हरि शुद्धि (१७) कृष्ण बुद्धि (१८) सत्य भुक्ति (१९) शौरि मूर्ति (२०) शूर क्षमा (२१) जनार्दन रमा (२२) महेश उमा (२३) भूधर क्लेदिनी (२४) विश्वमूर्त्ति क्लिन्ना (२५) वैकुण्ठ वसुदा (२६) पुरुषोत्तम वसुधा (२७) बलि वरा (२८) वलानुज परायणा (२९) बाल सूक्ष्मा (३०) वृषघ्न संध्या (३१) वृष प्रज्ञा (३२) हंस प्रभा (३३) वराह निशा (३४) विमल अमोघा (३५) नरसिंह विद्युता—इस प्रकार ३५ हलवर्णों की मूर्त्ति समेत शक्तियों का वर्णन किया गया ॥ १३-२३॥

पूर्वोक्त केशवादिमूर्त्तिकीर्त्यादिशक्तिन्यासप्रकारं दर्शयति—

वर्णानुक्त्वा सार्धचन्द्रान् पुरस्तान्-
मूर्तीः शक्तीर्ङेऽवसाना नतिं च।
उक्त्वा न्यस्येत् यादिभि सप्तधातून्
प्राणं जीवं क्रोधमप्यात्मनेऽन्तान् ॥ २४ ॥

पुरस्तात् प्रथमं वर्णान् अकारादिक्षकारान्तान् उक्त्वा कथंभूतान् वर्णान् सार्धचन्द्रान् सबिन्दून् अनन्तरं मूर्तीः केशवाद्याः शक्तीः कीर्त्याद्याः ङेऽवसानाः इत्युभयेन सम्बध्यते तन्न हृदयग्राहि प्रत्यासत्तेः लाघवाच्च अं केशवाय कीर्त्यै नम इति प्रयोगे केशवायेत्यत्र नमःपदस्य योगाभावाच्चतुर्थ्यनुपपत्तिः न हि विष्णवे सूर्याय नम इति भवति, भवति च विष्णवे नम सूर्याय नमः इति (तथा च केशवाय नमः कीर्त्यै नम इति) प्रयोगापत्तिः उभयत्र वा चकारो देयः समुच्चयख्यापनार्थः, स श्रिये

चामृताय चेति वत् तथा मातृकाक्षराणामपि उभयसम्बन्धार्थं द्विः प्रयोगापत्तिः, अं केशवकीर्तिभ्यां नम इति प्रयोगे तु नैते दोषाः पतन्ति तत्र द्वन्द्वसमासवशात् सहितावस्थितयोरेवोपस्थितौ चतुर्थ्यर्थान्वयसम्भवात् वर्णान्वयसम्भवाच्च अग्नीषोमयोरिव सहितावस्थितयोर्देवतात्वं, कथं तर्हि यादिषु त्वगादिप्रयोगः कार्यं इत्युच्यते यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमवसुधाभ्यां नमः रं असृगात्मने बलिपराभ्यां नम इत्येवंरूप इति, मन्त्रमुक्तावलिकारेण तथैवाभिधानात्, आत्मने इत्यस्य सुबन्तप्रतिरूपकनिपातत्वेनादोषादिति तु प्रपञ्चसारविवरणे परमानन्दभट्टाचार्य्याः तथा च अं केशवकीर्तिभ्यां नमः इति प्रयोगः मन्त्रमुक्तावलीकारलघुदीपिकाकारत्रिपाठिरुद्रोपाध्यायविद्याधराचार्यपरमानन्दभट्टाचार्यसंमतः, अं केशवाय कीर्त्यै नम इति प्रयोगः पद्मपादाचार्यप्रभृतीनां संमत इति, ज्ञात्वा यथागुरुसम्प्रदायं व्यवहर्तव्यमिति । अत्रैव न्यासविशेषमाह—यादिभिरिति यकाराद्यैर्दशभिरक्षरैः सह सप्त धातून् त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राख्यान् आत्मनेऽन्तान् आत्मने इतिशब्दः अन्ते येषांते तथा प्राणं जीवं क्रोधं च आत्मनेऽन्तं हृदयादिषु यथास्थानेषु विन्यस्येदित्यर्थः, प्राणं शक्तिमित्यपि पाठान्तरम् ॥ २४ ॥

प्रथम अनुस्वार सहित अकारादि वर्णों का उच्चारण करे फिर, मूर्त्ति और शक्तियों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर अन्त में 'नमः' पद का प्रयोग करे । उदाहरण अं केशवकीर्तिभ्यां नमः इति ललाटे इत्यादि प्रकार से न्यास कर मं वैकुण्ठ वसुदाभ्यां नमः पर्यन्त न्यास कर य से लेकर क्ष पर्यन्त बचे हुये दस अक्षरों से सातों त्वक् असृक् मांस मेद् अस्थि मज्जा शुक्र धातुओं, प्राण, जीव तथा क्रोध के अन्त में आत्मने लगाकर न्यास करे—उदाहरण यं त्वगात्मने पुरुषोत्तमवसुधाभ्यां नमः' इससे त्वक्र में रं असृगात्मने वलिपराभ्यां नमः' पर्यन्त य से ७ अक्षर स पर्यन्त हसप्रभाभ्यां नमः सात धातुओं का शेष वचे हुये ह ल क्ष अक्षरों से प्राण जीव और क्रोध का न्यास करे अर्थात् हं प्राणात्मने वराहनिशाभ्यां नमः' त्वं जीवात्मने विमल अमोघाभ्यां नमः' क्षं क्रोधात्मने नरसिंहविद्युद्भ्यां नमः' पर्यन्त न्यास करे ॥ २४ ॥

केशवादिन्यासे ध्यानमाह—उद्यदिति ।

उद्यत्प्रद्योतनशतरुचिं तप्तहेमावदातं
पार्श्वद्वन्द्वे जलधिसुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम् ।
नानारत्नोल्लसितविविधाकल्पमापीतवस्त्रं
विष्णुं वन्दे दरकमलकौमोदकीचक्रपाणिम् ॥ २५ ॥

अहं विष्णुं वन्दे। कीदृशम्? उद्यन्नुदयं गच्छन् प्रद्योतनः सूर्यः तस्य यच्छतं तस्येव रुचिदीप्तिर्यस्य तं पुनः तप्तेति–वह्निमध्यनिक्षिप्तकाञ्चनवद्गौरं, पुनः कीदृशं पार्श्वद्वन्द्वे इति–दक्षिणवामपार्श्वद्वये जलधिसुतया लक्ष्म्या तथा विश्वधात्र्या पृथिव्या जुष्टं सेवितं, पुनः किम्भूतं नानाविधरत्नेन शोभितो नाना बहुप्रकार आकल्पो भूषणं यस्य, पुनः कीदृशम् आपीतेति–आसम्यक् प्रकारेण पीते वस्त्रे यस्यं तं पुनः कीदृशंदरः शङ्खः पद्मं कमलं कौमोदकी गदा चक्रम् एतानि पाणौ यस्य तम्, अत्र ऊर्ध्वाधःक्रमेण वामभागे शङ्खपद्मे दक्षिणभागे गदाचक्रे इति बोध्यम् ॥ २५ ॥

उक्त प्रकार के मूर्त्तीसहित शक्तिमन्त्रों के न्यास में ध्यान प्रकार इस प्रकार है—

जिनके शरीर की कान्ति उदय होते हुये सैकड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही है, अग्नि में प्रक्षिप्त सुवर्ण के समान जो गौर वर्णवाले हैं, जिनके दक्षिण पार्श्व में महालक्ष्मी एवं वामपार्श्व में भगवती भू देवी विराजमान हैं। जिनके भूषण नाना प्रकार के रत्नों से जगमगा रहे है, तथा जिन्होंने पीताम्बर धारण किया है, जिनके हाथों में शङ्ख कमल कौमोदकी गदा एवं चक्र शोभित हो रहे हैं—ऐसे भगवान् विष्णु की मैं वन्दना करता हूँ ॥ २५ ॥

ध्यानन्यासयोः फलमाह—ध्यात्वैवमिति।

ध्यात्वैवं परमपुमांसमक्षरैर्यो
विन्यस्येद्दिनमनु केशवादियुक्तैः।
मेधाऽऽयुःस्मृतिधृतिकीर्तिकान्तिलक्ष्मी
सौभाग्यैश्चिरमुपबृंहितो भवेत्सः ॥ २६ ॥

एवमुक्तप्रकारं परमपुमांसं विष्णुं ध्यात्वा योऽनुदिनं प्रत्यहंकेशवादिसहितैर्मातृकाक्षैर्विन्यस्येत् स पुरुषः मेधादिभिश्चिरं बहुकालम् उपबृंहित· उपचितो भवति मेधा धारणावती बुद्धिः आयुर्जीवनं स्मृतिः स्मरणं धृतिर्धैर्यं कीर्त्तिरुत्कृष्टकर्मकथा कान्तिः सौन्दर्यं लक्ष्मीरैश्वर्यं सौभाग्यं सर्वप्रियत्वम् ॥ २६ ॥

जो इस प्रकार के अक्षरों से महाविष्णु का ध्यान कर प्रतिदिन केशवादि मूर्त्ति से युक्त शक्तियों से न्यास करता हैं वह बहुत काल पर्यन्त मेधा (धारणायुक्तबुद्धि) आयु (जीवन) स्मृति (स्मरण) धृति (धैर्य) कीर्त्ति (उत्कृष्टकर्मकथा) कान्ति (सौन्दर्य) लक्ष्मी (ऐश्वर्य) और सौभाग्य (सर्वप्रियता) को प्राप्त कर बहुकालपर्यन्त समृद्धि को प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

न्यासविशेषमाह—अमुमिति।

अमुमेव रमापुरःसरं प्रभजेद्यो मनुजो विधिं बुधः।
समुपेत्य रमां प्रथीयसीं पुनरन्ते हरितां व्रजत्यसौ ॥ २७ ॥

यः पण्डितो मनुष्यः अमुमेव विधिं केशवादिन्यासप्रकारं रमापुरःसरं श्रीबीजमादौ दत्वा प्रभजेत् करोति असौ पुमान् इह लोके प्रथीयसीं महतीं रमां लक्ष्मीं समुपेत्य प्राप्य पुनरन्ते अवसाने हरितां विष्णुत्वं व्रजति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

जो बुद्धिमान पुरुष श्री बीज के सहित केशवादिमूर्त्तियों से युक्त शक्तियों से इस प्रकार कहे गये विधि से न्यास का अनुष्ठान करता है वह इस जीवन में महती लक्ष्मी प्राप्त कर अन्त में विष्णुत्व को प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥

तत्त्वन्यासं दर्शयति—इत्यच्युतीत्तादि।

इत्यच्युतीकृततनुर्विदधीत तत्त्व-
न्यासं मपूर्वकपराक्षरनत्युपेतम्।
भूयः पराय च तदाह्वयमात्मने च
नत्यन्तमुद्धरतु तत्त्वमनून् क्रमेण ॥ २८ ॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण अच्युतीकृततनुः सम्पादितविष्णुशरीरः तत्त्वन्यासं वक्ष्यमाणप्रकारं विदधीत कुर्यात्, प्रकारं दर्शयति—मः पूर्वो यस्य स मपूर्वः, कः परो यस्य सः कपरः, नत्युपेतं नमः शब्दसहितं तथा च मकारादिव्युत्क्रमेण ककारपर्यन्तमेकैकाक्षरं नमःपदसहितं कृत्वा भूयोऽनन्तरं परायेतिपदं दत्वा अनन्तरं तदाह्वयं तेषां तत्त्वानामाह्वयं वक्ष्यमाणं नाम दत्वा अनन्तरम् आत्मने इतिपदं दत्वा अनन्तरं नत्यन्तं नमःपदमन्ते दत्वा क्रमेण तत्त्वमनून् तत्त्वमन्त्रानुद्धरतु ॥ २८ ॥

इस प्रकार के न्यासों से अपने शरीर को विष्णुमय बनाकर साधक व्युत्क्रम से प्रथम म अक्षर, उसके बाद नमः पद, फिर पराय पद फिर वक्ष्यमाण तत्त्व का नाम लेकर उसमें आत्मने लगाकर एवं नमः लगाकर तत्त्व मन्त्रों का क्रम से उद्धार करे। (इसकी व्याख्या आगे के २९ श्लोक में देखिये) ॥ २८ ॥

अधुना तत्त्वानां नामानि न्यासं स्थानं च दर्शयति—

सकलवपुषि जीवं प्राणमायोज्य मध्ये
न्यसतु मतिमहङ्कारं मनश्चेति मन्त्री।

कमुखहृदयगुह्याङ्घ्रिष्वथोशब्दपूर्वं-
गुणगणमथ कर्णादिस्थितं श्रोत्रपूर्वम् ॥ २६ ॥

सकलवपुषि सर्वाङ्गव्यापके जीवं प्राणं च मन्त्रे आयोज्य तेन न्यस्यतु तथा च म नमः पराय जीवात्मने नमः भं नमः पराय प्राणात्मने नमः इति द्वयं सर्वशरीरे विन्यस्येदित्यर्थः, इति तत्त्वपदं दत्वा मं नमःपराय जीवतत्त्वात्मने नमः इति केचित्तत्प्रयोगान्कुर्वन्ति तन्न प्रमाणाभावात् मूर्तिपञ्जरन्यासेऽपि मूर्तिपदप्रयोगापत्तेः, अत्र मकरादीनां बिन्दुसाहित्यं सम्प्रदायावगतं बोद्धव्यम् । मध्ये हृदये मतिम् अहङ्कारं मनश्च मन्त्रे आयोज्य तेन मन्त्री न्यस्यतु तथा बं नमः पराय मत्यात्मने नमः फं नमः नमः पराय अहङ्कारात्मने नमः प नमः पराय मनआत्मने नमः, इति त्रयं हृदि विन्यस्येदित्यर्थः । अथोऽनन्तरं कमुखहृदयगुह्याङ्घ्रिषु पञ्चसु स्थानेषु शब्दपूर्वं गुणसमुदायं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकं मन्त्रे आयोज्य तेन न्यस्यतु तथा च नं नमः पराय शब्दात्मने नमः इति शिरसि, धं नमः पराय स्पर्शात्मने नमः इति मुखे, दं नमः पराय रूपात्मने नमः इति हृदये, थं नमः पराय रसात्मने नमः इति गुह्ये, तं नमः पराय गन्धात्मने नमः पादयो विन्यस्येदित्यर्थः । अथानन्तरं श्रोत्रत्वग्दृक्जिह्वाघ्राणात्मकं कर्णादिस्थितं कर्णत्वक्दृक्जिह्वाघ्राणेषु स्थितं यथा स्यात्तथा न्यस्यतु तथा च णं नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः इति श्रोत्रयोः ढं नमः पराय त्वगात्मने नमः इति त्वचि; डं नमः पराय दृगात्मने नमः इति नेत्रयोः, ठं नमः पराय जिह्वात्मने नमः इति जिह्वायां, टं नमः पराय घ्राणात्मने नमः इति घ्राणयोरिति विन्यस्येत् ॥ २९ ॥

इस प्रकार मन्त्रवेत्ता सर्बाङ्गव्यापक मन्त्र में जीव और प्राण की योजना कर न्यास करे। जैसा कि 'मं नमः पराय जीवात्मने नमः' 'भं नमः पराय प्राणात्मने नमः' कहकर संपूर्ण शरीर में न्यास करे। फिर मति अहङ्कार तथा मन को मन्त्र में योजनाकर न्यास करे यथा 'वं नमः पराय मत्यात्मने नमः' 'फं नमः पराय अहङ्कारात्मने नमः' पं नमः पराय मन आत्मने नमः' इस प्रकार इन तीनों की मन्त्रों मे योजना कर हृदय में न्यास करे। इसके बाद शिर मुख हृदय गुह्य और चरण इन पाँच स्थानों में शब्द सहित गुण समुदाय अर्थात् शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध इन पाँचों की मन्त्र में योजना कर न्यास करे। इस तरह 'नं नमः पराय शब्दात्मने नमः' इति शिरसि। 'धं नमः पराय स्पर्शात्मने नमः इति मुखे। 'दं नमः पराय रूपात्मने नमः इति हृदये। थं नमः पराय रसात्मने नमः' इति गुह्ये। 'तं नमः पराय गन्धात्मने नमः इति पादयोः। इस प्रकार न्यास करे। फिर श्रोत्र त्वग् दृक् जिह्वा और घ्राण

की योजना कर कान, त्वक्, दृक्, जिह्वा तथा घ्राण का न्यास करे। यथा 'णं नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः इति कर्णे। 'ढं नमः पराय त्वगात्मने नमः' इति त्वचि। 'डं नमः पराय दृगात्मने नमः' इति नेत्रयोः। 'ठं नमः पराय जिह्वात्मने नमः' इति जिह्वायाम्। 'टं नमः पराय घ्राणात्मने नमः' इति घ्राणयोः। इस प्रकार न्यास करें॥ २९॥

वागादीति।

वागादीन्द्रियवर्गमात्मनिलयेष्वाकाशपूर्वं गणं
मूर्ध्न्यास्ये हृदये शिवे चरणयोर्हृत्पुण्डरीके हृदि।
बिम्बानि द्विषडष्टयुग्दशकलाव्याप्तानि सूर्योडुराड्-
वह्नीनां च यतस्तु भूतवसुमुन्यक्ष्यक्षरैर्मन्त्रवित्॥३०॥

वागादीन्द्रियवर्गं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं मन्त्रे आयोज्य आत्मनिलयेषु मुखपाणिपादपायूपस्थेषु न्यस्यतु। तथा च ञं नमः पराय वागात्मने नमः इति मुखे, झं नमः पराय पाण्यात्मने नमः इति पाण्योः, जं नमः पराय पादात्मने नमः पादयोः, छं नमः पराय पाय्वात्मने नमः इति पायौ, चं नमः पराय उपस्थात्मने नमः इत्युपस्थे विन्यस्येदित्यर्थः। आकाशपूर्वं गणमाकाशवाय्वाग्निजलपृथिव्यात्मकं मन्त्रे आयोज्य मूर्धन्यास्ये हृदये शिवे लिङ्गे चरणयोर्न्यस्यतु। तथा च ङं नमः पराय आकाशात्मने नम इति शिरसि, घं नमः पराय वाय्वात्मने नमः इति मुखे, गं नमः परायाग्न्यात्मने नम इति हृदये, खं नमः पराय जलात्मने नम इति लिङ्गे, कं नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति पादयोर्न्यस्येदित्यर्थः। हृत्पुण्डरीकमित्यादेरयमर्थः, हृत्पुण्डरीकं तथा सूर्योडुराड्वह्नीनां बिम्बानि सूर्यचन्द्राग्नीनां मण्डलानि त्रीणि द्विषडष्टयुग्दशकलाव्याप्तानि द्वादशषोडशदशकलायुक्तानि यतस्तु भूतवसुमुन्यक्ष्यक्षरैः यतो यकाराद् यो भूतवर्णः पञ्चमवर्णः शकारः वसुवर्णोऽष्टमार्णो हकारः मुनिवर्ण सप्तमः-सकारः अक्षिवर्णौ द्वितीयवर्णो रेफः एतैश्च सहितानि मन्त्रे आयोज्य हृदि न्यस्यतु। तथा च—शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः हं नमः, पराय द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः, सं नमः पराय षोडशकलाव्याप्तचन्द्र-मण्डलात्मने नमः; रं नमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः इति चतुष्टयं हृदये न्यस्यतु॥ ३०॥

तदनन्तर वाक्, पाणि, पाद, पायु उपस्थात्मक पाँच कर्मेन्द्रियों की मन्त्र में योजना कर मुख पाणि पाद पायु और उपस्थ स्थानों पर न्यास करे। यथा 'ञं नमः

पराय वागात्मने नमः' इति मुखे । 'झं नमः पराय पाण्यात्मने नमः' इति पाण्योः 'जं नमः पराय पादात्मने नमः इति पादयोः । 'छं नमः पराय वाय्वात्मने नम, इति पायौ । चं नमः पराय उपस्थात्मने नमः' इत्युपस्थे । फिर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों की मन्त्र में योजना कर शिर, मुख, हृदय, लिङ्ग और चरणों पर न्यास करे । यथा 'ङं नमः पराय आकाशात्मने नमः' इति शिरसि । 'घं नमः पराय वाय्वात्मने नमः' इति मुखे । गं नमः परायाग्न्यात्मने नमः इति हृदये । खं नमः पराय जलात्मने नमः इति लिङ्गे । कं नमः पराय पृथ्व्यात्मने नमः इति पादयोः । तदनन्तर हृत्पुण्डरीक द्वादशकलात्मक सूर्य, षोडश कलात्मक चन्द्र तथा दशकलाव्याप्त अग्नि इनकी मन्त्र में योजना कर और उन्हें यकार के पञ्चम अक्षर शकार आठवाँ, वर्ण हकार, सप्तमवर्ण सकार तथा द्वितीय वर्ण रेफ से युक्त कर चारों से हृदय में एकबार न्यास करे । यथा 'शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमः' 'हं नमः पराय द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः' 'सं नमः पराय षोडशकलाव्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः' 'रं नमः पराय दश कलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः' इन चारों से हृदय में न्यास करे ॥ ३० ॥

अथ परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्ती च सर्व इत्युपनिषदः ।
न्यस्येदाकाशादिस्थाने षोपरवलार्णैः सलवकैः ॥ ३१ ॥

अथानन्तरं परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्ती सर्व इत्युपनिषदो रहस्यान् षोपरवलार्णैरिति षकारः रेफस्य उप समीपं तेन रेफसमीपवर्त्तिनौ यकारलकारौ लक्ष्येते वकारो लकारश्च एतैः सलवकैर्बिन्दुसहितैः सहितान् आकाशादिस्थाने न्यस्येद् आकाशादि न्यासस्थानेषु मूर्ध्न्यास्ये हृदये लिङ्गे चरणयोर्न्यस्येत् ॥ ३१ ॥

इसके बाद 'परमेष्ठिपुमांसौ विश्वनिवृत्ती सर्व'—यह उपनिषद् है कि बिन्दु के सहित ष, य, ल, व और ल वर्णों से आकाशादि स्थान में न्यास करना चाहिए ॥ ३१ ॥

विमर्श—आकाश आदि के स्थान शरीर में मूर्द्धा, मुख, हृदय और लिङ्ग एवं दोनों पैर हैं । इन्हीं पाँचों में न्यास करे ॥ ३१ ॥

अत्रैव विशेषमाह—वासुदेव इति ।

वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ।
नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभिर्युताः ॥ ३२ ॥

क्रमशः क्रमेण परमेष्ठ्यादिभिः सहिता वासुदेवादयो न्यसनीया तथा च

षं नमः पराय वासुदेवाय परमेष्ठ्यात्मने नमः इति शिरसि, यं नमः पराय संकर्षणाय पुरुषात्मने नमः इति मुखे, लं नमः पराय प्रद्युम्नाय विश्वात्मने नमः इति हृदये, वं नमः पराय अनिरुद्धाय निवृत्यात्मने नमः इति लिङ्गे, लं नमः पराय नारायणाय सर्वात्मने नमः इति चरणयोः विन्यस्येदित्यर्थः, केचित्तु परमेष्ठ्यादेरनन्तरं वासुदेवादेः प्रयोगं कुर्वन्ति ॥ ३२ ॥

क्रमशः परमेष्ठ्यादिकों के सहित वासुदेवादि देवताओं का भी न्यास करना चाहिए। इस प्रकार 'षं नमः पराय वासुदेवाय परमेष्ठ्यात्मने नमः' इससे शिर में न्यास करे। 'यं नमः पराय संकर्षणाय पुरुषात्मने नमः' इससे मुख में, 'लं नमः पराय प्रद्युम्नाय विश्वात्मने नमः' इससे हृदय में, वं नमः पराय अनिरुद्धाय निवृत्त्यात्मने नमः' इससे लिङ्ग में, 'लं नमः पराय नारायणाय सर्वात्मने नमः' इससे हृदय में न्यास करे ॥ ३२ ॥

विमर्श—कुछ लोग परमेष्ठ्यादि के बाद वासुदेव आदि का प्रयोग करते हैं ॥ ३२ ॥

ततः कोपतत्त्वं क्षरौबिन्दुयुक्तं
नृसिंहं न्यसेत्सर्वगात्रेषु तज्ज्ञः ।
क्रमेणेति तत्त्वात्मको न्यास उक्तः
स्वसांनिध्यकृद्विश्वमूर्त्यादिषु द्राक् ॥ ३३ ॥

ततस्तदनन्तरं क्रमेण गुरूपदेशक्रमेण तज्ज्ञः नृसिंहबीजज्ञः क्षरौ क्षकार-रेफऔकार इतिमिलितस्वरूपं बिन्दुयुक्तं तथा कोपतत्त्वं नृसिंहं च मन्त्रे आयोज्य सर्वगात्रेषु न्यस्येत्। तथा च—क्ष्रौं नमः पराय नृसिंहाय कोपात्मने नमः इति सर्वगात्रेषु न्यस्येदित्यर्थः। तत्त्वन्यासमुपसंहरति इत्युक्तप्रकारेण तत्त्वात्मको न्यासः कथितो भवति। कीदृशः? विश्वमूर्त्यादिषु स्वसांनिध्य-कृत्कृष्णसांनिध्यकृत् बिम्बादिष्विति केचित् बिम्बं प्रतिमा मूर्तिः शरीरम् आदिपदेन मणिमन्त्रादिसकलस्य परिग्रहः एतेषु हरेः सान्निध्यं करोतीत्यर्थः, क्वचिन्मर्त्यादिष्विति पाठः ॥ ३३ ॥

इसके नृसिंह के बीजमन्त्र को जानने वाला बुद्धिमान् क्षकार रेफ औकार को मिलाकर उसे बिन्दुयुक्त कर उसके आगे नमः पराय शब्द पूर्ववत् लगाकर उसे कोपतत्त्व और नृसिंह शब्द को मन्त्र में योजना कर सभी अङ्गों में न्यास करे। यथा 'क्ष्रौं नमः पराय नृसिंहाय कोपात्मने नमः' इतना कहकर शरीर के सभी अङ्गों में न्यास करे। इस प्रकार विश्व मूर्त्यादि में श्रीकृष्ण का सान्निध्य करने वाला तत्त्वादि न्यास हमने कहा ॥ ३३ ॥

एतन्न्यासप्रयोजनमाह—इति कृत इति ।

इति कृतेऽधिकृतो भवति ध्रुवं
सकल वैष्णवमन्त्रजपादिषु ।
पवनसंयमनं त्वमुना चरे-
द्यमिह जप्तुमसौ मनुमिच्छति ॥ ३४ ॥

तत्त्वन्यासे कृते ध्रुवं निश्चितमधिकृतो भवति न केवलं गोपालविषयमन्त्रकथनादत्रैव अपि तु सकलवैष्णवमन्त्रजपादिष्वपीत्यर्थः, अधुना प्राणायामप्रकारमाह—पवनसंयमनमिति, असौ साधकः यं मनुम् इह व्यवहारभूमौ जप्तुमिच्छति अमुना मन्त्रेण पवनसंयमनं प्राणायामं चरतु कुर्यादित्यर्थः ॥ ३४ ॥

साधक इतना कर लेने के बाद निश्चय ही सम्पूर्ण वैष्णव मन्त्रों के जाप का अधिकारी हो जाता है । तदनन्तर वैष्णव साधक जिस मन्त्र का जाप करना चाहे उस मन्त्र से प्राणायाम की क्रिया करे ॥ ३४ ॥

अत्रैव प्रकारान्तरमाह—अथ वेति ।

अथ वाऽखिलेषु हरिमन्त्र-
जपविधिषु मूलमन्त्रतः ।
संयमनममलधीर्मरुतो-
विधिनाऽभ्यसंश्चरतु तत्त्वसंख्यया ॥ ३५ ॥

मूलमन्त्रतो मूलमन्त्रेण, वक्ष्यमाणदशाक्षरेणेति केचिद् । वस्तुतस्तु सप्ताक्षरगोपीजनवल्लभमन्त्रेण तस्यैव मूलमन्त्रत्वेनाभिधानात्तद्वचनस्य प्रयोजनान्तराभावात् तत्त्वसङ्ख्यया ऽष्टाविंशतिवारं चतुर्विंशतिवारमिति केचित् ॥ ३५ ॥

अथवा सम्पूर्ण वैष्णव मन्त्रों के जपादि के लिए शुद्ध चित्त साधक केवल मूल मन्त्र से तत्त्व संख्या (किसी के मत में २८ तत्त्व होने से २८ बार अथवा किसी के मत मे २४ तत्त्व होने से २४ बार) परिमित प्राणायाम की क्रिया करे । मूलमन्त्र का निर्देश सप्ताक्षर अथवा दशाक्षर रूप में आगे व्यक्त किया जायगा ॥ ३५ ॥

पुरतो जपस्य परतोऽपि
विहितमथ तत्त्रयं बुधैः ।

षोडश य इह समाचरेद्दिनशः
परिपूयते स खलु मासतोंऽहसः ॥ ३६ ॥

पुरतो जपादौ पश्चाच्च तत्त्रयं बुधैर्विहितं प्राणायामत्रयं,रेचकादित्रयमिति केचिद्, एतेन जपाङ्गत्वाच्च तत्राद्यन्तेऽयं दर्शितः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमानों ने जप के आदि में तथा जप के पश्चात् तीन-तीन प्राणायाम की विधि कही है, किन्तु जो प्रतिदिन १६ प्राणायाम करता है वह एक महीने में ही सम्पूर्ण पापों से छूटकारा पा जाता है।

विमर्शः—यहाँ जप के अङ्ग होने के कारण उसके आदि तथा अन्त में तीन तीन प्राणायाम की विधि बताई गई है ॥ ३६ ॥

अत्रैव प्रकारान्तरमाह—अथ वेति।

अथ वाऽङ्गजन्ममनुना सुसंयमं
सकलेषु कृष्णमनुजापकर्मसु।
सहितैकसप्तकृतिवारमभ्यसं
स्तनुयात्समस्तदुरितापहारिणा ॥ ३७ ॥

कृतीति कृतिच्छन्दसो विंशत्यक्षरत्वात् सहितमेकं यत्र तादृशसप्तकृतिवारं अथ वा सहितानि मिलितानि एक सप्तकृतयः उभयत्राष्टाविंशतिवारमित्यर्थः सर्वेषु कृष्णमनुजापकर्मसु अङ्गजन्ममनुना कामबीजेन प्राणायाममभ्यसंस्तनुयात्, प्रथममेकं ततः सप्त ततो विंशतिं ततोऽभ्यासपाटवेऽष्टाविंशतिवारमित्यर्थः, कश्चित्तु प्रथमं सप्त ततो विंशतिस्तत एकं ततोऽष्टाविंशतिवारमभ्यासक्रमेणेति तात्पर्यमाह तत्र प्रमाणं स एव प्रष्टव्यः ॥ ३७ ॥

अथवा साधक समस्त पापों को दूर करने के लिए सम्पूर्ण कृष्णमन्त्रों के जप अथवा एक प्राणायाम कर्म में कामबीज मन्त्र (क्लीं) का उच्चारण करते हुए २८ बार प्राणायाम करे। अथवा एक प्राणायाम में २१ बार क्लीं मन्त्र का उच्चारण कर उसे उसी प्रकार ७ बार करे। किसी के मतमें पहले एक, फिर २०, पुनः अभ्यास हो जाने पर २८ बार मन्त्र पढ़कर प्राणायाम करना चाहिए। इस विषय में गुरु सम्प्रदाय प्रमाण है ॥ ३७ ॥

मन्त्रविशेषप्राणायामप्रकारमाह- अष्टाविंशतीति।

अष्टाविंशतिसंख्यमिष्टफलदं मन्त्रं दशार्णं जप-
न्नायच्छेत्पवनं सुसंशितमतिस्त्वष्टादशार्णेन चेत्।

अभ्यस्यन् रविवारमन्यमनुभिर्वर्णानुरूपं जपन्
कुर्याद्रेचकपूर्वकर्मनिपुणः प्राणप्रयोगं नरः ॥ ३८ ॥

सुसंशितमतिः विमलबुद्धिः अष्टाविंशतिसंख्यं दशार्णं दशाक्षरमन्त्रं जपन् प्रायच्छेत्प्राणायामं कुर्यात्कीदृशं दशार्णम् इष्टफलदं स्वाभिमतफलदं तत्र दशाक्षरमन्त्रस्य वारचतुष्टयं जपेन रेचकम् अष्टवारजपेन पूरकं षोडशवार-जपेन कुम्भकं कुर्य्यादिति गुरुसम्प्रदायः, अष्टादशार्णे चेत्प्राणायामः क्रियत इति शेषः। तदा रविवारं द्वादशवारमभ्यस्यन् प्राणायामं कुर्यादिति गुरु-संप्रदायः। अन्यमनुभिरन्यमन्त्रैश्चेत्प्राणायामः क्रियते, तदा वर्णानुरूपं मन्त्र-वर्णानांतारतम्येन जपं कुर्वन् कुर्यात्, अत्र स्वल्पाक्षरैर्मन्त्रैर्बहुवारम् अनल्पा-क्षरैर्मन्त्रैः स्वल्पवारं जपेदित्यर्थः। कीदृशः ? साधकः रेचकपूरककुम्भकाख्य-कर्मकुशल इत्यर्थः। रेचकस्य त्यागस्य पूर्वकर्मणी पूरककुम्भके तत्र निपुण इति रुद्रधरः। तच्चिन्त्यम् एवमपि रेचके नैपुण्याभावात् प्रपञ्चसारानुसारिणो-ऽस्यग्रन्थस्य शारदाग्रन्थानुयायित्वाच्च ॥ ३८ ॥

विमल बुद्धि वाला साधक इष्टफल देने वाले दशाक्षर मन्त्र (ॐ गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) इस मन्त्र के जप के लिए २८ बार प्राणायाम की क्रिया करे। यदि अष्टादश मन्त्र (ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) का जप करना हो तो १२ बार प्राणायाम करे। अथवा जिस वैष्णव मन्त्र का जप करना हो उसके अक्षर की संख्या के अनुसार प्राणायाम करे। इस प्रकार पूरक कुम्भक तथा रेचक की क्रिया में निपुण साधक जप के आदि में प्राणायाम करे॥ ३८॥

अधुना प्राणायामप्रकारं दर्शयति—रेचयेन्मारुतमिति।

रेचयेन् मारुतं दक्षया दक्षिणः
पूरयेद्वामया मध्यनाड्या पुनः।
धारयेदीरितं रेचकादित्रयं
स्यात्कलादन्तविद्याख्यमात्रात्मकम् ॥ ३९ ॥

दक्षिणो विचक्षणः पुरुषः दक्षया दक्षिणनाड्या मारुतं वायुं रेचयेत् त्यजेत् तथा वामया वामनाड्या त्यक्तवायुं पूरयेद मध्यया सुषुम्णया नाड्या मारुतं वायुं धारयेद् इत्युक्तप्रकारेण रेचकादित्रयं रेचकपूरककुम्भकाख्यत्रितयम् ईरितं कथितं रेचकादिष्ववधि कालमाह—कलादन्तेति। कलाः षोडश, दन्ता द्वात्रिंशद्, विद्याः चतुःषष्टिरूपाः एतत्संख्याकमात्रात्मकमित्यर्थः। अत्र भैरव-

त्रिपाठिन: यत्र मन्त्रगणनया प्राणायाम: तत्र कुम्भककाल एवोक्त: श्वासाभ्मासक्रमेण प्राणायामसंख्यया मन्त्रजप: कार्यो निर्गमप्राणायामे तु रेचकादिगणना कार्येत्याहु: । मात्रशब्देन च वामाङ्गुष्ठे कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां प्रत्येकं पर्वत्रयस्पर्शकाल: कथ्यते वामहस्तेन वामजानुमण्डलस्य प्रादक्षिण्येन स्पर्शकालश्च, यदत्र रुद्रोपाध्यायैरुक्तं यद्यप्यत्र रेचकं प्रथममुक्तं तदनन्तरं पूरकं तथाऽपि प्रथमं पूरकमनन्तरं कुम्भकं ज्ञेयं यतो गृहीतघृतस्य त्यागो भवति; यत्पुनर्व्यत्यासेन कथनं तद्गोपनाय एवं कलादन्तेत्याद्यपि व्यत्यासेन बोद्धव्यम्, इडयोत्कर्षयेद्वायुमित्यादिशारदादर्शनाद् । एवं च गृहीतचतुर्गुणेन धारणं तदर्द्धेन त्याग इत्यपि दर्शितं भवतीति, तन्न, प्रपञ्चसारानुसारिणो ग्रन्थस्यास्य शारदानुयायित्वात् प्रपञ्चसारे रेचकादित्वस्यैवोक्तत्वात् पूरकादित्वस्यष्टाङ्गयोगान्तर्भूतप्राणयामविषयत्वाद् । यदुक्तं गृहीतस्य त्यागो भवति तत्रोच्यते स्वाभाविकवायुधारणस्यात्रापि सत्त्वादन्यथा शरीरपातापत्ते: । यदुक्तं व्यत्यासेन गोपनार्थं कथनमिति तदयुक्त मन्त्रभिन्नस्यानुष्ठानभागस्य ऋजुमार्गेणैव वक्तुं युक्तत्वाद् । यदुक्तं ग्रहीतचतुर्गुणेनैव धारणं तदर्धेन त्याग इति तदप्ययुक्तं प्रमाणाभावाद् । दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् अङ्गुलीनियमोऽपि प्राणायामे कथितो यथा—

कनिष्ठाऽनामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायाम: स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ।। ३९ ।। इति ।

बुद्धिमान पुरुष दक्षिण नासिका से वायु को बाहर निकाले तथा बाईं नासिका से वायु को ऊपर ले जाकर पूर्ण करे तथा सुषुम्ना नामक मध्य नाड़ी से वायु को धारण करे । इस प्रकार १६ मात्रात्मक काल में वायु को बाहर निकालकर रेचक करे । ३२ मात्रात्मक काल तक वायु ऊपर उठाकर पूरक करे और ६४ मात्रात्मक काल तक उसे धारण कर कुम्भक करे ।। ३९ ।।

विमर्श—बायें हाथ से बायें पैर के जानुमण्डल की प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है वह एक मात्रात्मक काल कहा जाता है । कनिष्ठा अनामिका और अंगूठे के योग से नासापुट में वायु को रोकने का नाम 'प्राणायाम' है । उसमें तजनी और मध्यमा अङ्गुलियों का योग नहीं होना चाहिए ।

पूर्व श्लोक में रेचकपूर्व कर्मनिपुण: अर्थात् रेचक और उससे पूर्व में किया जाने वाला पूरक और कुम्भक प्राणायाम में कुशल साधक कहा गया है । यहाँ उन प्राणायामों की विधि कही गयी है ।। ३९ ।।

प्रकृतमुपसंहरन्नात्मयागार्थं देहे पीठकल्पनां दर्शयति—प्राणायाम·

मित्यादिना ।

प्राणायामं विधायेत्यथ निजवपुषा कल्पयेद्यागपीठ
न्यस्येदाधारशक्तिप्रकृतिकमठशेषक्षमाक्षीरसिन्धून् ।
श्वेतद्वीपं च रत्नोज्ज्वलमहितमहामण्डपं कल्पवृक्षं
हृद्येंशद्वयोरुद्वयवदनकटीपार्श्वयुग्मेषु भूयः ॥ ४० ॥

धर्माद्यधर्मादि च पादगात्र-
चतुष्टयं हृद्यथशेषमब्जम् ।
सूर्येन्दुवह्नीन्प्रणवांशयुक्तान्
स्वाद्यक्षरैः सत्त्वरजस्तमांसि ॥ ४१ ॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणायामं विधाय कृत्वा अथानन्तरं निजवपुषा निजशरीरेण यागपीठं पूजापीठङ्कल्पयेत् कल्पनाप्रकारमाह— न्यस्येदिति । हृद्देशे हृदि आधारशक्त्यादिकल्पवृक्षान्तं न्यसेत् । कमठः कूर्मः शेषोऽनन्तः क्षीरसिन्धुः क्षीरसमुद्रः रत्नेन उज्ज्वलः महितो यः महामण्डपः रत्नमण्डपः इति यावत् तथा चाधारशक्तये नमः प्रकृत्यै नम इति नवकं न्यसेद् हृदीत्यर्थः, भूयोऽनन्तरम् अंसद्वयोरुद्वयवदनकटीपार्श्वयुग्मेषु धर्माद्यधर्मादिपादगात्रचतुष्टयं विन्यस्येत् । पादगात्रयोश्चतुष्टयं पादगात्रचतुष्टयमित्युभयत्र सम्बध्यते । पादचतुष्टयं गात्रचतुष्टयं धर्मादि धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यरूपपादचतुष्टयम् । अंसद्वयोरुद्वये च धर्माय नमः दक्षिणांसे, ज्ञानय नमः वामांसे, वैराग्याय नमः वामोरौ, ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरौ, इत्येवं प्रादक्षिण्यक्रमेण विन्यसेत् । शारदायां प्रादक्षिण्येनेत्यभिधानात् तत्रानुष्ठानक्रमकथनाच्च । अन्यथा शारदायाम् अंसोरुयुग्मयोरित्यत्रांसोरुयुगेत्यनेनैव क्रमप्राप्तेः प्रादक्षिण्येत्यस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तथाऽधर्मादि अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यरूपं गात्रचतुष्टयं वदनकटीपार्श्वयुग्मेषु अधर्माय नमः मुखे, अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे, अवैराग्याय नमः कट्यां स्वाधिष्ठानप्रदेशे, अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे, इत्येवं क्रमेण न्यसेत् शारदायां मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्विति क्रमदर्शनात्, एतच्च भैरवत्रिपाठिनोऽपि संमतम्, एतेषु यथाश्रुतक्रमेणैवेति विद्याधराचार्याः, अथानन्तरं शेषमनन्तम् अब्जं पद्मं सूर्येन्दुवह्नीन् सूर्यसोमाग्निमण्डलानि । कीदृशान् ? तान् प्रणवांशयुक्तान् प्रणवस्योङ्कारस्यांशाः अवयवा अकारोकारमकारास्तैर्युक्तान्सहितान् तत्रादौ सबिन्दुप्रणवांशादिसाहित्यं सम्प्रदायतो बोद्धव्यं, स्वाद्यक्षरैः सबिन्दुस्वीयस्वीयप्रथमाक्षरैः सहितानि सत्त्वरजस्तमांसि तथा च हृत्पद्मे अनन्ताय

मनः, पद्माय नमः अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः, उं षोडशकला-व्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः, मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः ॥ ४०-४१ ॥

इस प्रकार प्राणायाम की क्रिया कर साधक अपने शरीर से यागपीठ (पूजा पीठ) की रचना करे। सर्वप्रथम अपने हृदय देश में आधारशक्ति = १ प्रकृति = २ कूर्म = ३ शेष = ४, पृथ्वी = ५, क्षीरसमुद्र = ६, श्वेतद्वीप = ७, रत्नों से जगमगाते हुए महामण्डप = ८ और कल्पवृक्ष = ९ की कल्पना करे। उसकी विधि इस प्रकार है—आधार शक्त्यै नमः, प्रकृत्यै नमः, कूर्माय नमः। इस प्रकार नवों का हृदयप्रदेश में आवाहन करे। फिर दोनों कन्धों, दोनों ऊरुओं, मुख, कटी और दोनों पार्श्व स्थानों में धर्मादि चार पादों से और अधर्मादि गात्र चतुष्टय से न्यास करे। धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य यह पाद चतुष्टय हैं। और अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ये गात्र चतुष्टय हैं। उनके न्यासप्रकार इस प्रकार हैं—धर्माय नमः दक्षिणांसे, ज्ञानाय नमः वामांसे, वैराग्याय नमः वामोरौ, ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरौ। तथा अधर्माय नमः मुखे, अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे, अवैराग्याय नमः कट्याम्, अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे इस क्रम से न्यास करे।

इसके बाद पुनः उसी हृदयप्रदेश में शेष (अनन्त) अब्ज (पद्म) सूर्य, सोम एवं अग्निमण्डलों को प्रणव के अंश अकार उकार तथा मकार से युक्त न्यास करें। अकार, उकार तथा मकार को बिन्दुयुक्त करना सम्प्रदाय क्रम से प्राप्त है। फिर सत्त्व, रज तथा तम को उनके आद्य अक्षरों से युक्त कर न्यास करे। यथा हृदय में—अनन्ताय नमः पद्माय नमः, अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यात्मने नमः, उं षोडशकला-व्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः, मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः पढ़कर न्यास करे ॥ ४०-४१ ॥

विमर्श—यहाँ तत्तन्नामों के आवाहन में चतुर्थी विभक्तिपूर्वक नमः का प्रयोग श्लोक में न कहने पर भी सम्प्रदायानुसार जानना चाहिए ॥ ४०-४१ ॥

आत्मादित्रयमादिबीजसहितं व्योमाग्निमायालवै-
र्ज्ञानात्मानमथाष्टदिक्षु परितो मध्ये च शक्तीर्नव ।
न्यस्येत् पीठमनुं च तत्र विधिवत्तत्कर्णिकामध्यगं-
नित्यानन्दचितिप्रकाशममृतं संचिन्तयेद्धाम तत् ॥ ४२ ॥

आत्मादित्रयम् आत्माऽन्तरात्मा परमात्मेति त्रयम्। कीदृशम्? आदि-बीजसहितं सबिन्दुं स्वीयस्वीयप्रथमाक्षररूपबीजसहितमिति विद्याधराचार्याः, आदिः प्रणवस्तत्सहितमिति त्रिपाठिनः, व्योम हकारः, अग्निः रेफः, माया

दीर्घ ईः, लवो बिन्दुः, एतैः सह ज्ञानात्मानं भुवनेश्वरीबीजसहितं हृत्पद्मे न्यसेदिति पूर्वेणान्वयः। तथा च आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, इति हृदि विन्यसेद्, अथानन्तरम् अष्टदिक्षु परितः प्रादक्षिण्येन मध्ये च कर्णिकायां नवशक्तीर्विमलोत्कर्षिण्याद्या न्यस्येत्। पद्मस्य पूर्वादिकेसरेषु प्रादक्षिण्येन विमलायै नमः, उत्कर्षिण्यै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, योगायै नमः, प्रह्व्यै नमः, सत्यायै नमः, ईशानायै नमः, कर्णिकायां अनुग्रहायै नमः, इति न्यसेत्. पीठमन्त्रं च तत्र न्यस्य; एतस्योपरि वक्ष्यमाणं पीठमन्त्रं ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नम इति मन्त्रं न्यसेत् तत उक्तरूपे पीठे विधिवद् गुरूपदिष्टमार्गेण तत् सर्वोपनिषत्प्रसिद्धम् धाम ब्रह्मचैतन्यं चिन्तयेत्। कीदृश ? तत्कर्णिकामध्यगं हृत्पद्मकर्णिकामध्यस्थमित्यर्थः, एतद् ध्यानोपयोगि रूपमुक्तं स्वाभाविकरूपमाह। कीदृशं ? नित्येति अविनाशिचैतन्यं स्वतःप्रकाशस्वरूपं, पुनः कीदृशम् ? अमृतं शुद्धस्वरूपमित्यर्थः, तत्राधारशक्त्यादयः सर्वे मन्त्राः प्रणवादिचतुर्थी नमोऽन्ताः सम्प्रदायतो बोद्धव्याः ॥ ४२ ॥

पुनः उसी हृदयप्रदेश में आत्मादित्रय अर्थात् आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा को उसके आदि अक्षर रूप बीजमन्त्र लगाकर न्यास करे। पुनः उसी स्थान में व्योम (हकार) अग्नि (रेफ) माया (दीर्घ ई) को बिन्दु से संयुक्त कर 'ह्रीं' इत्याकारक मन्त्र के आगे ज्ञानात्मक भुवनेश्वरी बीज लगाकर न्यास करे। यथा—आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः' इति हृदये। इसी प्रकार 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' इति हृदये कहकर न्यास करे। तदनन्तर हृत्पद्म के आठों दिशाओं में और कणिका के मध्य भाग में विमला उत्कर्षिणी आदि नव शक्तियों से न्यास करे। यह क्रम हृत्पद्म के पूर्व से आरम्भ करना चाहिए। यथा विमलायै नमः, उत्कर्षिण्यै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, योगायै नमः, प्रह्व्यै नमः, सत्यायै नमः, ईशानायै नमः। इस प्रकार हृत्पद्म के पूर्व से आरम्भ कर आठ दिशाओं में न्यास करे। पश्चात् हृत्पद्म कर्णिका के मध्य में अनुग्रहायै नमः कहकर न्यास करे। इस विधि से पीठ मन्त्रों से न्यास कर कर्णिका के मध्य में 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र का न्यास करे। तदनन्तर अविनाशी चैतन्य आनन्द स्वतःप्रकाशस्वरूप अमृतमय तेज का ध्यान करे ॥ ४२ ॥

पीठशक्तीर्दर्शयति—

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगेति शक्तयः।

प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा नवमी स्मृता ॥ ४३ ॥

विमलेति ॥ ४३ ॥

उपर्युक्त श्लोक में कही गयी नव शक्तियाँ इस प्रकार है—(१) विमला, (२) उत्कर्षिणी, (३) ज्ञाना, (४) क्रिया, (५) योगा, (६) प्रह्वी, (७) सत्या, (८) ईशाना तथा (९) अनुग्रहा ॥ ४३ ॥

पीठमन्त्रमुद्धरति—तारमित्यादिना ।

तारं हृदयं भगवान् विष्णुः सर्वान्वितश्च भूतात्मा ।
ङेऽन्ताः सवासुदेवाः सर्वात्मयुतश्च संयोगः ॥ ४४ ॥

योगावधौ च पद्मं पीठात्मा ङेयुतो नतिश्चान्ते ।
पीठमहामनुरुक्तः पर्याप्तोऽयं सपर्यासु ॥ ४५ ॥

तारः प्रणवः, हृदयं नमः, भगवानिति च विष्णुरिति च सर्वान्वितः सर्वपदसहितः भूतात्मा सर्वभूतात्मेति, एते त्रयः सवासुदेवाः वासुदेवेन सह चत्वारः प्रत्येकं ङेऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः कार्याः सर्वात्मयुतश्च संयोगः सर्वात्मसंयोग इति स्वरूपं योगावधौ योगशब्दान्ते पद्मं पद्मेति स्वरूपं ङेयुतः पीठात्मा चतुर्थ्यन्तः पीठात्मा एतस्यान्ते नतिर्नमःशब्दः, उपसंहरति पीठेति अयं पीठमहामनुरुक्तः कथितः। कीदृशः ? सपर्यासु पूजासु पर्याप्तः समर्थः ॥ ४४–४५ ॥

यथा पहले तार (प्रणव) फिर हृदय (नमः) तदनन्तर भगवान् विष्णु फिर सर्व सहित भूतात्मा फिर वासुदेव फिर सर्वात्मसंयोग पद्मपीठ लगाकर प्रत्येक पद को चतुर्थी विभक्ति से युक्त कर अन्त में नमः पद जोड़ देवे। इस प्रकार उसका स्वरूप 'ॐ भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' इस प्रकार ३६ वर्णात्मक मन्त्र हुआ ॥ ४४-४५ ॥

करशोधनं दर्शयति—करयोरित्यादिना ।

करयोर्युगलं विधाय मन्त्रात्मकमाभ्यामभिधास्यमानमार्गात् ।
सकलं विदधीत मन्त्रवर्णैः परमं ज्योतिरनुत्तमं हरेस्तत् ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

——०——

करयोर्युगलम् अभिधास्यमानमार्गाद्, व्यापय्येत्यारभ्य विधिः समीरितः करे' इत्यन्तं वक्ष्यमाणप्रकारेण मन्त्रवर्णैर्मन्त्रात्मकं मन्त्रस्वरूपं विधाय कृत्वा आभ्यां कराभ्यां सकलं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च न्यासपूजादिकं विदधीत कुर्याद्। मन्त्रवर्णकरणककरशोधने हेतुमाह—परममित्यादिना। यस्मात्तन्मन्त्रवर्णं हरेः कृष्णस्य परमं तेजःस्वरूपमित्यर्थः। कीदृशं ? पुनः अनुत्तमं नास्त्युत्तमं यस्मात्तथेत्यर्थः, सकलं विदधीतेति परत्रापि काकाक्षिगोलकन्यायेन योजनीयं तथा च तद् हृदयपङ्कजस्थं हरेरनुत्तमं ज्योतिस्तेजः सकलं विदधीत षडङ्गन्यासेन सावयवं कुर्यादिति लघुदीपिकाकारः॥ ४६॥

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे प्रथमः पटलः॥ १॥

—o—

आगे कही जाने वाली विधि 'व्यापय्य से लेकर समीरितः करे' (२.२५-२७) पर्यन्त मन्त्रवर्णों से मन्त्र के स्वरूप को अपने दोनों हाथों में कर पुनः उन्हीं दोनों हाथों से आगे कहे जाने वाले न्यास पूजादि कार्य करना चाहिए। क्योंकि इस मन्त्र के तत्तद् वर्ण श्रीकृष्ण के परम तेजःस्वरूप कहे गये हैं। अर्थात् षडङ्ग न्यास में उस मन्त्र के अक्षरों का विस्फोरण कर उसे सावयव बनावे॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचित क्रमदीपिका की
डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या
का प्रथम पटल समाप्त हुआ॥ १॥

—o—

द्वितीयपटलम्

करयोर्युगलं विधायेत्यादिना सूचितं मन्त्रमुद्धर्तुमादौ गोपालमन्त्रेष्वपि मौलीभूतौ दशाक्षराष्टादशाक्षरौ प्रथमं संस्तौति—वक्ष्ये मनुमिति ।

वक्ष्ये मनुं त्रिभुवनप्रथितानुभाव-
मक्षीणपुण्यनिचयैर्मुनिभिर्विमृग्यम् ।
पक्षीन्द्रकेतुविषयं वसुधर्मकाम-
मोक्षप्रदं सकलकार्मणकर्मदक्षम् ॥ १ ॥

मन्त्रं वक्ष्ये उद्धरिष्यामि । कीदृशं ? त्रिभुवनेति त्रिभुवने त्रैलोक्ये प्रथितः ख्यातोऽनुभावः प्रभावो यस्य तथा तं, पुनः कीदृशं ? मुनिभिर्मुमुक्षुभिर्विमृग्यम् अन्वेषणीयं, किंभूतैर्मुनिभिः ? अक्षीणेति अक्षीणः सपूर्णः पुण्यनिचयः सुकृत समूहो येषां तथा तैः, पुनः कीदृशं? पक्षीति पक्षीन्द्रो गरुडः स एव केतुः चिन्हं यस्य सः पक्षीद्रकेतुः श्रीकृष्णः तद्विषयं तत्प्रतिपादकं, पुनः कीदृशं ? वस्विति वसु धनन्तथा च पुरुषार्थचतुष्टयप्रदमित्यर्थः । पुनः कीदृशं ? सकलेति अशेषवश्यकर्मकुशलम् ॥ १ ॥

जिसका प्रभाव सारे संसार में विदित है, जिसे निरन्तर पुण्यशील महात्माजन खोजते रहते हैं जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाले हैं तथा जो समस्त लोकों को वश में करने वाले है मैं उन श्रीकृष्ण विषयक मन्त्र को कहता हूँ ॥ १ ॥

अतिगुह्यमबोधतूलराशिज्वलनं वागधिपत्यदं नराणाम् ।
दुरितापहरं विषापमृत्युग्रहरोगादिनिवारणैकहेतुम् ॥ २ ॥

पुनः कीदृशम् ? अतिगुह्यं, पुनः कीदृशम् ? अबोधेति अबोधो मिथ्याज्ञानरूपः स एव तूलप्रचयः तत्र ज्वलनो वह्निरिव तं समस्ताज्ञाननाशकमित्यर्थः । पुनः कीदृशं ? नराणां साधकानां वागधिपत्यदं वागैश्वर्यप्रदं, पुनः कीदृशं ? दुरितापहरं दुःखप्रापकानिष्टनिवारकं, पुनः कीदृशं ? विषं स्थावरं जङ्गमं च अपमृत्युरकालमरणं ग्रहो नवग्रहजनितानिष्टं रोगो वातपित्तादिजनितशरीरदौस्थ्यम् एवमादीनामशुभादीनां निवारणे एकोऽद्वितीयो हेतुः कारणम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण विषयक वक्ष्यमाण यह मन्त्र अत्यन्त गोपनीय है। अज्ञानरूपी रूई के ढेर को नाश करने के लिए अग्नि के समान है, मनुष्यों की वाणी को ऐश्वर्य प्रदान करता है, पापों को दूर करता है, इतना ही नहीं विष, अपमृत्यु तथा ग्रहजन्य रोगादिकों को निवारण करने में असाधारण हेतु हैं[1] ॥ २ ॥

पुनः कीदृशम्—

जयदं प्रधनेऽभयदं विपीने सलिलप्लवने सुखतारणदम् ।
नरसप्तिरथद्विपवृद्धिकरं सुतगोधरणीधनधान्यकरम् ॥ ३ ॥

प्रधने संग्रामे जयदं, विपिनेऽभयदं भयहरं, सलिलप्लवने तोयसन्तरणे सुखसन्तरणदातारं, सप्तिर्हयः तथा च मनुष्याणाहयरथद्विपादीनामुपचयकरं, तथा सुतादिप्रदम् ॥ ३ ॥

यह मन्त्र युद्ध में विजय प्रदान करता है, अरण्य में अभय प्रदान करता है। जलाशय, सरित्, समुद्रादि पार करने के लिए सुखप्रद सेतु है। मनुष्यों को दास, घोड़े, रथ और हाथियों की वृद्धि प्रदान करता है। इतना ही नहीं पुत्र, गौ, पृथ्वी, धन एवं धान्यों को भी प्रदान करता है ॥ ३ ॥

बलवीर्यशौर्यनिचयप्रतिभास्वरवर्णकान्तिसुभगत्वकरम् ।
क्षुभिताण्डकोटिमणिमादिगुणाष्टकदं किमत्र बहुनाऽखिलदम् ॥४॥

बलं शरीरसामर्थ्यं, वीर्यं शुक्रं प्रभावो वा, शौर्यं पराभिभावकं तेजः, एतेषां निचयः समूहः, प्रतिभा बुद्धिः स्फूर्तिरूपा स्वरो ध्वनिः, वर्णो गौरत्वादिः, कान्तिर्दीप्तिः प्रतिभास्वरवर्णकान्तिरित्येकपदं तथा च प्रतिभास्वरवर्णकान्तिर्देदीप्यमानवर्णशोभेति कश्चित् सुभगत्वं समस्तलोकादरकत्वम् एतेषां कर्तारं दातारमित्यर्थः । पुनः क्षुभिता समोहिताऽण्डकोटिर्ब्रह्माण्डकोटिर्येन तथा तं संसारमोहकमित्यर्थः, पुनः अणिमादिगुणाष्टकदम् अणिम-लघिम-गरिम-महिमे-शित्ववशित्वप्राकाम्य-प्राप्त्याख्य-गुणाष्टकप्रदमित्यर्थः । पुनः किंबहुना ? अत्र जगति, अखिलदं समस्ताभीष्टप्रदमित्यर्थः ॥ ४ ॥

यह बल, (शरीरसामर्थ्य), वीर्य (शुक्र अथवा प्रभाव) शौर्य (शत्रु को पराजित करने की शक्ति) के समूह को, प्रतिभा (नवीन-नवीन सृजनात्मक बुद्धि), स्वर (ध्वनि), वर्ण (गौरत्वादि), कान्ति (शोभा), तथा समस्त लोक में आदर प्रदान करने वाला है। करोड़ों ब्रह्माण्डों को क्षुब्ध (सम्मोहित) करने वाला

---

१. दुरितं = दुःख प्रापक अनिष्टकर्म, विष = स्थावरजङ्गमात्मक समस्त । अपमृत्यु = अकालमृत्यु । ग्रह = दुर्ग्रहजन्यदोष, रोग = वातपित्तकफादिजन्य रोग ।

एवम् १. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. प्राप्तित्व, ६. ईशित्व, ७. वशीत्व तथा ८. प्राकाम्य आदि आठों सिद्धियों को देने वाला है। बहुत कुछ कहने से क्या? यह मन्त्र सब कुछ प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥

अथ दशाक्षरमन्त्रराजमुद्धरति—शार्ङ्गीत्यादिना।

शार्ङ्गी सोत्तरदन्तः शूरो वामाक्षियुग्द्वितीयोऽर्णः।
शूली शौरिर्बालोबलानुजद्वयमथाक्षरचतुष्कम् ॥ ५ ॥
शूरतूरीयः साननवृत्तः स्यात्सप्तमोऽष्टमोऽग्निसखः।
तद्दयिताऽक्षरयुग्मं तदुपरिगं त्वेवमुद्धरेन्मन्त्रम् ॥ ६ ॥

शार्ङ्गी गकारः कीदृशोऽयं सोत्तरदन्त उत्तरदन्तपङ्क्तौ न्यस्यमानः उत्तरदन्त ओकारस्तेन सहित एतेन प्रथमाक्षरमुद्धृतं, शूरः पकारः, कीदृशोऽयं वामाक्षियुक् वामाक्षि चतुर्थस्वरः तेन सहित एतेन द्वितीयाक्षरमुद्धृतम् अक्षरचतुष्कं क्रमेण पुनः कथ्यते शूली जकारः शौरिर्नकारः बालो वकारः बलानुजद्वयं संयुक्तलकारद्वयं ल्लइतिस्वरूपमित्यक्षरचतुष्कमुद्धृतं शूरतुरीयः शूरस्य पकारस्य चतुर्थः, कीदृशोऽय साननवृत्तः आननवृत्तेनाकारेण सह वर्तत इति साननवृत्तः अयं च सप्तमः स्याद् मन्त्रस्य सप्तमोभवतीत्यर्थः। अष्टमोऽग्निसखोवायुः यकार इति यावत् तथा च मन्त्रस्याष्टमो वर्णो य इति बोद्धव्यः। तदुपरिगं पूर्वोक्तवर्णानन्तर्यविशिष्टं तद्दयिताऽक्षरयुगलं स्वाहेति स्वरूपमित्यक्षरद्वयमुद्धृतम् ॥ ५-६ ॥

शार्ङ्गी (गकार) उसके बाद उत्तरदन्त (ओ) यह मन्त्र का प्रथम अक्षर; शूर (पकार) उसे वामाक्षी (दीर्घ ईकार) से युक्त अर्थात् (पी) यह मन्त्र का द्वितीय अक्षर; शूली (जकार) तीसरा, शौरी (नकार) चौथा, बाल (बकार) पाँचवाँ, वलानुज का दो (अर्थात् दो लकार) छठा, शूरतुरीय (पकार से चौथा अक्षर भकार) उसे आननवृत्त (आकार) से युक्त कर, भा यह मन्त्र का सप्तम अक्षर हुआ। तदन्तर वायुसख (य) यह अष्टम अक्षर, तदनन्तर तद्दयिताक्षरयुगल अग्नि की स्त्री स्वाहा—यह दो अक्षर इस प्रकार (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) यह दश अक्षर रूप मन्त्र का उद्धार कहा गया ॥ ५-६ ॥

प्रकाशित इति—

प्रकाशितो दशाक्षरो मनुस्त्वयं मधुद्विषः।
विशेषतः पदारविन्दयुग्मभक्तिवर्धनः ॥ ७ ॥

मधुद्विषः श्रीगोपालकृष्णस्यायं दशाक्षरो मन्त्र उद्धृतः। कीदृशो विशेषतो

विशेषेण पदारविन्दयुग्मभक्तिवर्धनः श्रीगोपालकृष्णचरणाब्जयुगले या भक्तिराराध्यत्वेन ज्ञानं तत्समृद्धिकारक इत्यर्थः ॥ ७ ॥

मैंने उपर्युक्त प्रकार से श्रीकृष्ण के दशाक्षर मन्त्र को इस प्रकार प्रकाशित किया जो आराधना के द्वारा श्रीकृष्णचन्द्र के पदारविन्द में भक्ति को बढ़ाता है ॥ ७ ॥

मन्त्रस्य ऋष्यादिकं दर्शयति—नारद इति ।

नारदो मुनिरमुष्य कीर्तितः छन्दउक्तमृषिभिर्विराडिति ।
देवता सकललोकमङ्गलो नन्दगोपतनयः समीरितः ॥ ८ ॥

अमुष्य पूर्वोक्तमन्त्रस्य मुनिः ऋषिर्नारदः कीर्तितः कथितः, ऋषिभिर्गौतमादिभिर्विराट्छन्द उक्त, देवता नन्दगोपतनयः श्रीगोपालकृष्ण उक्तः, कीदृशः? सकललोकमङ्गलः सर्वजनकल्याणहेतुः । एतेन ऋष्यादीनां शिरसि रसनायां हृदि क्रमेण न्यासः कार्य इति सूचितं प्रपञ्चसारे । तथा विधानात्, प्रयोगश्च दशाक्षरगोपालमन्त्रस्य नारदऋषये नमः शिरसि, विराट्छन्दसे नमो मुखे, श्रीगोपालकृष्णाय देवतायै नमः हृदि इत्येवम्भूतः । अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिः, एवं छन्दोदेवतयोरपि योज्यमिति केचित् ॥ ८ ॥

इस दशाक्षर मन्त्र के 'नारद' ऋषि हैं, ऋषियों ने इस मन्त्र का छन्द 'विराट्' कहा है। सम्पूर्ण लोकों के मङ्गलस्वरूप 'नन्दगोपतनय' इसके देवता हैं।

विमर्श —'नारद ऋषये नमः शिरसि'। 'विराट् छन्दसे नमः मुखे' 'गोपाल कृष्ण देवतायै नमः हृदि'—इस प्रकार से प्रयोग करे। कुछ लोग इसका प्रयोग 'अस्य मन्त्रस्य नारद ऋषिः विराट् छन्दः नन्दगोपतनयो देवता'—इस रूप में करते हैं। गुरु सम्प्रदायानुसार इन तत्त्वों का प्रयोग करना चाहिए ॥ ८ ॥

अधुनाऽस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि दर्शयति—अङ्गानीत्यादिना—

अङ्गानि पञ्च हुतभुग्दयितासमेतै-
श्चक्रैरमुष्य मुखवृत्तविरूपपन्नैः ।
त्रैलोक्यरक्षणयुजाऽप्यसुरान्तकाख्य-
पूर्वेण चेह कथितानि विभक्तियुक्तैः ॥ ९ ॥

हृदये नतिः शिरसि पावकप्रिया
सवषट् शिखा हुमपि वर्मणि स्थितम् ।
सफडस्त्रमित्युदितमङ्गपञ्चकं-
सचतुर्थि वौषडुदितं दृशोर्यदि ॥ १० ॥

अमुष्य इह शास्त्रे अङ्गानि पञ्च कथितानि। कानि तानि ? तत्राह हृदये नतिरिति। हृदये नतिर्नमःपदं शिरसि पावकप्रिया स्वाहेति सवषट् वषट्पदसहिता शिखेत्यर्थः। हुमपि वर्मणि स्थितं वर्मणि कवचे हुमपि पदं स्थितमित्यर्थः। सफडस्त्रं फट्पदसहितमस्त्रमित्यर्थः, इत्यनेन प्रकारेण सचतुर्थि यथा स्यात्तथैवमङ्गपञ्चकमुदितं कथितं, चतुर्थी च हृदयादीनां योगः कार्य्यः, कैः सह चक्रैश्चक्रशब्दैः। कीदृशैः ? मुखवृत्तविसूपपन्नैर्मुखवृत्तमाकारः वि इति सु इति स्वरूपमेतैः प्रत्येकमुपपन्नैः सम्बद्धैः त्रैलोक्यरक्षणयुजाऽपि त्रैलोक्यरक्षणं युनक्तीति तद्युग् एतादृशेन चक्रेण अपिशब्दाच्चक्रैरिति विभिद्यान्वयः कार्यः। तथा च चक्रेणेति असुरान्तकाख्यपूर्वेण चक्रेणेत्यर्थः, चः समुच्चये, पुनः कीदृशैः विभक्तियुक्तैः ? चतुर्थीयुक्तैः तस्या एव प्रकृतत्वात् एतस्यापि पदस्य विभिद्यान्वयः कार्यः दृशोर्यदि इति यदि क्वचिन्मन्त्रे दृशोर्न्यासोऽस्ति तदा तत्र वौषडिति उदितं कथितम्। अत्र ज्वालाचक्रायेत्यपि योज्यमिति लघुदीपिकाकारः। प्रयोगश्च—आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः, विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं, ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्रद्वयाय वौषट् असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फडिति अङ्गुलीष्वङ्गमन्त्रन्यासे तु तत्तदङ्गमन्त्रान्ते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि योज्यम्। आगमान्तरे ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यान्नमः ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। तत इत्यादिदर्शनात् तेनाङ्गुष्ठादिषु हृदयाय नमः इत्यादिप्रयोगाश्चिन्त्याः असमवेतार्थकत्वाद् मानाभावाच्चेति केचित्। अन्ये तु यथाश्रुताङ्गमन्त्रस्यैव न्यासैरङ्गुलीष्वतिदेशानाहुराचार्याः ॥ ९-१० ॥

इस मन्त्र शास्त्र के पाँच अङ्ग कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—चक्रशब्द के पहले मुखवृत्त (आकार) पुनः सु लगाकर दोनों को चतुर्थ्यन्त करे तब स्वाहा शब्द लगावे। इसी प्रकार 'त्रैलोक्यरक्षण' शब्द से तथा 'असुरान्तक' शब्द से युक्त चक्र को चतुर्थ्यन्त विभक्ति से युक्त कर स्वाहा शब्द लगावे। तदनन्तर इन पाँचों को क्रमशः 'हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा', शिखायै वषट्, कवचाय हुं तथा 'अस्त्राय फट्' कहकर हृदयादि में न्यास करे।

विमर्श—लघुदीपिकाकार कहते हैं कि इसमें 'ज्वाला चक्राय स्वाहा इतना और जोड़ देना चाहिए। प्रयोगविधि क्रमशः इस प्रकार जान लेना चाहिए— 'आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः', 'विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा', 'सुचक्राय 'स्वाहा', शिखायै वषट्' त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुं' ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्रद्वयाय बौषट्' 'असुरान्तकचक्राय स्वाहा' 'अस्त्राय फट्' इस प्रकार अङ्ग न्यास करे। करन्यास में 'अङ्गुष्ठाष्ठाभ्याम् नमः, तर्जनीभ्यां

स्वाहा, मध्यमाभ्यां वौषट् अनामिकाभ्यां कवचाय हुं, कनिष्ठाभ्यां वौषट् तथा करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्' इस प्रकार यथास्थान संयुक्त कर न्यास करे ॥ ९-१० ॥

दशाङ्गानि दर्शयति—

मन्त्रार्णैर्दशभिरुपेतमिन्द्रखण्डै-
रङ्गानां दशकमुदीरितन्नमोऽन्तम् ।
हृत्शीर्षं तदनु शिखा तनुत्रमस्त्रं-
पार्श्वद्वन्द्वं सकटिपृष्ठमूर्द्धयुक्तम् ॥ ११ ॥

मन्त्रार्णैर्मन्त्राक्षरैर्नमोऽन्तं यथा स्यादेवम् अङ्गानां दशकमुदीरितं कथितं कीदृशैः उपेतचन्द्रखण्डैः सानुस्वारैः स्थानान्याहुः—हृदयं शीर्षं मस्तकं तत्पश्चात् शिखा प्रसिद्धा तनुत्रं कवचं अस्त्रं दशदिक्षु पार्श्वयुगलकटिपृष्ठ-मूर्द्धसहितं पूर्वोक्तमित्यर्थः । कटिर्नाभिरध इति त्रिपाठिनः । प्रयोगस्तु गों हृदयाय नम इति पीं शिरसे स्वाहा इत्यादि ॥ ११ ॥

दशाक्षर मन्त्र के दश अक्षरों में क्रमशः अनुस्वार लगावे। फिर प्रत्येक वर्णों के अन्त में नमः लगाकर अङ्गन्यास करे। वे दश अङ्ग इस प्रकार हैं—(१) हृदय, (२) शिर, (३) शिखा, (४) कवच (दोनों बाहुमूल), (५) अस्त्र (दशों दिशाओं में), (६, ७) दोनों पार्श्व, (८) कटि, (९) पृष्ठ, (१०) मूर्धा सहित ये दश अङ्ग हैं। प्रयोग—गों हृदयाय नमः, पीं शिरसे स्वाहा, जं शिखायै वषट्, नं० कवचाय हुं, वं अस्त्राय फट्, ल्लं दक्षिणपार्श्वे, भं वामपार्श्वे, यं कटयाम् । नं पृष्ठे, मं शिरसे ॥ ११ ॥

अधुनाऽस्य मन्त्रस्य बीजशक्त्यधिष्ठातृदेवताप्रकृतिविनियोगान् दर्शयति-वक्ष्य इत्यादिना ।

वक्ष्ये मन्त्रस्यास्य बीजं सशक्ति चक्री शक्री वामनेत्रप्रदीप्तः ।
सप्रद्युम्नो बीजमेतत्प्रदिष्टं मन्त्रप्राद्युम्नो जगन्मोहनोऽयम् ॥१२॥

अस्य मन्त्रस्य पूर्वोक्तस्य सशक्ति शक्त्यादिसहितं बीजं वक्ष्ये बीजमाह—चक्रीति ककारः । कीदृशोऽयं शक्री शक्रो लकारः तद्युक्तः । पुनः कीदृशः ? वामनेत्रप्रदीप्तः वामनेत्रं चतुर्थस्वरस्तत्सहितः, पुनः कीदृशः ? सप्रद्युम्नः प्रद्युम्नो बिन्दुः तत्सहितः तथा चक्रीमिति सिद्धम्भवति । एतदस्य बीजं प्रदिष्टं कथितम् । अयमेव प्राद्युम्नो मन्त्र इत्यर्थः । किम्भूतः ? जगन्मोहनो विश्ववश्यकरः ॥ १२ ॥

अब इस मन्त्र का शक्तिसहित बीज कहेंगें चक्री (ककार) शक्र (लकार) के सहित उसे वामनेत्र (दीर्घ ईकार) से युक्त कर पुनः उस पर प्रद्युम्न (बिन्दु देकर) इस प्रकार 'क्लीम्' यह उस दशाक्षर मन्त्र का बीज सिद्ध हुआ।

विमर्श—इस प्रकार यहाँ दशाक्षर मन्त्र का बीज, बताया गया है और शक्ति, अधिष्ठातृ देवता,प्रवृत्ति तथा विनियोग आगे प्रदर्शित किया जाएगा है ।। १२ ।।

शक्तिमाह—हंस इति ।

हंसो मेदो वक्त्रवृत्ताभ्युपेतः पोत्री नेत्राद्यन्वितोऽसौ युगार्णा ।
प्रोक्ता शक्तिः सर्वगीर्वाणवृन्दैर्वन्द्यस्याग्नेर्वल्लभा कामदेयम् ॥१३॥

हंसः सकारः, किम्भूतः मेदो वकारः वक्त्रवृत्तमाकारः आभ्यामुपेतः सम्बद्धः तथा पोत्री हकारः, किम्भूतः नेत्रादिराकारस्तेनान्वितः । तथा च स्वाहेति सिद्धमसौ युगार्णो वर्णद्वयात्मिका शक्तिः प्रोक्ता तथेयं वह्नेर्वल्लभा किम्भूता कामदा आकाङ्क्षितप्रदा, कथंभूतस्य वह्नेर्गीर्वाणवृन्दैर्वन्द्यस्य सर्वदेवसमूहैः पूज्यस्य ।। १३ ।।

हंस (सकार) उसे मेद (वकार) से युक्त कर पुनः उन दोनों में वक्त्रवृत्त (आकार) की मात्रा लगाकर पुनः पोत्री (हकार) उसमें नेत्रादि (आकार) की मात्रा लगावे। इस प्रकार इन दो वर्णों से वह्नेर्वल्लभा (स्वाहा) इत्याकारक शक्ति सिद्ध हुई जिसकी समस्त देवगण वन्दना करते हैं एवं जो सभी मनोरथों को देने वाली है ।। १३ ।।

विनियोगमाह—विनियोग इति ।

विनियोगोऽस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टये ।
कृष्णः प्रकृतिरित्युक्तो दुर्गाऽधिष्ठातृदेवता ॥ १४ ॥

अस्य मन्त्रस्य पुरुषार्थचतुष्टयसाधनाय विनियोग इत्यर्थः, प्रकृतिर्मूलकारणं मन्त्रोत्पादकः मन्त्रस्वरूप इत्यर्थः, अधिष्ठातृदेवतामाह-दुर्गाऽधिष्ठातृदेवतेति ।। १४ ।।

पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति के लिए इस मन्त्र का विनियोग कहा गया है। कृष्ण प्रकृति हैं तथा दुर्गा इस मन्त्र की अधिष्ठातृ देवता हैं। इस प्रकार 'अस्य दशाक्षर मन्त्रस्य क्लीं बीजम् स्वाहा शक्तिः श्रीकृष्णः प्रकृतिः दुर्गा अधिष्ठातृ देवता पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः'–यह स्वरूप हुआ।

विमर्शः—श्लोक ८ में इस मन्त्र के 'नन्दगोपतनय' देवता कहे गये हैं किन्तु यहाँ दुर्गा को अधिष्ठातृ देवता कहा गया है ।। १४ ।।

मन्त्रार्थमाह—गोपायतीत्यादिना ।

गोपायति सकलमिदं गोपयति परं पुमांसमिति गोपी प्रकृतिः ।
तस्या जातं जन इति महदादिकं पृथिव्यन्तम् ॥१५॥

इदं सकलं नामरूपाभ्यां व्याकृतं जगद् गोपायति रक्षति तत्कारणत्वात् स्वार्थे आयः, तथा परं पुमासं नित्यशुद्धबुद्धमुक्ताऽऽनन्दाऽद्वयात्मकं ब्रह्मस्वरूपं गोपायति गुप गोपनकुत्सनयोः अज्ञातत्वेन विषयीकरोतीति व्युत्पत्त्या गोपी प्रकृतिरविद्येति यावत् तस्याः प्रकृतेर्जातमिति व्युत्पत्त्या महदादि पृथिव्यन्तं महत्तत्त्वादि पृथिवीपर्यन्तं सकलङ्कार्यजातं जन उच्यते ॥ १५ ॥

जो सारे नाम रूपात्मक जगत् की रक्षा करती है अथवा पर पुमान् (नित्य शुद्ध बुद्ध आनन्ददायक ब्रह्मस्वरूप) का गोपन करती है वह गोपी अर्थात् प्रकृति (अविद्या) उसके जन उससे उत्पन्न महत्तत्त्व से लेकर पृथ्वी पर्यन्त तत्त्व (इस मन्त्र में) कहे गये हैं ॥ १५ ॥

अनयोर्गोपीजनयोः समीरणादाश्रयत्वतो व्याप्त्या ।
वल्लभ इत्युपदिष्टं सान्द्रानन्दे निरञ्जनं ज्योतिः ॥ १६ ॥
स्वाहेति स्वात्मानं गमयामीति स्वतेजसे तस्मै ।
यः कार्यकारणेशः परमात्मेत्यच्युतैकताऽस्य भवेत् ॥ १७ ॥

अनयोः गोपीजनयोरविद्या तत्कार्ययोः समीरणादन्तर्यामित्वेन स्वस्य कार्ये प्रेरणाद् नियमनादिति यावद् आश्रयत्वतो अधिष्ठातृत्वेन व्याप्त्या व्यापकत्वेन वल्लभः स्वामीत्युपदिष्टं कथितं, परं ज्योतिर्ब्रह्मचैतन्यङ्कीदृशं ज्योतिः ? सान्द्रानन्द निरतिशयानन्दैकस्वरूपं, पुनः, कीदृशं ? निरञ्जनं, माया-कालुष्यरहितं स्वाहेति तस्मे स्वतजसे स्वप्रकाशचिद्रूपाय परमात्मने स्वात्मानं जीवैकस्वरूपं गमयामि समर्पयामि तदात्मकतां प्रापयामीति स्वाहाशब्दार्थः, प्रथम इतिशब्दः स्वाहाशब्दोपस्थापकः, द्वितीयस्तु प्रकारप्रदर्शकः, तस्मै कस्मै तत्राह—य इति । यः कार्यकारणयोर्जनप्रकृत्योरीशः स्वामी अधिष्ठाता तथा परमात्मा निरुपाधिचैतन्यत्वाच्चेत्यनेन प्रकारेणास्योपासकस्याच्युतैक-ताऽच्युतेन सहाभिन्नता भवति ॥ १७ ॥

इस प्रकार गोपी (अविद्या) और उसके जन (अविद्या के कार्य) को समी-रण (प्रेरणा करने वाले) अन्तर्यामी अथवा आश्रय (अधिष्ठाता) अथवा उसमें व्याप्त रहने वाले वल्लभ (स्वामी) यह गोपीजनवल्लभ का अर्थ हुआ जो निरति-शयानन्द, मायाकालुष्य से रहित स्वप्रकाश रूप परमात्मा है । उन्हें मैं स्वाहा

(अर्थात् आत्मसमर्पण करता हूँ)—इस प्रकार यह स्वाहा शब्द का प्रथम अर्थ हुआ। दूसरा अर्थ है—जो कार्य अविद्या और उनके कार्यों के स्वामी परमात्मा हैं जो निरुपाधिक चैतन्यस्वरूप हैं जो अच्युत से अभिन्न हैं उन्हें स्वाहा ॥ १७ ॥

प्रकारान्तरेणार्थमाह—अथ वेति।

अथ वा गोपीजन इति समस्तजगदवनशक्तिसमुदायः।
तस्य स्वानन्यस्य स्वामी वल्लभ इति ह निर्दिष्टः॥ १८॥

अथ वा गोपीजन इतिशब्देन सकलविश्वरक्षणशक्तिसमुदायः कथ्यते। तत्र गोपीपदेन शक्तिरुच्यते। जनपदेन तस्याः समूहः, तस्य शक्तिसमूहस्य स्वानन्यस्य स्वाभिन्नस्य शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया स्वामी नियन्ता आश्रयो वल्लभ इति हस्य स्फुटं निर्दिष्ट उदित इत्यर्थः। स्वाहाशब्दार्थस्तु पूर्वोक्त एव बोद्धव्यः। लघुदीपिकाकारस्तु—अवनशक्तिसमुदायः अवनं स्थितिः तत्र कारणभूतानां शक्तीनां समुदायः समूहः जगत्पालिन्यादिगणः। उक्तं च महद्भिः जगत्पालिनीत्याद्याः प्रोक्तास्ताः स्थितये कला इति तस्य स्वामी नायक इत्यर्थः ॥ १८ ॥

अथवा समस्त जगत् के रक्षण करने वाले शक्ति समुदाय को गोपी जन कहते हैं। उस स्व से भिन्न शक्ति के जो वल्लभ (स्वामी) हैं उन्हीं का इस मन्त्र में निर्देश है ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरेणार्थमाह—अथ वेति।

अथ वा व्रजयुवतीनां दयिताय जुहोमि मां मदीयमपि।
इत्यर्पयेत्समस्तं ब्रह्मणि सगुणे समस्तसम्पत्त्यै॥ १९॥

गोपीजनो गोपाङ्गनाजनस्तस्य वल्लभो निरतिशयप्रेमविषयः तस्मै व्रजयुवतीनां गोपरमणीनां दयिताय हृदयानन्ददायिने स्वाहा जुहोमि। किं मां स्वात्मानं मदीयमपि आत्मीयसुहृदादिकमपि इत्यनेन प्रकारेण सगुणे ब्रह्मणि संसारप्रवर्त्तके परमेश्वरेश्वरे सर्वं समर्पयेत्। किमर्थं समस्तसंपत्त्यै सर्वैश्वर्याय ॥ १९ ॥

अथवा (गोपीजन अर्थात् ब्रजाङ्गनायें उनके जो वल्लभ हैं) गोपरमणियों को निरतिशय आनन्द देने वाले उनके परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण उनमें अपने को तथा अपने सुहृदादि सम्बन्धियों को समर्पित करता हूँ। क्योंकि वही इस संसार के प्रवर्त्तक हैं, वही इसके ईश्वर हैं, उनमें सर्वसमर्पण का हेतु यह है कि उनसे मुझे समस्त सम्पत्ति की प्राप्ति हो ॥ १९ ॥

अष्टादशाक्षरमन्त्रोद्धाराय तदन्तर्भूतौ कृष्णगोविन्दशब्दौ प्रथमतो विविच्य दर्शयति—कृष्शब्द इति ।

कृष्शब्दः सत्ताऽर्थो णश्चानन्दात्मकस्ततः कृष्णः ।
भक्ताघकर्षणादपि तद्वर्णत्वाच्च मन्त्रमयवपुषः ॥ २० ॥
गोशब्दवाचकत्वाज् ज्ञानं तेनोपलभ्यते गोविन्दः ।
वेत्तीति शब्दराशिं गोविन्दो गोविचारणादपि च ॥ २१ ॥

कृष्शब्दः सत्ताऽर्थः तत्र शक्तः, कृष् सत्तायामित्यत्र क्विबन्तः सत्तावाचक इति कश्चित्, कृट् णश्च णकारश्च आनन्दात्मक आनन्दवाची, नन्द आनन्द इति धातोरेकदेशग्रहणादिति कश्चित्, ततो द्वन्द्वे कृतेऽत्रार्श आद्यचि कृते च कृष्णः सदानन्द इत्यर्थः । प्रकारान्तरेण कृष्णशब्दं व्युत्पादयति भक्तेति भक्तानामघकर्षणात् पापपरिमार्जनात् कृष्ण इत्यर्थः, भक्तादिकर्षणादिति पाठे आदिशब्देनाभक्तग्रहणं भक्तस्य कर्षण स्वस्थाननयनम् अभक्तस्य कर्षणं नरकनयनमित्यर्थः । प्रकारान्तरेण व्युत्पत्तिमाह—तद्वर्णेति । कृष्णवर्णशरीरत्वात् कृष्णः मन्त्रमयशरीरस्य वाच्यवाचकयोरभेदेन विवक्षया । गो इत्यादि–गौर्ज्ञानं गोशब्दस्य वाचकत्वात् ज्ञानवाचकत्वात् तेन ज्ञानेनोपलभ्यते प्राप्यते ज्ञायते इति गोविन्दः, विद्लृ लाभे इत्यस्य धातोः, प्रकारान्तरमाह—वेत्तीति । गोशब्दः शब्दवाची, विद ज्ञाने धातुः, गां शब्दराशिं शब्दसमुदायं मातृकां वेत्तीति गोविन्दः । प्रकारान्तरमाह—गोविचारणादपि चेति, गोशब्दो गोशब्दवाचक एव, विद विचारणे धातुः, गोविचारणाद् गोशब्दविचारणाद् गोविन्दः, अथ वा गाव इन्द्रियाणि तेषां विचारणाद् विशेषेषु प्रतिनियतविषयेषु प्रवर्तनाद् गोविन्दः, अथ वा गावः पशुविशेषा इति । तथा च श्रुतिः—"पशवो द्विपादश्चतुष्पादश्चे" ति । तेषां विशेषेषु पुण्यपापेषु चारणात् प्रवर्त्तनाद् गोविन्दः, अथ वा गावः पशुविशेषाः तेषां रक्षणाद् गोविन्दः । अपि शब्दः चार्थे ॥ २०–२१ ॥

कृष् शब्द की शक्ति सत्ता के अर्थ में है । ण शब्द आनन्दात्मक है । फिर दोनों का द्वन्द्व कर देने पर नित्यानन्द स्वरूप यह कृष्ण शब्द का अर्थ हुआ । अथवा भक्तों के पाप को परिमार्जन करने के कारण परमात्मा को श्रीकृष्ण कहते हैं

अब गोविन्द पद का विवरण देते हैं—

अथवा गोशब्द का अर्थ है—ज्ञान, वह ज्ञान जिससे प्राप्त हो उसे गोविन्द कहते हैं । अथवा गोशब्द का अर्थ हुआ समस्त शब्दराशि उसे जो जानता है उसे 'गोविन्द' कहते हैं । अथवा जो गायों को चराने वाला है, उसे 'गोविन्द' कहते हैं ।

विमर्श—यहाँ अष्ट दशाक्षर मन्त्र के उद्धार का क्रम बताया गया है और उसके अन्तर्गत सर्वप्रथम आने वाले कृष्ण गोविन्द शब्द की विवेचना की गयी है ॥ २०-२१ ॥

इदानीं मन्त्रमुद्धरति—

एते अभिख्ये अनुक्रमत-
स्तुर्यविभक्त्या मन्त्रात् पूर्वंमन्मथबीजादथ पश्चात् ।
स्यातां चेदष्टादशार्णो-
मनुर्यो गुह्याद् गुह्यो वाञ्छितचिन्तामणिरेषः ॥ २२ ॥

एते अभिख्ये नामनी कृष्णगोविन्दाख्ये अनुक्रमेण तुर्यविभक्त्या प्रत्येकं चतुर्थीविभक्त्या सह मन्त्रात् पूर्वोक्तदशाक्षरगोपालमन्त्राद् आदौ मन्मथबीजात् पश्चात् कामबीजानन्तरम् अथ चेद् यदि स्यातां भवतः तदा एषोऽष्टादशार्णो मन्त्रश्रेष्ठो भवति । एतस्य बलादेव दशाक्षरेऽपि कामबीजसाहित्यं केचिदिच्छन्ति, कीदृशः ? गुह्याद् गुह्यः गुह्यादपि गुह्यः, पुनः कीदृशः ? वाञ्छितस्य चिन्तामात्रेणाभीष्टप्रद इत्यर्थः ॥ २२ ॥

इस अष्टादशाक्षर मन्त्र के पूर्व में मन्मथबीज का उच्चारण करे पश्चात् कृष्ण और गोविन्द इन दो नामों में प्रत्येक के आगे चतुर्थी विभक्ति लगावे फिर दशार्ण मन्त्र का उच्चारण करे। तब अष्टादशाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है। यह मन्त्र गोप्याद् गोप्यतर है और मनोरथ सिद्धि के लिए चिन्तामणि स्वरूप है। इस प्रकार 'ॐ क्रीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह अष्टादशाक्षर मन्त्र का स्वरूप हुआ ॥ २२ ॥

ऋष्यादिकमप्याह—पूर्वेति ।

पूर्वप्रदिष्टे मुनिदेवतेऽस्य छन्दस्तु गायत्रमुशन्ति सन्तः ।
अङ्गानि मन्त्रार्णचतुश्चतुष्कैर्वर्मावसानानि युगार्णमस्त्रम् ॥ २३ ॥

अस्य मन्त्रस्य पूर्वप्रदिष्टे प्रथममन्त्रसंबन्धितया कथिते मुनिदेवते बोद्धव्ये । पुनः सन्तो गायत्र छन्द उशन्ति वदन्ति, अङ्गानीति मन्त्रार्णचतुश्चतुष्कैः मन्त्रसंबन्धिवर्णानां चतुर्भिश्चतुर्भिरक्षरैः कृत्वा षोडशाक्षरैर्वर्मावसानानि कवचान्तानि चत्वार्य्यङ्गानि भवन्ति । अवशिष्टं युगार्णं वर्णद्वयम् अस्त्राख्यमङ्गं भवति । प्रयोगश्च-क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा, गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुं, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ २३ ॥

इस मन्त्र के मुनि तथा देवता पूर्ववत् हैं। सन्त लोग इसके छन्द का नाम 'गायत्री' कहते हैं। मन्त्र के वर्णों के चार-चार अक्षरों का बिभाग कर कवच पर्यन्त चार अङ्गों का न्यास करना चाहिये। शेष बचे हुए दो अक्षर को अस्त्र का अङ्ग जानना चाहिए। इस प्रकार प्रयोग क्रम 'क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः' से हृदय का 'गोविन्दाय शिरसे स्वाहा' से शिर का 'गोपीजन शिखायै वषट्' से शिखा का 'वल्लभाय कवचाय हुं' से दोनों भुजाओं के मूल का तथा 'स्वाहा' इस शब्द से 'अस्त्राय फट्' कहकर दशो दिशाओं में न्यास करे॥ २३॥

बीजादिकमाह—बीजमिति।

बीजं शक्तिः प्रकृतिर्विनियोगश्चापि पूर्ववदमुष्य।
पूर्वतरस्य मनोरथ कथयामि न्यासमखिलसिद्धिकरम्॥२४॥

अमुष्यास्य मन्त्रस्य बीजं शक्तिः प्रकृतिविनियोगः पूर्वमन्त्रे यानि बीजादीनि कथितानि तान्यत्रापि ज्ञातव्यानीत्यर्थः, पूर्वतरस्येति अथानन्तरं पूर्वतरस्य मनोर्दशाक्षरगोपालमन्त्रस्याखिलसिद्धिकरं समस्तसिद्धिदायकं न्यासं कथयामीति प्रतिज्ञा॥ २४॥

इस अष्टादशाक्षर मन्त्र का भी बीज, शक्ति, प्रकृति तथा विनियोग पूर्ववत् है। अब पूर्व में कहे गये दशाक्षर मन्त्र का न्यास कहता हूँ जो सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला है॥ २४॥

अधुना न्यासक्रमं दशार्णस्य कथयति—व्यापय्येति।

व्यापय्याथो हस्तयोर्मन्त्रमन्तर्बाह्ये पार्श्वे ताररुद्धं बुधेन।
न्यासो वर्णैस्तारयुग्मान्तरस्थैर्बिन्दूत्तंसैर्हार्द हृद्यैर्विधेयः॥ २५॥

अथोऽनन्तरं बुधेन पण्डितेन वर्णैर्मूलमन्त्राक्षरैर्न्यासो विधेयः कार्य्यः। किं कृत्वा? मूलमन्त्रं हस्तयोरन्तर्मध्ये तथा हस्तयोरेव बाह्ये पृष्ठे तथा हस्तयोरेव पार्श्वे व्यापय्य व्यापकतया विन्यस्येत्यर्थः। कीदृशं मन्त्रं? ताररुद्धं प्रणवपुटित कीदृशैः वर्णैः तारयुग्मान्तरस्थैः प्रणवद्वयमध्यगतैः पुनः कीदृशैः बिन्दूत्तंसैः बिन्दुः शिरोऽलंकारो येषां ते तथा सानुस्वारैरित्यर्थः। पुनः कीदृशैर्हार्दहृद्यैः हार्दैन नमःपदेन हृद्यैर्मनोज्ञैः सहितैरित्यर्थः। प्रयोगश्च-ॐगों ॐ नमः दक्षाङ्गुष्ठपर्वत्रये ॐपीं ॐनमः तर्जन्याम् इत्यादि। ॐ ल्लं ॐ नमो वामकनिष्ठिकायामित्यादि॥ २५॥

पण्डितजनों को अपने दोनों हाथों के मध्य में बाहर (पृष्ठभाग में) पार्श्व में व्यापकरूप से मन्त्र के प्रत्येक अक्षरों को प्रणव से सम्पुटित कर अर्थात् दो प्रणव के

भीतर कर और अक्षरों पर बिन्दु लगाकर पश्चात् नमः शब्द का प्रयोग कर आगे कहे जाने वाले स्थानों पर न्यास करना चाहिए ॥ २५ ॥

विमर्श—इसका प्रयोग इस प्रकार ॐ गों ॐ नमः दक्षाङ्गुष्ठ पर्वत्रये । ॐ पीं ॐ नमः तर्जन्याम् । ॐ जं ॐ नमः मध्यमायाम् । ॐ नं ॐ नमः अनामिकायाम् । ॐ वं ॐ नमः कनिष्ठकायाम् । पुनः ल्लं नमः बामकनिष्ठाकायाम् इस प्रकार वामाङ्गुष्ठ पर्यन्त न्यास करे। इसे सृष्टि न्यास कहते हैं जैसा कि आगे स्पष्ट किया जायगा ॥ २५ ॥

उक्तवर्णन्यासस्थानमाह—शाखास्वित्यादिना।

शाखासु त्रीणि पर्वाण्यधि दशसु पृथग्दाक्षिणाङ्गुष्ठपूर्वं
वामाङ्गुष्ठावसानं न्यसतु विमलधीः सृष्टिरुक्ता करस्था।
अङ्गुष्ठद्वन्द्वपूर्वा स्थितिरुभयकरे संहृतिर्वामपूर्वा
दक्षाङ्गुष्ठान्तिकैतत्त्रयमपि सृजति स्थित्युपेतं च कार्यम् ॥२६॥

दशसु शाखासु अङ्गुलीषु पृथक्कृत्वैकं त्रीणि पर्वाणि अधि पर्वत्रयं व्याप्य, त्रिपाठिनस्तु त्रीणि पर्वाणि इति पर्वत्रये अधीति उपरि अङ्गुल्यग्रे च पृथग् एकैकशः। तथा च प्रथमपर्वणि ॐद्वितीये ॐतृतीये ॐअङ्गुल्यग्रे नमः इति एवमन्यत्रापीत्याहुः। दक्षिणाङ्गुष्ठपूर्वं प्रथमन्यासादौ यथा स्यात्तथा वामाङ्गुष्ठावसानं वामाङ्गुष्ठोऽवसाने न्यासान्ते यथा स्यादेवं विशदधीर्विमलबुद्धिर्न्यसतु। एवं च करस्था सृष्टिरुक्ता करे सृष्टिन्यासप्रकार उक्त इत्यर्थः। अङ्गुष्ठद्वन्द्वपूर्वा स्थितिरुभयकरे हस्तद्वये दक्षिणकरेऽङ्गुष्ठादिकनिष्ठासु विन्यस्य वामकरेऽप्यङ्गुष्ठादिकनिष्ठास्वङ्गुलिषु न्यसेदयंस्थितिन्यास उक्तः। संहृतिर्वामपूर्वा दक्षेति संहृतिः संहारः वामाङ्गुष्ठपूर्वा दक्षिणाङ्गुष्ठावसाना अयं च संहारन्यास उक्तः। एतत्त्रयमपि सृष्टिस्थितिसंहारात्मकं त्रयमपि सृजतिस्थित्युपेतं कार्यम्। एतन्न्यासकरणानन्तरमपि पुनरपरं सृष्टिस्थितिन्यासद्वयं कार्यं च सृष्ट्यादिन्यासपञ्चकं कार्यमित्यर्थः॥ २६ ॥

बुद्धिमान् पुरुष हाथ के दशों अङ्गुलियों में पृथक्-पृथक् दाहिने हाथ के अङ्गुष्ठ के तीन पर्व से प्रारम्भ कर वामाङ्गुष्ठ पर्यन्त दश अक्षरों से न्यास करे। यह 'सृष्टि' न्यास है। पुनः दाहिने हाथ के अंगूठे से आरम्भ कर कनिष्ठा पर्यन्त तथा बायें अँगूठे से आरम्भ कर कनिष्ठा पर्यन्त दशाक्षरों का न्यास 'स्थिति' न्यास कहा जाता है। तथा बायें हाथ के अंगूठे से आरम्भ कर कनिष्ठा पर्यन्त दाहिने हाथ के कनिष्ठा से आरम्भ कर अंगूठे पर्यन्त किया गया

न्यास 'संहार' न्यास कहा जाता है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूप तीन करन्यास कर पश्चात् सृष्टि तथा स्थिति रूप दो करन्यास और करे। यह सृष्टि, स्थिति, संहार—पुनः सृष्टि तथा स्थिति रूप से पाँच प्रकार का कर न्यास कहा गया है ॥ २६ ॥

विमर्श—यहाँ सृष्टि, स्थिति तथा संहार के क्रम के अनुसार दशाक्षर मन्त्र के प्रत्येक वर्णों से न्यास का प्रकार कहा गया है ॥ २६ ॥

तत इति।

ततः स्थितिक्रमाद् बुधो दशाङ्गकानि विन्यसेत्।
तदङ्गपञ्चकं तथा विधिः समीरितः करे ॥ २७ ॥

ततस्तदनन्तरं स्थितिक्रमात् स्थितिन्यासक्रमेण दशस्वङ्गुलीषु बुधः पण्डितः दशाङ्गकानि पूर्वोक्तमन्त्रदशाङ्गानि विन्यसेत्। तदङ्गपञ्चकं तथेति तथा तेन प्रकारेण स्थितिक्रमेण तदङ्गपञ्चकं पूर्वोक्तपञ्चकं पूर्वोक्ताङ्गपञ्चकं दशसु अङ्गुलीषु विन्यसेत्। करन्यासजातमुपसंहरति-विधिरिति। एवं चायं विधिः प्रकारः करे हस्तद्वये समीरितः कथित इत्यर्थः ॥ २७ ॥

इसी प्रकार स्थिति के क्रम से आरम्भ कर मन्त्र के दश अक्षरों से हाथ के दश अङ्गुलियों का पाँच (प्रकार से) न्यास करे। यहाँ तक करन्यास की विधि कही गयी ॥ २७ ॥

मातृकान्यासविशेषं दर्शयन् तत्त्वन्यासं च क्रमेणाह—पुटितैरिति।

पुटितैर्मनुनाऽथ मातृकार्णैरभिविन्यस्य सबिन्दुभिः पुरोवत्।
अनुसंहृतिसृष्टिमार्गभेदाद्दशतत्त्वानि च मन्त्रवर्णभाञ्जि ॥ २८ ॥

अथानन्तरमनुना दशार्णेन पुटितैर्मातृकाक्षरैः सबिन्दुभिः सानुस्वारैः पुरोवत् पूर्ववद्यथा पूर्वं ललाटादिषु न्यास एवमभिविन्यस्य अनु पश्चान्मातृकान्यासविशेषकरणानन्तरं वक्ष्यमाणानि दशतत्त्वानि विन्यसेत्। कीदृशानि· मन्त्रवर्णभाञ्जि मन्त्राक्षरयुक्तानि। कथं दशतत्त्वानि विन्यसेत्? तत्राह संहृति-सृष्टिमार्गभेदात् प्रथमं संहारक्रमेण तदनन्तरं सृष्टिक्रमेणेत्यर्थः ॥ २८ ॥

पूर्वं (द्र० १.१२–१३) में कही गयी विधि के अनुसार दशार्ण मन्त्रों से संपुटित मातृका वर्णों से ललाटादि स्थानों में न्यास करे। (पूर्व के पटल १ में श्लोक ११ से १३ पर्यन्त ५१ मातृकाक्षरों का न्यास कहा गया है किन्तु यही विशेषता है कि उन स्वर व्यञ्जन वर्णों को दशाक्षर से संपुटित कर न्यास करे।)

इसके पश्चात् मन्त्र के प्रत्येक अक्षरों से प्रथम संहार क्रम से तदनन्तर सृष्टि क्रम से दशतत्त्वों का न्यास करे ॥ २८ ॥

विमर्श—इस प्रकार मातृका न्यास में विशेषता प्रदर्शित करते हुये तत्त्वन्यास कहा है ॥ २८ ॥

संहारसृष्टिप्रकारं दर्शयति—संहृताविति ।

संहृतावनुगतो मनुवर्यः सृष्टिवर्त्मनि भवेत्प्रतियातः ।
उद्धृतिः खलु पुरोक्तवदेषां न्यासकर्म कथयाम्यधुनाऽहम् ॥२६॥

असौ मनुवर्यः मनुश्रेष्ठः संहृतौ संहारन्यासे अनुगतो यथैवास्ति तथैव सृष्टि मार्गे सृष्टिकरन्यासे प्रतियातो भवेत् तद्विपरीतो भवेद् । उद्धारप्रकार-माह-उद्धृतिरिति । एषां तत्त्वानां खलु निश्चयेन उद्धृतिरुद्धारः पूर्वोक्तवद् यथा पूर्वमुक्ततत्त्वन्यासे "नत्युपेतं भूयः पराय च तदाह्वयमात्मने च नत्यन्त-मुद्धरतु तत्त्वमनून क्रमेण" इत्येवं प्रकारेणेत्यर्थः, अधुना न्यास कथयामीति सांप्रतं न्याससंबन्धितत्त्वनामकथनं तत्स्थानकथनं च करोमीत्यर्थः ॥ २९ ॥

संहार क्रम में मन्त्र के आनुपूर्वी न्यास करे । किन्तु सृष्टिक्रम में प्रतिकूल रूप से न्यास करे । इस न्यास में नमः, तदनन्तर पराय, पुनः तत्त्व का नाम, तदनन्तर पराय आत्मने और अन्त में पुनः नमः का उच्चारण कर मन्त्र का उद्धार करे । प्रयोग इस प्रकार है—ॐ गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इत्यादि इसी का स्पष्टीकरण आगे के श्लोक में किया गया है ॥ २८ ॥

विमर्श—संहार तथा सृष्टि न्यास के लिये मन्त्र के उद्धार की विधि कही गई है ॥ २९ ॥

तत्त्वनामान्याह—महीति ।

महीसलिलपावकानिलवियन्ति गर्वो महान्
पुनः प्रकृतिपूरुषौ पर इमानि तत्त्वान्यथ ।
पदान्धुहृदयास्यकान्यधि तु पञ्च मध्ये द्वयं
त्रयं सकलगं ततो न्यसतु तद्विपर्यासतः ॥ ३० ॥

मही पृथिवी, सलिलं जलं, पावकः तेजः, अनिलो वायुः वियदाकाशः, गर्वोऽहङ्कारः, महान् महत्तत्त्वं, प्रकृतिः, पुरुषः, परश्च इमानि पृथिव्यादीनि तत्त्वानि तत्त्वपदवाच्यानि । न्यासस्थानमाह—अथेति, अथानन्तरं पञ्च तत्त्वानि पृथिव्यादीनि न्यसतु । कुत्र पदान्धुहृदयास्यकान्यधि, पादयोः, अन्धौ लिङ्गे, हृदये, आस्ये मुखे, के शिरसि, अधि सप्तम्यर्थे मध्ये हृदये तत्त्वद्वयं,

त्रयं सकलगं, सकलाङ्गव्यापकं ततस्तदनन्तरं तद्विपर्यासतः उक्तसंहार-विपरीतरीत्या न्यसतु। प्रयोगश्च—ओङ्गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः इति पादद्वये इत्यारभ्य ओं हां नमः पराय परमात्मने नमः इत्यन्तः संहारः, ॐ हां नमः पराय परमात्मने नमः इत्यारभ्य ॐ गों नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादद्वये इति सृष्टिन्यासः। सृष्टिन्यासे त्रयं सर्वशरीरे, महदहङ्कारौ हृदि, आकाशः शिरसि, वाय्वग्निसलिलमह्यः मुखहृदयलिङ्गपादद्वयेषु, ज्ञेयाः। केचित्तु तत्त्वपदान्तर्भावेण न्यासमिच्छन्ति तच्चिन्त्यम्॥ ३०॥

पृथ्वी १ जल २पावक (तेज)३ अनिल (वायु)४ आकाश ५ अहङ्कार ६ महत्तत्व ७ प्रकृति ८ पुरुष ९ और पर १० ये दश तत्त्वपद से कहे जाते हैं। इन तत्त्वों को क्रमशः दोनों पैर, लिङ्ग, हृदय एवं मुख इन स्थानों पर पाँच तत्त्व, पुनः हृदय में दो तत्त्व तथा संपूर्ण शरीर में व्याप्त कर तीन तत्त्व से न्यास करे। तदनन्तर इस संहारक्रम से विपरीत सृष्टि का न्यास करे॥ ३०॥

विमर्श—प्रयोगविधि संहारक्रमानुसार 'ॐ गों नमः पराय पृथ्व्यात्मने नमः पाद द्वये से आरम्भ कर ॐ हाँ नमः पराय परमात्मने नमः १० पर्यन्त करे। सृष्टि क्रम में उलट कर ॐ हाँ नमः पराय परमात्मने नमः से आरम्भ कर ॐ गों नमः पराय परमात्मने नमः इति पादद्वये पर्यन्त न्यास करे। सृष्टि न्यास में पर पुरुष और प्रकृति सर्वाङ्ग से तथा महत्तत्व और अहङ्कार इन दो तत्त्वों से हृदय में पुनः आकाश से शिर में वायु, अग्नि, सलिल तथा महीतत्त्व को मुख, हृदय, लिङ्ग तथा पादद्वय में न्यास करे॥ ३०॥

गुप्ततमोऽयं न्यासः संप्रोक्तस्तत्त्वदशकपरिक्लृप्तः।
कार्योऽन्येष्वपि सद्भिर्गोपालमनुषु झटिति फलसिद्ध्यै॥३१॥

गुप्ततमोऽयमिति। अयं प्रोक्तः कथितो न्यासः सद्भिः पण्डितैः अन्येष्वपि गोपालमन्त्रेषु उद्धृतदशाक्षरव्यतिरिक्तेष्वपि कार्य्यः। कीदृशः? गुह्यतमः अतिशयेन गुप्तः। पुनः कीदृशः? तत्त्वदशकपरिक्लृप्तः तत्त्वानां दशकं तत्त्व-दशकं तेन परिक्लृप्तः उद्घाटित इत्यर्थः। किमर्थं झटिति फलसिद्ध्यै शीघ्र-फलप्राप्त्यै॥ ३१॥

गोपाल मन्त्र के दश अक्षरों में दश तत्त्वों से मिश्रित किया गया इस प्रकार का न्यास पण्डितों ने कहा है जो अत्यन्त गोपनीय है। इस प्रकार इस दशाक्षर मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य श्रीकृष्ण के मन्त्रों में भी दश तत्त्वों को मिश्रित कर न्यास करना चाहिये, जिससे फल की सिद्धि शीघ्रतापूर्वक होवे॥ ३१॥

न्यासान्तरमाह—आकेशादिति ।

आकेशादापादन्दोर्भ्यां-

ध्रुवपुटितमथ मनुवरं न्यसेद्वपुषि ।

त्रिशो मूर्द्धन्यक्ष्णोः श्रुत्योर्घ्राणे

मुखहृदयजठरशिवजानुपत्सु तथाऽक्षराणि ॥ ३२ ॥

अथानन्तरं दोर्भ्यां हस्ताभ्यां ध्रुवपुटितं प्रणवपुटितं मनुवरं मन्त्र-श्रेष्ठं दशाक्षरं गोपालमन्त्रम् आकेशादापादं केशादिपादपर्यन्तं त्रिशः त्रिवारं वपुषि देहे न्यसेत् । पादादारभ्य केशपर्यन्तं त्रिशः स्वदेहे विन्य-सेदिति विद्याधराचार्यत्रिपाठिप्रभृतयः । एतेषां मत आकेशादापादादिति पाठः । अधुना सृष्टिस्थितिसंहारक्रमेण मन्त्राक्षरन्यासमाह—मूर्द्धनीत्यादि-तथा दशाक्षराणि प्रणवपुटितानि मूर्द्धादिवक्ष्यमाणस्थानेषु विन्यसेत् । स्थानान्याह –मूर्द्धनीति । मूर्ध्नि चक्षुषोः उभयनेत्रे एकमेवाक्षरं श्रुतयोः कर्णयोः अत्राप्येकमेव घ्राणे नासायुग्मे तत्राप्येकमेव मुखं, हृदयं, जठरं, शिव लिङ्गं, जानुद्वये एकम्, पादद्वये एकम् एतेषु दशसु स्थानेषु दशाक्षराणि विन्यसेदित्यर्थः ॥ ३२ ॥

इसके बाद प्रणव से संपुटित दशाक्षर गोपाल मन्त्र से केश से लेकर पाद पर्यन्त अङ्गों में तीन बार न्यास करे । वे दश स्थान इस प्रकार हैं—शिर १, दोनों नेत्र में २ दोनों कानों में ३, दोनों नासिका में ४ एक अक्षर से, पुनः मुख, ५ हृदय ६ जठर ७ लिङ्ग ८ पुनः जानुद्वय ९ में एक अक्षर से और पाद द्वय में एक अक्षर से इस प्रकार दश स्थानों में दशाक्षर न्यास करे ॥ ३२ ॥

विमर्श—दशतत्त्वों के अतिरिक्त अन्य न्यास कहते हैं । प्रयोग ॐ गों ॐ शिरसि इत्यादि है ।

उक्ता सृष्टिः शिष्टैरेषा स्थितिरपि

मुनिभिरभिहिता हृदादिमुखान्तिका ।

संहारोऽङ्घ्र्यादिमूर्द्धान्तस्त्रितयमिति

विरचयेच्च सृष्टिमनु स्थितिम् ॥ ३३ ॥

शिष्टैः आगमज्ञैः एषा सृष्टिरुक्तेत्यर्थः, स्थितिरपि स्थितिन्यासोऽपि मुनिभिर्नारदादिभिर्हृदयादिमुखान्तिका अभिहिता हृदयमारभ्य मुख-पर्यन्तं कथिता, तत्र क्रमः हृदयजठरलिङ्गजानुपादमूर्द्धाक्षिश्रवणघ्राण-

मुखानीति संहारोऽङ्घ्रयादिमूर्द्धान्तः कार्यः। तत्र मन्त्राक्षराणि प्रतिलोमेन देयानीतीदन्त्रितयं विरचयतु अनु पश्चादेतत्त्रितयकरणानन्तरं पुनः सृष्टिं स्थितिं च विरचयतु। तथा च पञ्च न्यासाः कार्य्या इत्यर्थः। प्रयोगस्तु गों नमः पीं नमः इत्यादि ॥ ३३ ॥

शिष्टों ने ऊपर में कहीं गई विधि सृष्टि क्रम के अनुसार कही है। इसके अतिरिक्त नारदादि मुनियों ने हृदय १ जठर २ लिङ्ग ३ जानुद्वय, ४ पादद्वय ५ मूर्धा ६ अक्षिद्वय ७ श्रवणद्वय ८ घ्राणद्वय ९ तथा मुख १० (इस प्रकार हृदय से आरम्भ कर मुख पर्यन्त न्यास 'स्थिति' क्रम का कहा है। पुनः पादद्वय १ जानु द्वय २ लिङ्ग ३ जठर ४ हृदय ५ मुख ६ दोनों नासिका ७ दोनों कान ८ दोनों नेत्र ९ तथा शिर १० क्रम से संहार न्यास करे। इस प्रकार सृष्टि स्थिति और संहार न्यास कर पुनः सृष्टि तथा स्थिति न्यास करे। यहाँ तक पाँच न्यास कहा गया है ॥ ३३ ॥

येषामाश्रमिणां यदन्तो न्यासस्तद्दर्शयति—न्यास इति।

न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम्।
स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्टयन्तो वर्णिनामिति प्राहुः ॥ ३४ ॥

अयं न्यासः मस्करिवैखानसेषु संहारान्तो विहितः मस्करी संन्यासी, वैखानसो वानप्रस्थः, तथा ताभ्यां न्यासत्रयं कार्यमित्यर्थः। गृहमेधिषु गृहस्थेषु अयं न्यासः स्थित्यन्तो विहितः, तथा गृहस्थैः पञ्च न्यासाः कार्य्या इत्यर्थः। वर्णिनां ब्रह्मचारिणामयं न्यासः सृष्टयन्तो विहितः तथा च ब्रह्मचारिभिर्न्यासचतुष्टयं कार्यमित्यर्थः इति पूर्वोक्तमर्थजातं प्राहुः प्राचीना आगमज्ञा इति शेषः ॥ ३४ ॥

सन्यासी तथा वानप्रस्थ आश्रम वालों को संहारान्त न्यास करना चाहिए। गृहस्थों को स्थिति क्रम पर्यन्त तथा ब्रह्मचारियों को सृष्टि, क्रम पर्यन्त न्यास करना (आगम के विद्वानों द्वारा) कहा गया है ॥ ३४ ॥

विमर्श—इस प्रकार सन्यासी तथा वानप्रस्थ आश्रम वालों को सृष्टि स्थिति तथा संहार मात्र तीन न्यास करना चाहिये। गृहस्थों को तीन न्यास के बाद सृष्टि तथा स्थिति पर्यन्त पाँच न्यास तथा ब्रह्मचारियों को मात्र ४ न्यास करना चाहिए ऐसा आगम के विद्वानों द्वारा कहा गया है ॥ ३ ॥

वैराग्येति।

वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारं के चिदाहुराचार्य्याः।
सहजानौ वनवासिनी स्थितिं च विद्यार्थिनां सृष्टिम् ॥ ३५ ॥

केचिदाचार्याः वैराग्ययुक्तगृहस्थे संहारान्तं न्यासमाहुः। किंच सहजानौ वनवासिनि सपत्नीके वानप्रस्थे स्थितिं स्थित्यन्तं न्यासमाहुः, तथा ब्रह्मचारिभिन्नानां विद्यार्थिनामपि सृष्टिं सृष्टयन्तं न्यासमाहुरित्यर्थः ॥ ३५ ॥

कोइ आचार्य वैराग्यवान् गृहस्थ को संहारान्त अर्थात् मात्र तीन न्यास करने का विधान बताते हैं। और स्त्री के सहित वानप्रस्थ आश्रम में रहने वालों के लिये स्थित्यन्त ५ न्यास तथा विद्यार्थियों के लिये सृष्टयन्त मात्र ४ न्यास करने का विधान बताते हैं ॥ ३५ ॥

उक्ताक्षरन्यासाङ्गुलिनियमं दर्शयति—शिरसीत्यादिना।

शिरसि विहिता मध्या सैवाक्ष्णि तर्जनिकाऽन्विता
श्रवसि रहिताङ्गुष्ठा ज्येष्ठाऽन्वितोपकनिष्ठका।
नसि च वदने सर्वाः सज्यायसी हृदि तर्जनी
प्रथमजयुता मध्या नाभौ श्रवोविहिता शिवे ॥ ३६ ॥
ता एवाङ्गुलयो जान्वोः साङ्गुष्ठास्तु पदद्वये।
स्थानार्णयोर्विनिमयो भवेन्नास्त्यङ्गुलिस्थानयोः ॥ ३७ ॥

मध्या मध्यमाङ्गुलिः शिरसि मूर्ध्नि विहिता न्यासकरणत्वेन तथा च मध्यमाङ्गुल्या न्यासः शिरसि कार्य इत्यर्थः, सैव मध्या तर्जनिकाऽन्विताऽक्ष्णि नयनयुगले विहिता तथा च मध्यमातर्जनीभ्यामक्ष्णोर्न्यासः कार्यः, श्रवसि श्रोत्रयुगले रहिताङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठरहिता सर्वाङ्गुलयो विहिताः, नसि नासायुगले ज्येष्ठाऽन्विता अङ्गुष्ठयुक्ता उपकनिष्ठिका अनामिका विहिता, वदने सर्वाङ्गुलयो विहिताः, हृदि सज्यायसी ज्येष्ठासहिता साङ्गुष्ठतर्जनी विहिता, नाभौ जठरे नाभिपदेन जठरमुपलक्षितमिति विद्याधरः। नाभिपदस्य मुख्य एवार्थ इति लघुदीपिकाप्रभृतयः। प्रथमजयुता अङ्गुष्ठयुक्ता मध्यमा विहिता, शिवे लिङ्गे तथा विहिता यथा जठरे साङ्गुष्ठा मध्या तथेत्यर्थ इति केचित्। श्रवो विहिता शिव इति पाठे श्रोत्रयुगले या अङ्गुष्ठरहितास्ताः शिवे विहिता इत्यर्थः। जान्वोस्ता एवाङ्गुलयः अङ्गुष्ठेन रहिताः सर्वाङ्गुलय इत्यर्थः, पदद्वये साङ्गुष्ठाः सर्वाङ्गुलयो विहिताः। स्थानार्णयोरित्यादिना स्थानाक्षरयोर्विनिमयो विपर्ययो भवति। यथा गों सृष्टौ मूर्ध्नि, स्थितौ हृदये, संहृतौ पादयोर्न्यास इति एवमङ्गुलीस्थानयोर्विपर्ययो

नास्ति, किं तु सृष्टौ स्थितौ संहृतौ वा यत्र स्थाने याऽङ्गुलिर्विहिता तयैवाङ्गुल्या तत्र स्थाने न्यासः कार्य इत्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

मध्यमा अङ्गुली से शिर पर, पुनः मध्यमा अङ्गुलि को तर्जनी से युक्त कर दोनों नेत्रों पर, अङ्गुष्ठ को छोडकर सभी अङ्गुलियाँ रखकर दोनों कानों का न्यास करे। दोनों नासिका पर अङ्गुष्ठ और अनामिका मिलाकर न्यास करे। मुख पर सभी अङ्गुलियों को रखकर न्यास करे। हृदय में अँगूठे के सहित तर्जनी रखकर न्यास करे। नाभि पर अंगूठे से युक्त मध्यमा अङ्गुली रखकर न्यास करे। इसी प्रकार लिङ्ग पर अँगूठे के सहित मध्यमा अङ्गुली रख कर न्यास करे। दोनों जानु पर अङ्गुष्ठ से रहित सभी अङ्गुलियां रख कर न्यास करे। दोनों पैर पर अङ्गुष्ठ सहित सभी अङ्गुलियों को रख कर न्यास करे। यद्यपि पूर्व में सृष्टि, स्थिति तथा संहार के अनुक्रम में स्थान और मन्त्राक्षर का विपर्यय कह आये हैं जैसा कि गों सृष्टौ मूर्ध्नि किन्तु वही गों स्थितौ हृदये तथा गों पादयोः आदि। किन्त अङ्गुलि रखने में जिस जिस स्थान पर जो जो अङ्गुली कह आये हैं उन-उन स्थानों पर उन्हीं अङ्गुलियों को रखना चाहिए। उनमें चाहे सृष्टि हो चाहे स्थिति हो, चाहे संहार हो। कहीं भी विपर्यय नहीं होता ॥३६-३७॥

विमर्श—इस प्रकार उपरोक्त न्यास के लिए अङ्गुलि, नियम प्रदर्शित किया गया है। ३६-३७ ॥

इदानीं विभूतिपञ्जरन्यासमाह—वच्मीति।

वच्म्यपरं न्यासवरं भूत्यभिधं भूतिकरम्।

मन्त्रदशावृत्तिमयं गुप्ततमं मन्त्रिवरैः॥ ३८ ॥

अपरं भूत्यभिधं भूतिरिति नाम यस्य त भूतिनामकं वच्मि कथयामि। कीदृशं? न्यासवरं न्यासश्रेष्ठमित्यर्थः। पुनः भूतिकरम् ऐश्वर्य्यकरं, पुनः मन्त्रदशावृत्तिमयं मन्त्रस्य दशावरणघटितं पुनः मन्त्रिवरैः साधकश्रेष्ठैर्गुप्ततममतिगुह्यम् ॥ ३८ ॥

अब मैं ऐश्वर्य प्रदान करने वाला भूति नामक श्रेष्ठ न्यास कहता हूँ। यह न्यास मन्त्र के दश अक्षरों के समान दश आवरण से घटित है तथा साधक श्रेष्ठों ने इसे अत्यन्त गुप्त बताया है ॥ ३८ ॥

न्यासस्थानमाह—आधारेत्यादिना।

आधारध्वजनाभिहृद्गलमुखांसोरुद्वये कन्धरा-

नाभ्योः कुक्षिहृदोरुरोजयुगले पार्श्वापरश्रोणिषु।

कास्याक्षिश्रुतिनःकपोलकरपत्सन्ध्यग्रशाखासु के
तत्प्राच्यादिदिशासु मूर्ध्नि सकले दोष्णोश्च सक्थ्नोस्तथा॥३९॥

शिरोऽक्ष्यास्यकण्ठाख्यहृत्तुन्दकन्दा-
न्धुजानुप्रपत्स्वित्थमर्णान्मनूत्थान् ।
न्यसेच्छ्रोत्रगण्डांसवक्षोजपार्श्व-
स्फिगूरुस्थलीजानुजङ्घाङ्घ्रियुग्मे ॥ ४० ॥

आधारो वृषणस्याधस्त्रिकोणं मूलाधारस्थानं, ध्वजो लिङ्गं, नाभिः, हृदयं, गलः, मुखम्, अंसोरुद्वयम्, एतेष्वेकावृत्तिः। कन्धरा घाटा, कंधरा कण्ठ इति लघुदीपिकाकारः। नाभिकुक्षिहृदयम् उरोजयुगलं स्तनद्वयं, पार्श्वेति पार्श्वयुगम्, अपरं पृष्ठदेशः, श्रोणिर्जघनदेशः, श्रोणिः कटिः, अपरं श्रोण्याः अपरभागः इति त्रिपाठिनः, एतेषु द्वितीयावृत्तिः। कं शिरः, आस्यं मुखम्, अक्षिणी नेत्रयुगलं, श्रुती श्रवणद्वयं, नइति नासिकाद्वयम्, कपोल-द्वयमेतेषु तृतीयावृत्तिः,। करपदेति करपदयोः प्रत्येकं सन्धिचतुष्टयं सन्धिष्वङ्गुल्यग्रेषु अङ्गुलीषु च, अत्र दक्षिणकरे चतुर्थावृत्तिः, एवं वामकरे पञ्चमावृत्तिः। इति पक्षद्वयं च विद्याधरस्तु करयोरेकावृत्तिः पादयोरेका-वृत्तिरित्याह। तच्चिन्त्यम्, मूलग्रन्थात्तथाऽप्रतीतेः। पादयोः सन्धिष्वङ्गुल्य-ग्रेष्वङ्गुलीषु च, अत्रापि दक्षिणपादे षष्ठावृत्तिः। वामपादे सप्तमावृत्तिः। अत एव हस्तपादयोर्न्यासचतुष्टयमिति त्रिपाठिनः। के मस्तकमध्ये तत्प्राच्यादिदिशासु मस्तकपूर्वादिचतुर्दिक्षु सकले मूर्ध्नि सकले मस्तके प्रादक्षिण्येन व्यापकतया दोष्णोश्च बाहुयुगे तथा सक्थ्नोरूरुमूलस्याधिष्ठा-नयोर्मध्यप्रदेशयोः एतेष्वष्टमावृत्तिः। मस्तकस्य पूर्वादिदिशास्वेकावृत्तिः, एकावृत्तिर्मूर्द्धादिष्विति विद्याधराचार्य्याः। तच्चिन्त्यं, तथापदस्वरसात् शिर प्रभृतिष्वेकावृत्तिप्रतीतेः। शिरो मस्तकम्, अक्षीति नेत्रयुगलम्, आस्यं मुखं, कण्ठं, हृदयं, तुन्दमुदरं, कन्दो मूलाधारः, स्वाधिष्ठानमिति त्रिपाठिनः, अन्धु लिङ्गं, जानु, प्रपदिति पादयुगलं तेषु, एतेषु नवमा-वृत्तिः। श्रोत्रयुगले गण्डयुगले, असंयुगले, स्तनयुगले; पार्श्वयुगले, स्फिग्-युगले नितम्बयुगले, एवमूरुजानुजङ्घाऽङ्घ्रियुगले, एतेषु दशमावृत्तिः। इत्थ-मनेन प्रकारेण मनूत्थान् मन्त्रसम्बन्धिनो वर्णान् न्यसेत्। प्रयोगश्च—गों नमः मूलाधारे, पीं नमः लिङ्गे, जं नमः नाभौ, इत्यादि ॥ ३९ ॥ ४० ॥

मूलाधार स्थान, लिङ्ग, नाभि, हृदय, गला, मुख, अंस द्वय तथा ऊरुद्वय इसमें मन्त्र वर्णों की एक आवृत्ति। फिर कण्ठ, नाभि, कुक्षि, हृदय, स्तनद्वय, दोनों पार्श्व; पृष्ठ एवं कटि प्रदेश इसमें द्वितीयावृत्ति। शिर, मुख, नेत्रयुगल, श्रवणद्वय, नासिका द्वय तथा कपोलद्वय इसमें तृतीयावृत्ति। हाथ और पैरों में जहाँ प्रत्येक में चार सन्धि हैं अङ्गुलि के अग्रभाग में तथा अङ्गुलियों में इस प्रकार दाहिने हाथ में चतुर्थावृत्ति। इसी प्रकार बायें हाथ के संधियों में अङ्गुलि के अग्रभाग में तथा अङ्गुलियों में पञ्चम आवृत्ति। इसी प्रकार दाहिने पैर की सन्धियों में अङ्गुल्यग्रभागों में तथा अङ्गुलियों में षष्ठ आवृत्ति। इसी प्रकार वाम पाद की संधियों में अङ्गुल्यग्रभाग में तथा अङ्गुलियों में सप्तम आवृत्ति। मस्तक मध्य के पूर्वादि दिशाओं में, संपूर्ण मस्तक में, दक्षिण से व्याप्त कर दोनों बाहु में तथा दोनों (सन्धि) एवं ऊरूओं के मध्यभाग में अष्टमावृत्ति। मस्तक, नेत्रयुगल, मुख कण्ठ, हृदय, उदर, मूलाधार लिङ्ग, जानु एवं पादद्वय इसमें नवम आवृत्ति। श्रोत्रयुगल, कपोलयुगल, असंयुगल, स्तनयुगल, पार्श्वयुगल, नितम्ब युगल ऊरूयुगल-जानु युगल-जङ्घायुगल तथा अङ्घ्रि-युगल इसमें दशम आवृत्ति से न्यास करे॥ ३९-४०॥

बिमर्श—इस प्रकार मन्त्र के दश अक्षरों से तत्त स्थानों में दशावरण न्यास करें। प्रयोग—गों नमः; मूलाधारे पीं नमः; लिङ्गे जं नमः नाभौ इत्यादि है।

न्यासफलमाह—इतिती।

इति कथितं विभूतिपञ्जरं सकलसुखार्थधर्ममोक्षदम्।
नरतरुणीमनोऽनुरञ्जनं हरिचरणाब्जभक्तिवर्द्धनम्॥ ४१॥

अनेन प्रकारेण विभूतिपञ्जरं कथितम्। कीदृशम्? सकलसुखार्थधर्ममोक्षदं पुरुषार्थचतुष्टयप्रदं, पुनः नरतरुणीमनोरञ्जनं पुरुषनारीचित्ताह्लादकं न केवलं सर्वानुरञ्जनम्, अपि तु हरिचरणाब्जे भक्तिवर्द्धनम्॥ ४१॥

इस प्रकार हमने विभूतिपञ्चर नामक न्यास कहा। यह न्यास संपूर्ण सुख अर्थ-धर्म तथा मोक्ष को देने वाला है, पुरुष तथा स्त्रियों के चित्त में आह्लाद उत्पन्न करता है और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण युगलों में भक्ति उत्पन्न करता है॥ ४१॥

मूर्त्तिपञ्जरन्यासमाह—स्फूर्त्तय इति।

स्फूर्तयेऽथास्य मन्त्रस्य कीर्त्यते मूर्त्तिपञ्जरम्।
आर्त्तिग्रहविषारिघ्नं कीर्त्तिश्रीकान्तिपुष्टिदम्॥ ४२॥

अथानन्तरम् अस्य दशाक्षरमन्त्रस्य स्फूर्त्तये उद्दीपनाय मूर्तिपञ्जरं

कीर्त्यते। किम्भूतम् ? आर्त्तिः पीडा, ग्रहो ग्रहजनितमशुभं विषंस्थावरं जङ्गमं च, अरिः शत्रुः, तान् हन्तीत्यर्थः। पुनः कीदृशङ्कीर्त्यादिदम् ? कीर्तिः प्रख्यातिः, श्रीः सम्पत्तिः, सौन्दर्यं, पुष्टि, बलं प्रददातीति तथा ॥ ४२ ॥

अब इस दशाक्षर मन्त्र को अधिक शक्तिमान् बनाने के लिये मूर्तिपञ्चर नामक न्यास कहता हूँ। यह मूर्त्तिपञ्चर न्यास पीड़ा, ग्रहारिष्ट, स्थावर जङ्गमात्मक विष तथा शत्रुओं का विनाश करता है और कीर्त्ति (प्रख्याति), श्री (संपत्ति) कान्ति (सौन्दर्य) तथा पुष्टि (बल) प्रदान करता है ॥ ४२ ॥

अधुना न्यासमुद्धरति—केशवादीति।

केशवादियुगषट्कमूर्त्तिभि-
र्धातृपूर्वमिहिरान्नमोऽन्तकान्।
द्वादशाक्षरभवाक्षरैः स्वरैः
क्लीबवर्णरहितैः क्रमान्न्यसेत् ॥ ४३ ॥

केशवादिभिः पूर्वोक्तयुगषट्कमूर्त्तिभिः सह धातृपूर्वमिहिरान् धाता पूर्वं आदौ येषु मिहिरेषु आदित्येषु वक्ष्यमाणेषु ते धातृपूर्वमिहिरास्तान् क्रमेण न्यसतु। कीदृशान् ? नमोऽन्तकान् नमःपदान्तान्, पुनः कैः सह ? द्वादशाक्षर-भवाक्षरैर्वक्ष्यमाणद्वादशाक्षरमन्त्रसम्बन्धिभिद्वादशाक्षरैः सह, तथा क्लीबवर्ण-रहितैः ऋॠऌॡ-एतत्त्रयरहितैः स्वरैरकारादिभिः सह, एतदुक्तं भवति—आदौ स्वराः, ततो द्वादशाक्षरभवाक्षराणि, ततः केशवादिमूर्त्तयः, ततः धातृ-प्रभृतयः, ततो नमःपदमिति। प्रयोगस्तु—ॐ अं ॐ केशवधातृभ्यां नमः, ॐ अं ॐ केशवधात्रे नम इति त्रिपाठिनः ॥ ४३ ॥

पूर्वोक्त केशवादिमूर्त्ति से आरम्भ कर १२ मूर्त्तियां (द्र० १. १३-१४) उसके अनन्तर धातृप्रभृति शब्द तदनन्तर नमः पद उसके पहले क्लीववर्ण ऋ ॠ ऌ इन स्वरों से रहित द्वादश स्वर सहित मन्त्र के अक्षर को युक्त कर न्यास करे ॥ ४३ ॥

विमर्श—इस प्रकार यहाँ मूर्त्तिपञ्जर न्यास का उद्धार कहा गया है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि पहले स्वरवर्ण, तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्र का वर्ण, तदनन्तर केशवादिमूर्त्ति, तदनन्तर धाता आदि सूर्य के नाम, तदनन्तर नमः पद का प्रयोग कर न्यास करना चाहिये। यथाः ॐ (द्वादशाक्षर मन्त्र का प्रथम अक्षर) ॐ अम् (स्वरअक्षर) ॐ केशव धातृभ्यां नमः इति ललाटे इत्यादि। केशव के द्वादश नाम—१ केशव, २ नारायण, ३ माधव, ४ गोविन्द, ५ विष्णु, ६

मधुसूदन ७, त्रिविक्रम, ८ वामन ९ श्रीधर, १० हृषीकेश, ११ पद्मनाभ, और १२ दामोदर (द्र० १-१४-१७)। इसी प्रकार सूर्य के द्वादशनाम (द्र० २-४८) से न्यास करना चाहिए ॥ ४३ ॥

अथ मूर्त्तिपञ्जरन्यासे न्यासस्थानमाह—भालोदरेति ।

भालोदरहृद्गलकूपतले वामेतरपार्श्वभुजान्तगले ।
वामत्रयपृष्ठककुत्सु तथा मूर्द्धन्यनु षड्युगवर्णमनुम् ॥ ४४ ॥

भाले ललाटे, उदरे हृदये, गलकूपतले कण्ठे, वामेतरेति वामादितरद् दक्षिणं दक्षिणपार्श्वे भुजान्ते गले चेति, वामत्रये वामपार्श्वे वामभुजान्ते गले च, पृष्ठे ककुदि, अथानन्तरम्, अन्वितिपाठेऽप्ययमेव बोद्धव्यः। तथा तेन प्रकारेण मूर्ध्नि षड्युगवर्णमनुं द्वादशाक्षरमन्त्रं न्यसेदित्यर्थः ॥ ४४ ॥

१ ललाट, २ उदर, ३ हृदय, ४ कण्ठ, ५ दक्षिण पार्श्व, ६ दक्षिण भुजान्त, ७ दक्षिण गला इसी प्रकार ८ वामपार्श्व, ९ वामभुजान्त तथा १० वाम गला, ११ पृष्ठ, और १२ शिर में संपूर्ण द्वादशाक्षर मन्त्र से न्यास करे ॥ ४४ ॥

विमर्श—इस प्रकार मूर्त्तिपञ्जर न्यास में न्यास के स्थानों को कहा गया है ॥ ४४ ॥

मस्तके सम्पूर्णमन्त्रन्यासस्य प्रयोजनमाह—चैतन्येति ।

चैतन्यामृतवपुरर्ककोटितेजा-
मूर्द्धस्थो वपुरखिलं सवासुदेवः।
ओघस्यं सुविमलपायसीव सिक्तं-
व्याप्नोति प्रकटितमन्त्रवर्णकीर्णम् ॥ ४५ ॥

स प्रसिद्धो वासुदेवो मूर्द्धस्थो मस्तकस्थः सन् अखिलं समस्तं वपुः शरीरं व्याप्नोति स्वतेजसेत्यर्थः। किम्भूतो वासुदेवः ? चैतन्यामृतं तदेव वपुर्यस्य स तथा, यद्वा चैतन्यं स्वप्रकाशम् अमृत सुखं तथा च स्वप्रकाशानन्दरूप इत्यर्थः, अथ वा चैतन्यं ज्ञानं तेन यदमृतं मोक्षस्तदेव वपुर्यस्य स तथा। पुनः कीदृशः ? अर्ककोटिरिव तेजो यस्य सः, तथा वपुः किम्भूतं ? प्रकटितमन्त्रवर्णकीर्णं प्रकटिता ये मन्त्रवर्णा द्वादशाक्षरोद्गताः तैराकीर्णं व्याप्तं, किमिव ? सुविमलपाथसि सुनिर्मले जले सिक्तं निक्षिप्तमोघस्यं दुग्धमिव ॥ ४५ ॥

चैतन्यामृतशरीर वाले अथवा स्वप्रकाशानन्दस्वरूप अथवा मोक्ष रूप शरीर-धारी, करोडों सूर्य के समान तेजस्वी, द्वादशाक्षर मन्त्र रूप वर्णों से समस्त जगत्

को व्याप्त करने वाले भगवान् वासुदेव निर्मल जल में निक्षिप्त दुग्ध के समान शिरः प्रदेश में रहते हुए अपने तेज से सारे शरीर को व्याप्त कर स्थित हैं। इसलिये वहाँ संपूर्ण द्वादशाक्षर मन्त्र से न्यास करना चाहिये ॥ ४५ ॥

विमर्श—इस प्रकार यहाँ शिर में संपूर्ण द्वादशाक्षर मन्त्र से न्यास का प्रयोजन कहा गया है ॥ ४५ ॥

शरीरन्यासजातमुपसंहरति—सृष्टिस्थिती इति।

सृष्टिस्थिती दशपञ्चाङ्गयुग्मं-
मुन्यादिकत्रितयं कास्यहृत्सु।
विन्यस्यतु ग्रथयित्वा च मुद्रा-
भूयो दिशां दशकं बन्धनीयम् ॥ ४६ ॥

मूर्त्तिपञ्जरस्य पूर्वकृत्य दर्शयति सृष्टिस्थिती इत्यादि इति रुद्रधरः, तच्चिन्त्यं, तत्र प्रमाणाभावात्। मूर्द्ध्न्यक्ष्णोरित्यादिना पूर्वमुक्ते सृष्टिस्थिती पुनः स्वदेहे विन्यस्य तथा दशपञ्चाङ्गयुग्मं दशाङ्गं पञ्चाङ्गं च विन्यस्य; ऋष्यादित्रितयं कास्यहृत्सु विन्यसेदित्यर्थः। वक्ष्यमाणमुद्रां ग्रथयित्वा बद्ध्वा भूयः पुनरपि दिशां दशकं बन्धनीयम् ॐ सुदर्शनायास्त्राय फट् इत्यनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

(शरीर न्यास का यहीं से उपसंहार करते है)—सर्वप्रथम उपर्युक्त मूर्त्तिपञ्जर न्यास के पूर्वकर्त्तव्य को बताते हैं। मूर्त्तिपञ्जर न्यास के पूर्व अपने शरीर में सृष्टि स्थिति न्यास करे। फिर दशाङ्ग तथा पञ्चाङ्ग न्यास करे। फिर ऋषि आदि त्रितय से शिर, मुख और हृदय प्रदेश में न्यास करे। तदनन्तर आगे कही जाने वाली मुद्रा बनाकर (ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट् इस मन्त्र से) दशों दिशाओं का बन्धन करे ॥ ४६ ॥

द्वादशाक्षरमन्त्रोद्धारमाह—तारमित्यादिना।

तारं हार्दं विश्वमूर्त्तिश्च शार्ङ्गी
मांसान्तस्ते वायमध्ये सुदेवाः।
षड्द्वन्द्वार्णो मन्त्रवर्य्यः स उक्तः
साक्षाद् द्वारं मोक्षपुर्याः सुगम्यम् ॥ ४७ ॥

तारं प्रणवं, हार्दं हृदय नमः इति यावद्, विश्वमूर्त्तिर्भकारः, शार्ङ्गी गकारः, मांसान्ते मांसो लकारः, तस्यान्तो वकार इति, ते इति स्वरूपं, वा

इति स्वरूपं, य इति स्वरूपं, तयोर्वाययोर्मध्ये सुदेवाः सुदेवेत्यक्षरत्रयम् तथा च ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति प्रसिद्धः षड्द्वन्द्वार्णो मन्त्रवर्यः द्वादशाक्षरो मन्त्रश्रेष्ठ उक्तः कथितः। कीदृशः ? मोक्षपुर्याः साक्षादव्यवधानेन सुगम्यं द्वारं सुगम उपाय इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

प्रथम तार (ॐ) तदनन्तर हार्द (नमः) फिर विश्वमूर्त्ति (भकार) शार्ङ्गी (गकार) मांसान्त मांस (लकार) उसके अन्त का अक्षर वकार, तदनन्तर 'ते' इत्याकारक स्वरूप, फिर 'वा' शब्द तदनन्तर सुदेव यह तीन अक्षर इस प्रकार ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र का स्वरूप हुआ। जो मोक्षपुरी का सुगम मार्ग है ॥ ४७ ॥

विमर्श—इस प्रकार यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्र का उद्धार कहा गया है ॥ ४७ ॥

धात्रर्यममित्राख्या वरुणांशुभगा विवस्वदिन्द्रयुताः ।
पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः ॥ ४८ ॥

द्वादशाक्षरादित्यान् दर्शयति—धात्रर्यमेत्यादिना ।

धाता, अर्यमा, मित्रः; वरुणः, अंशुः, भगः, विवस्वान्, इन्द्रः, पूषाः, पर्जन्यः, त्वष्टा, विष्णुरेते द्वादश भानवः प्रोक्ताः कथिताः ॥ ४८ ॥

अब पूर्वोक्त (२·४३ श्लोक) में कहे गये मिहिर (=आदित्य) शब्द के द्वादश नामों का इस प्रकार निर्देश करते हैं—

१ धाता, २ अर्यमा, ३ मित्र, ४ वरुण, ५ अंशु, ६ भग, ७ विवस्वान्, ८ इन्द्र, ९ पूषा, १० पर्जन्य, ११ त्वष्टा तथा १२ विष्णु ये द्वादश भानु कहे गये हैं ॥ ४८ ॥

अधुनाऽष्टादशाक्षरमन्त्रन्यासमाह—अथ तु युगेत्यादि ।

अथ तु युगरन्ध्रार्णस्याहं मनोर्न्यसनं ब्रुवे
रचयतु करद्वन्द्वे पञ्चाङ्गमङ्गुलिपञ्चके ।
तनुमनुमनुं व्यापय्याथ त्रिशः प्रणवं सकृन्-
मनुजलिपयो न्यास्या भूयः पदानि च सादरम् ॥ ४९ ॥

अनन्तरं पुनर्युगरन्ध्रार्णस्य युगरन्ध्रे राजदन्तत्वाद् रन्ध्रशब्दस्य परनिपातः, युगरन्ध्रम् अक्षराणां यत्र स युगरन्ध्रार्णः तस्य, रन्ध्रं नव, तथा चाष्टादशाक्षरस्य मनोर्मन्त्रस्याहं न्यसनं न्यासं ब्रुवे कथयामीति प्रतिज्ञा। करद्वये अङ्गुलीपञ्चके पञ्चाङ्गं पूर्वोक्तं मन्त्राक्षरैः परिकल्प्तं करन्यासं कुर्यात्। कनिष्ठायाम् अस्त्रन्यासो द्रष्टव्यः। अथानन्तरं तनुम् अनु अनुलक्षीकृत्य त्रिशः त्रिवारं मन्त्रं व्यापय्य व्यापकतया विन्यस्य पुनः प्रणवं

सकृदेकवारं विन्यस्य अनन्तरं मनुजलिपयो न्यास्या मन्त्राक्षराणि न्यसतु। भूयोऽनन्तरं सादरं यथा स्यादेवं पदानि पञ्च पदानि न्यास्यानि ॥ ४९ ॥

अब अष्टादशाक्षर मन्त्र का कर न्यास कहता हूँ। दोनों हाथों की अङ्गुलियों में पूर्वोक्त (द्र० २-२६-२७) पञ्चाङ्ग न्यास करे। फिर कनिष्ठा में अस्त्र-न्यास (हुं अस्त्राय फट्) करे। तदनन्तर समस्त शरीर में पूरे अष्टादशाक्षर मन्त्र से तीन बार न्यास करे। तदनन्तर पुनः प्रणव से एक बार सारे शरीर में न्यास करे। इसके अनन्तर अष्टादश मन्त्राक्षरों से तथा पञ्चपद से नीचे कहे गये स्थानों का न्यास करे ॥ ४९ ॥

मन्त्राक्षरन्यासस्थानमाह—कचभुवीति।

कचभुवि ललाटे भ्रूयुग्मान्तरे श्रवणाक्षिणो-
र्युगलवदनग्रीवाहृन्नाभिकट्युभयान्धुषु ।
न्यसतु शितधीर्जान्वङ्घ्र्योरक्षरान् शिरसि ध्रुवं
नयनमुखहृद्गुह्याङ्घ्रिष्वर्पयेत् पदपञ्चकम् ॥ ५० ॥

कचस्य केशस्य भूरुत्पत्तिस्थानं शिरः तत्र, ललाटे, भ्रूयुग्मान्तरे भ्रूमध्ये, श्रवणाक्ष्णोर्युगले, नो नासिकायुगले च, वदने, ग्रीवायां, हृदि, नाभौ, कट्युभये, वामकटिर्दक्षिणकटिश्च, अन्धौ लिङ्गे, एतेषु तथा जान्वङ्घ्र्योश्च शितधिर्निर्मलमतिः अक्षराणि मन्त्रसम्बन्धीनि न्यसतु। अत्र जान्वोरेकमक्षरं न्यसेत्, अङ्घ्र्योरेकमक्षरं न्यसेत्, तथा शिरसि मस्तके ध्रुवं न्यसेत्। पदपञ्चकन्यासस्थानान्याह—नयनेति, नयनयुगलं मुखं हृदयं गुह्यमङ्घ्रिश्च—एतेषु मन्त्रसम्बन्धि पदपञ्चकं क्लीमित्येकम्, अन्यानि स्पष्टानि अर्पयेद् न्यसेत् ॥ ५० ॥

१ शिर, २ ललाट, ३ भ्रूमध्य, ४, ५ श्रवणयुगल, ६, ७ नेत्रयुगल, ८, ९ नासिकायुगल, १० मुख, ११ ग्रीवा, १२ हृदय, १३ नाभि, १४, १५ उभय-कटिप्रदेश (वाम कटि एवं दक्षिण कटि), १६ लिङ्ग, १७ दोनों जानु तथा १८ दोनों पैर इन स्थानों में अष्टादशाक्षर मन्त्र के एक एक अक्षर से निर्मल बुद्धि वाला साधक न्यास करे। (इसमें दोनों जानु तथा दोनों पैर में एक-एक अक्षर का न्यास करे) तदनन्तर शिर में प्रणव का न्यास करे। (अब पदपञ्चक (क्लीँ) इस मन्त्र का न्यास स्थान कहते हैं)। नेत्रयुगल, मुख, हृदय गुह्य तथा अङ्घ्रि स्थान में मन्त्रसम्बन्धि पदपञ्चक (क्लीँ) शब्द का न्यास करे ॥ ५० ॥

पञ्चाङ्गानीति।

पश्चाङ्गानि न्यस्येद् भूयो मुन्यादीनप्यन्यत्सर्वम्।
तुल्यं पूर्वेणाथो वक्ष्ये मुद्रा बन्ध्या मन्वोर्याः स्युः ॥ ५१ ॥

पञ्चाङ्गानि भूयः पुनरपि शरीरे न्यसेत्, तथा मुन्यादीन् ऋष्यादीन्, अन्यत्सर्वं केशवादिजातं पूर्वेण तुल्यं समानमेव। अत्र दशतत्त्वादिन्यासेषु मन्त्रस्थ द्विरावृत्तिविशेष इति लघुदीपिकाकारः। अथोऽनन्तरं मन्वोर्दशाक्षराष्टादशाक्षरयोर्या मुद्रा बन्ध्या बन्धनीयाः स्युर्भवेयुस्ता मुद्रा वक्ष्ये कथयामि ॥ ५१ ॥

तदनन्तर पुनः शरीर में पञ्चाङ्ग का न्यास करे। फिर ऋष्यादि न्यास करे। तदनन्तर केशव सहित सूर्य के नामों का भी पूर्वोक्त प्रकार से न्यास करे, (द्र० २-४३) अब दोनों मन्त्रों के लिये बाँधी जाने वाली मुद्रा का विधान करेंगे ॥ ५१ ॥

हृदयाद्यङ्गन्यासमुद्राः प्रदर्शयति—अनङ्गुष्ठा इत्यादि।

अनङ्गुष्ठा ऋजवो हस्तशाखा
भवेन्मुद्रा हृदये शीर्षके च।
अधोऽङ्गुष्ठा खलु मुष्टिः शिखायां
करद्वन्द्वाङ्गुलयो वर्मणि स्युः ॥ ५२ ॥

नाराचमुष्ट्युद्गतबाहुयुग्म-
काङ्गुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु।
विष्वग्विषक्तः कथिताऽस्त्रमुद्रा
यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे तु ॥ ५३ ॥

अनङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठरहिता ऋजवोऽवक्रा हस्तशाखाः हस्ताङ्गुलयः हृदये मुद्रा भवेत्, शीर्षके च शिरसि ता एव मुद्रा ज्ञेयाः, खलु निश्चये अधोऽङ्गुष्ठा मुष्टिः अधोऽङ्गुष्ठो यस्यां मुष्टौ एवं कृता मुष्टिः शिखायां मुद्रा भवेद्, वर्मणि कवचे करद्वन्द्वाङ्गुलयः स्युः मुद्रापदवाच्या भवन्ति। ध्वनिः शब्दोऽस्त्रमुद्रा कथिता। किंभूतो ध्वनिः? नाराचवद् बाणवद् मुष्टयोद्धतो यो बाहुस्तस्य युग्मकं द्वयं तस्याङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां करणाभ्यामुदितः। पुनः कीदृशः? विष्वग् दशदिक्षु विषक्तः विस्तीर्णः यत्र मन्त्रेऽक्षिणी भवतः नेत्राङ्गमस्ति तत्र तर्जनीमध्यमे मिलिते मुद्रा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मुद्रा-विधान—

बिना अँगूठे के हाथ की चार अङ्गुलियों को सीधे ऊपर उठाकर हृदय पर स्पर्श करने से हृदय की मुद्रा और उसी से शिर का स्पर्श करने से शिर की मुद्रा कही जाती है। अँगूठे को नीचे कर चार अंगुलियों से उसे बाँध लेने पर जब शिखा का स्पर्श किया जाता है तब शिखा की मुद्रा बनती है और जब दोनों हाथ की अङ्गुलियों को कवच स्थान पर लगाया जाता है तब कवच की मुद्रा कही जाती है ॥ ५२ ॥

मुट्ठी से निकाले हुये बाण के समान दोनों बाहुओं को बनाकर उसके अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी से निकली हुई वह ध्वनि जो दशों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है उसे 'अस्त्र' मुद्रा कहते हैं। तर्जनी तथा मध्यमा को मिला कर जब आँख की आकृति बन जाती है तब उसे 'अक्षिणी' मुद्रा कहते ॥ ५३ ॥

वेणुमुद्रामाह—ओष्ठ इति।

ओष्ठे वामकराङ्गुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥ ५४ ॥
तर्जनीमध्यमाऽनामाः किञ्चित्संकुच्य चालिताः।
वेणुमुद्रेह कथिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ॥ ५५ ॥

वामहस्ताङ्गुष्ठोऽधरे लग्न इति संबन्धः कार्य, तस्य वामहस्तस्य या कनिष्ठिका पञ्चमी अङ्गुली सा दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ता दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठे संबधा कार्या। तत्कनिष्ठिका दक्षिणहस्तकनिष्ठिका प्रसारिता अकुटिला कार्या। उभयहस्ततर्जनीमध्यमाऽनामिकाः किंचित्संकुच्य चालिताश्चालनीया। इत्थमिह शास्त्रे वेणुमुद्रा कथिता सुगुप्ता ग्रन्थान्तरेऽत्यन्तगुप्ता। यतो हरेः परमेश्वरस्य श्रीकृष्णस्य प्रेयसी वल्लभा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

वेणु मुद्रा का आकार इस प्रकार होता है—

बायें हाथ के अँगूठे को ओठ पर लगा देवे। पुनः बायें हाथ की कानिष्ठा अङ्गुली को दाहिने हाथ के अंगूठे से मिला देवे। पुनः दाहिने हाथ की कनिष्ठा अङ्गुली को सीधी खड़ी कर देवे और दानों हाथ की तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका को कुछ मोड़ कर चलाता रहे—इसी को शास्त्र में वेणुमुद्रा कहा गया है यह मुद्रा अन्य ग्रन्थों में कहीं नहीं कही गई है, क्योंकि यह मुद्रा विष्णु की अतीव प्रिय (प्रेयसी) है ॥ ५४-५५ ॥

नोच्यन्त इति ।

नोच्यन्तेऽत्र प्रसिद्धत्वान्मालाश्रीवत्सकौस्तुभाः ।
उच्यतेऽच्युतमुद्राणां मुद्रा बिल्वफलाकृतिः ॥ ५६ ॥

मालाश्रीवत्सकौस्तुभमुद्राः प्रसिद्धत्वान्नोच्यन्ते मया ग्रन्थकर्त्राऽप्रसिद्धमिह प्रकाश्यत इति शेषः। अत एव गले वनमालाऽभिनयनं वनमालामुद्रा, उत्तानितवामतर्जनीकनिष्ठोपरि अधोमुखदक्षिणकरकनिष्ठिकातर्जनीके संयोज्य दक्षिणकरानामिकामध्यमाङ्गुलीद्वयं वामकराङ्गुष्ठोपरि कृत्वा वामकरमध्यमोपकनिष्ठिके दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठस्याधः कुर्यादेषा श्रीवत्समुद्रा। वामकनिष्ठिकया दक्षिणकनिष्ठिकां निष्पीडच वामानामिकया दक्षिणतर्जनीं निष्पीडच शिष्टवामाङ्गुलीत्रयम् उपरि कृत्वा वामतर्जनीसहितदक्षिणहस्ताङ्गुलित्रयमुखमेकत्र योजयेदेषा कौस्तुभमुद्रा ॥ ५६ ॥

इस ग्रन्थ में वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मुद्रा के प्रसिद्ध होने से उसको नहीं कहा गया। अब आगे चल कर विष्णु के समस्त मुद्राओं में विशेष फल देने वाली विल्वफल के सदृश आकृति वाली 'बिल्वमुद्रा' कहते हैं ॥ ५६ ॥

बिल्वमुद्रामाह—अङ्गुष्ठमिति ।

अङ्गुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकराङ्गुष्ठकेनाथ बध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वाऽङ्गुलिभिरपि तथा वामहस्ताङ्गुलिभिः ।
बद्ध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह कथिता गोपनीया विधिज्ञैः ॥५७॥

वामाङ्गुष्ठम् उद्दण्डितं दण्डाकारम् ऊर्ध्वं कृत्वाऽधः कर्तव्यं तथाऽनन्तरम् इतरकराङ्गुष्ठेन बद्ध्वा तस्य च पीठे दक्षिणकराङ्गुष्ठस्तिर्यङ् कार्य इत्यर्थः। तस्याग्रं दक्षिणकराङ्गुष्ठाग्रमङ्गुलिभिः पीडयित्वा धृत्वा ता अपि दक्षिणकराङ्गुल्योऽपि वामहस्ताङ्गुलीभिर्गाढं यथा स्यादेवं बद्ध्वा विमलधीः शुद्धबुद्धिः हृदि हृदये स्थापयेत्। मारबीजं कामबीजं व्याहरन् उच्चारयन्। इत्थं विल्वाख्या एषा स्फुटं व्यक्तं यथास्यादेवमिहशास्त्रे कथिता विधिज्ञैः प्रकारज्ञैर्गोपनीया ॥ ५७ ॥

बिल्वमुद्रा इस प्रकार होती है—

बायें हाथ के अंगूठे को दण्डाकार ऊपर उठाकर उसके नीचे के भाग को दूसरे हाथ के अंगूठे से टेढ़ा कर बाँध देवे, फिर दाहिने हाथ के अँगूठे के अग्र भाग को उसी हाथ के अंगुलियों से दबा देवे, और उस पर पुनः बायें हाथ की अङ्गुलियों

को रखकर अच्छी तरह जोर से दवा देवे। इस प्रकार बाँधकर बनाई गई मुद्रा को शुद्ध बुद्धि वाला साधक हृदय प्रदेश में स्थापित करे और काम बीज (क्लीँ) मन्त्र का उच्चारण करे। यह 'बिल्वमुद्रा' स्पष्ट रूप से यहाँ कही गई। इसे जानने वाले विधिज्ञों को प्रयत्नपूर्वक इसका गोपन करना चाहिये ॥ ५७ ॥

एतस्याः फलमाह -- मन इति।

मनोवाणीदेहैर्यदिह च पुरा वाऽपि विहितं
त्वमत्या मत्या वा तदखिलमसौ दुष्कृतिचयम्।
इमां मुद्रां जानन् क्षपयति नरस्तं सुरगणा
नमन्त्यस्याधीना भवति सततं सर्वजनता ॥ ५८ ॥

असौ नरः मनुष्यः इमां मुद्रां जानन् तदखिलं संपूर्णं दुष्कृतिचय पापराशिं क्षपयति दूरीकरोति यन्मनसा वाचा देहेनाऽमत्याऽज्ञानेन मत्या ज्ञानेन वा दिवारात्रिविहितं दिवसे रात्रौ वा कृतं। "यदिह च पुरा वापि विहितम्" इति पाठे इह जन्मनि जन्मान्तरे वा विहितमित्यर्थः। न केवलं पापं दूरीकरोति अपि तु सुरगणा देवा नमन्ति, तथा अस्य मुद्राकर्तुः सततं सर्वदा सर्वजनसमूहो वश्यो भवतीत्यर्थः ॥ ५८ ॥

इस मुद्रा का फल यह है कि—

जो साधक इस मुद्रा को जानता है वह मन, वाणी तथा देह द्वारा ज्ञात रूप से तथा अज्ञात रूप से किये गये दिन रात के समस्त पापों को (अथवा जन्म-जन्मान्तर के समस्त पापों को) नष्ट कर देता है। देवगण भी उसे नमस्कार करते हैं तथा सम्पूर्ण जनसमूह उसके अधीन हो जाता है ॥ ५८ ॥

अस्त्रमन्त्रमाह—प्रणवेति।

प्रणवहृदोरवसाने सचतुर्थिसुदर्शनं तथाऽस्त्रपदं च।
उक्त्वा फडन्तममुना कलयेन्मनुनाऽस्त्रमुद्रया दशहरितः ॥ ५९ ॥

प्रणव ॐकारः हृत् नमः एतयोरवसानेऽन्ते सचतुर्थिसुदर्शनं चतुर्थीविभक्तिसहितं सुदर्शनमिति पदम् एतस्यान्ते तथाऽस्त्रपदं चतुर्थ्यन्तमस्त्रपदं, पुनः कीदृक्? फडन्तम् फट्शब्दान्तमुक्त्वाऽमुना मनुना अनेन मन्त्रेण अस्त्रमुद्रया दश हरितः कल्पयेत् दशदिग्बन्धनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५९ ॥

प्रणव (ॐ कार) हृद् (नमः) इसके अन्त में सुदर्शन तथा अस्त्र इन दो पदों को पृथक् पृथक् चतुर्थी विभक्ति से युक्त करे। फिर उसके अन्त में फट् शब्द

लगावे। पुनः इस अस्त्रमुद्रा के मन्त्र से दसों दिशाओं का बन्धन करे ॥ ५९ ॥

विमर्श—प्रयोग—ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' यह अस्त्र मन्त्र का स्वरूप हुआ। इससे दसों दिशाओं का बन्धन करना चाहिये ॥ ५९ ॥

प्राक्कृतं न्यासजातमुपसंहरन् अग्रिमपटले वक्ष्यमाणं ध्यानं सूचयति—इतीति।

इति विधाय समस्तविधिं जग-
ज्जनिविनाशविधानविशारदम्।
श्रुतिविमृग्यमजं मनुविग्रहं
स्मरतु गोपवधूजनवल्लभम् ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

———०———

इत्यनेन प्रकारेण समस्तविधिं पूर्वोक्तमखिलन्यासादिकं विधाय निर्वर्त्य गोपवधूजनवल्लभं कृष्णं स्मरतु चिन्तयतु। कीदृशं कृष्णम्? जगदुत्पत्ति-स्थितिविनाशकरणदक्षं, पुनः कीदृशम्? श्रुतिविमृग्यमुपनिषद्गम्यं, पुनः कीदृशम्? अजम् उत्पत्तिरहितम्। पुनः कीदृशम्? मनुविग्रहः मनुशरीर-मित्यर्थः ॥ ६० ॥

इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

———०———

साधक इस प्रकार सारे विधियों का संपादन कर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में पटु, उपनिषदों से जानने योग्य, अजन्मा एवं मन्त्रात्मक शरीर वाले परमात्मा श्रीकृष्ण का स्मरण करे ॥ ६० ॥

॥ इस प्रकार श्रीकेशवाचार्य विरचित क्रमदीपिका की डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का द्वितीय पटल समाप्त हुआ ॥ २ ॥

———०———

तृतीयपटलम्

इदानीं मन्त्रद्वयसाधारणं देवताध्यानमाह—अथेति ।

अथ प्रकटसौरभोद्गलितसन्मधूत्फुल्लस-
त्प्रसूननवपल्लवप्रकरनम्रशाखैर्द्रुमैः ।
प्रफुल्लनवमञ्जरीललितवल्लरीचेष्टितैः
स्मरेच्छिशिरितं शिवं शितमतिस्तु वृन्दावनम् ॥ १ ॥

अथानन्तरं शितमतिर्निर्मलमतिः वृन्दावनं स्मरेच्चिन्तयेत् । किम्भूतम् ? द्रुमैर्वृक्षैः शिशिरितं शीतलीकृतं द्रुमैः, कीदृशैः ? प्रकटेति उद्भटसौरभम् । अथ च उद्गलितो माध्वीको मधु यस्मिन् तत् अथ च उत्फुल्लं प्रफुल्लं अथ च सद्देदीप्यमानमेतादृशं प्रसूनं पुष्पं तथा नवपल्लवः अनयोर्यः प्रकरः समूहस्तेन नम्राः शाखा येषां ते तथा तैः । प्रकटसौरभाकुलितमत्तभृङ्गोल्ल-सत्प्रसूनेति पाठे प्रकटसौरभेणाकुलितं सर्वतो व्याप्तम् । अथ च मत्तभृङ्गोल्ल-सन्मत्तभ्रमरेण शोभमानमेतादृशं यत्प्रसूनमित्यर्थः । पुनः कीदृशैः प्रफुल्ला विकसिता या नवमञ्जरी तया ललिता मनोहरा या वल्लरी लताग्रशाखा-तस्याश्चेष्टितं चलनं येषु तैः, पुनः कीदृशम् ? शिवं कल्याणप्रदम् ॥ १ ॥

*** सरला ***

निर्मल बुद्धि वाले साधक को प्रकृष्ट गन्धयुक्त, मधुधारा बहाने वाले एवं विकसित पुष्पों तथा प्रभूत पत्रों के समूहों से लदे रहने के कारण कुछ झुके हुये वृक्षों से तथा विकसित मञ्जरियों से मनोहर लगने वाली और पवन वेग से हिलती हुई लताओं से शीतल कल्याणकारी वृन्दावन का स्मरण करना चाहिये ॥ १ ॥

विमर्श—पूर्वोक्त दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर दोनों मन्त्रों में श्री कृष्ण के ध्यान के लिये सर्वप्रथम जगदाधारभूत वृन्दावन धाम के ध्यान का स्वरूप इस श्लोक में और आगे भी बताया जायगा ॥ १ ॥

विकाशीति—

विकासिसुमनोरसास्वदनमञ्जुलैः सञ्चर-
च्छिलीमुखमुखोद्गतैर्मुखरितान्तरं झङ्कृतैः ।
कपोतशुकसारिकापरभृतादिभिः पत्रिभि-
र्विराणितमितस्ततो भुजगशत्रुनृत्याकुलम् ॥ २ ॥

पुनः कीदृशम् ? वृन्दावनं झङ्कृतैः शब्दविशेषैर्मुखरितान्तरं शब्दायमानाभ्यन्तरं, कीदृशैः ? झङ्कृतैः विकाशिन्याः प्रफुल्लायाः सुमनसः पुष्पस्य यो रसः मधु तस्य यदास्वादनम् अवलेहनं तेन मञ्जुलैर्मनोहरैः, पुनःकीदृशैः ? सञ्चरेति सञ्चरन्तो भ्रमन्तो ये शिलीमुखा भ्रमरास्तेषां मुखेभ्य उद्गतैः समुत्थितैः, पुनः कीदृशम् ? वृन्दावनं कपोतेति पारावतशुकशारिकाकोकिलप्रभृतिभिः पक्षिभिरितस्ततो विराणितं शब्दायितम्, पुनःकीदृशं ? भुजगशत्रुर्मयूरस्तस्य नृत्येनाकुलं व्याप्तम् ॥ २ ॥

खिले हुये फूलों के मकरन्द पीते रहने के कारण मनोहर लगने वाले तथा इतस्ततः भ्रमण करने वाले भौंरे जहाँ गुञ्जार कर रहे हैं उस वृन्दावन के भीतर कपोत, शुक; सारिका एवं कोयलों के विविध शब्दों से जो शोभित हो रहा है और जहाँ–तहाँ मयूरों के नृत्यों से जो परिपूर्ण है— ऐसे वृन्दावन का स्मरण करना चाहिये ॥ २ ॥

कलिन्देति—

कलिन्ददुहितुश्चलल्लहरिविप्रुषां वाहिभि-
र्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोद्धूसरैः ।
प्रदीपितमनोभवव्रजविलासिनीवाससां
विलोलनपरैर्निषेवितमनारतं मारुतैः ॥ ३ ॥

पुनः कीदृशम् ? मारुतैर्वायुभिः अनारतं सर्वदा निषेवितम्, कीदृशैर्मारुतैः ? कलिन्देति कलिन्ददुहितुर्यमुनायाः चलन्त्यो या लहर्य्यः तासां या विप्रुषो जलबिन्दवः तासां वाहिभिः, एतेन वायोः शैत्यमुक्तम् । पुनः कीदृशैः ? विनिद्रेति विनिद्रं प्रफुल्लं यत्सरसीरुहं पद्मं तस्य यदुदरम् अभ्यन्तरं तत्र यो रजश्चयो धूलीसमूहः तेन उद्धूसरैः, एतेन सौरभ्यमुक्तम् । पुनःकीदृशैः ? प्रदीपितेति प्रदीपितोऽतिशयितो मनोभवः कामो यासां

व्रजविलासिनीनाङ्गोपसुन्दरीणां तासां यानि वासांसि वस्त्राणि तेषां विलोलनपरैः चालनाशक्तैः, एतेन मान्द्यमुक्तम् ॥ ३ ॥

साधक यमुना के जल में उठने वाली लहर समूहों के बिन्दुओं से व्याप्त अत एव शीतल खिले हुये कमलों के भीतर रहने वाले परागों से धूसरित, अतएव सुगन्ध-युक्त कामासक्त व्रजललनाओं के वस्त्रों को मन्द मन्द उड़ाते रहने के कारण मन्दायमान इस प्रकार शीतल मन्द और सुगन्ध वायु से व्याप्त वृन्दावन का स्मरण करे ॥ ३ ॥

प्रवालेति—

प्रवालनवपल्लवं मरकतच्छदं वज्रमौ-
क्तिकप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम् ।
स्थविष्ठमखिलर्तुभिः सततसेवितम् कामदं
तदन्तरपि कल्पकाङ्घ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ॥ ४ ॥

तदन्तरपि वृन्दावनमध्ये कल्पकाङ्घ्रिपमपि चिन्तयेत् । कीदृशम् ? उदञ्चितम् उच्छ्रितं, पुनः कीदृशम् ? स्थविष्ठं स्थूलतरं पुनः कीदृशम् ? प्रवालो विद्रुमः स एव नवपल्लवः किसलयं यस्य तं, पुनः कीदृशम् ? मरकतो यो मणिविशेषः स एव छदं पत्रं यस्य तं, पुनः कीदृशम् ? वज्रं हीरकं मौक्तिकं मुक्ता—

अनयोर्यः प्रकरः समूहः स एव कोरकः पुष्पकलिका यत्र तं, पुनः कीदृशम् ? कमलरागः पद्मरागमणिः स एव नाना बहुविधं फलं यत्र तं, पुनः कीदृशम् ? अखिलैर्ऋतुभिः षड्भिरपि ऋतुभिः सततं सेवितं सदापरिगृहीतम्, एतेन सर्वपुष्पान्वितत्वं दर्शितं, पुनःकीदृशं ? कामदम्=आकाङ्क्षितप्रदम् ॥ ४ ॥

जिस वृन्दावन के भीतर ऊँचे ऊँचे तथा मोटे मोटे कल्प वृक्ष विद्यमान हैं; जिसमें प्रवाल के नये नये पल्लव लगे हुये हैं, एवं जिसकी पत्तियाँ मरकतमणि जैसी हरी भरी हैं, जो हीरे तथा मोतियों के समूहों के कोरकों (कलियों) से व्याप्त है, तथा पद्मराग मणियों के विविध फलों से जो परिपूर्ण हैं, जहाँ निरन्तर षड् ऋतुओं का निवास है एवं जो संपूर्ण अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान करने में समर्थ हैं, साधक को ऐसे कल्पवृक्षों (से व्याप्त वृन्दावन) का स्मरण करना चाहिए ॥ ४ ॥

सुहेमेति ।

सुहेमशिखराचलेऽप्युदितभानुवद्भास्वरा
मधोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।

प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेणुपुञ्जोज्ज्वलां
स्मरेत्पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गां बुधः ॥ ५ ॥

बुधः पण्डितः अतन्द्रितः निरालस्यः आलस्यरहितः सन् अस्य कल्पवृक्षस्याधस्तात् कनकस्थलीं सुवर्णमयीं भूमिं पुनः स्मरेत् चिन्तयेत्। किम्भूतां सुहेमेति ? शोभमाना सुवर्णशृङ्गपङ्क्तिर्यस्य। तथा तस्मादुदयाचलादुदितभानुवत् प्रकटितसूर्यवत् भास्वरां देदीप्यमानां सुहेमशिखराचलेष्युदितेति पाठे शोभनं हेमशृङ्गं यत्र अचले पर्वते तस्मिन् अपिशब्दो भिन्नक्रमः कनकस्थलीमित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यम्। अस्य कीदृशस्य अमृतेति ? अमृतस्य यः शीकरः कणस्तस्यासारो यः समूहः पतनं तच्छालि यथा स्यात्तथा तस्यामृतकणसमूहसंवर्षिणः, कीदृशीम् ? प्रदीप्तैः दीप्यमानमणिभिः पद्मरागादिभिः बद्धभूमिं, पुनः कीदृशीम् ? कुसुमेति कुसुमरेणुञ्जैरुज्ज्वलां, पुनः कीदृशीम् ? विगतेति विगता दूरीभूता षट्तरङ्गाः कामक्रोधादयः अशनायापिपासाशोकमोहजरामृत्यवो वा यस्यास्तां ॥ ५ ॥

पुनः साधक आलस्य रहित हो सावधानी के साथ अमृतकण समूहों की वर्षा करने वाले उस कल्पवृक्ष के नीचे रहने वाली सुवर्णमयी भूमि का स्मरण करे। जो सुमेरु पर्वत के सुवर्णमय शिखर से उदीयमान होने वाले सूर्य के समान निरन्तर देदीप्यमान है, जिसके नीचे का कुट्टिम (गच या फर्श), पद्मरागादिमणियों को कूट कूट कर बनाया गया है एवं जो भूमि पुष्परागपुञ्जों से उज्ज्वल दिखाई पड़ रही है तथा जहाँ से कामक्रोधादि षड्विकार अथवा भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा एवं मृत्यु रूप षडूर्मियाँ दूर भागी रहती हैं ॥ ५ ॥

तद्रत्नेति।

तद्रत्नकुट्टिमनिविष्टमहिष्ठयोग-
पीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य।
उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्य मध्ये
सञ्चिन्तयेत्सुखनिविष्टमथो मुकुन्दम् ॥ ६ ॥

तस्याः कनकस्थल्याः यद्रत्नकुट्टिमं रत्नबद्धभूभागः तत्र निविष्टं स्थितं महिष्ठं महद्योगपीठं तत्राष्टपत्रम् अष्टौ पत्राणि यत्र तत्तथाऽरुणं लोहितम्, अत एवोद्यतादित्यसन्निभम्, एवंभूतं पद्मं विचिन्त्य अथानन्तरम् अमुष्यारुणवर्णाष्टदलकमलस्य मध्ये मुकुन्दं कृष्णं चिन्तयेत्। कीदृशम् ? सुखनिविष्टं सुखासीनम् आदिकुलकमत आरभ्य ॥ ६ ॥

उस सुवर्णमयी भूमि का वह भाग जहाँ रत्नों को कूट-कूट कर गच (फर्श) बनाया गया है, उस पर उदीयमान सूर्य के समान लाल वर्ण वाले योग-पीठ स्वरूप अष्टदल कमल का ध्यान कर उसके मध्य में सुखपूर्वक बैठे हुए भगवान् श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ६ ॥

सूत्रामेति—

सुत्रामरत्नदलिताञ्जनमेघपुञ्ज-
प्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।
सुस्निग्धनीलघनकुञ्चितकेशजालं
राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ॥ ७ ॥

पुनः कीदृशम् ? सुत्रामरत्नम् इन्द्रनीलमणिः दलिताञ्जनं भिन्नाञ्जनं घृष्टकज्जलमिति मेघपुञ्जो मेघसमूहः प्रत्यग्रनीलजलजन्म नवीननीलपद्मम् एषां समाना भा दीप्तिर्यस्य तम्, पुनः कीदृशम् ? सुस्निग्धेति सुस्निग्धाः सुचिक्कणाः नीलाः श्यामा घना निविडाः कुञ्चिताः कुटिलाः ये केशास्तेषां जालं समूहो यत्र तम्, पुनः कीदृशम् ? राजन्निति राजत् शोभमानं मनोज्ञं मनोहरं यच्छितिकण्ठशिखण्डं मयूरपिच्छं तदेव चूडायां यस्य तम् ॥ ७ ॥

जिनके शरीर की कान्ति इन्द्रनीलमणि के समान, घिसे हुए काजल, मेघसमूह तथा नवीन नील पद्मों के समान श्याम है और जिनके केश जाल अत्यन्त चिकने काले-काले घने तथा कुटिल हैं एवं मयूर के पिच्छ का मुकुट जिनके शिर पर विराजमान है—ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ७ ॥

रोलम्बेति—

रोलम्बलालितसुरद्रुमसूनकल्पि-
तोत्तंसमुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।
लोलालकस्फुरितभालतलप्रदीप्त-
गोरोचनातिलकमुच्चलचिल्लिमालम् ॥ ८ ॥

पुनः कीदृशम् ? रोलम्बेति रोलम्बो भ्रमरस्तेन लालितं प्रीत्या सेवितं यत् सुरद्रुमप्रसूनं पारिजातपुष्पं तेन कल्पितः रचित उत्तंसः शिरोभूषणं येन स तथा तम्, पुनः कीदृशमुत्कचम् ? विकसितं यन्नवोत्पलं तदेव कर्णाभरणं यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? लोलाश्चञ्चलाः अलकाः केशविशेषास्तैः स्फुरितं

शोभमानं यद्भालतलं ललाटतलं तत्र प्रदीप्तं गोरोचनातिलकं यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? उच्चलचिल्लिमालञ्चचञ्चलभ्रूलताकम् ॥ ८ ॥

जिनका शिरोभूषण भ्रमरों से सेवित हुए पारिजात के पुष्पों के द्वारा निर्मित है और कर्णभूषण नवीन खिले हुए कमलों के द्वारा निर्मित है; चञ्चल और गभुआरे केशों से विराजमान जिनका भाल प्रदेश गोरोचन के तिलक से जगमगा रहा है, तथा जिनकी भ्रूलतायें (कटाक्ष चितवन) निरन्तर चञ्चल हैं ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ८ ॥

आपूर्णेति—

आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कबिम्ब-
कान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम् ।
रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरश्मिदीप्त-
गण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ॥ ९ ॥

पुनः कीदृशम् ? आपूर्णः सम्पूर्णः शारदः शरत्सम्बन्धी गताङ्कः कलङ्क-रहितः एवम्भूतो यः शशाङ्कबिम्बश्चन्द्रमण्डलस्तद्वत् कान्तं मनोहरम् आननं मुखं यस्य तथा तम्, पुनःकीदृशम् ? कमलपत्रवद्विशाले विस्तीर्णे नेत्रे यस्य स तथा तम्, पुनःकीदृशम् ? रत्नेति रत्नैः स्फुरच्छोभमानं यन्मकरकुण्डलं मकराकारकुण्डलं तस्य ये रश्मयः तैः प्रदीप्ता शोभमाना गण्डस्थली स एव मुकुरो दर्पणो यस्य तथा तम्; पुनः कीदृशम् ? उन्नतेति उन्नता मनोहरा नासा यस्य स तथा तम् ॥ ९ ॥

शरत्काल के पूर्णचन्द्र के बिम्ब के समान सर्वथा निष्कलङ्क जिनका मुख चन्द्र मनोहर है, एवं जिनके नेत्र कमल के समान विशाल हैं और देदीप्यमान रत्नों के बने हुए मकराकृति कुण्डल की रश्मियों से जिनके गण्डस्थल दर्पण के समान शोभित हो रहे हैं तथा जिनकी नासिका अत्यन्त ऊँची और मनोहर है—ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ९ ॥

सिन्दूरेति—

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्द-
मन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम् ।
वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावक्लृप्त-
ग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम् ॥ १० ॥

पुनः कीदृशम् ? सिन्दूरवन्मनोहरो अधरो यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? इन्दुकुन्देति इन्दुश्च कुन्दं कुन्दपुष्पं मन्दारः शुक्लमन्दारः अर्कपुष्पं वा तद्वत् मन्दहसितम् ईषद्धास्यं तस्य द्युतिर्दीप्तिः तया दीपिता शोभिता आशा दिशो येन स तथा तत्, पुनः कीदृशम् ? वन्येति वन्यं वनोद्भवं यत्प्रबालकुसुमं नवपल्लवपुष्पं तस्य यः समूहस्तेनावक्लृप्तं सम्पादितं यद् ग्रैवेयकं कण्ठाभरणं तेन उज्ज्वलो देदीप्यमानो मनोहरः कम्बुकण्ठः त्रिरेखाङ्कितः कण्ठो यस्य स तथा तम् ॥ १० ॥

जिनका अधर प्रदेश सिन्दूर के समान अरुण और मनोहर है, इन्दु, कुन्दपुष्प तथा शुक्ल वर्ण वाले अर्कपुष्प के समान स्वच्छ जिनके अधरों के मन्दहास से दसों दिशायें प्रकाशित हो रही हैं तथा जिनका तीन रेखाओं से परिपूर्ण कण्ठ प्रदेश वन में होने वाले नवीन पल्लवों और पुष्पों के समूहों से विरचित कण्ठाभरण से मनोहर प्रतीत हो रहा है—ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ १० ॥

मत्तेति—

मत्तभ्रमद्भ्रमरजुष्टविलम्बमानं
सन्तानकप्रसवदामपरिष्कृतांसम् ।
हारावलीभगणराजितपीवरोरो-
व्योमस्थलीलसितकौस्तुभभानुमन्तम् ॥ ११ ॥

पुनः कीदृशम् ? मत्ताः कृतमधुपाना भ्रमन्तश्चरन्तो ये भ्रमरास्तैः जुष्टं सेवितम्, अथ च विलम्बमानम् एवभूतं यत्सन्तानकप्रसवदाम कल्पवृक्षपुष्पदाम तेन दाम्ना परिष्कृतःस्वलंकृतो अंसो यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? हारावल्येव भगणो नक्षत्रसमूहः तेन राजितं शोभितं पीवरं मांसलं यदुरो हृदयं तदेव व्योमस्थल आकाशभूमिः तया लसितः शोभितः कौस्तुभ एव भानुः सूर्यस्तेन युक्तम् । अत्र रूपकालङ्कार एव नोपमालङ्कारः नक्षत्रगणसूर्य्ययोरसम्बन्धत्वात् । एवं च सत्येककाले द्वयोः शोभा लभ्यत इति भावः ॥ ११ ॥

जिनके कन्धों पर भ्रमरों से सेवित कल्पवृक्ष के प्रसूनों की माला विराजमान हैं, एवं जिनके मांसल हृदय प्रदेश रूपी आकाश मण्डल में हारावली रूपी नक्षत्रों की माला तथा कौस्तुभमणि स्वरूप सूर्य एक कालावच्छेदेन शोभित हो रहे हैं—ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिएं ॥ ११ ॥

श्रीवत्सेति—

श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांस-
माजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम् ।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं-
भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम् ॥ १२ ॥

पुनः कीदृशम् ? श्रीवत्ससंज्ञं यल्लक्षणं चिह्नं तेन सुलक्षितः प्रव्यक्तः तम्, पुनः कीदृशम् ? उन्नतौ ऊर्द्धौ अंसौ स्कन्धौ यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? आजान्विति जानुव्यापिनौ पीनौ मांसलौ परिवृत्तौ क्रमवलितौ सुजातौ दोषरहितौ बाहू यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? आबन्धुरोदरं निम्नोन्नतोदरम् आ इषन्मुष्टिग्राह्यं बन्धुरं रम्यमुदरं यस्य तमिति वा, पुनः कीदृशम् ? उदारा विख्याता गम्भीरा नाभिर्यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? भृङ्गाङ्गना भ्रमरस्त्री तस्याः यः समूहः तद्वन्मञ्जुला मनोहरा रोमराजी रोमपङ्क्तिर्यस्य स तथा तम् मङ्गलेति क्वचित् पाठः । मङ्गला शुभदात्रीति तथा तम् ॥१२॥

जिनके हृदयप्रदेश पर 'श्रीवत्स' नामक चिह्न शोभा पा रहा है, दोनों कन्धे अत्यन्त ऊँचे हैं तथा जिनकी सर्वथा निर्दोष जभुायें मांसल गोली तथा जानुपर्यन्त लटकी हुई हैं। निम्नोन्नत उदर प्रदेश मुष्टि-ग्राह्य एवं मनोहर है। नाभि अत्यन्त गम्भीर है और जिनकी रोमराजी, भ्रमर स्त्रीसमूहों के समान अत्यन्त मनोहर है ॥ १२ ॥

नानेति—

नानामणिप्रघटिताङ्गदकङ्कणोर्मि-
ग्रैवेयसारसननूपुरतुन्दबन्धम् ।
दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टि-
मापीतवस्त्रपरिवीतनितम्बबिम्बम् ॥ १३ ॥

पुनः कीदृशम् ? नानामणिभिरिन्द्रनीलादिभिर्घटिताः सम्बद्धाः । अङ्गदाः बाहुवलयाः स्तथा कङ्कणाः ऊर्मिर्मुद्रिका ग्रैवेयं ग्रीवालङ्कारः रसनया क्षुद्रघण्टिकया सह आसमन्तात् वर्त्तेते यौ नूपुरौ तुन्दबन्धःउदरबन्धनार्थम् सुवर्णडोरकम् एते अलङ्कारा यस्य स तथा ? तम्, पुनः कीदृशम् ? दिव्यः परमोत्कृष्टो योऽङ्गरागः सुगन्धिचूर्णं तेन पिञ्जरिता नानावर्णा अङ्गयष्टि-

रङ्गलता यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? आपीतम् अतिशयेन पीतं यद्वस्त्रं तेन परितो वीतो वेष्टितो नितम्बबिम्बो येन स तथा तम् यद्यपि स्त्रीकट्यां नितम्बपदप्रयोगः कोशे दृश्यते तथापि तद्वन्मनोहरतया पुंस्कट्यामपि प्रयोगो न विरुद्धः ॥ १३ ॥

जिनके बाहुवलय कङ्कण, अँगूठी, ग्रैवेय (= बाजूबन्द) काञ्ची के सहित नूपुर एवं उदरबन्धन के लिए सुवर्ण के डोरे नाना प्रकार की मणियों से विरचित हैं, जिनकी अङ्गयष्टि दिव्य अङ्गरागों से भूषित होने के कारण नाना वर्णों से सुशोभित हो रही है तथा जिनका नितम्बभाग पीताम्बर से आच्छादित है ॥ १३ ॥

चारूरुजान्विति—

चारूरुजानुमनुवृत्तमनोज्ञजङ्घं
कान्तोन्नतप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।
माणिक्यदर्पणलसन्नखराजिराज-
द्रक्ताङ्गुलिच्छदनसुन्दरपादपद्मम् ॥ १४ ॥

पुनः कीदृशम् ? कान्तौ कमनीयौ उन्नतौ उच्चौ यौ प्रपदौ पादाग्रौ ताभ्यां निन्दिता तिरस्कृता कूर्मस्य कच्छपस्य कान्तिः दीप्तिर्येन स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? माणिक्यघटितो यो दर्पणस्तद्वल्लसन्ती शोभमाना नखपङ्क्तिः तया राजन्त्यः शोभमाना या रक्ताङ्गुलयस्ता एव च्छदनानि पत्राणि तैः सुन्दरं पादपद्मं यस्य स तथा तम् ॥ १४ ॥

जिनके ऊरु और जानु अत्यन्त मनोहर हैं, वर्त्तुलाकार जङ्घे मन को हरण करने वाले हैं तथा अत्यन्त मनोहर पादाग्रभाग कच्छप की कान्ति को भी तिरस्कृत कर रहे हैं। और माणिक्यनिर्मितदर्पण के समान नख पङ्क्तियों से शोभित लालपत्ते के समान रक्तवर्ण की अङ्गुलियों से युक्त जिनके चरण कमल अत्यन्त मनोहर हैं ॥ १४ ॥

मत्स्येति—

मत्स्याङ्कुशारिदरकेतुयवाब्जवज्र-
संलक्षितारुणतराङ्घ्रितलाभिरामम् ।
लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्ग-
सौन्दर्य्यनिर्जितमनोभवदेहकान्तिम् ॥ १५ ॥

पुनः कीदृशम् ? मत्स्यो मीनः अङ्कुशो अस्त्रविशेषः अरिश्चक्र दरः शङ्खः केतुर्ध्वजः यवः प्रसिद्धः अब्जं पद्मं वज्रः कुलिशाकारस्त्रिकोणः एतैः सुलक्षितं सम्यक्विहितं यदरुणतराङ्घ्रितलं लोहिततरचरणतलं तेनाभिरामः सर्वजनप्रियस्तम्, पुनः कीदृशम् ? लावण्यस्य सौन्दर्यस्य यः सारसमुदायः उत्कृष्टभागसमुदायः तेन विनिर्मितं घटितं यदङ्गसौन्दर्य्यं तेन निन्दिता तिरस्कृता मनोभवस्य कामदेवस्य कान्तिः शरीरशोभा येन स तथोक्तम् ।। १५ ।।

जिनके चरण के तलवे में १ मछली २ अंकुश ३ चक्र ४ शङ्ख ५ ध्वज ६ यव ७ कमल और ८ वज्र के चिह्न हैं, अरुणाई से व्याप्त होने के कारण जो अत्यन्त मनोहर हैं तथा सौन्दर्यसार से निर्मित जिनके शरीर का सौष्ठव, कामदेव की शरीर शोभा को तिरस्कृत कर रहा है ।। १५ ।।

आस्येति—

आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्र-
लोलत्कराङ्गुलिसमीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद् द्रवीकृतविकृष्टसमस्तजन्तु-
सन्तानसन्ततिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ।। १६ ।।

पुनः कीदृशम् ? शश्वन्नित्यं द्रवीकृताऽनायतीकृता विकृष्टा आकृष्टा समस्तजन्तोः प्राणिनः सन्तानसन्ततिः सन्तानपरम्परा येन स तथा तं, कैः ? आस्यमेवारविन्दं पद्मं तेन परिपूरितं यद्वेणुरन्ध्रं वंशीरन्ध्रम् अत्र लोलन्ती चञ्चला या कराङ्गुलिस्तया समीरिताः समुत्पादिताः ये दिव्या उत्कृष्टा रागा ध्वनयः स्वरास्तैरित्यर्थः । पुनः कीदृशम् ? अनन्तेति अपरिमितानन्दसमुद्रम् ।। १६ ।।

मुख कमल में लगे हुए वेणु के छिद्रों पर रखी गयी अपनी अङ्गुलियों के चलाने से उत्पन्न दिव्यस्वरों द्वारा जो सारे प्राणियों की सन्तान-परम्परा को निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं तथा अपरिमित आनन्द के समुद्र हैं ।। १६ ।।

गोभिरिति—

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभि-
रूधोभरस्खलितमन्थरमन्दगामिः ।
दन्ताग्रदष्टपरिशिष्टतृणाङ्कुराभि-
रालम्बिवालधिलताभिरथाऽभिवीतम् ।। १७ ।।

पुनः कीदृशम् ? अथानन्तरं गोभिरभिवीतं सर्वतोवेष्टितम्, किम्भूताभिः ? मुखाम्बुजे परमेश्वरमुखपद्मे विलीने सम्बद्धे लोचने यासान्तास्तथा ताभिः, पुनः किम्भूताभिः ? ऊधोभरेति स्तनगौरवस्खलनसालसाल्पगमनशीलाभिः; पुनः किम्भूताभिः ? दन्ताग्रेण दष्टः परिशिष्टतृणाङ्कुरो भक्षणावशिष्ट-तृणाङ्कुरो याभिस्ताः तथा ताभिः, पुनः किम्भूताभिः ? आलम्बीति आलम्बिनी लम्बमाना वालधिलता पुच्छलता यासां तास्तथा ताभिः ॥ १७ ॥

बृहत् स्तनभार से मन्द-मन्द गमन करने वाली, दाँतों में भक्षण से शेष तृणाङ्कुरों को धारण करने वाली, तथा लटकती हुई पूँछ रूपी लताओं वाली गौवें जिनके मुख-कमल की ओर निरन्तर टकटकी लगाये देख रही हैं। इस प्रकार की गौओं से जो चारों तरफ से घिरे हुए हैं—ऐसे श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ १७ ॥

सप्रस्रवस्तनविचूषणपूर्णानिश्च-
लास्यावटक्षरितफेनिलदुग्धमुग्धैः ।
वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीति-
दत्तोच्चकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥ १८ ॥

पुनः कीदृशम् ? तर्णकैश्चैकवार्षिकैश्चाभिवीतमिति पूर्वेणान्वयः कीदृशैः ? प्रस्रवेन क्षरद्दुग्धेन सह वर्तते यत् स्तनविचूषणं दन्तोष्ठेन स्तनाकर्षणं तेन परिपूर्णो निश्चलः स्थिरश्च य आस्यावटः मुखविवरं ततः क्षरितङ्गलितं यत् फेनिलं सफेनं दुग्धं तेन मुग्धैर्मनोहरैः, पुनः कीदृशैः ? वेण्विति वेणुर्वंशी तेन प्रवर्त्तिता चालिता मनोहरा आह्लादकारिणी मन्द्राऽनल्पा या गीतिर्गानं तत्र दत्तम् उच्चं कर्णयुगलं यैः तथा तैः ॥ १८ ॥

अपने दाँतों एवं ओष्ठ के प्रान्तभागों से गायों के स्तन से श्रवित हूए दुग्ध का निरन्तर पान करते समय मुख विबर से गिरते हुए सफेन दूध से मनोहर दिखाई पड़ने वाले, तथा वंशी से निकले हूए आह्लादकारी गान पर मुग्ध होने के कारण अपने दोनों कानों ऊपर उठाये हुए गोवत्सों से चारों ओर घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ १८ ॥

प्रत्यग्रेति—

प्रत्यग्रशृङ्गमृदुमस्तकसम्प्रहार-
संरम्भवल्गनविलोलखुराग्रपातैः ।

आमेदुरैर्बहुलसास्नगलैरुदग्र-
पुच्छैश्च वत्सतरवत्सतरीनिकायैः ॥ १६ ॥

पुनः कीदृशम् ? वत्सतरः त्रैवार्षिको वलीवर्दः वत्सतरी त्रैवार्षिकी गौः एतयोः निकायैः समूहैः प्रत्यग्रं नवीनं शृङ्गं यस्मिन्नेवम्भूतं यत् मृदु मस्तकं तत्र यः सम्प्रहारः अभिघातः अन्यवत्सतरस्य युध्यतः तेन यः संरम्भ क्रोधातिशयस्तेन यद्वलगनमितस्ततो विचलनं तेन विलोलः अनवस्थितः खुराग्रपातो येषां ते तथा तैः, पुनः कीदृशैः ? आमेदुरैः सुस्निग्धैः पुष्टैरिति वा पुनः कीदृशैः ? बहुलातिशयिता सास्ना यत्र स एवम्भूतो गलो येषां ते तथा तैः सास्ना च गलकम्बलः, पुनः कीदृशैः ? उदग्रपुच्छैः ॥ १९ ॥

नवीन निकले हुए सींगों से कोमल मस्तक पर परस्पर युद्ध काल में एक दूसरे पर प्रहार से उत्पन्न क्रोधातिशय से विचलित हो जाने के कारण जिनके खुराग्र-भाग एक स्थान पर नहीं टिक पा रहे हैं और जिनके गले में बड़ी बड़ी चिकनी सास्ना (गल कम्बल) से सुशोभित हैं एवं जो अपनी पूछें ऊपर की ओर उठाये हुए हैं ऐसे बलीवर्द तथा वत्सतरियों के समूहों से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ १९ ॥

हम्वारवेति—

हम्वारवक्षुभितदिग्वलयैर्महद्भि-
रप्युक्षभिः पृथुककुद्भरभारखिन्नैः ।
उत्तम्भितश्रुतिपुटीपरिपीतवंश-
ध्वानामृतोद्धृतविकाशिविशालघोणैः ॥ २० ॥

पुनः कीदृशम् ? महद्भिरुक्षभिर्वलीवर्दैरप्यभिवीतं कीदृशैः हम्वारवेण स्वरविशेषेण क्षुभितः क्षोभं प्रापितो दिग्वलयो दिक्समूहो यैस्ते तथा तैः, पुनः कीदृशैः ? पृथुरतिशयितो यः ककुद्भरः अपरगलभरः स एव भारस्तेन खिन्नैः अलसैः, पुनः कीदृशैः ? उत्तम्भितेति ऊर्ध्वं स्तम्भिता उत्थापिता या श्रुति-पुटी तया परिपीतमतिशयेन श्रुतं यद्वंशस्य ध्वानामृतं शब्दरूपामृतं तेनोद्वृत्ता ऊर्ध्वं प्रापिता विकाशिनी प्रस्फुटा विशाला दीर्घा घोणा नासा येषां ते तथा तैः ॥ २० ॥

अपनी घनघोर गर्जना से जिन्होंने दिशासमूहों को क्षुब्ध कर दिया है, मोटे एवं विशाल ककुदों (डील) के भार से जिनकी गति मन्द पड़ गयी है तथा जो अपने

दोनों कानों को उठाकर वंशी से निकले हुए शब्दामृत का पान करते हुए अपनी विकसित और विशाल नासिका को ऊपर की ओर उठाये हुए हैं इस प्रकार के बलीवर्दों से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २० ॥

गोपैरिति—

गोपैः समानगुणशीलवयोविलास-
वेशैश्च मूर्च्छितकलस्वरवेणुवीणैः ।
मन्द्रोच्चतानपटुगानपरैर्विलोल-
दोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥ २१ ॥

पुनः कीदृशम् ? गोपैश्चाभिवीतम्, कीदृशैः ? समानेति गुण उदयादिः शीलं धैर्यादि वयो बाल्यादि विलासः क्रीडनं वेशः संस्थानविशेषः समानाः तुल्याः गुणशीलादयो येषां ते तथा तैः, पुनः कीदृशैः ? मूर्छां प्रापितः कलोऽव्यक्तमधुरः स्वरो रागो यत्र वेणुश्च वेणा च वेणुवीणे मूर्छितकलस्वरे वेणुबीणे येषां तैः तथा, तदुक्तं—

स्वरः सम्मूर्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते ।
मूर्छनामिति तां प्राहुः कवयो ग्रामसम्भवाम् ॥
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।

पुनः कीदृशैः ? मन्द्रोच्चेति मन्द्रं नीचैः उच्चमतिशयितं तारो यतिविशेषस्तेन पटु स्पष्टं यद्गानं तत्परैस्तदासक्तैः, पुनः कीदृशैः ? विलोलेति विलोला या दोर्वल्लरी बाहुलता तया यल्ललितं मनोहरं लास्यं नृत्यन्तस्य विधानं करणं तत्र दक्षैः कुशलैः ॥ २१ ॥

समान गुण (दयादि), समान शील (धैर्यादि) समानवय (बाल्यादि), समान विलास (खेल) एवं समान वेश वाले वेणु एवं वीणा के द्वारा राग युक्त कल स्वर से अवरोह एवं आरोह पूर्वक स्पष्ट रूप से गान करने वाले एवं दोनों भुजा रूपी लताओं को ऊपर उठाकर ललित नृत्य करने में कुशल ऐसे गोपगणों से घिरे हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २१ ॥

जङ्घान्तेति—

जङ्घान्तपीवरकटीरतटीनिबद्ध-
व्यालोलकिङ्किणिघटारटितैरटद्भिः ।

मुग्धैस्तरक्षुनखकल्पितकण्ठभूषै-
रव्यक्तमञ्जुवचनैः पृथुकैः परीतम् ॥ २२ ॥

पुनःकी दृशम् ? पृथुकैर्बालकैः परीतं वेष्टितम्, कीदृशैः ? जङ्घासमीपे पीवरा मांसला या कटीरतटी कटीस्थली तास्यां निबद्धा व्यालोला चञ्चला या किङ्किणिघटा काञ्चीसमूहः तस्य रटितैः शब्दैरटद्भिः सञ्चरद्भिः, पुनः कीदृशैः ? मुग्धैर्मनोहरैः, पुनः किम्भूतैः ? तरक्षुनखेन व्याघ्रनखेन कल्पिता सम्पादिता कण्ठभूषा कण्ठालङ्कारो यैः ते तथा तैर्बालकानां रक्षार्थं कण्ठे व्याघ्र नखबन्धनं क्रियते यतः। पुनः कीदृशैः ? अव्यक्तमस्पष्टम् अथ च मञ्जुलं मनोहरम् एवम्भूतं वचनं येषान्ते तथा तैः॥ २२ ॥

जिनके जङ्घा के समीप में रहने वाली मांसल कटि तटी में पहनी गयी क्षुद्र-घण्टिका शब्दायमान हो रही है एवं जिनके गले में व्याघ्रनख का कण्ठाभूषण शोभा पा रहा है और अस्पष्ट बोलने के कारण अपनी तोतली बोली से जो मन को हर लेते हैं ऐसे गोपबालकों से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥

अथेति—

अथ सुललितगोपसुन्दरीणां
पृथुनिविरीसनितम्बमन्थराणाम्।
गुरुकुचभरभङ्गुरावलग्न-
त्रिवलिविजृम्भितरोमराजिभाजाम् ॥ २३ ॥

पुनः कीदृशम् ? अथाऽनन्तरं मनोहरगोपस्त्रीणामालिभिः पङ्क्तिभिः समन्तात्सर्वतः सततं नित्यं सेवितमित्यष्टमश्लोकेनान्वयः।

किम्भूतानाम् ? पृथुबृहन्निविरीसो निविडो यो नितम्बः कटिपश्चाद्भागः तेन मन्थराणां गमनाशक्तानां, पुनः किम्भूतानाम् ? गुरुरतिशयितो यः कुचभरः स्तनगौरवं तेन भङ्गुरमीषन्नाम् यत् अवलग्नं मध्यप्रदेशः तत्र यद्वलित्रयं तत्र विजृम्भिता वितता रोमपङ्क्तिर्यासान्तासाम् ॥ २३ ॥

बृहन्नितम्ब के कारण मन्थर गति वाली, तथा बृहत्-स्तन के भार से कुछ झुके हुए कटिप्रदेश पर त्रिवली युक्त रोमराजियों वाली गोप सुन्दरियों से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २३ ॥

तदिति—

तदतिमधुरचारुवेणुवाद्या-
मृतरसपल्लविताङ्गजाङ्घ्रिपाणाम्।

मुकुलविसररम्यरुढरोमो-
दूगमसमलङ्कृतगात्रवल्लरीणाम् ॥ २४ ॥

पुनः कीदृशीनाम् ? तस्य श्रीकृष्णस्यातिमधुरम् अतिप्रीतिदायकं चारु मनोहरं यद्वेणुवाद्यं वंशीरवः स एवामृतरसः अमृतरूपजलं तेन पल्लवितो वृद्ध्युन्मुखः अङ्गजाङ्घ्रिपः कामवृक्षो यासां तास्तथा तासाम् अङ्गजाङ्घ्रिपस्येति पाठः, पुनः किम्भूतानाम् ? मुकुलविसरः कलिकासमूहः तद्वद्रम्यो मनोहरो यो रूढ उपचितो रोमोद्गमो रोमोत्थानं तेन समलङ्कृता गात्रवल्लरी देहलता यासां तास्तथा तासाम् ॥ २४ ॥

प्रीति उत्पन्न करने वाले श्री कृष्ण के वंशी से उत्पन्न शब्द रूप अमृत रस से सींचे जाने के कारण जिनका काम रूपी वृक्ष वृद्धि को प्राप्त हो गया है एवं कलिका समूह रूपी रोमोद्गम से जिनकी देहलता अलङ्कृत हो रही है ऐसे गोपवधुओं से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २४ ॥

तदिति—

तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रा-
तपपरिजृम्भितरागवारिराशेः ।
तरलतरतरङ्गवारिविप्रुट्
प्रकरसमश्रमबिन्दुसन्ततानाम् ॥ २५ ॥

पुनः किम्भूतानाम् ? तस्य कृष्णस्यातिमनोहरो यः ईषद्धासः स एव चन्द्ररश्मिस्तेन परिजृम्भित उच्छलितो यो रागसमुद्रस्तस्यातिचञ्चलो यस्तरङ्गः कल्लोलः तदीया ये जलकणाः तेषां यः समूहस्तेन समस्तुल्यो यः श्रमबिन्दुर्घर्मजलबिन्दुः तेन सन्ततानां व्याप्तानाम् ॥ २५ ॥

श्री कृष्ण के अत्यन्त मनोहर हास्यरूपी चन्द्ररश्मियों से राग रूपी समुद्र के ऊपर उठने के कारण उत्पन्न जो अत्यन्त चञ्चल तरङ्ग उस के जलकणों के समान स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त गोप सुन्दरियों से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २५ ॥

तदतीति—

तदतिलसितमन्दचिल्लिचाप-
च्युतनिशितेक्षणमारबाणवृष्टया ।

दलितसकलमर्मविह्वलाङ्ग-
प्रविसृतदुःसहवेपथुव्यथानाम् ॥ २६ ॥

पुनः किम्भूतानाम् ? तस्य कृष्णस्यातिमनोहरः मन्दः अनतिदीर्घो यश्चिल्लिचापो भ्रूलता सैव धनुस्तस्मादुद्गतन्तीक्ष्णं यदीक्षणं कटाक्षः स एव कामबाणस्तस्य वृष्टयाऽत्यन्तपातेन दलितं चूर्णितं यत्सकलं मर्म तेनाऽनायत्तं यदङ्गं तत्र प्रसृता व्याप्ता दुःसहा कम्पवेदना यासां तास्तथा तासाम् ॥ २६ ॥

श्री कृष्ण की मनोहर और मन्द भ्रूलता रूपी धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण कटाक्ष रूपी काम बाणों की वृष्टि से घायल हो गये हैं संपूर्ण मर्म स्थल जिनके अतएव शरीर की विवशता के कारण दुःसह कम्पवेदना युक्त गोपबन्धुओं से घिरे हुए श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २६ ॥

तदतीति—

तदतिरुचिरकर्मरूपशोभा-
मृतरसपानविधानलालसाभ्याम् ।
प्रणयसलिलपूरवाहिनीना-
मलसविलोलविलोचनाम्बुजाभ्याम् ॥ २७ ॥

पुनः किम्भूतानाम् ? प्रणयेनैव प्रेम्णैव यो जलप्रवाहस्तं वहन्ति यास्तथा तासाम्, काभ्याम् ? लज्जादिनाऽर्धनिमीलितपद्मलोचनाभ्यां सविलासचञ्चलित नेत्रपद्माभ्यामित्यपि पाठः । किम्भूताभ्याम् ? तस्य परमेश्वरस्यातिरुचिरं यत्कर्म शृङ्गारचेष्टाविशेषः रूपशोभा कामिनीमनोनुरञ्जिका कान्तिः ते एवामृतरसौ तयोर्यत्पानम् अत्यन्तचक्षुर्व्यापारस्तत्करणे साकाङ्क्षाभ्याम् । सुभगकम्रेति पाठान्तरम् । सुभगः सुन्दरः कम्रः कमनीयः सुभगकमनीययोरेकपर्याययोर्ग्रहणम् अद्भुतत्वाद्रूपस्येति त्रिपाठिनः ॥ २७ ॥

श्री कृष्ण के अत्यन्त रुचिर कर्म (शृङ्गार चेष्टा विशेष) उनके तथा रूपशोभा (रूप सौन्दर्य) रूपी अमृतरस के पान के लिए निरन्तर अभिलाषा करते रहने पर भी लज्जा के कारण अपने अधखुले नेत्र कमलों में प्रेम से उत्पन्न जल प्रवाह को धारण करने वाली गोपाङ्गनाओं से परिवेष्टित श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २७ ॥

विश्रंसदिति—

विश्रंसत्कवरीकलापविगलत्फुल्लप्रसूनस्रवत्-
माध्वीलम्पटचञ्चरीकघटया संसेवितानां मुहुः ।
मारोन्मादमदस्खलन्मृदुगिरामालोलकाञ्च्युच्छ्वस-
न्नीवीविश्लथमानचीनसिचयान्ताविर्नितम्बत्विषाम् ॥ २८ ॥

पुनः किम्भूतानाम् ? विश्रंसन् स्खलन् यः केशपाशस्तस्मात्प्रभ्रंश्यद्विकसितं पुष्पं तस्माद्गलन्ती या माध्वी पुष्परसः तत्रात्यन्तासक्तो यश्चञ्चरीको भ्रमरस्तस्य समूहेन मुहुर्वारं वारं संसेवितानाम् । पुनः किम्भूतानाम् मारेति ।

कामकृतोन्मादेन या मत्तता तया स्खलन्ती अस्पष्टा मृद्वी कोमला मनोहरा गीर्वाणी यासां तास्तथा तासाम् उन्मादमदौ शृङ्गारविशेषौ, तदुक्तं शृङ्गारतिलके—

श्वासप्ररोदनोत्कम्पैर्बहुधालोकनैरपि ।
व्यापारो जायते यत्र स उन्मादः स्मृतो यथा ॥

एवं मदस्यापिलक्षणं बोद्धव्यमिति केचित् । पुनः कीदृशीनाम् ? आलोला चञ्चला या काञ्चीरसना तया उच्छ्वसन्ती दृढा भवन्ती या नीवी वस्त्रग्रन्थिः "नीवी स्त्रीवसनग्रन्था"विति कोषात्, तया विश्लथमानं चीनसिचयं चीनदेशोत्पन्नं सूक्ष्मवस्त्रं तस्यान्ते मध्ये आविः प्रकटा नितम्बत्विट् नितम्बकान्तिर्यासां तास्तथा तासाम् ॥ २८ ॥

केशों के खुल जाने के कारण गिरते हुए प्रसूनों के पुष्प रसों के पीने के लिए निरन्तर आसक्त अतएव दुर्वार भ्रमर समूहों से सेवित काम कृत उन्माद की मस्ती के कारण कोमल प्रतीत हो किन्तु अस्पष्ट वाणी बोलने वाली तथा हिलती हुई काञ्ची के कारण नीवी के ढीली हो जाने पर रेशमी वस्त्रों के खिसक जाने से अपनी नितम्ब शोभा को स्पष्ट रूप से प्रगट करने वाली ऐसी गोपललनाओं से परिवेष्टित श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २८ ॥

स्खलितेति—

स्खलितललितपादाम्भोजमन्दाभिघात-
क्वणितमणितुलाकोटयाऽकुलाशामुखानाम् ।
चलदधर(दलानाम्)सुधानां कुड्मलत्पक्ष्मलाक्षि-
द्वयसरसिरुहाणामुल्लसत्कुण्डलानाम् ॥ २९ ॥

पुन: किम्भूतानाम् ? स्खलितमनायत्तं ललितं मनोहरं यत्पादपद्मं तस्य यो मन्द ईषदभिघातः पतनं तत्कृतशब्दयुक्तेन मणिमयनूपुरेणाकुलं शब्दायमानं दिगन्तरं याभिस्तास्तथा तासाम्, पुनः किम्भूतानाम् ? चलत् स्फुरत् अधरदलमोष्ठपत्रं यासां तास्तथा तासाम्, पुनः किम्भूतानाम् ? कुड्मलत् मुकुलीभवत् पक्ष्मलम् उत्कृष्टपक्ष्मयुक्तं यदक्षिद्वयं तदेव पद्मं यासाम्, पुनः किम्भूतानाम् ? देदीप्यमाने कुण्डले यासां तास्तथा तासाम् ॥ २९ ॥

उच्चावच स्खलित अपने पाद पद्मों के अभिघात के कारण बजते हुए मणिमयनूपुरों के शब्द से दिगन्तरों को पूर्ण करने वाली, कम्पित अधरों वाली; कुड्मलाकार पक्ष्म युक्त नेत्र पद्मों वाली तथा देदीप्यमान कुण्डलों वाली गोपाङ्गनाओं से युक्त श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ २९ ॥

द्राघिष्ठेति—

द्राघिष्ठश्वसनसमीरणाभिताप-
प्रम्लानीभवदरुणोष्ठपल्लवानाम् ।
नानोपायनविलसत्कराम्बुजाना-
मालीभिः सततनिषेवितं समन्तात् ॥ ३० ॥

पुनः किम्भूतानाम् ? दीर्घो यः श्वासवायुस्तेन योऽभितापः तेन प्रम्लानीभवन् रक्तौष्ठपल्लवो यासां तास्तथा तासाम्, पुनः किम्भूतानाम् ? विविधोपायनेन शोभमानानि हस्तकमलानि यासां तास्तथा तासाम् ॥ ३० ॥

दीर्घश्वास लेने के कारण उत्पन्न वायु की उष्णता से सूखते हुए अधरोष्ठ पल्लवों वाली तथा नाना प्रकार के उपहारों से शोभित कर कमलों वाली ऐसी गोपाङ्गनाओं से चारों ओर घेर कर सेवित हुए परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ३० ॥

तासामिति—

तासामायतलोलनीलनयनव्याकोश नीलाम्बुज-
स्रग्भिः सम्परिपूजिताखिलतनुं नानाविलासास्पदम् ।
तन्मुग्धाननपङ्कजप्रविगलन्माध्वीरसास्वादनीं-
विभ्राणं प्रणयोन्मदाक्षिमधुकृन्मालां मनोहारिणीम् ॥३१॥

पुनः कीदृशम् ? मुकुन्दं तासां गोपसुन्दरीणाम् आयतं दीर्घं लोलञ्चञ्चलं नीलं श्यामं यन्नयनं तदेव व्याकोशं नीलोत्पलं प्रफुल्लं नीलाम्बुजं तेषां

स्रग्भिर्मालाभिः सम्परिपूजिता अधिकतरमर्चिता सकला तनुर्यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? विविधविलासस्थानम् ? पुनः कीदृशम् ? तन्मुग्धाननेति तासां यन्मनोहरं मुखं तदेव पद्मसमूहस्तस्मात् विगलन् स्रवन् यो माध्वीरसो मकरन्दः तमास्वादयितुं शीलं यस्याः तां प्रणयेन प्रीत्या उद्गतमदं यदक्षियुगलं सैव भ्रमरमाला पङ्क्तिः तां मनोहारिणीं विभ्राणम् ॥ ३१ ॥

गोपसुन्दरियों के विशाल एवं चञ्चल नेत्र रूपी प्रफुल्ल नीलाम्बुज की मालाओं से जिनके सर्वाङ्ग समर्चित हो रहे हैं, जो समस्त काम चेष्टाओं के निवास स्थान हैं तथा गोपाङ्गनाओं के मनोहर मुखपद्म समूहों से चूते हुए मकरन्द का पान करने के लिए भ्रमर पङ्क्ति के समान जिनके नेत्र युगल मनोहारिणी छटा को धारण किये हुए हैं ऐसे परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ३१ ॥

अधुना परमेश्वरध्यानानन्तरमुपासकामरप्रभृतीनां ध्यानमाह—गोपीगोपेति—

गोपीगोपपशूनां बहिः स्मरेदग्रतोऽस्य गीर्वाणघटाम् ।
वित्तार्थिनीं विरञ्चित्रिनयनशतमन्युपूर्विकां स्तोत्रपराम् ॥३२॥

अस्य परमेश्वरस्याऽग्रतो गोपीगोपशूनां बहिर्गीर्वाणघटदेवसमूहं स्मरेत् यद्यपि बहिःशब्दयोगे पञ्चमी ज्ञापिता तथापि ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्रेति षष्ठीप्रयोगेऽपि न दोषः । किम्भूताम् ? वित्तार्थिनीं ज्ञानार्थिनीं वा धनार्थिनी यद्वा परमेश्वरचित्तापहरणपरां यद्वा धर्मकाममोक्षार्थिनीम्, पुनः किम्भूताम् ? विरञ्चिर्ब्रह्मा ईशः शक्रः तत्प्रमुखाम्, पुनःकिम्भूताम् ? स्तवनपराम् ॥ ३२ ॥

पुनः परमेश्वर श्री कृष्ण के आगे किन्तु गोपी गोप तथा गोओं के बाहर ब्रह्मदेव सदाशिव तथा इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का वे ध्यान करें, जो ज्ञान, धन अथवा भक्ति की प्राप्ति के लिए उन श्री कृष्ण की स्तुति में लगे हुए हैं ॥ ३२ ॥

तद्दक्षिणत इति—

तद्दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाञ्छमाम्नायपरम् ।
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान्समाधिना सनकाद्यान् ॥ ३३ ॥

तस्य परमेश्वरस्य दक्षिणतो दक्षिणभागे तद्वदिति पाठे तेनैव प्रकारेण मुनिनिकरं मुनिसमूहं स्मरेत् । कीदृशम् ? आम्नायपरम् वेदाध्ययनपरं, पुनः कीदृशम् ? निश्चला धर्मवाञ्छा यस्य तं यत्तु मननात् मुनिरित्यभिधानात्

एषां धर्मवाञ्छा न युक्ता तेन मुनिशब्दोऽत्रऋष्युपलक्षक इति तन्न, धर्मशब्देनात्राऽऽत्मज्ञानाभिधानात् । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन—

अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ इति ।

अथानन्तरं परमेश्वरस्य पश्चाद्भागे सनकाद्यान् योगेश्वरान् स्मरेत्, किम्भूतान् ? मोक्षैकपरान्, पुनः किम्भूतान् ? समाधिनोपविष्टान् ॥ ३३ ॥

पुनः उन परमेश्वर के दक्षिणभाग में वेदाध्ययन में लगे हुए, धर्म में दृढ आस्था रखने वाले मुनियों का ध्यान करे। तदनन्तर उनके पीछे एक मात्र मोक्ष की इच्छा रखने वाले सनकादि योगीश्वरों का ध्यान करे॥ ३३ ॥

सव्य इति—

सव्ये सकान्तानथ यक्षसिद्धगन्धर्वविद्याधरचारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः कामार्थिनो नर्तनगीतवाद्यैः ॥३४॥

अथानन्तरं देववामभागे सस्त्रीकान् यक्षादीन् स्मरेत्। किम्भूतान् ? किन्नरसहितान्, पुनः किम्भूतान् ? सर्वनर्तनगीतवाद्यैः करणभूतैर्वाञ्छितार्थिनः। तथा प्रधानभूता अप्सरसः उर्वशीमुख्याः स्मरेत् ॥ ३४ ॥

पुनः उन श्री कृष्ण के वामभाग में किन्नरों एवं स्त्रियों के सहित यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और चारणों का ध्यान करे। जो नृत्य, गीत और वाद्यों के द्वारा उन्हें प्रसन्न कर अपनी कामनाओं की पूर्त्ति चाहते हैं। फिर उर्वशी आदि मुख्य मुख्य अप्सराओं का देव के वामभाग में ध्यान करे॥ ३४ ॥

शङ्खेन्द्विति—

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं
सौदामनीततिपिशङ्गजटाकलापम् ।
तत्पादपङ्कजगतामचलाञ्च भक्तिं
वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम् ॥ ३५ ॥

नभसि आकाशे धातृसुतं ब्रह्मपुत्रं स्मरेत् । कथम्भूतम् ? शङ्खादिवत् श्वेतं निर्मलम् । पुनः कीदृशम् ? सम्पूर्णागमवेत्तारम्, पुनः कीदृशम् ? सौदामनी विद्युत्तस्यास्ततिः दीप्तिस्तद्वत् पिशङ्गा कपिला याजटा तस्याः कलापः समुदायो यत्र तम्, पुनः कीदृशम् ? भक्तिमिच्छन्तम्, किम्भूताम् ? स्थिराम्, पुनः कीदृशम् ? अत्यन्तपरित्यक्तपरमेश्वरभिन्नसकलसम्बन्धम् ॥ ३५ ॥

पुनः शङ्ख, इन्दु और कुन्द के समान शुभ्रवर्ण वाले, संपूर्ण आगम (तन्त्र) शास्त्र के ज्ञाता, विद्युत की दीप्ति के समान पिशङ्गवर्ण की जटा धारण करने वाले ब्रह्मदेव के पुत्र नारद का आकाश-मण्डल में वे ध्यान करें जो सारे जगत् के अन्य पदार्थों का सङ्ग त्याग कर श्रीकृष्ण के पादपद्मों में अटल भक्ति की कामना करते हैं ॥ ३५ ॥

नानेति ।

नानाविधश्रुतिगणान्वितसप्तराग
ग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्च्छनाभः
संप्रीणयन्तमुदिताभिरमुं महत्या
सञ्चिन्तयेन्नभसि धातृसुतं मुनीन्द्रम् ॥ ३६ ॥

पुनः कीदृशम् ? अमुं नानाप्रकारः षट्त्रिंशद्भेदात्मको यः श्रुतिगणः नादसमूहस्तेनान्विता ये सप्त रागाः निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवत-पञ्चमाख्याः स्वराः तत्र त्रयाणां ग्रामाणां समाहारो ग्रामत्रयी तत्र ग्रामत्रय्यां गताः प्राप्ताः या मूर्छनाः मनोहरा एकविंशतिप्रकाराः ताभिः सम्प्रीणयन्तम् ।

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
संमूर्छितः स्वरो यत्र रागतां प्रतिपद्यते ॥
मूर्छनामिति तां प्राहुः कवयो ग्रामसम्भवाम् ।

किम्भूताभिः ? महत्या सप्ततन्त्रीयुक्तया नारदवीणया उदिताभि-रुद्गताभिः ॥ ३६ ॥

नाना प्रकार के नादसमूहों से युक्त निषाद वृषभ गान्धार आदि सातों स्वरों में ग्रामत्रयी को प्राप्त होने वाली, तथा महती नाम की वीणा से निकलती हुई मूर्छनाओं से देवाधिदेव श्रीकृष्ण को प्रसन्न करते हुए देवर्षि नारद का आकाश-मण्डल में ध्यान करे ॥ ३६ ॥

अधुना प्रकृतमुपसंहरन् आत्मपूजाक्रममाह—इतीत्यादिना ।

इति ध्यात्वाऽऽत्मानं पटुविशदधीर्नन्दतनयं
पुरो बुद्ध्यैवाऽर्घ्यप्रभृतिभिरनिन्द्योपहृतिभिः ।
यजेद् भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्ठैश्च विभवै-
र्विधानं तद्ब्रूमो वयमतुलसान्निध्यकृदथ ॥ ३७ ॥

इति पूर्वोक्तध्यानप्रकारेण पटुविशदधीः समर्था विचारक्षमा अथ च निर्मला एवम्भूता बुद्धिर्यस्य स तथा आत्मानं नन्दतनयं गोपालकृष्णरूपं ध्यात्वा आत्मनन्दतनययोरभेदं चिन्तयित्वा पुरः प्रथमतो बुद्ध्यैव मनसैवाऽर्घ्यप्रभृतिभिः अर्घ्यपाद्यादिभिरुपहृतिभिरनिन्दितोपचारैः यथोपदेशं पूजयेत् । त्रिपाठिनस्तु अभिनन्द्येतिपाठे धृत्वा पूजयेदित्यर्थमाहुः । भूयः पुनरपि स्वशरीरे साक्षाद्बाह्योपचारैरर्घ्यादिभिः पूजयेत् । अथानन्तरं तद्विधानं बहिष्ठविभवार्चनप्रकारं वयं ब्रूमः । कीदृशम् ? परमेश्वरात्यन्तसान्निध्यदातारम् ॥ ३७ ॥

विचार-सक्षम एवं निर्मलबुद्धि वाला पुरुष अपने को ही गोपालकृष्ण के रूप में ध्यान कर उसी में सर्वप्रथम बुद्धिगत अर्घ्य पाद्य आचमनीयादि प्रशस्त उपचारों से गुरूपदेशपरम्परा के अनुसार मानस पूजन करे ।

इस प्रकार अपने शरीर में ही भक्ति पूर्वक पूजन के अनन्तर बाहरी उपचारों से परमात्मा श्रीकृष्ण का पूजन जिस प्रकार करना चाहिये अब हम उसी का विधान बताते हैं, जिसके करने से परमात्मा श्रीकृष्ण का शीघ्र सान्निध्य प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

विमर्श—यहाँ प्रकृत का उपसंहार करते हुए सर्व प्रथम अभ्यन्तर पूजा तदनन्तर बाह्यपूजा का क्रम कहा गया है ॥ ३७ ॥

शङ्खपूरणविधिं दर्शयति—आरचय्येति ।

आरचय्य भुवि गोमयाम्भसा
स्थण्डिलं निजममुत्र विष्टरम् ।
न्यस्य तत्र विहितास्पदोऽम्भसा-
शङ्खमस्त्रमनुना विशोधयेत् ॥ ३८ ॥

भुवि पृथिव्यां स्थण्डिलं पूजास्थलं गोमयसहितेन जलेनाऽऽरचय्य उपालिप्य अमुत्र स्थण्डिले निजं स्वीयं विष्टरमासनं वस्त्रकम्बलादिकं न्यस्य संस्थाप्य तत्र विष्टरे विहितास्पदः कृतासनो जलेन शङ्खमस्त्रमनुना मूलमन्त्रास्त्रमन्त्रेण अस्त्राय फडितिमन्त्रेण वा प्रलेपयेत् ॥ ३८ ॥

सर्वप्रथम पूजा के स्थान को गोमय के सहित जल से लीपे, तदनन्तर उस पर अपना कम्बलादि आसन स्थापित कर उस पर स्वयं भली प्रकार से बैठ जावे । फिर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र को पढ़कर जल से शङ्खपात्र का प्रक्षालन करे ॥ ३८ ॥

तत्रेति ।

तत्र गन्धसुमनोक्षतानथो निक्षिपेद्धृदयमन्त्रमुच्चरन् ।
पूरयेद्विमलपाथसा सुधीरक्षरैः प्रतिगतैः शिरोन्तकैः ॥ ३९ ॥

वामभागकृतवह्निमण्डलाधारके शङ्खे सुधीः सुबुद्धिसाधकः हृदयमन्त्रं मूलमन्त्रमेव हृदयमन्त्रं केवलं हृदयाय नमः इति वा उच्चार्य गन्धपुष्पयवतण्डुलान्निक्षिपेत्, तथा विमलपाथसा निर्मलजलेन पूरयेत् । मन्त्रमाह—प्रतिगतैरिति । प्रतिलोमगतैः प्रतिलोमपठितैर्मातृकाक्षरैः क्षकाराद्यैरकारान्तैः शिरोन्तकैः सबिन्दुकैः । बिन्द्वन्तकैरिति लघुदीपिकाकारः । स्वाहान्तैरिति विद्याधराचार्य्यः । विक्राय स्वाहेत्यन्तैरिति त्रिपाठिनः ॥ ३९ ॥

फिर उस शङ्खपात्र में बुद्धिमान साधक 'हृदयाय नमः' इस मन्त्र को पढ़कर गन्ध, पुष्प, यव तथा अक्षत छोड़े । तदनन्तर प्रतिलोम मातृकाक्षरों (क्षकार पर बिन्दु लगाकर क्षं स्वाहा, हं स्वाहा, सं स्वाहा इत्यादि उल्टे क्रम से) पर बिन्दु लगाकर उसके आगे स्वाहा शब्द का उच्चारण कर शुद्ध जल से परिपूर्ण करे ॥ ३९ ॥

पीठेति ।

पीठशङ्खसलिलेषु मन्त्रविद् वह्निवासरनिशाकृतां क्रमात् ।
मण्डलानि विषकश्रवोक्षरैरर्चयेद्वदनपूर्वदीपितैः ॥४०॥

पीठे शङ्खे सलिले च यथाक्रमं वह्निसूर्यचन्द्राणां मण्डलानि विषं मकारः कंशिरस्तत्र न्यस्यमानोऽकारः श्रवः श्रोत्रं तत्र न्यस्यमानउकार एभिरक्षरैर्मन्त्रविदुपासकः क्रमेण पूजयेत् । कीदृशैः ? वदनपूर्वदीपितैः वदनपूर्वे शिरसि न्यस्यमानम् अंबिन्दुरिति यावत् तेन दीपितैः सानुस्वारैरित्यर्थः । प्रयोगस्तु—मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः; उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः ॥ ४० ॥

पुनः मन्त्रवेत्ता विद्वान् साधक पीठ, शङ्ख और जल में क्रमशः वह्नि, सूर्य और चन्द्रमा का मण्डल बनाकर उसमें क्रमशः 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं अर्कमडण्लाय द्वादशकलात्मने नमः । उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' मन्त्रों को मढ़कर तत्तन्मण्डलों का पूजन करे ॥ ४० ॥

तत्र तीर्थेति —

तत्र तीर्थमनुनाऽभिवाहयेत् तीर्थमुष्णरुचिमण्डलात्ततः ।
स्वीयहृत्कमलतो हरिं तथा गालिनीं च शिखया प्रदर्शयेत् ॥ ४१ ॥

तत्र शङ्खजले वक्ष्यमाणतीर्थमन्त्रेण सूर्यमण्डलतीर्थमावाहयेत् तथा ततः स्वीयहृत्पद्मात् कृष्णमावाहयेत् । अनन्तरं शिखामन्त्रेण वक्ष्यमाणां 'गालिनीं' मुद्रां प्रदर्शयेत् चकारात् धेनुमुद्रां च । (वामहस्ततले दक्षिण-तर्जन्या ताडनं प्रबोधनम्) ॥ ४१ ॥

तदनन्तर उस शङ्खपात्र में तीर्थ के मन्त्र को पढ़कर सूर्यमण्डल से समस्त तीर्थों का आवाहन करना चाहिए । पुनः स्वकीय हृदय कमल से श्री कृष्ण का आवाहन कर आगे कही जाने वाली शिखा मन्त्र से (४६+४७) गालिनी और धेनुमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिए ॥ ४१ ॥

तज्जलमिति ।

तज्जलं नयनमन्त्रवीक्षितं वर्मणा समवगुण्ठ्य दोर्युजा ।
मूलमन्त्रसकलीकृतं न्यसेदङ्गकैश्च कलयोद्दिशोऽस्त्रतः ॥ ४२ ॥

तज्जलं शङ्खजलं वौषडिति नयनमन्त्रेण वीक्षितं यत्र नयनमन्त्रः सम्भवति तत्रैव नयनमन्त्रेण वीक्षणमिति त्रिपाठिनः । वर्मणा हुमिति कवचमन्त्रेणाऽवगुण्ठ्य मूलमन्त्रसकलीकृतं मूलमन्त्राङ्गसम्बन्धम् । एतस्यैव विवरणं न्यसेदिति ।

देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिरिति रुद्रधरः ।

यद्वा, मूलमन्त्रध्यानेन सदैवतमिति त्रिपाठिनः । अङ्गकैश्च न्यसेदिति मूलमन्त्रस्य षडङ्गन्यासङ्कुर्यादित्यर्थः । अनन्तरं शङ्खस्य दश दिशः अस्त्र-मन्त्रेण छोटिकया वध्नीयात् ॥ ४२ ॥

उस शङ्खस्थ जल को 'वौषट्' इस नयन मन्त्र को पढ़कर वीक्षण करे और 'हुम्' इस कवच मन्त्र को पढ़कर अपने दोनों हाथों से उसे जल से घेर देवे । फिर मूल मन्त्र से उसे कलायुक्त कर अङ्गन्यास करे और 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र को पढ़कर शङ्ख के दशों दिशाओं में चुटकी लगाकर दिग्बन्ध करे ॥ ४२ ॥

अक्ष इत्यादि ।

अक्षतादियुतमच्युतीकृतं संस्पृशन् जपतु मन्त्रमष्टशः ।
किं च निक्षिपतु वर्द्धनीजले प्रोक्षयेन्निजतनुं ततोऽम्बुना ॥ ४३ ॥

तज्जलम् अभग्नतण्डुलचन्दनपुष्पसहितं विष्णुस्वरूपतां नीतं स्पृशन् मूलमन्त्रमष्टकृत्वो जपेत् । अनन्तरम् अर्घजलस्य किञ्चित् स्वदक्षिणभागस्थापितवर्धनीजले प्रोक्षणीयपात्रजले निक्षिपेत्, तदुक्तम्—

दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमादायाऽद्भिः प्रपूजयेत् ।
किञ्चिदर्घ्याम्बु सङ्गृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेत् ।। इति ।।

ततस्तदनन्तरम् अर्घपात्रजलेन वारत्रयं निजशरीरं प्रोक्षयेत् । वर्द्धनीघटजलेनेति विद्याधराचार्य्याः ।। ४३ ।।

तदनन्तर अक्षत, चन्दन तथा पुष्प सहित उस शङ्खस्थ जल को जिसे ऊपर कही गयी विधि के अनुसार विष्णु स्वरूपता प्रदान की गयी है उसे स्पर्श कर मूल मन्त्र का आठ बार जप करना चाहिए । इस प्रकार उस अर्घ्यजल का किञ्चिदंश प्रोक्षणी पात्र में डाल देवें और किञ्चिदंश से तीन बार अपने शरीर का भी प्रोक्षण करे ।। ४३ ।।

विमर्श-- द्र० ३.३९ ।। ४३ ।।

त्रिरिति ।

त्रिः करेण मनुनाऽखिलं तथा साधनं कुसुमचन्दनादिकम् ।
शङ्खपूरणविधिः समीरितो गुप्त एष यजनाग्रणीरिह ।। ४४ ।।

तथा मूलमन्त्रेण दक्षहस्तेन पुष्पचन्दनादिकं पूजोपकरणद्रव्यं वारत्रयं प्रोक्षयेत् ।

उपसंहरति शङ्खेति—

एष शङ्खपूरणप्रकारः समीरितः उक्तः । कीदृशः ? इह आगमशास्त्रे यजनाग्रणीः प्रथमविधाने यः श्रेष्ठतरः ।। ४४ ।।

इसके बाद मूलमन्त्र पढ़कर अपने दाहिने हाथ से तीन बार पूजा के लिए एकत्र किये गये पुष्प-चन्दनादि समस्त साधनों का भी प्रोक्षण करे । इस प्रकार हमने शङ्ख पात्र में जल के स्थापित करने की विधि कही जो यहाँ आगम शास्त्रों में पूजा के लिए सर्वप्रथम उत्तम विधान है ।। ४४ ।।

अधुना तीर्थमन्त्रं दर्शयति—गङ्गे चेति ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ।। ४५ ।।

एष तीर्थमनुप्रोक्तो दुरितौघनिवारणः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम् ॥ ४६ ॥
तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नसञ्जिताः ।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ॥ ४७ ॥

एषतीर्थावाहनमन्त्रः कथितः दुरितेति पापसमूहविनाशकः ॥

अधुना गालिनी मुद्राया लक्षणमाह—कनिष्ठेत्यादिना ।

हस्तयोरन्योन्यकनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सम्बन्धौ तथा तर्जनीमध्यमानामिकाः संहताः कृत्वा भुग्नाः किञ्चिदाकुञ्चिताः परस्परसंसक्ताः कार्या इत्यर्थः । एवं च सति एषा गालिनी मुद्रा प्रोक्ता । शङ्खस्योपरि चालिता सती देवताप्रीतिं सम्पादयतीत्यर्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु एवं कावेरी नदी का जल इस जल में प्राप्त होवे। इस प्रकार ('गङ्गे' से लेकर 'सन्निधि कुरु' पर्यन्त) यह मन्त्र तीर्थावाहन का मन्त्र कहा गया है जो समस्त पापों को क्षय करने वाला है। दोनों हाथों की अलग-अलग कनिष्ठा और अँगूठे को एक दूसरे से मिला दे। फिर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को कुछ मोड़कर परस्पर एक दूसरे से सटा दे तो उसे 'गालिनी' मुद्रा कहते हैं। ऐसी मुद्रा शङ्ख के ऊपर घुमा देने से देवताओं को महान् प्रीति उत्पन्न करती है ॥ ४५-४७ ॥

अधुना स्वदेहे पीठपूजाक्रममाह—अथेत्यादि ।

अथ मूर्द्धनि मूलचक्रमध्ये निजनाथान् गणनायकं समर्च्य ।
न्यसनक्रमतश्च पीठमन्त्रैर्जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः ॥ ४८ ॥

अथानन्तरं मूर्द्धनि स्वकीयशिरसि मूलचक्रमध्ये मूलाधारचक्रे यथाक्रमं स्वनाथान् स्वगुरून् गणपतिं च पूजयित्वा पूर्वोक्तन्यासक्रमेण पीठमन्त्रैराधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रान्तं तत्तन्मन्त्रैर्जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः स्वशरीरे पीठपूजनं कुर्यात् ॥ ४८ ॥

इसके अनन्तर अपने शिर जहाँ मूलाधार सहस्रदल चक्र है उसके मध्य भाग में अपने गुरुदेव तथा गणपति का पूजन करे। फिर पूर्वोक्त न्यास क्रम से आधार शक्ति से आरम्भ कर पीठमन्त्र पर्यन्त कहे गये तत्तन्मन्त्रों से जल-गन्धाक्षत-पुष्प-धूप और दीपों द्वारा अपने शरीर में पीठपूजन करना चाहिए ॥ ४८ ॥

प्रयजेदथ मूलमन्त्रतेजो निजमूले हृदये भ्रुवोश्च मध्ये।
त्रितयं स्मरतः स्मरेत्तदेकीकृतमानन्दघनं तडिल्लताभम् ॥४६॥

अथानन्तरं तन्मूलाधारहृदयभ्रूमध्यगततेजस्त्रितयं मूलमन्त्रात्मकं प ज्योतिः स्मरतः कामबीजेन क्लीमित्यनेनैकीभूतं चिन्तयेत्। कीदृशम्? आनन्दघनं चिदानन्दम्। पुनः कीदृशम्? विद्युत्प्रभम् ॥ ४९ ॥

तदनन्तर मूलाधार-हृदय और भ्रूमध्य में रहने वाले इन तीनों तेजों को जो आनन्दघन ओर विद्युल्लता के समान है मूलमन्त्रात्मक परज्योति का स्मरण करते हुए 'क्लीम्' इस मन्त्र से एक होने की भावना करे ॥ ४९ ॥

तत्तेजोङ्गैरिति।

तत्तेजोङ्गैः सावयवीकृत्यविभूत्या-
द्यङ्गान्तं विन्यस्य यजेदासनपूर्वैः।
भूषान्तैर्भूयो जलगन्धादिभिरर्चां
कुर्याद् भूत्याद्यङ्गविधानावधि मन्त्री ॥ ५० ॥

तदेकीकृतं तेजः पञ्चाङ्गैः सावयवीकृत्य शरीरयुक्तं सम्पाद्य तत्र विभूत्याद्यङ्गान्तं विभूतिपञ्जरमारभ्याङ्गन्यासपर्यन्तं स्वशरीरे विन्यस्य आसनादिभूषान्तैरुपचारैर्देवं पूजयेत्। भूयः पुनरपि जलगन्धादिभिर्विभूति-पञ्जरमूर्तिपञ्जरकरस्थसृष्टिस्थितिदशपञ्चाङ्गन्यासस्थानेषु न्यासक्रमेणैव तन्मन्त्रैरेव पूजयेत् ॥ ५० ॥

उस एकीभूत तेज को पाँच भागों में प्रविभक्त कर उसे अपने शरीर में मिल जाने की भावना करे। फिर 'विभूति पञ्जर' से लेकर अङ्गन्यास पर्यन्त कहे गये मन्त्रों को अपने शरीर में विन्यस्त कर आसनादिभूषित उपचारों से श्रीकृष्ण का पूजन करे। फिर जल गन्धादिकों के द्वारा विभूतिपञ्जर, मूर्त्तिपञ्जर, करस्थ सृष्टि स्थिति दशाङ्गन्यास तथा पञ्चाङ्गन्यास स्थानों में न्यास में कहे गये मन्त्रों से पूजन करे ॥ ५० ॥

भूय इति।

भूयो वेणुं वदनस्थं वक्षोदेशे वनमालाम्।
वक्षोजोर्द्ध्वं प्रयजेच्च श्रीवत्सं कौस्तुभरत्नम् ॥ ५१ ॥

भूयः पुनरपि मुखस्थं वेणुं पूजयेत् हृदये च वनमालां कण्ठमारभ्य पादद्वयमवलम्बिनीं पत्रपुष्पमयीं मालाम् ।

तदुक्तम्—

कण्ठमारभ्य या तिष्ठेत् पादद्वयविलम्बिनी ।
पत्रपुष्पमयी माला वनमाला प्रकीर्त्तितेति ।
स्तनस्योपरि श्रीवत्सं कौस्तुभं च प्रपूजयेत् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर मुख स्थित वेणु की, हृदय प्रदेश में वनमाला (कण्ठ से लेकर पादपर्यन्त लटकती हुई माला) की तथा स्तन के ऊपर श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभमणि की पूजा करे ॥ ५१ ॥

श्रीखण्डनिःस्यन्दविचर्चिताङ्गो
मूलेन भालादिषु चित्रकाणि ।
लिख्यादथो पञ्जरमूर्तिमन्त्र-
रनामया दीपशिखाकृतीनि ॥ ५२ ॥

अथानन्तरं मूलमन्त्रेण चन्दनपङ्कलिप्ताङ्गः पूजक एव ललाटादिषु मूर्तिपञ्जरन्यासस्थानेषु चित्रकाणि तिलकानि दीपशिखाकाराणि अनामिकया मूर्त्तिपञ्जरमन्त्रैः अँ ॐ केशवधातृभ्यां नम इत्यादिना द्वादशमूर्त्तिभिर्लिख्यात्कुर्यादित्यर्थः ॥ ५२ ॥

इसके बाद घिसे हुए मलयागिरिचन्दन के पङ्क को मूलमन्त्र से अपने शरीर में उपलिप्त करने वाला साधक ललाटादि तत्तद् स्थानों में (जो मूर्त्तिपञ्जर के न्यास में कहे गये स्थान हैं) मूर्तिपञ्जर के मन्त्रों को पढ़कर अनामिका अङ्गुलि से दीपशिखा के आकार का अपने मस्तक में तिलक करे ॥ ५२ ॥

विमर्श—'अँ ॐ केशवधातृभ्यां नमः' आदि मन्त्र से द्वादशमूर्त्ति बनावे ॥ ५२ ॥

अधुना पुष्पाञ्जलिविधिं दर्शयति—पुष्पाञ्जलिमिति ।

पुष्पाञ्जलिं वितनुयादथ पञ्चकृत्वो
मूलेन पादयुगले तुलसीद्वयेन ।
मध्ये हयारियुगलेन च मूर्ध्नि पद्म-
द्वन्द्वेन षड्भिरपि सर्वतनौ च सर्वैः ॥ ५३ ॥

अथानन्तरं पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् मूलमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं वितनुयात् । तुलसीद्वयेन श्वेतकृष्णतुलसीद्वयेन पादयुगले क्रमेण दक्षिणवामपादयोरित्यञ्जलिद्वयं मध्ये हृदि हयारियुगलेन श्वेतरक्तकरवीराभ्यामित्येकोऽञ्जलिः मूर्ध्निपद्मद्वयेन श्वेतरक्तपद्माभ्याम् इत्यपरोऽञ्जलिः सर्वतनौ सर्वैश्च षड्भिरपि तुलसीद्वयकरवीरद्वयपद्मद्वयैश्चाञ्जलिं तनुयादिति पञ्चमोऽञ्जलिः ॥ ५३ ॥

पुष्पाञ्जलिविधि—

तदनन्तर साधक पाँच बार अपनी पाँचों अञ्जुलियों से मूलमन्त्र को पढ़कर देवाधिदेव को पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । श्वेत और कृष्ण दोनों प्रकार की तुलसी से क्रमशः श्वेत तुलसी की पुष्पाञ्जलि दाहिने पैर पर तथा कृष्ण तुलसी की पुष्पाञ्जलि बायें पैर पर इस प्रकार दो पुष्पाञ्जलि पैर पर देवे । हृदय स्थान पर श्वेत और रक्त मिश्रित कनेर के पुष्पों की एक पुष्पाञ्जलि प्रदान करे (इस प्रकार तीन पुष्पाञ्जलि हुई) और श्वेत रक्त दोनों प्रकार के कमलों से मिश्रित एक पुष्पाञ्जलि शिर पर देवे (इस प्रकार चार पुष्पाञ्जलि पूर्ण करे) । पुनः दोनों प्रकार की तुलसी, दोनों प्रकार के कनेर के पुष्प तथा दोनों प्रकार के कमल इस प्रकार छओ प्रकार के पुष्पों को मिलाकर एक पुष्पाञ्जलि संपूर्ण शरीर में अर्पित करे ॥ ५३ ॥

विमर्श—यहाँ तक पाँच पुष्पाञ्जलि का प्रकार कहा गया ॥ ५३ ॥

अधुना श्वेतकृष्णतुलस्यादीनां प्रदानविभागं दर्शयति—श्वेतानीति ।

श्वेतानि दक्षभागे सितचन्दनपङ्किलानि कुसुमानि
रक्तानि वामभागेऽरुणचन्दनपङ्कसिक्तानि ॥ ५४ ॥

श्वेतानि तुलस्यादीनि पुष्पाणि श्वेतचन्दनपङ्कयुक्तानि दक्षिणविभागे देयानि रक्तानि तुलस्यादीनि रक्तचन्दनपङ्कयुक्तानि वामविभागे देयानि ॥ ५४ ॥

श्वेत चन्दन के पङ्क से युक्त श्वेत तुलसी की पुष्पाञ्जलि दाहिने पैर पर तथा रक्त चन्दन के पङ्क से युक्त कृष्ण तुलसी की पुष्पाञ्जलि बायें पैर पर देनी चाहिए ॥ ५४ ॥

विमर्श—ग्रन्थकार ने तुलसी की पुष्पाञ्जलि देने का विधान इस श्लोक में प्रतिपादित किया है ॥ ५४ ॥

उपचारं दर्शयति—तद्वदिति ।

तद्वच्च धूपदीपौ समर्प्य धिनुयात्सुधारसैः कृष्णम् ।
मुखवासाद्यं दत्वा समर्चयेत्साधुगन्धाद्यैः ॥ ५५ ॥

धूपदीपौ समर्प्य सुधारसैर्ब्रह्मरन्ध्रस्थितशशाङ्कबिम्बगलितामृतद्रवैर्धिनुयात् प्रीणयेत् । सुधारसैर्मन्त्रकृतजलैरिति रुद्रधरः । श्रीकृष्णं प्रीणयेत् अनन्तरं मुखवासाद्यं गन्धवटिकां दत्वा गन्धपुष्पैः पूजयेत् ॥ ५५ ॥

तदनन्तर धूप-दीप प्रदान कर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमण्डल से झरते हुए अमृत द्रव से श्री कृष्ण को प्रसन्न करने की भावना करे । फिर मुखबासादि (सुगन्धित पदार्थ) प्रदान कर गन्धादि उपचारों से उनका पूजन करे ॥ ५५ ॥

ताम्बूलेति ।

ताम्बूलगीतनर्तनवाद्यैः सन्तोष्य चुलुकसलिलेन ।
ब्रह्मार्पणाख्यमनुना कुर्यात्स्वात्मार्पणं मन्त्री ॥ ५६ ॥

ततस्तदनन्तरं मन्त्री साधकः उपासकः ताम्बूलगीतादिभिः श्रीकृष्णं परितोष्य चुलुकोदकेन ब्रह्मापर्णमन्त्रेण वक्ष्यमाणस्वात्मसमर्पणं कुर्यादित्यर्थः ॥ ५६ ॥

तदनन्तर साधक ताम्बूल, गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि उपचारों से श्रीकृष्ण को संतुष्ट हुए जान एक चुल्लू जल से ब्रह्मार्पण मन्त्र से श्रीकृष्ण के सामने अपने को समर्पित कर देवे ॥ ५६ ॥

विमर्श—ब्रह्मार्पण मन्त्र इस प्रकार है—

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना' ॥ ५६ ॥

अथाशक्त प्रत्याह—अथ वेति ।

अथ वा संकुचितधियामयं विधिर्मूर्तिपञ्जरारब्धः ।
यद्यष्टादशलिपिना सार्णपदाङ्गैश्च वेणुपूर्वैः प्रोक्तः ॥ ५७ ॥

अथ वा मन्दमतीनां पूजकानां पूजाप्रकारो मूर्त्तिपञ्जरादिभिरुक्त इयं दशाक्षरेण पूजा, अष्टादशाक्षरपूजामाह । यद्यष्टादशाक्षरमन्त्रेण पूजा तदा कचभुविललाटादिस्थानेषु मन्त्राक्षरन्यासपदपश्चाङ्गन्यासैर्वेण्वादिभिश्च प्रोक्तः ॥ ५७ ॥

यहाँ तक हमने अल्पबुद्धिवाले पूजकों के लिए मूर्त्तिपञ्जरादि विधियों से पूजा का विधान कहा। यदि अष्टादशाक्षरमन्त्र से पूजा करनी हो तो ललाटादि स्थानों में मन्त्राक्षर न्यासपद पञ्चाङ्ग न्यास से वेण्वादिकों में कह दिया गया है उसी के अनुसार करे ॥ ५७ ॥

जपविधिं दर्शयति—सुप्रसन्नेति ।

सुप्रसन्नमथ नन्दतनूजं
भावयन् जपतु मन्त्रमनन्यः ।
सार्थसंस्मृतियथाविधिसङ्ख्या-
पूरणेऽसुयमनं विदधीत ॥ ५८ ॥

अथानन्तरं मन्त्रार्थस्मरणपूर्वकं मूलमन्त्रं जपतु । किङ्कुर्वन् ? सुप्रसन्नं पूर्वोक्तरूपम् आत्मभिन्नं कृष्णं हृदि भावयन् । पुनः किम्भूतः ? अनन्यस्तत्परः यथोक्तजपसङ्ख्यापूरणे सति असुयमनं प्राणायामं कुर्यात् जपारम्भे चात्र विद्याधराचार्यः बाह्यपूजाशक्तौ आत्मपूजानन्तरं जपं कुर्यात् शक्तौ तु पूजानन्तरमित्याह ॥ ५८ ॥

साधक अनन्य होकर सुप्रसन्न मन से आत्माभिन्न श्री कृष्ण की हृदय में भावना करते हुए, तथा मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए मूलमन्त्र का जप करे। जब जपसंख्या की पूर्ति हो जाय तब प्राणायाम करे ॥ ५८ ॥

प्रयोगपूर्वकृत्यमाह—प्रणवेति ।

प्रणवपुटितं बीजञ्जप्त्वा शतं सहिताष्टकं
निजगुरुमुखादात्तान् योगान्युनक्तु महामतिः ।
सदमृतचिदानन्दात्माऽथो जपश्च समापये-
दिति जपविधिः सम्यक् प्रोक्तो मनुद्वितयाश्रितः ॥ ५९ ॥

कामबीजं प्रणवपुटितं सहिताष्टकं शतमष्टोत्तरशतं जप्त्वा निजगुरुमुखात्प्राप्तान्योगान् आत्मपरदेवतासमावेशलक्षणान् अष्टमपटले वक्ष्यमाणान्महामतिर्युनक्तु करोतु ।

प्रकृतमुपसंहरति—

अनन्तरं सदमृतचिदानन्दात्माऽमुं जपं समापयेत् इत्यनेन प्रकारेण मनुद्वितयाश्रितः दशाक्षराष्टादशाक्षराश्रितः पूजाप्रकारः सम्यक् प्रकारेणोक्तः ॥ ५९ ॥

जपारम्भ करने के पूर्व बुद्धिमान साधक काम बीज को प्रणव से संपुटित कर १०८ बार जप करे, यथा (ॐ क्लीम् ॐ)। तत्पश्चात् अपने गुरु के मुख से प्राप्त हुए आत्मा को ही परदेवता के रूप में समझे जाने वाले योगों का आरम्भ करे। तदनन्तर सदमृतचिदानन्दात्मक साधक अपने जप को समाप्त करे। इस प्रकार हमने आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों प्रकार से श्रीकृष्ण परमात्मा के पूजा का प्रकार वर्णन किया ॥ ५९ ॥

य इति।

य इमं भजते विधिं नरो भविताऽसौ दयितः शरीरिणाम्।
अपि वाक्कमलैकमन्दिरं परमं ते समुपैति तन्महः ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

---o---

यो नरो मनुष्य इमं पूजाप्रकारं सेवतेऽसौ शरीरिणां वल्लभो भविष्यति। तदा सरस्वतीलक्ष्म्योरावासो भविता अन्ते देहपातानन्तरं तेजः समुपैति तद्रूपो भवतीत्यर्थः ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यप्रवरविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

---o---

जो मनुष्य इस प्रकार से कहे गये पूजा के प्रकार का अनुष्ठान करेगा वह समस्त प्राणियों के प्रेम का पात्र होगा और सरस्वती तथा महालक्ष्मी दोनों का एक मात्र अधिष्ठान होगा। तदनन्तर मृत्यु के पश्चात् उस सच्चिदानन्दात्मक तेज स्वरूप को प्राप्त होगा ॥ ६० ॥

॥ इस प्रकार श्रीकेशवाचार्यविरचित क्रमदीपिका की डा० सुधाकर मालवीय कृत
'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का तृतीय पटल समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

---o---

चतुर्थपटलम्

अथ मन्त्रजपादौ दीक्षितस्यैवाधिकारः तदुक्तमागमान्तरे—

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु॥
तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रे देवार्चनादिषु।
नाऽधिकारोस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम्॥

इत्यतो मन्त्रजपप्रधानाङ्गभूतां दीक्षां कथयामीत्याह—कथ्यत इति।

कथ्यते सपदि मन्त्रवर्ययोः साधनं सकलसिद्धिसाधनम्।
यद्विधाय मुनयो महीयसीं सिद्धिमीयुरिह नारदादयः॥ १॥

सपदि साम्प्रतं मनुवर्ययोः दशाक्षराष्टादशाक्षरयोः साध्यते वाञ्छित-मनेनेति। साधनं दीक्षणं कथ्यते। कीदृशम्? सकलफलसाधनं यत् कृत्वा नारदादयो मुनयः महतीं सिद्धिम् इह जगति प्राप्तवन्तः॥ १॥

* सरला *

दीक्षाविधान—

अब दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर दोनों मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाली दीक्षा विधि का वर्णन करता हूँ जिसके अनुष्ठान करने से नारदादि महर्षियों ने महती सिद्धि प्राप्त की॥ १॥

विमर्श—अब इस पटल में मन्त्र के जप में सर्व प्रधान होने के कारण दीक्षा विधान का वर्णन किया गया है॥ १॥

दीक्षाया गुरुसाध्यत्वादादौ गुरुलक्षणमाह—विप्रमिति।

विप्रं प्रध्वस्तकामप्रभृतिरिपुघटानिर्मलाङ्गं गरिष्ठां
भक्तिं कृष्णाङ्घ्रिपङ्केरुहयुगलरजोरागिणीमुद्वहन्तम्।
वेत्तारं वेदशास्त्रागमविमलपथां सम्मतं सत्सुदान्तं
विद्यां यः संविवित्सुः प्रणततनुमना देशिकं संश्रयेत॥ २॥

यो विद्यां संविवित्सुर्मन्त्रं सम्यक् ज्ञातुमिच्छति स एतादृशं देशिकं गुरुं संश्रयेत् सेवेत । कीदृशम्? विप्रं ब्राह्मणजातम् उपदेशे क्षत्रियादेरनधिकारात् । पुनः कीदृशम् ? प्रकर्षेण दूरीभूता कामाद्यरिषड्वर्गघटा तया पूतं शरीरं यस्य तथा तं कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमत्सरौ एते रिपवः कामादयः लोभाद्युपहतचित्तस्य निरन्तरं प्रत्यवायोत्पत्त्या सेव्यत्वाभावात् । पुनः कीदृशम् ? श्रीकृष्णचरणकमलयुगले यद्रजस्तत्र रागयुक्ताम् अतिशयितां भक्तिं धारयन्तम् अभ्यक्तस्य पुरुषार्थानवाप्तेः । पुनः कीदृशम् ? वेदशास्त्रागमसम्बन्धिविमलमार्गाणां ज्ञातारम् अन्यथा आगमशास्त्रविचारानुपपत्तेः । पुनः कीदृशम् ? सत्सु जनेषु मध्ये सम्मतं सज्जनत्वेन प्रसिद्धम् अन्यथा खलत्वात् शुश्रूषानर्हत्वात्सच्छब्दार्थ एव न स्यात् ।

पुनः किम्भूतम् ? दान्तं वशीकृतेन्द्रियम् अवशीकृतेन्द्रियस्य देवतापराङ्मुखत्वात् । कीदृशः ? प्रणतानम्रा विनीतातनुः कायो मनो हृदयं च यस्य स तथा अत्राऽधिकं मत्कृतशारदातिलकेऽवगन्तव्यम् ।। २ ।।

मन्त्र का सफल जिज्ञासु साधक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कामादि षड् विकारों के नष्ट हो जाने से पवित्र शरीर वाले परमात्मा श्री कृष्ण के चरणयुगल के रज में अनुरागयुक्त भक्ति रखने वाले वेदशास्त्र और आगम के ज्ञाता, सदाचारी सज्जनों में मान्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले ऐसे गुरु के पास शरीर तथा हृदय से विनीतभाव में जाना चाहिए ।। २ ।।

विमर्श—यहाँ दीक्षा में प्रथमोपस्थितिकत्वात् गुरु के लक्षणों का वर्णन किया गया है ।। २ ।।

गुरुसेवाप्रकारमाह—सन्तोषयेदिति ।

सन्तोषयेदकुटिलार्द्रतरान्तरात्मा
तं स्वैर्धनैश्च वपुषाप्यनुकूलवाण्या ।
अब्दत्रयङ्कमलनाभधियाऽतिधीर-
स्तुष्टे विवक्षतु गुरावथ मन्त्रदीक्षाम् ।। ३ ।।

अथानन्तरम् उक्तलक्षणं गुरुं वत्सरत्रयं पद्मनाभबुद्धया सन्तोषयेत् । कैः ? स्वीयद्रव्यैः तथा शरीरेण तथा प्रियवचनेन । कीदृशः ? सुधीरः पण्डितः । पुनः कीदृशः ? अवक्रोऽतिस्निग्धो अन्तरात्मा अन्तःकरणं यस्य स तथा अथानन्तरं तुष्टे गुरौ मन्त्रदीक्षां विवक्षतु वक्तुमिच्छतु शिष्य एव यत्त्वन्यत्रोक्तम् ।

एकाब्देन भवेद् विप्रोभवेदब्दद्वयान्नृपः।
भवेदब्दत्रयैर्वैश्यः शूद्रो वर्षचतुष्टयैः॥ इति।

तदत्यन्तपरिशीलितविषयम्।

अन्यथा तु—

त्रिषु वर्षेषु विप्रस्य षड्वर्षेषु नृपस्य च।
विशो नवसु वर्षेषु परीक्षेतेति शस्यते॥
समास्वपि द्वादशसु तेषां ये वृषलादयः।

इति बोद्धव्यम्।

विहितनक्षत्रादिकं मत्कृतशारदातिलकोद्द्योते बोद्धव्यम्॥ ३॥

इस प्रकार बुद्धिमान जिज्ञासु ऊपर कहे गये लक्षणों से युक्त गुरु के पास जाकर अपने द्रव्यों से, शरीर से, प्रियवाणी से तथा निश्छल अन्तःकरण से तीन वर्ष पर्यन्त निरन्तर उसमें विष्णु की भावना करते हुए उसे सेवा भाव से संतुष्ट करे। फिर उन्हें संतुष्ट जान उनसे मन्त्र प्राप्ति के लिए दीक्षा लेने की जिज्ञासा व्यक्त करे॥ ३॥

कलावत्यादिभेदेन दीक्षाया बहुविधत्वात् मया पुनरत्र प्रपञ्चसारोक्ता क्रियावती दीक्षैव सङ्क्षेपेण प्रदर्श्यते इत्याह—प्रपञ्चसारेति।

प्रपञ्चसारप्रथिता तु दीक्षा
संस्मार्यते सम्प्रतिसर्वसिद्ध्यै।
ऋते यया सन्ततजापिनोऽपि
सिद्धिं न वै दास्यति मन्त्रपूगः॥ ४॥

सम्प्रति दीक्षा क्रियावती संस्मार्यते तस्याः स्मरणमात्रं क्रियते नतु सम्यगभिधीयते। अत्र हेतुः यतः प्रपञ्चसारे विविच्योक्ता, किमर्थमभिधीयते? सर्वेषां फलानां प्राप्त्यै यया दीक्षया विना सर्वदा जपकर्तुः पुरुषस्य मन्त्रसमूहः फलं यस्मान्न ददाति।

यदाहुः—

मन्त्रवर्गानुसारेण साक्षात्कृत्येष्टदेवताम्।
गुरुश्चेद्बोधयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति सोच्यते॥

इति॥ ४॥

अब मैं संपूर्ण सिद्धि की प्राप्ति के लिए 'प्रपञ्चसार' नामक ग्रन्थ में कही गयी दीक्षा विधि का स्मरण करता हूँ। जिसके न रहने से सर्वदा मन्त्रों का जप करने वाले भी साधकों को मन्त्र समूह फल प्रदान नहीं करते ॥ ४ ॥

अथ शोधितशालादिस्थाने मण्डपपूर्वकृत्यं वास्तुबलिमाह—अथेति ।

अथ पुरो विदधीत भुवः स्थलीमधि यथाविधि वास्तुबलिं बुधः ।
अचलदोर्मितमत्र तु मण्डपं मसृणवेदिकमारचयेत्ततः ॥ ५ ॥

अथानन्तरं प्रथमं भुवः स्थलीमधि पृथिव्यामुपरि यथाविधि यथोक्तप्रकारेण वास्तुबलिं बुधो दद्यात् । अत्र वलिदानादिविधिश्च मत्कृतशारदातिलकोद्द्योते बोद्धव्यः । ततस्तदन्तरम् अत्र संस्कृतभूमौ मण्डपं कुर्यात् । कीदृशम् ? अचलदोर्मितं सप्तहस्तपरिमितम् । तु शब्दो अनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन पञ्चहस्तपरिमितं नवहस्तमितं चेति बोद्धव्यम् । पुनः कीदृशम् ? मसृणवेदिकं चिक्कणवेदिकम् उत्कृष्टवेदिकमित्यर्थः ॥ ५ ॥

सर्व प्रथम बुद्धिमान साधक पृथ्वी पर शास्त्रोक्तरीति से वास्तु बलि करे । फिर अच्छी प्रकार से उपलेपादि से शुद्ध उस भूमि में सात हाथ, पाँच हाथ अथवा नव हाथ का मण्डप निर्माण करे । तदनन्तर उस मण्डप में लिपी-पोती शुद्ध चिकनी उत्तम वेदी बनाये ॥ ५ ॥

त्रिगुणेति ।

त्रिगुणतन्तुयुजा कुशमालया परिवृतं प्रकृतिध्वजभूषितम् ।
मुखचतुष्कपयस्तरुतोरणं सितवितानविराजितमुज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

पुनः कीदृशम् ? कुशमालया वेष्टितम् । किम्भूतया ? श्वेतरक्तश्यामवर्णतन्तुयुक्तया यद्वा त्रिगुणीकृतसूत्रयुक्तया । पुनः कीदृशम् ? अष्टभिध्वजैः शोभितं प्रकृतिरष्टसङ्ख्या । पुनः कीदृशम् ? मुखचतुष्के द्वारचतुष्टये पयस्तरुभिः क्षीरवृक्षैः तोरणं बहिर्द्वारं यत्र तादृशम् । क्षीरवृक्षास्तु अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधाख्याः (पुनः कीदृशम् ? शुभ्रचन्द्रातपेन शोभितम्) पुनः कीदृशम् ? उज्ज्वलं निर्मलम् ॥ ६ ॥

फिर उस वेदी को श्वेत, रक्त तथा श्यामवर्णके कुशों से अथवा कुश निर्मित तीन सूत्रों से उसे परिवेष्टित करे । उसके आठों दिशाओं में आठ ध्वज लगावे तथा उसके चारों द्वारों पर क्षीर वृक्षों का तोरण बाँधे तदनन्तर उस पर शुभ्रवितान लगाकर सुशोभित करे ॥ ६ ॥

विमर्श—अश्वत्थ, उदुम्बर, प्लक्ष और न्यग्रोध ये चार क्षीर वृक्ष कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

कुण्डविधिमाह—वस्विति ।

वसुत्रिगुणिताङ्गुलप्रमितखाततारायतं
वसोर्वसुपतेरथो ककुभि धिष्ण्यमस्मिन् बुधः ।
करोतु वसुमेखलं वसुगणार्द्धकोणं प्रती-
च्यवस्थितगजाधरप्रतिमयोनिसंलक्षितम् ॥ ७ ॥

अथानन्तरम् अस्मिन् मण्डपे बुधः वसोर्वह्ने धिष्ण्यं कुण्डं करोतु। कीदृशम्? वसुरष्टसङ्ख्या अष्टौ वसवः इति प्रसिद्धेः। तेषां वसूनां त्रिगुणानि चतुर्विंशाङ्गुलानि तैः प्रमितं तत्प्रमाणं खातस्य गर्त्तस्य उच्चत्वं विस्तारश्च यत्र तादृशम्। कुत्र? वसुपतेः कुवेरस्य ककुभि दिशि उत्तरस्याम्। पुनः कीदृशम्? वसुमेखलम्। अत्र वसुशब्देन अग्निरुच्यते स च गार्हपत्याहवनीयेत्यादित्रिविधः। पुनः कीदृशम्? वसुगणार्द्धकोणं चतुष्कोणम्। पुनः कीदृशम्? पश्चिमदिश्य-वस्थितं गजोऽष्टसदृशद्वादशाङ्गुलायामा या योनिस्तया भूषितम्। तदुक्तम्—

द्वादशाङ्गुलिरूपत्वाद्योनिः स्याद् द्वादशाङ्गुलिः। इति।

अपरोऽत्र विशेषः शारदातिलकतोऽवगन्तव्यः ॥ ७ ॥

वेदी निर्माण के पश्चात् उसी मण्डप के उत्तर दिशा में २४ अङ्गुल गहरा तथा २४ अंगुल विस्तार वाला खात बनाकर चतुष्कोण अग्निकुण्ड का निर्माण करे। उसे तीन मेखला से विभूषित करे। पुनः पश्चिम दिशा में द्वादशाङ्गुल प्रमाण योनि का निर्माण करे ॥ ७ ॥

अधुना राशिमण्डलविधिं दर्शयति—तत इति।

ततो मण्डपे गव्यगन्धाम्बुसिक्ते
लिखेन्मण्डलं सम्यगष्टच्छदाब्जम्।
सवृत्तत्रयं राशिपीठाङ्घ्रिवीथि-
चतुर्द्वारशोभोपशोभास्त्रयुक्तम् ॥ ८ ॥

ततो मण्डपानन्तरम् अस्मिन् मण्डपे सम्यक् यथोक्तप्रकारेण मण्डलं लिखेत्। कीदृशे? गव्यैः पञ्चगव्यैः शारदातिलकोक्तवैष्णवगन्धाष्टकजलेन प्रोक्षिते। कीदृशम्? अष्टदलपद्मसहितम्। पुनः कीदृशम्? वृत्तत्रयसहितम्। पुनः राशयो-मेषादयः पीठं कलसस्थापनस्थानं तस्याङ्घ्रिपीठपात्रचतुष्टयं चतस्रो वीथयः चत्वारि द्वाराणि शोभा उपशोभा अस्त्रं कोणम् एतैर्युक्तम्। अयमर्थः-सार्द्धहस्तद्वय-

प्रमाणेन समं चतुरस्रम्भूभागं परिष्कृत्य तत्र पूर्वापरायतानि सप्तदशसूत्राणि पातयेत्। एवं सति षटपञ्चाशदुत्तरं द्विशतं कोष्ठानां भवति। तत्र कोष्ठविभागो मध्ये षोडशभिः कोष्ठैर्वृत्तत्रयान्वितं पद्मं लिखेत् (तत्र च पद्मोपरिशिष्टे पीठं तदङ्गं च लिखेत्) तद्बहिरष्टाधिकचत्वारिंशताद्वादशराशीन् लिखेत्, तद्बहिः षट्त्रिंशतापीठं पीठाङ्गञ्च लिखेत् (तद्बहिरशीतिभिः पदैर्लिखेत्)। अत्रेदं बोद्धव्यं पद्मस्य दलाग्रस्थं वृत्तं पीठशक्तिश्च एतयोर्मध्ये पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरं सूत्रचतुष्टयं दद्यात्, अनन्तरं द्वादशाधिकैः शतपदैर्द्वारशोभोपशोभाकोणानि विलिखेत्। तत्र सर्वस्यां दिशि द्वारं षट्पदम्। तत्र प्रकारः बाह्यपङ्क्तिगतमध्य-कोष्ठद्वयन्तदन्तर्गतपङ्क्तिगतमध्यकोष्ठद्वयमिति द्वारस्यैकस्मिन्भागे कोष्ठचतुष्टयेनैका शोभाभवति। तत्र बाह्यपङ्क्तिगतमेकं कोष्ठं तदन्तर्गतपङ्क्तिगतं कोष्ठत्रयमिति। एवं कोष्ठचतुष्टयेनैकोपशोभा भवति। अत्र बाह्यपङ्क्ति-गतकोष्ठत्रयन्तदन्तर्गतपङ्क्तिगतमेकं कोष्ठमिति तथा कोष्ठषट्केन कोण-मिति। एवमपरस्मिन्भागेऽपि शोभोपशोभाकोणानि बोद्धव्यानि। एवं दिक्-चतुष्टयेऽपि मिलित्वा द्वादशाधिकं शतं भवतीति। अत्रानुक्तं शारदातिलके बोध्यम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार मण्डप वेदी तथा अग्निकुण्ड के निर्माण कर लेने के बाद उसे पञ्चगव्य छिड़क कर पवित्र करे। फिर उसमें अष्टदल कमल का निर्माण करे। वह अष्टदल तीनवृत्त, द्वादश राशियाँ, कलशस्थान, पीठ के लिए पात्र चतुष्टय, चार वीथी, चार द्वार शोभा उपशोभा और कोणों से युक्त हो ॥ ८ ॥

विमर्श—यहाँ पर सर्वतोभद्र की विधि तथा उस पर वृत्तादि के निर्माण का प्रकार शारदातिलक ग्रन्थ में देखें ॥ ८ ॥

ततो देशिकः स्नानपूर्वं विधानं
विधायाऽऽत्मपूजावसानं विधिज्ञः।
स्ववामाग्रतः शङ्खमप्यर्घ्यपाद्या-
चमाद्यानि पात्राणि सम्पूरितानि ॥ ९ ॥
विधायाऽन्यतः पुष्पगन्धाक्षताद्यं
करक्षालनं पृष्ठतश्चाऽपि पात्रम्।
प्रदीपावलीदीपिते सर्वमन्यत्
स्वदृग्गोचरे साधनं चाऽऽददीत ॥ १० ॥

तदनन्तरं विधिज्ञः आगमोक्तप्रकारज्ञः देशिको गुरुः स्नानपूर्वकं विधानं स्वगृह्योक्तादिस्नानविधिम् आत्मपूजापर्यन्तं समाप्य स्ववामाग्रे शङ्खार्घ्यपाद्याचमनीयपात्राणि जलादिस्वच्छद्रव्यैः सम्पूरितानि कृत्वा यथोत्तरं स्थापयित्वाऽन्यतो दक्षिणभागे पुष्पाणि पूजाद्रव्याणि निधाय करप्रक्षालनपात्रमेकं पृष्ठदेशे निधाय सर्वमन्यत् साधनम् उपकरणम् स्वदृग्गोचरे चक्षुर्गोचरे प्रदीपश्रेणिविराजिते स्थापयेत् । अत्राऽपरो विशेषः श्रीपरमानन्दभट्टाचार्यकृते प्रपञ्चसारविवरणे द्रष्टव्यः ॥ ९ ॥ १० ॥

तदनन्तर आगमशास्त्र का ज्ञाता गुरु अपने गृह्योक्त विधि के अनुसार स्नान से लेकर आत्मपूजापर्यन्त सारी क्रिया समाप्त कर अपनी बाईं ओर शङ्ख अर्घ पात्र और आचमन आदि पात्रों को स्वच्छ एवं पवित्र जल से पूर्ण कर उत्तरोत्तर क्रम से स्थापित करे ॥ ९ ॥

पुनः अपनी दाहिनी ओर पुष्प गन्ध और अक्षतादि पूजा की सामग्री स्थापित करे । तथा अपने पीछे की ओर हाथ धोने के एक पात्र को रखे । शेष समस्त साधनों को अपने आँखों के सामने जहाँ दीपों की पंक्ति रखी गयी हो वहीं पर स्थापित करे ॥ १० ॥

विमर्श—यहाँ पर अन्य विशेषता श्रीपरमानन्दभट्टाचार्य कृत 'प्रपञ्चसार' नामक ग्रन्थ के 'विवरण' टीका में देखिये ॥ १० ॥

वायव्येति ।

वायव्याशादीशपर्यन्तमर्च्य-
पीठस्योदग्गौरवी पङ्क्तिरादौ ।
पूज्योऽन्यत्राऽप्याम्बिकेयः कराब्जैः
पाशं दन्तं शृण्यभीती दधानः ॥ ११ ॥

पीठस्य राशिपीठस्य उदक् उत्तरभागे वायव्यकोणादीशानकोणपर्यन्तं गुरुसम्बन्धिनी पङ्क्तिरादौ प्रथममतः पूज्या । प्रयोगस्तु ॐगुरुभ्यो नमः इति । अन्यत्र दक्षिणभागे अम्बिकेयो गणपतिः पूज्यः । कीदृशः ? हस्तपद्मैः स्वदन्तं शृणिम् अङ्कुशम् अभयं दधानः ॥ ११ ॥

राशिपीठ के उत्तर भाग में वायव्य कोण से लेकर ईशानकोण पर्यन्त गुरु सम्बन्धिनी पङ्क्ति कही गयी है । वहाँ सर्वप्रथम पूर्व में ('ॐ गुरुभ्यो नमः' इस मन्त्र से) गुरु की पूजा करे । और दक्षिणभाग में गणपति की ('ॐगणपतये नमः' इस मन्त्र से) पूजा करे; जो गणपति अपने चार करकमलों में पाश, स्वदन्त, अङ्कुश तथा

अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं ॥ ११ ॥

अधुनाकलशस्थापनप्रकारं दर्शयति यतो देशिक इत्यादिना–आराध्येति ।

आराध्याऽऽधारशक्त्याद्यमरचरणपावध्यथो मध्यभागे
धर्मादीन् वह्निरक्षःपवनशिवगतान् दिक्ष्वधर्मादिकांश्च ।
मध्ये शेषाब्जबिम्बत्रितयगुणगणात्मादिकं केशराणां
वह्नेर्मध्ये च शक्तीर्नवसमभियजेत्पीठमन्त्रेण भूयः ॥ १२ ॥

अथानन्तरं मण्डलमध्यभागे आधारशक्तिमारभ्य कल्पवृक्षपर्यन्तमाराध्य पूजयित्वा पीठन्यासक्रमेण वह्नीति अग्न्यादिकोणगतान् धर्मादीन् पूर्वादिचतुर्दिक्षु अधर्मादीन् तथा मध्ये शेषं पद्मं तथा सूर्यसोमवह्नीनां बिम्बत्रयं द्वादशषोडशदशकलाव्याप्तं मण्डलत्रयं तथा सत्त्वादिगुणत्रयं तथाऽऽत्मादिचतुष्टयं पूजयेत् । अथ केशराणां मध्ये कर्णिकायां च विमलाद्या नव शक्तीः पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् । भूयः पुनरपि पूर्वोक्तेन पीठमन्त्रेण पीठं पूजयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

इसके बाद मण्डल के मध्यभाग में आधारशक्ति से आरम्भ कर कल्पवृक्षपर्यन्त पूजा कर पीठन्यास क्रम से आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य तथा ईशान कोणों में धर्मादि का पूजन करे। पश्चात् पूर्वादि दिशाओं में अधर्मादि चतुष्टय का, मध्य में शेष पद्म तथा सूर्य सोम अग्नि रूप बिम्बत्रय का (जो द्वादश कला षोडशकला और दश कला से व्याप्त मण्डल वाले हैं); सत्त्व रज तम आदि त्रितय गुणों का तथा आत्मादि चतुष्टय का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार केशरों के मध्य की कर्णिका में विमलादि नवशक्तियों का तत्पश्चात् पीठ मन्त्र से पीठ का पुनः पूजन करे ॥ १२ ॥

तत इति ।

ततः शालीन् मध्येकमलममलांस्तण्डुलवरा-
नपि न्यस्येद्दर्भांस्तदुपरि च कूर्चाक्षतयुतान् ।
न्यसेत्प्रादक्षिण्यात्तदुपरि कृशानोर्दश कला-
यकाराद्यर्णाढ्या यजतु च सुगन्धादिभिरिमाः ॥ १३ ॥

तदनन्तरं मध्येकमलं कमलमध्ये शालीन् आढकपरिमितान् तथा शुभ्रान् शाल्यष्टभागपरिमितान् तण्डुलान् श्रेष्ठान् न्यस्येत् स्थापयेत् ।

तदुक्तम्—

शालीन् वै कर्णिकायां च निक्षिप्याढकसंमितान् ।
तण्डुलांश्च तदष्टांशान् दर्भैः कूर्चैः प्रविन्यसेत् ॥ इति ॥

तदुपरि तण्डुलोपरि कूर्चाक्षतयुक्तान् दर्भान् विन्यसेत्, कुशत्रयघटितो ब्रह्मग्रन्थिः कूर्चशब्देनोच्यते, कूर्चः कुशमुष्टिरिति त्रिपाठिनः, तदुपरि कूर्चोपरि कृशानोर्वह्नेर्दश कला यकारादयो दशवर्णा आद्याः प्रथमा यासां ताः प्रादक्षिण्येन न्यसेत् तदनन्तरं इमा दश कला गन्धादिभिः पूजयेत् ।

ताश्च—

धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यवहा कव्यवहेति ॥

प्रयोगस्तु—धूम्रार्चिषे नम इति ॥ १३ ॥

तदनन्तर कमल के मध्य में एक आढ़क के परिमाण वाले अथवा उसके अष्टमांश परिमाण वाले उत्तम चावल को स्थापित करे। उस चावल पर तीन कुशों की ग्रन्थि, अथवा मुष्टिप्रमाण के कुशा को अक्षत युक्त कर स्थापित करे। उस कूर्च पर दक्षिण दिशा के क्रम से अग्नि की दश कलाओं (धूम्रार्चि, ऊष्मा; ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्रीः, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा ये अग्नि की दश कलाओं के नाम हैं) को यकार से लेकर दशवर्णों से न्यास करे। पश्चात् गन्धादि द्वारा उन दश कलाओं का पूजन करे ॥ १३ ॥

विमर्श—प्रयोग विधि इस प्रकार जानना चाहिए यं—धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः' इत्यादि ॥ १३ ॥

न्यसेदिति ।

न्यसेत्कुम्भं तत्र त्रिगुणितलसत्तन्तुकलितं
जपंस्तारं धूपैः सुपरिमलितं जोङ्कटमयैः ।
कभाद्यैः कुम्भेऽस्मिन् ठडवसितिभिर्वर्णयुगलैः
तथान्यस्याऽभ्यर्च्यास्तदनु खमणेर्द्वादश कलाः ॥ १४ ॥

तत्र दशकलामये कूर्चे तारमोंकारमुच्चरन् कुम्भं न्यसेत् । कुम्भस्तु सुवर्णादिनिर्मितः ।

तदुक्तम्—

सौवर्णं राजतं वापि मृण्मयं वा यथोदितम् ।
क्षाणयेदस्त्रमन्त्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि ॥ इति ॥

कीदृशम् ? ग्रीवायां त्रिगुणिता लसन्तः शोभमाना ये तन्तवः कन्याकर्तित- कार्पाससूत्राणि तैः कलितम् अस्त्रमन्त्रेण वेष्टितम्। पुनः कीदृशम् ? जोङ्कटमयैः कृष्णागुरुप्रधानैर्धूपैः सुधूपितं तदनन्तरं खमणेः सूर्यस्य द्वादशकला अस्मिन् कुम्भे न्यस्य अनन्तरं पूज्याः। कैः ? वर्णयुगलैः। कीदृशैः ? कभाद्यैः ककारभकाराद्यैः। पुनः कीदृशैः ? ठडवसितिभिः ठकारडकारावसानैः। अयमर्थः—अनुलोमपठितककाराद्येकैकमक्षरं प्रतिलोमपठितभकाराद्येकैकमक्षरेण सहितं तपिन्यादिषु द्वादशकलासु संयोज्य न्यासादिकं कार्यम्।

ताश्च—

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।
सुषुम्णा भोगदा विश्वा वेधिनी धारिणी क्षमा ॥ इति ॥

प्रयोगस्तु—कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नम इत्यादिकार्यम् ॥१४॥

इस प्रकार दशकलामय उस कूर्च पर अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा मिट्टी का बना हुआ कलश प्रणव मन्त्र का जप करते हुए स्थापित करे। उसके कण्ठप्रदेश में कन्या के हाथ का काता हुआ त्रिगुणित सूत्र अस्त्र मन्त्र (ॐ अस्त्राय फट्) इस मन्त्र को पढ़ते हुए बाँधे। फिर उसे कालागुरु के धूप से धूपित करे। फिर उस कुम्भ पर सूर्य की द्वादश कलाओं को स्थापित कर (तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा ये सूर्य की द्वादश कलाओं के नाम हैं) ककार से लेकर ठकार पर्यन्त द्वादशवर्णों का अनुलोम पूर्वक तथा भकार से लेकर उकार पर्यन्त वर्णों का प्रतिलोमपूर्वक एक साथ क्रम से पढ़ते हुए न्यास करे। यथा 'कं भं तपिन्यै नमः' 'खं बं तापिन्यै नमः' इत्यादि ॥ १४ ॥

एवमित्यादि।

एवं सङ्कल्प्याऽग्निमाधाररूपं
भानुं तद्वत्कुम्भरूपं विधिज्ञः।
न्यस्येत्तस्मिन्नक्षताद्यैः समेतं
कूर्चं स्वर्णैं रत्नवर्यैः प्रदीप्तम् ॥ १५ ॥

एवमनेन प्रकारेणाऽऽधाररूपमग्निं सङ्कल्प्य तद्वत्कुम्भरूपं भानुं विचिन्त्य तस्मिन् कुम्भे विधिज्ञ आगमोक्तप्रकाराभिज्ञः मूलमन्त्रेणाऽक्षताद्यैः सहितं कूर्चं पूर्वोक्तलक्षणैः सुवर्णरत्नवर्यैर्नवरत्नैः शोभितं न्यसेत्।

तदुक्तं भैरवेण—

एतान् नयित्वा तन्मध्ये शुक्लपुष्पं सिताक्षतम् ।
नवरत्नं च कूर्चं च मूलेनैव विनिक्षिपेत् ॥ इति १५ ॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त रूप से आधार रूप अग्नि का संकल्प कर पश्चात् कुम्भ पर उसी प्रकार सूर्य का संकल्प कर मन्त्र वेत्ता गुरु उस कुम्भ में अक्षत सहित त्रिकुश की ग्रन्थि तथा नवरत्नों को डाल कर उसे सुशोभित करे ॥ १५ ॥

अथेति ।

अथ क्वाथतोयैः क्षकारादिवर्णै-
रकारावसानैः समापूरयेत्तम् ।
स्वमन्त्रत्रिजापावसानं पयोभि-
र्गवां पञ्चगव्यैर्जलैः केवलैर्वा ॥ १६ ॥

अथाऽनन्तरं पीठकुम्भयोरैक्यं विचिन्त्य पञ्चाशद्वर्णैरोषधितोयैः पलाशत्वग्जलैः क्षीरद्रुमत्वक्क्वाथजलैर्वा सर्वौषधिजलैर्वा गवां पयोभिर्वा पञ्चगव्यैर्वा केवलजलैः कर्पूरादिजलैर्वा तीर्थजलैर्वा क्षकारादिवर्णैरकारावसानैर्विलोममातृकाभिः स्वमन्त्रत्रिजपावसानं मूलमन्त्रवारत्रयजपान्तं यथा स्यादेवं पूरयेत् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर आधार पीठ और कुम्भ का एकाकार रूप से ध्यान करते हुए पचास प्रकार की औषधियों के जल से, अथवा पलाशत्वक् के जल से अथवा दूध वाले वृक्षों के क्वाथ जल से अथवा सर्वौषधिजल से अथवा गोदुग्ध से अथवा पञ्चगव्य के जल से अथवा मात्र केवल जल से अथवा कर्पूरमिश्रित जल से अथवा तीर्थजल से क्षकारादिवर्ण से आरम्भ कर रकारपर्यन्त प्रतिलोम क्रम से वर्णो को पढ़कर तदनन्तर मूल मन्त्र का तीन बार जपावसान पर्यन्त पाठ करते हुए उस कलश को जल परिपूर्ण करे ॥ १६ ॥

कलशजले इति ।

कलशजलेऽस्मिन् वसुयुगसङ्ख्याः
स्वरगणपूर्वा न्यसतु तथैव ।
उडुपकलास्ताः सलिलसुगन्धा-
क्षतसुमनोभिस्तदनु यजेत ॥ १७ ॥

तस्मिन् कलशजले उडुपकलाश्चन्द्रकला: वसुयुगसङ्ख्या: षोडशसङ्ख्या: स्वरगणपूर्वा अकारादिवर्णपूर्वा न्यसतु । तदनु तदनन्तरं ताश्चन्द्रकलास्तथैव तेनैव क्रमेण पुष्पाञ्जलिभि: पूजयेत् ।

ताश्च—

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृति: ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्री: प्रीतिरङ्गदा ।।
पूर्णापूर्णामृतेति ।। १७ ।।

पुन: कलश को जल से उपरोक्त विधि के अनुसार जल से परिपूर्ण कर उस जल में अकारादि से लेकर अ: पर्यन्त षोडशस्वरों के एक एक अक्षर से चन्द्रमा की १६ कलाओं का (अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा, अपूर्णामृता) न्यास करे ।। १७ ।।

विमर्श—प्रयोगविधि—'अं अमृतायै नम:' इत्यादि। तदनन्तर उन चन्द्रकलाओं को जल, अक्षत तथा पुष्पाञ्जलियों द्वारा पूजन करे ।। १७ ।।

अधुना वैष्णवगन्धाष्टकमाह—उदीच्येत्यादिना ।

उदीच्यकुष्टकुङ्कुमाम्बुलोहसज्जटामुरै: ।
सशीतमित्युदीरितं हरे: प्रियाष्टगन्धकम् ।। १८ ।।

उदीच्यम् उशीरं कुष्टं कुङ्कुमम् अम्बुवाला नेत्रवाला लोह: कृष्णागुरु: जटया सह मुरा जटा मांसी मुरा मांसी च एतै: सह शीतं चन्दनमिति हरे: प्रियकारिगन्धाष्टकमुक्तम् ।। १८ ।।

उशीर, कुष्ठ, कुङ्कुम, नेत्रवाला, कृष्णागुरु, जटामांसी, मुरामांसी तथा शीतचन्दन (मलयागिरि चन्दन) ये अष्टगन्ध विष्णु को अत्यन्त प्रिय हैं ।। १८ ।।

शङ्खपूरणमाह—क्वाथेति ।

क्वाथतोयपरिपूरितोदरे-
संविलोड्य विधिनाऽष्टगन्धकम् ।
सोमसूर्यशिखिनां पृथक्कला:
सेचकम विनियोजयेत् क्रमात् ।। १९ ।।

उदरे शङ्खे विधिनाऽऽगमोक्तप्रकारेण मूलमन्त्रेण पूर्वोक्तक्वाथजलेन परिपूरिते गन्धाष्टकं नमोमन्त्रेण संविलोडय दत्वा सोमसूर्यवह्नीनां कला:

पृथक् समावाह्य सेचकर्म प्राणप्रतिष्ठाकर्म क्रमेण विनियोजयेत् कुर्यात् ॥ १९ ॥

शङ्ख को जलपूर्ण करने की विधि—

पुनः शङ्ख में आगमशास्त्र के अनुसार पूर्वोक्तरीति से क्षीरीवृक्षों के क्वाथ का जल भर कर उसमें पूर्व में कहे गये अष्टगन्धों को 'नमो' मन्त्र से डाल देवे। पश्चात् उसमें भी सोम सूर्य एवं अग्नि की तत्तत्कलाओं का आवाहन कर क्रमशः प्रतिष्ठा कर्म का आरम्भ करे ॥ १९ ॥

तद्वदिति।

तद्वदाक्षरभवास्तु कादिभि-
ष्टादिभिः पुनरुकारजाः कलाः।
पादिभिर्मलिपिजास्तु विन्दुजाः
षादिभिः स्वरगणेन नादजाः ॥ २० ॥

पूर्वोक्तप्रकारेण आक्षरभवा अकाराक्षरभवा दश कलाः कादिभिः ककारादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः पुनरुकारजा उकाराक्षरभवा दश कलाः टादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः तथा मलिपिजा मकाराक्षरभवा दश कलाः पादिभिर्दशभिरक्षरैः सहिताः तथा विन्दुजा विन्दूप्रभवाः चतस्रः कलाः षादिभिश्चतुरक्षरैः सहिताः तथा नादजा नादप्रभवाः षोडश कलाः स्वरसमूहेन षोडशभिः स्वरैः सहिताः शङ्खसलिले न्यस्याः।

ताश्च—

सृष्टिधृतिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा।
स्थितिः सिद्धिरकारोत्थाः कला दश समीरिताः ॥ १ ॥

यवा च पालिनी शान्तिरैश्वरी रतिकामिके।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा उकारजाः कलाः ॥ २ ॥

तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत् ह्रदिनी क्रिया।
उत्कारी चैव मृत्युश्च मकाराक्षरजाः कलाः ॥ ३ ॥

विन्दोरपि चतस्रः स्युः पीता श्वेताऽरुणाऽसिता।
निवृत्तिः सुप्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ॥ ४ ॥

ईरिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा।
सूक्ष्मा सूक्ष्ममता ज्ञानाऽमृता चाऽऽप्यायनी तथा।

व्यापिनी व्योमरूपा च अनन्ता नादसम्भवा ॥ ५ ॥ इति ।
प्रयोगश्च—कं सृष्टचै नम इत्यादि ॥ २० ॥

आबाहन की विधि—

अकार अक्षर से उत्पन्न होने वाली दश कलाओं का (सृष्टिऋ॑द्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीद्युं तिः स्थिरा । स्थितिः सिद्धिरकारोत्थाः कलाः दश समीरिताः ॥) ककारादि दश वर्णों से न्यस्त कर आवाहन करे । इसी प्रकार उकार से उत्पन्न होने वाली दश कलाओं का (यवा च पालिनी शान्तिरैश्वरी रतिकामिके । वरदा ह्लादिनी प्रीतर्दीर्घा उकारजाः कलाः ॥) टकारादि दश अक्षरों से न्यस्त कर आवाहन करे । पुनः मकार से उत्पन्न होने वाली दश कलाओं का (तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुद् ह्रदिनी क्रिया । उत्कारी चैव मृत्युश्च मकाराक्षरजाः कलाः ॥) पकारादि दश अक्षरों से न्यस्त कर आवाहित करे । विन्दु से उत्पन्न होने वाली चार कलाओं का (विन्दोरपि चतस्रः स्युः पीता श्वेतारुणाऽसिता) षादि चार अक्षरों से न्यस्त कर आवाहित करे और नाद से उत्पन्न १६ कलाओं का (निवृत्तिः सुप्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च । ईरिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका परा । सूक्ष्मा सूक्ष्ममता ज्ञाना अमृता चाप्यायनी तथा । व्यापिनी व्योमरूपा च अनन्ता नादसम्भवा ॥) १६ स्वरों से न्यस्त कर आवाहित करे ।

विमर्श—प्रयोगविधि—यथा 'सृष्ट्यै नमः' इत्यादि ॥ २० ॥

समावाहनान्ते इत्यादि ।

समावाहनान्तेऽसुसंस्थापनात्प्राक्
ऋचस्तत्र तत्राभिऽजप्या बुधेन ।
समभ्यर्च्य तास्ताः पृथक् तच्च पाथोऽ-
र्पयेन्मूलमन्त्रेण कुम्भे यथावत् ॥ २१ ॥

समावाहनस्याऽन्तेऽसुसंस्थापनात् प्राक् प्राणप्रतिष्ठायाः पूर्वं तत्र तत्र स्थाने पण्डितेन धार्य्याश्चाऽभिजप्याः पठनीयाः । अयमर्थः—शङ्खजलेऽकार-प्रभवककारादिकलावाहनानन्तरं प्राणप्रतिष्ठायाः पूर्वं "हंसः शुचिष"दिति ऋचं पठेत् । उकारप्रभवटादिकलावाहनानन्तरं "प्रतद्विष्णुः"रिति ऋचं पठेत् । मकारादिप्रभवपकारादिकलावाहनानन्तरं "तत्सवितु"रित्यादि ऋचं पठेत् । नादप्रभवतकारादिकलावाहनानन्तर "विष्णोर्योनि"रित्यादि ऋचं पठेत् । अनन्तरं मूलमन्त्रं शङ्खजले विलोमेन जपेत् । तास्ताः कलाः पृथगेकैकशः यथावत् यथाविधि सम्पूज्य तच्च पाथः तच्छङ्खोदकं मूलमन्त्रं पठित्वा कुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ २१ ॥

शङ्ख जल में अकार प्रभव कलाओं को 'ककारादि वर्णों' से आवाहन के अन्त में तथा प्राण प्रतिष्ठा से पूर्व 'हंसः शुचिषद्' इस ऋचा का पाठ करना चाहिए। उकार प्रभव कलाओं को 'टकारादिवर्णों' से आवाहन के अन्त में तथा प्राण प्रतिष्ठा से पूर्व 'प्रतद्विष्णुः' इस ऋचा का पाठ करना चाहिए। मकरादि प्रभव कलाओं को 'पकारादिवर्णों' से आवाहन के अन्त में तथा प्राण प्रतिष्ठा से पूर्व 'तत्सवितुः' इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए। विन्दु प्रभव कलाओं को षकारादि वर्णों से आवाहन के अन्त में तथा प्राणप्रतिष्ठा से पूर्व 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' इस ऋचा का पाठ करना चाहिए। इसी प्रकार नादप्रभव कलाओं को उकारादि स्वरों से आवाहन के अनन्तर तथा प्राणप्रतिष्ठा से पूर्व पुनः 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए। इसके अनन्तर मूल मन्त्र को विलोम रूप से जपते हुए उन उन कलाओं का नाम लेकर पृथक् पृथक् पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र को अनुलोम रीति से पढ़ते हुए उस शङ्ख के जल को प्रधान कलश में डाल देना चाहिए ॥ २१ ॥

सहेति।

सहकारवोधिपनसस्तवकैः
शतमन्युवल्लिकलितैः कलशम्।
पिदधातु पुष्पफलतण्डुलकै-
रभिपूर्णयाऽपि शुभचक्रिकया ॥ २२ ॥

सहकार आम्रः बोधिरश्वत्थः पनसः कण्टकिफलवृक्षः एतेषां स्तबकैः पल्लवैः शतमन्युवल्लिकलितैरिन्द्रवल्लीवद्धैः कलशं कलशमुखं सुरद्रुमधिया पिदधातु समाच्छादयतु तथा पुष्पादिभिः परिपूर्णया शुभचक्रिकया शोभमान-शरावेण तदुपरि पिदधातु ॥ २२ ॥

तदनन्तर आम, अश्वत्थ तथा पनस (कटहल) के पत्तों को इन्द्रबल्ली नामक लता में बाँधकर उसी से कलश के मुख में कल्पवृक्ष की भावना करते हुए आच्छादित कर देना चाहिए और उसको पुष्प, फल एवं तण्डुल से परिपूर्ण शराव से ढक देना चाहिए ॥ २२ ॥

अभीति।

अभिवेष्टयेत्तदनु कुम्भमुखं
नवनिर्मलांशुकयुगेन बुधः।

समलङ्कृतेऽत्र कुसुमादिभिर–

प्यभिवाहयेत्परतरश्च महः ॥ २३ ॥

तदनु तदनन्तरं नूतनमलरहितवस्त्रद्वयेन परितः कुम्भमुखमभिवेष्टयेत् । अनन्तरं कुम्भे पुष्पादिभिरलङ्कृते परमोत्कृष्टं महस्तेजः पूज्यदेवतास्वरूपमावाहयेत् आवाहनादिकं कुर्यात्, यथा श्रीकृष्णेहाऽऽगच्छेह तिष्ठ इह संनिधेहि ॥ २३ ॥

फिर बुद्धिमान गुरु नवीन एवं निर्मल दो वस्त्र खण्डों से कुम्भ के मुख को अभिवेष्टित कर देवे। इस प्रकार पुष्पादि से अलङ्कृत उस कुम्भ पर परमोत्कृष्ट तेजःस्वरूप परदेवता के रूप का 'श्रीकृष्णेहागच्छेह तिष्ठ इह संनिधेहि' इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिए ॥ २३ ॥

सकलीति ।

सकलीविधाय कलशस्थममुं

हरिमर्णतत्त्वमनुविन्यसनैः ।

परिपूजयेद् गुरुरथाऽवहितः

परिवारयुक्तमुपचारगणैः ॥ २४ ॥

अमुं कलशस्थं हरिं सकलीकृत्य देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्-सकलीकृतिरिति ।

उत्तमाङ्गं विधाय वर्णतत्त्वमन्विति अक्षरमयतत्त्वमन्त्रन्यासैः सहेति रुद्रधरः । अर्ण इति सृष्टिसंहारभेदेन अङ्गुल्यारोपणभेदेन च मन्त्रवर्णविन्यासोऽर्णन्यासः तत्त्वेति सृष्टिसंहारभेदेन मन्त्राक्षरान्वितदशतत्त्वन्यासः तथा मूलमन्त्रन्यासो मनुन्यासः मनुपुटितमातृकान्यास इत्यर्थः । इत्यादिन्यासैस्तत्तेजोरूपधरं सकलं सगुणं शरीरं कुर्यादिति भैरवत्रिपाठिनः । विद्याधरोऽप्येवमाह-पीठन्यासकरन्यासौ विनाऽपि प्रथमद्वितीयपटलप्रोक्तन्यासादिजातैरिति । केचित् अष्टादशाक्षरे पक्षे तत्त्वन्यासस्थाने मन्त्राक्षरन्यासो द्रष्टव्यः । अथाऽनन्तरम् अवहितः सावधानो गुरुः सपरिवारम् आवरणसमेतम् उपचारगणैः षोडशदशपञ्चोपचारान्यतमोपचारेण पूजयेत् ॥ २४ ॥

इस प्रकार कलश पर आवाहन किये गये श्रीकृष्ण के अङ्गों में षडङ्गन्यासपूर्वक कला से युक्त कर (साकार रूप बनाकर) अक्षरमयतत्त्व के मन्त्रों का न्यास कर सावधानी से आवरणों से युक्त श्रीकृष्ण की पूजा षोडशोपचारों से दशोपचारों से अथवा पञ्चोपचारों से करनी चाहिए ॥ २४ ॥

पूजाक्रममाह—दत्वेति ।

दत्वाऽऽसनं स्वागतमित्युदीर्य:
तथाऽर्घ्यपाद्याचमनीयकानि ।
देयानिपूर्वं मधुपर्कयुञ्जि
नन्दात्मजायाऽऽचमनान्तकानि ॥ २५ ॥
स्थानं च वासश्च विभूषणानि
साङ्गाय तस्मै विनियोज्य मन्त्री ।
गात्रे पवित्रैरथ गन्धपुष्पैः
पूर्वं यजेन्न्यासविधानतोऽस्य ॥ २६ ॥

तस्मै साङ्गाय नन्दात्मजाय कृष्णाय आसनं पद्मादिकुसुमरूपं दत्वा स्वागतमित्युदीर्य स्वागतमिति शब्दमुच्चार्य अनन्तरं पूर्वं प्रथमतः अर्घ्यपाद्याचमनीयकानि मधुपर्कसहितानि देयानि आचमनान्तकानि मधुपर्कं दत्वा पुनराचमनीयं देयं स्नानं गन्धजलादिभिः कार्यं वासो वस्त्रयुगलं शरीरे देयं विभूषणानि कुण्डलादीनि यथास्थानं विनियोज्यानि । अथाऽनन्तरम् अस्य परमेश्वरस्य गात्रे शरीरे पूर्वं प्रथमतः पवित्रैः शुद्धैः गन्धपुष्पैर्न्यासप्रकारेण यजेत् पूजयेत् ॥ २५ ॥ २६ ॥

उन सपरिवार नन्दतनय परमात्मा श्री कृष्ण को कमलादि पुष्पों का आसन देकर 'स्वागतम्' इस शब्द का उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर अर्घ्य पाद्य आचमनीय को मधुपर्क के साथ समर्पित करना चाहिए । आचमन के अन्त में मधुपर्क समर्पित कर पुनः आचमन करावे । फिर सुगन्धित जल से उन्हें स्नान करावे । तदनन्तर वस्त्र और उपवस्त्र के रूप में दो वस्त्र समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर उनको यथास्थान कुण्डलादि आभूषणों से अलङ्कृत करना चाहिए । फिर इन परमेश्वर के शरीर में पहले से शुद्ध किये गये गन्ध पुष्पों से न्यास में कही गयी विधि के अनुसार पूजा करनी चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥

पूजाप्रकारमेवाह—सृष्टिस्थितीति ।

सृष्टिस्थिती स्वाङ्गयुगं च वेणुं
मालामभिज्ञानवराश्ममुख्यौ ।

मूलेन चाऽऽत्मार्चनवत्प्रपूज्य

समर्चयेदावरणानि भूयः ॥ २७ ॥

वर्णन्यासमन्त्रैर्यथाक्रमं पूजयेत् । ॐ गों ॐ नमः इत्यादि । सृष्टिस्थिती पूर्वोक्तं स्वाङ्गयुगं पञ्चाङ्गदशाङ्गन्यासौ वेणुं मालां वनमालाम् अभिज्ञानवरं श्रीवत्सलाञ्छनमिति अश्ममुख्यः कौस्तुभः एतानि सम्पूज्य मूलेन चाऽऽत्मार्चनवत् यथाऽऽत्मनि परमेश्वरपूजा मूलमन्त्रेण पञ्चकृत्वः तुलस्यादिपुष्पाञ्जलिभिः पदद्वयादिषु कृता तथा कुम्भस्थमपि सम्पूज्य भूयः पुनरपि आवरणानि वक्ष्यमाणानि पूजयेत् । अष्टादशार्णपक्षे सृष्ट्यादिस्थानेषु वर्णन्यासपदन्यासानां पूजा कार्येति बोद्धव्यम् ॥ २७ ॥

प्रथम (२४ श्लोक में) कहे गये वर्ण न्यास मन्त्रों से (ॐ गों ॐ नमः इत्यादि) सृष्टि स्थिति पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग दशाङ्ग न्यास (द्र० २.२६+२७) वेणु, वनमाला श्रीवत्स कौस्तुभमणि (द्र० ३. ५१) इनका पूजन करे । फिर मूल मन्त्र से जिस प्रकार आत्मा का अर्चन पूर्व में बताया गया है (द्र० ३ ३७) उसी प्रकार तुलसी आदि पुष्पाञ्जलियों से पाँच बार (द्र० ३. ५३) कलशस्थ श्री कृष्ण का पूजन कर अनन्तर आगे कहे जाने वाले आवरणों की पूजा करे ॥ २७ ॥

आवरणपूजाक्रममाह—दिक्ष्वति ।

दिक्ष्वथ दामसुदामौ वसुदामः किङ्किणी च सम्पूज्याः ।

तेजोरूपास्तद्बहिरङ्गानि च केशरेषु समभियजेत् ॥ २८ ॥

अथाऽनन्तरं कर्णिकायां देवस्य पूर्वादिचतुर्दिक्षु दामादयश्चत्वारः पूज्याः । कीदृशाः ? तेजोरूपाः देदीप्यमानाः । प्रयोगस्तु—ॐदामाय नम इत्यादि । द्वितीयावरणमाह तद्बहिरिति । कर्णिकाकोणेषु अङ्गानि समभियजेत् ॥२८॥

आवरण पूजा का क्रम—

इसके बाद कर्णिका में देवाधिदेव श्री कृष्ण के चारों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से तेजःस्वरूप दाम, सुदाम, वसुदाम तथा किङ्किणी का पूजन करे । (प्रयोग विधि पूर्व में दामाय नमः, दक्षिण में सुदामाय नमः आदि) (अब द्वितीयावरण की पूजा कहते हैं) उसके बाहर कर्णिका के कोणों में अङ्गों का पूजन करे ॥ २८ ॥

पूजाविधानमाह—हुतवहनिरृतिसमीरशिवेति ।

हुतवहनिरृतिसमीरशिवदिक्षु हृदादिवर्मपर्यन्तम् ।

पूर्वादिदिक्ष्वथाऽस्त्रं क्रमेण गन्धादिभिः सुशुद्धमनाः ॥ २९ ॥

अग्न्यादिकोणचतुष्टयेषु हृदयादिकवचान्तानि चत्वार्यङ्गानि अथाऽनन्तरं पूर्वादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमङ्गं पूजयेत् ॥ २९ ॥

आग्नेय, निर्ऋति, वायव्य तथा ईशान इन चार कोणों में हृदय से लेकर कवच पर्यन्त चारों अङ्गों का गन्धादि द्वारा पूजन करे। फिर पूर्वादि दिशाओं में शुद्धमन से अस्त्र रूप अङ्ग का भी गन्धादि द्वारा पूजन करे। २९ ॥

अङ्गदेवताध्यानमाह—मुक्तेति।

मुक्तेन्दुकान्तकुवलयहरिनीलहुताशसभाः प्रमदाः।
अभयवरस्फुरितकराः प्रसन्नमुख्योऽङ्गदेवताः स्मर्याः ॥ ३० ॥

अङ्गदेवता ध्येयाः। किम्भूताः? प्रमदाः स्त्रीस्वभावाः। पुनः किम्भूताः? मुक्ताः इन्दुकान्तश्चन्द्रकान्तमणिः कुवलयं नीलपद्मं हरिनीलः इन्द्रनीलमणिः हुताशो वह्निश्च एतेषां समानाऽऽभा प्रभा वर्णो यासान्तास्तथा। पुनः किम्भूता? अभयेन वरेण च शोभिताः करा यासान्ताः। पुनः किम्भूताः? प्रसन्नवदनाः ॥ ३० ॥

इसके बाद मोती, चन्द्रकान्तमणि नीलपद्म, इन्द्रनीलमणि तथा अग्नि के समान प्रभावाली प्रमदा स्वरूपा अङ्गदेवता का ध्यान करना चाहिए। जिनके हाथ अभय और वरमुद्रा से सुशोभित हैं। तथा जिनका मुख अत्यन्त प्रसन्नता से परिपूर्ण है ॥ ३० ॥

तृतीयमावरणमाह—रुक्मिण्येति।

रुक्मिण्याद्या महिषीरष्टौ
सम्पूजयेद्दलेषु ततः।
दक्षिणकरधृतकमला वसुभरि-
तसुपात्रमुद्रितान्यकराः ॥ ३१ ॥

ततस्तदनन्तरं दलेषु पूर्वादिपत्रेषु रुक्मिण्याद्याः अष्टौ महिषीर्मुख्या महादेवीः सम्पूजयेत्। किम्भूताः? दक्षिणकरैर्धृतानि कमलानि याभिस्ताः तथा। पुनः किम्भूताः? वसुपूरितपात्रैर्मुद्रिताः पूरिता अन्ये वामकरा यासां तास्तथा ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर अष्टदल कमल के आठ पत्तों पर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण की पटरानियों का पूजन करे जिनके दाहिने हाथ में

कमल तथा बायें हाथ में अन्न से परिपूर्ण पात्र सुशोभित हो रहे हैं ।। ३१ ।।

अष्टौ वर्णयति—रुक्मिण्येति ।

रुक्मिण्याख्या सत्या सनाग्निजित्याह्वया सुनन्दा च ।
भूयश्च मित्रविन्दा सुलक्ष्मणा ऋक्षजा सुशीला च ॥ ३२ ॥

ऋक्षजा जाम्बवती ।। ३२ ।।

रुक्मिणि, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुनन्दा, मित्रविन्दा, सुलक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला-ये श्री कृष्ण परमात्मा की आठ पट्टमहिषियों के नाम हैं ।। ३२ ।।

तासां रूपाणि दर्शयति—तपनीयेति ।

तपनीयमरकताभाः सुसित-
विचित्राम्बरा द्विशस्त्वेताः ।
पृथुकुचभरालसाङ्ग्यो विविध-
मणिप्रकरविलसिताभरणाः ॥ ३३ ॥

एता रुक्मिण्याद्या द्विशः युग्मशः क्रमेण काञ्चनमरकतयोरिवाऽऽभा दीप्तिर्यासां तास्तथा पुनः। किम्भूताः? शोभमानानि शुक्लानि नानाप्रकाराणि वस्त्राणि यासान्तास्तथा। पुनः किम्भूताः ? अचला ये कुचास्तेषां गौरवेण अलसानि निष्क्रियाणि अङ्गानि यासान्तास्तथा। पुनः किम्भूताः ? नाना-प्रकारो मणिप्रकर इन्द्रनीलादिसमूहस्तेषु विशेषेण शोभितानि आभ-रणानि यासाम् ।। ३३ ।।

इन रानियों में क्रमशः दो दो के शरीर का वर्ण काञ्चन तथा मरकत मणियों के समान है (अर्थात् रुक्मिणी सत्यभामा काञ्चन वर्ण की है तो नाग्न-जिती सुनन्दा मरकतमणि के सदृश हैं। इसी क्रम से अन्यत्र जानना चाहिए)। ये पृथु स्तनमण्डल के भार से अलस अङ्गों वाली हैं तथा नाना प्रकार के मणियों से सभी निर्मित उत्तमोत्तम आभूषणों विभूषित हैं ।। ३३ ।।

चतुर्थावरणमाह—तत इति ।

ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च बलभद्रं सुभद्रिकाम् ।
गोपान् गोपीश्च गोविन्दविलीनमतिलोचनान् ॥ ३४ ॥

ततस्तदनन्तरं दलाग्रेषु पूर्वादिक्रमेण वसुदेवादीन् सम्पूजयेत् । किदृशाः ? गोविन्दे विलीना सम्बद्धा मतिर्लोचनं येषान्ते तथा ॥ ३४ ॥

इसके बाद अष्टदल कमल के अग्रभाग में पूर्वादिक्रम से वसुदेव देवकी, नन्द गोप यशोदा, बलभद्र सुभद्रा तथा गोप गोपियों का पूजन करे; जो अपनी बुद्धि तथा दोनों नेत्रों को सर्वदा श्री कृष्ण में लगाये हुए हैं ॥ ३४ ॥

एतेषामायुधा निदर्शयति—ज्ञानेति ।

ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपाण्डरौ ।
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषणे मातरौ पुनः ॥ ३५ ॥

ज्ञानमुद्रा अभयं च करेषु ययोस्तौ पितरौ वसुदेवनन्दगोपौ । कीदृशौ ? हरिद्राभश्वेतौ मातरौ देवकीयशोदे । कीदृश्यौ ? दिव्यानि देवार्हाणि माल्याम्बरभूषणानि ययोस्तादृश्यौ ॥ ३५ ॥

उनमें श्री कृष्ण के पिता वसुदेव एवं नन्दगोप दोनों ही हरिद्रा के समान ईषत् पीत वर्ण युक्त श्वेत वर्ण के हैं, तथा माताएँ देवकी और यशोदा दिव्य अम्बर, दिव्य आलेप एवं दिव्य आभूषणों से संयुक्त हैं ॥ ३५ ॥

धारयन्त्यौ च वरदं पायसापूर्णपात्रकम् ।
अरुणाश्यामले हारमणिकुण्डलमण्डिते ॥ ३६ ॥

वरदं वरदानं मुद्राविशेषं पायसापूर्णपात्रं च धारयन्त्यौ । पुनः किम्भूते ? अरुणाश्यामले । पुनः किदृश्यौ ? हारकुण्डलाभ्यां शोभिते ॥ ३६ ॥

दोनों ने अपने दोनों हाथों में वरदान की मुद्रा तथा पायसान्न से पूर्ण पात्र धारण किया है । दोनों में एक अरुण वर्णा हैं तो दूसरी श्याम वर्णा हैं । दोनों ही हार तथा मणिनिर्मित कुण्डलों से शोभित हो रही हैं ॥ ३६ ॥

बलः शङ्खेन्दुधवलो मुसलं लाङ्गलं दधत् ।
हालालोलो नीलवासा हेलावानेककुण्डलः ॥ ३७ ॥

बलो बलभद्रः शङ्खेन्दुधवलः श्वेतः लाङ्गलं मुसलं बिभ्राणः । पुनः कीदृशः । हाला माध्वी तस्याः पाने (लोलः) चञ्चलः अमृष्यकारी । पुनः कीदृशः ? नीलवासाः । पुनः कीदृशः ? हेलावान् लीलाबान् । पुनः कीदृशः ? एककुण्डलधारी ॥ ३७ ॥

बलभद्र शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान धवल वर्ण वाले हैं, मुसल तथा लाङ्गल (हल) हाथों में लिये हुए हैं, उनका वस्त्र नीले रङ्ग का है, वे माध्वीक मदिरा पीकर

चञ्चलता से युक्त हैं, लीला करने में पटु हैं तथा एक कुण्डल धारण किये हुए हैं ॥ ३७ ॥

कलायश्यामला भद्रा सुभद्रा भद्रभूषणा ।
वराभययुता पीतवसना रूढयौवना ॥ ३८ ॥

सुभद्रा कलायश्यामला भद्रा समीचीना भद्रभूषणा शोभमानाभरणा । पुनः किम्भूता? वराभययुता । पुनः किम्भूता ? पीतवसना । पुनः किम्भूता ? प्रौढयौवना ॥ ३८ ॥

सुभद्रा कलाप के समान श्यामवर्णवाली, सुन्दर तथा उत्तम आभूषणों से सुशोभित रहने वाली है, वह अपने दोनों हाथों में वर तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं, पीतवस्त्र पहने हुए प्रौढ़ युवावस्था से सम्पन्न है ॥ ३८ ॥

वेण्विति ।

वेणुवीणावेत्रयष्टिशङ्खशृङ्गादिपाणयः ।
गोपा गोप्यश्च विविधप्रभृतात्तकराम्बुजाः ।
मन्दारादींश्च तद्बाह्ये पूजयेत्कल्पपादपान् ॥ ३९ ॥

वेणुवंशी वीणातन्त्री वेत्रं यष्टिः शङ्खः शृङ्गादि नानावस्तु पाणौ करे येषाम् एवं विशिष्टा गोपाः गोप्यः पुनर्नानाप्रकारं यत्प्राभृतमुपढौकनं तेनात्तमायत्तं वशीकृतं कराब्जं यासान्ताः । पञ्चमावरणमाह—

मन्दारादीनिति । तद्बाह्ये तदनन्तरं मन्दारादीन् अग्रे वक्ष्यमाणान् कल्पवृक्षान् पूजयेत् ॥ ३९ ॥

सभी गोप और गोपियों के हाथ बंशी, वीणा, बेंत की छड़ी; शङ्ख एवं शृङ्गादि नाना वस्तुओं से शोभित हो रहे हैं तथा अनेक प्रकार के उपढौकन (उपायनों) से युक्त हैं । इसके बाद उसके बाहर मन्दारादि (पारियात्रादि) तथा कल्पवृक्षादि जो आगे कहे जाने वाले हैं उनका पूजन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

मन्दारसन्तानकपारिजात-
कल्पद्रुमाख्यान् हरिचन्दनं च ।
मध्ये चतुर्दिक्ष्वपि वाञ्छितार्थ-
दानैकदक्षान् फलनम्रशाखान् ॥ ४० ॥

तानेवाह मन्दारेति । कुत्र कः पूजनीयः तत्राह मध्ये इति । मध्ये कर्णिकायां प्रथमपरित्यागे मानाभावात् प्रथमनिर्दिष्टवत् पूजा चतुर्दिक्षु पूर्वादिचतुर्दिक्षु एतादृशान् वाञ्छिता आकाङ्क्षिता ये अर्थास्तेषां दाने एकं अद्वितीया दक्षाः तान् तथा फलैः नम्राः शाखा येषु तान् यद्वा आकाङ्क्षित-दाने अद्वितीयसमर्थान् तथा फलैः नम्राः शाखा येषु तान् ॥ ४० ॥

पञ्चम आवरण की पूजा—

पुनः कर्णिका के मध्य के चारों दिशाओं में मन्दार, सन्तानक, पारिजात, कल्पद्रुम एवं हरिचन्दन वृक्षों की पूजा करनी चाहिए जो फलों के भार से झुके हुए हैं तथा पूजा करने से अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं ॥ ४० ॥

षष्ठावरणमाह—हरीति ।

हरिहव्यवाट्तरणिजक्षपाचरा-
ऽप्पतिवायुसोमशिवशेषपद्मजान् ।
प्रयजेत् स्वदिक्ष्वमलधीः स्वजात्यधी-
श्वरहेतिपत्रपरिवारसंयुतान् ॥ ४१ ॥

हरिरिन्द्रः हव्यवाडग्निः तरणिजो यमः क्षपाचरो निशाचरो निर्ऋतिः अप्पतिर्वरुणः वायुः सोमः ईशः शेषोऽनन्तः पद्मजो ब्रह्मा एतान्स्वदिक्षु पूर्वादिदिक्षु निर्मलमतिः पूजयेत् । अत्र निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽनन्तं सोमेशा-नयोर्मध्ये ब्रह्माणं स्वादिक्ष्विवतिकथनात् अन्यत्र कल्पितपूर्वादिदिक्षु पूजाऽवगम्यते ।

तदुक्तमागमान्तरे—

देवाग्रे स्वस्य वाप्यग्रे प्राची प्रोक्ता च देशिकैः ।
प्राची प्राच्येव विज्ञेया मुक्तये देवतार्चनम् ॥ इति ॥

कीदृशान् ? स्वजातिः इन्द्रत्वादिः अधीश्वरोऽधिपतिः हेतिः शस्त्रं पत्रं वाहनं परिवारो गणः एतैः संयुक्तान् एतेषां च वीजानि उच्चारयितव्यानि । प्रयोगस्तु लं इन्द्राय सर्वसुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नम एवमन्यत्राप्यूहनीयः ॥ ४१ ॥

षष्ठ आवरण की पूजा—

शुद्ध बुद्धि से इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर (निर्ऋति), वरुण, वायु, सोम, ईश्वर, अनन्त और ब्रह्मा इनको शस्त्र, वाहन तथा परिवार गणों से समन्वित कर

पूर्वादि दिशाओं से आरम्भ कर पूजन करे। यहाँ पर दश दिक्पालों में आठ का चार दिशाओं और चारों कोनों में पूजन करे, किन्तु अनन्त का निरृति और वरुण के मध्य में तथा सोम एवं ईशान के मध्य में ब्रह्मदेव का पूजन करे। पूजन करते समय इन देवताओं के बीजमन्त्र का भी उच्चारण करना चाहिए ॥ ४१ ॥

विमर्श—प्रयोगविधि—यथा पूर्वं—'लं इन्द्राय सर्वसुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय सपरिवाराय नमः' आदि। इसी तरह सर्वत्र ऊहापोह कर पूजन करना चाहिए ॥ ४१ ॥

इदानीं वर्णमाह—कपिशेति।

कपिशकपिलनीलश्यामलश्वेतधूम्रा-
मलसितशुचिरक्ता वर्णतो वासवाद्याः।
करकमलविराजत्स्वायुधा दिव्यवेशा-
विविधमणिगणोस्रप्रस्फुरद्भूषणाढ्याः ॥ ४२ ॥

कपिशः कनकवर्णः कपिलस्ताम्रवर्णाभः श्यामलः कृष्णः श्वेतः शुक्लः धूम्रोऽसितभेदः अमलसितः श्वेतः शुचिरपि श्वेत एव रक्तोलोहित एते वासवाद्याः वर्णतो वर्णेन यथाक्रमं पूर्वोक्तक्रमतः। पुनः कीदृशः? हस्तपद्मे शोभमानानि आयुधानि येषां ते। पुनः उत्कृष्टवेशा नानाप्रकारमणिसमूहानां पद्मरागादीनाम् उस्रेण किरणेन प्रस्फुरद्देदीप्यमानं यद्भूषणं तेनाढ्या उपचिताः शोभमाना इत्यर्थः ॥ ४२ ॥

इन देवताओं में इन्द्र का कनकवर्ण, अग्नि का ताम्रसदृश, यम का नील, निरृति का काला, वरुण का श्वेत, वायु का धूम्र, सोम का निर्मल, ईश्वर का श्वेत, अनन्त का भी श्वेत तथा ब्रह्मा का रक्तवर्ण है, इनके करकमलों में उनके तत्तदायुध शोभा पा रहे हैं और वेश भी मनोहर हैं तथा नाना प्रकार के मणिसमूहों से निर्मित आभूषणों के धारण से इनके शरीर की कान्ति जगमगा रही है ॥ ४२ ॥

सप्तमावरणमाह—दम्भोलीति।

दम्भोलिशक्त्यभिधदण्डकृपाणपाश-
चण्डाङ्कुशाह्वयगदात्रिशिखारिपद्माः।
अर्च्या बहिर्निजसुलक्षितमौलियुक्ताः
स्वीयायुधाभयसमुद्यतपाणिपद्माः ॥ ४३ ॥

दम्भोलिर्वज्रं शक्त्यमिधं शक्तिनामकमस्त्रं दण्डः कृपाणः खड्गः चण्डाङ्कुशाह्वयः उग्राङ्कुशाख्यः गदा त्रिशिखं त्रिशूलम् अरि चक्रं पद्मं च एतानि वह्निवासवादितो वहिः सम्पूज्यानि । दम्भोलिप्रभृतयः कीदृशाः? निजसुलक्षितमौलियुक्ताः वज्रादिलाञ्छितमुकुटाः, पुनः स्वस्वायुधैरस्त्रैर-भयेन च समुद्यतं सुलक्षितं हस्तपद्मं येषां ते तथा ॥ ॥ ४३ ॥

सप्तम आवरण की पूजा—

इन देवताओं से बाहर क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में वज्र, शक्ति, दण्ड, कृपाण; पाश, उग्राङ्कुश, गदा, त्रिशूल, चक्र और पद्मों की भी पूजा करनी चाहिए। ये सभी वज्रादिनिर्मितमुकुटों से शोभित तथा अपने हाथों में विद्यमान आयुधों से अभय प्रदान करने वाले हैं ॥ ४३ ॥

वज्रादीनां वर्णमाह—कनकेति ।

कनकरजततोयदाभ्रचम्पा-
रुणहिमनीलजवाप्रवालभासः ।
क्रमत इति रुचा तु वज्रपूर्वा-
र्रुचिरविलेपनवस्त्रमाल्यभूषाः ॥ ४४ ॥

वज्रपूर्वाः वज्राद्याः रुचा वर्णेन क्रमतोऽनुक्रमेणैवंरूपा ज्ञेयाः । पुनः कीदृशाः? काञ्चनं रौप्यं तोयदो मेघः अभ्रं चम्पकपुष्पम् अरुणो रक्तः हिमं श्वेतः नीलः श्यामलः जवा औण्ड्रपुष्पं प्रबालो नवपल्लवः एवंभूता दीप्तिर्येषान्ते तथा । पुनः कीदृशाः? रुचिरं मनोहरं विलेपनं चन्दनादि वस्त्रं माल्यं भूषणं च येषान्ते तथा ॥ ४४ ॥

वज्रादिकों के वर्ण—

ऊपर कहे गये वज्रादिकों के वर्ण से क्रमशः काञ्चन, रौप्य, तोयद (मेघ), अभ्र (मेघ), चम्पकपुष्प, अरुण (रक्त), हिम (श्वेत), नील (श्यामल), जवा (अड़उलपुष्प) तथा नवीन पल्लव के समान है तथा उनके चन्दनादि बिलेपन एवं वस्त्र, माल्य, आभूषणादि अत्यन्त मनोहर हैं ॥ ४४ ॥

पूर्वोक्तमुपसंहरति—कथितमिति ।

कथितमावृतिसप्तकमच्युता-
र्चनविधाविति सर्वसुखावहम् ।

प्रयजताद्थवाऽङ्गपुरन्दरा-

शनिमुखैस्त्रितयावरणं त्विदम् ॥ ४५ ॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण विष्णुपूजाविधौ आवरणसप्तकं कथितम्। कीदृशम्? सकलसुखार्थदायकम्? अशक्तं प्रत्याह प्रयजतादिति। पूर्वोक्ताशक्तः त्रितयावरणम् आवरणत्रयसहितं प्रयजेत्। कैः? अङ्गम् इन्द्रवज्रम् एतन्मुखैरेतत्प्रधानैरित्यर्थः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण पूजाविधि में मैंने सातों आवरणों का वर्णन किया, जो संपूर्ण सुखों को प्रदान करने वाला है। यदि सप्तावरण के पूजन में अशक्त हो तो इन्द्रवज्र आदि प्रमुख तीनों आवरणों की ही पूजा करे ॥ ४५ ॥

प्रकृतमुपसंहरन्पूजान्तरमाह—इत्यर्चयित्वेति।

इत्यर्चयित्वा जलगन्धपुष्पैः

कृष्णाष्टकेनाऽप्यथ कृष्णपूजाम्।

कुर्याद् बुधस्तानि समाह्वयानि

वक्ष्यामि तारादिनमोऽन्तकानि ॥ ४६ ॥

इति पूर्वोक्तप्रकारेण जलगन्धपुष्पैः पूजयित्वा अथानन्तरं कृष्णाष्टकेन वक्ष्यमाणेन बुधः पण्डितः कृष्णपूजां कुर्यात् तानि। समाह्वयानि नामानि प्रणवादिनमोऽन्तकानि वक्ष्यमाणानि ॐ कृष्णाय नम इत्यादीनि ॥ ४६ ॥

इस प्रकार इन आवरणों की जल, गन्ध और पुष्पों से पूजा संपादन कर आगे कहे जाने वाले कृष्ण के आठ नामों द्वारा उनकी पूजा करे। उनके जिन नामों के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर चतुर्थ्यन्त विभक्ति से पूजा करनी चाहिए उन नामों को कहता हूँ ॥ ४६ ॥

तान्येव दर्शयति—श्रीकृष्ण इत्यादि।

श्रीकृष्णो वासुदेवश्च नारायणसमाह्वयः।

देवकीनन्दनो यदुश्रेष्ठो वार्ष्णेय इत्यपि ॥ ४७ ॥

असुरान्तकशब्दान्ते भारहारीति सप्तमः।

धर्मसंस्थापकश्चाऽष्टौ चतुर्थ्यन्ताः क्रमादिमे ॥ ४८ ॥

असुरान्तकशब्दान्ते भारहारीत्यर्थः । इमे कृष्णादयः शब्दाः क्रमादेकैकशः प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्तकाश्च विज्ञेयाः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्ण [१] वासुदेव [२] नारायण [३] देवकीनन्दन [४] यदुश्रेष्ठ [५] वार्ष्णेय [६] असुरान्तकः—भारहारी [७] तथा धर्मसंस्थापक [८] ये आठ नाम हैं। इनमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर पूजा करनी चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

विमर्श—प्रयोगविधि—'ॐ श्रीकृष्णाय नमः' श्रीकृष्णमावाह्यामीत्यादि ॥४८॥

अत्यन्ताशक्तं प्रत्याह—एभिरिति ।

एभिरेवाऽथवा पूजा कर्तव्या कंसवैरिणः ।
संसारसागरोतीर्त्यै सर्वकामाप्तये बुधैः ॥ ४९ ॥

अथवा एभिरेव कृष्णादिभिः शब्दैः कंसवैरिणः श्रीकृष्णस्य पूजा बुधैः पण्डितैः कर्तव्या । किमर्थम् ? संसार एव सागरः तस्य उतीर्त्यै उत्तरणाय । पुनः किमर्थम् ? सकलमनोरथप्राप्त्यर्थम् ॥ ४९ ॥

अथवा इन्हीं मात्र कृष्णादि नामों से कंस वैरी श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए जिससे संसारसागर से पार हो जावे और सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति भी हो जावे ॥ ४९ ॥

धूपदानविधिं दर्शयति—साराङ्गारे इति ।

साराङ्गारे घृतविलुलितैर्जर्जरैः संविकीर्णै-
र्गुग्गुल्वाद्यैर्घनपरिमलैर्धूपमापाद्य मन्त्री ।
दद्यान्नीचैर्दनुजमथनायाऽपरेणाऽथ दोष्णा
घण्टां गन्धाक्षतकुसुमकैरर्चितां वादयानः ॥ ५० ॥

साराङ्गारे दृढकाष्ठाङ्गारे । खादिराङ्गारे इति त्रिपाठिनः । संविकीर्णैः क्षिप्तैः गुग्गुल्वाद्यैः गुग्गुलुशर्करामधुचन्दनागुरूशीरैः घृतविलुलितैर्घृतप्लुतैः जर्जरैः कुट्टनेन चूर्णितैर्घनपरिमलैर्निविडसौरभशालिभिः धूपमापाद्य कृत्वा मन्त्री उपासकः नीचैर्नाभिप्रदेशे दनुजमथनाय गोपालकृष्णाय दद्यात् । किङ्कुर्वन् ? अथाऽनन्तरम् अपरेण वामेन दोष्णा हस्तेन गजध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति घण्टाम्वादयन् । किम्भूताम् ? गन्धाक्षतपुष्पैः पूजिताम् ॥ ५० ॥

पुनः बुद्धिमान मन्त्रवेत्ता गुरु धधकते काठ के अङ्गारे में गुगुल, शर्करा, मधु, चन्दन, अगुरु तथा उशीर के चूर्णों से निर्मित धूप को जो घृत से अच्छी तरह

परिप्लुत हो अग्नि में डालकर अच्छीतरह परिपूर्ण सुगन्ध से श्रीकृष्ण के नाभि प्रदेश को गन्धाक्षतपुष्पों से पूजित घण्टा को बायें हाथ से बजाते हुए सुगन्धित करे ॥ ५० ॥

विमर्श—घण्टा बजाने का मन्त्र—गजध्वनिमातः स्वाहा ॥ ५० ॥

दीपदाने विधिं दर्शयति—तद्वदिति ।

तद्वद्दीपं सुरभिघृतसंसिक्तकर्पूरवर्त्या
दीप्तं दृष्ट्याद्यतिविशदधीः पद्मपर्यन्तमुच्चैः ।
दत्वा पुष्पाञ्जलिमपि विधायाऽर्पयित्वा च पाद्यं
साचामं कल्पयतु विपुलस्वर्णपात्रे निवेद्य ॥ ५१ ॥

तद्वदापाद्य दीपं कुर्यात् । कया ? सुरभि सुगन्धि यद्घृतं तेन सिक्ता उक्षिता कर्पूरसहिता वर्त्तिः तया । कीदृशम् ? दृष्टया दीप्तम्, दृष्टिमनोहरमिति रुद्रधरः । पद्मपर्यन्तं मस्तकपर्यन्तमुच्चैरुपरि दत्वा दृष्टयादीति दक्षिणावर्तेन पद्मपर्यन्तम्, चरणकमलपर्यन्तमिति त्रिपाठिनः । पादपर्यन्तमिति क्वचित्पाठः । अनन्तरं पुष्पाञ्जलिमपि शिरसि दत्वा पाद्याचमनीये च दत्वा विपुलस्वर्णपात्रे बृहत्कनकभाजने नैवेद्यङ्कल्पयतु सम्पादयतु । साचामम् आचमनसहितं प्रथमं वदनेत्यादिभिराचमनन्दत्वा अनन्तरं नैवेद्यन्ददात्विति त्यर्थः ॥ ५१ ॥

तदनन्तर सुगन्धित घृत में डुबोयी गयी मनोहर घृत युक्त बत्ती को कपूर से युक्त कर नीचे से मस्तक पर्यन्त श्रीकृष्ण की आरती उतारे । इसके पश्चात् पुनः शिर पर पुष्पाञ्जलि देकर पाद्य एवं आचमन समर्पित करे । फिर विशद स्वर्णपात्र में आचमन सहित नैवेद्य स्थापित करे ॥ ५१ ॥

नैवेद्यस्वरूपं दर्शयति—सुरभीति ।

सुरभितरेण दुग्धहविषा सुभृतेन सिता-
समुपदेशकै रुचिरहृद्यविचित्ररसैः ।
दधिनवनीतनूतनसितोपलपूपपुलि-
घृतगुडनारिकेलकदलीफलपुष्परसैः ॥ ५२ ॥

अतिसुरभिणा दुग्धान्नेन सुश्रृतेन सुपक्वेन सितासमुपदेशकैः शर्कराव्यञ्जनैः सह । शर्करया सह उपदंशकैर्व्यञ्जनैरिति त्रिपाठिनः । अस्मिन्पक्षे

शुचितेन सितासमुपदंशकैरिति पाठः। रुचिर इच्छाकरः हृद्यः सुस्वादः विचित्रो मधुरादिरसो येषु तैः नूतनं श्रेष्ठं सितोपलं खण्डादिप्रसिद्धं पुष्परसो मधु एतैर्द्रव्यैर्नैवेद्यं कल्पयतु ॥ ५२ ॥

अत्यन्त सुगन्धित दूध तथा अन्न में पकाये गये खीर जो शर्करा तथा नाना प्रकार के व्यञ्जनों से इच्छानुकूल स्वादिष्ट एवं माधुर्यादिरसों से परिपूर्ण हो उसका एव दूध, मक्खन, शर्करा, अपूप, गुलगुला, घृत, नारिकेल, कदली फल एवं मधु आदि पदार्थों का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ॥ ५२ ॥

किं विशिष्टं नैवेद्यं कल्पयतु—तत्राह अस्त्रोक्षितमिति।

अस्त्रोक्षितं तदरिमुद्रिकयाऽभिरक्ष्य
वायव्यतोयपरिशोषितमग्निदोष्णा ।
संदह्य वामकरसौधरसाभिपूर्णं
मन्त्रामृतीकृतमथाऽभिमृषन्प्रजप्यात् ॥ ५३ ॥

मनुमष्टशः सुरभिमुद्रिकया
परिपूर्णमर्चयतु गन्धमुखैः ।
हरिमर्चयेदथ कृतप्रसवा-
ञ्जलिरास्यतोऽस्य प्रसरेच्च महः ॥ ५४ ॥

मूलमन्त्रास्त्रमन्त्रेणाऽस्त्राय फडित्यनेन वा उक्षितं सिक्तं चक्रमुद्रयाऽभिरक्ष्य वायव्येति वायुवीजजप्तोदकप्रोक्षणपरिशोषितदोषम् अग्निदोष्णा संदहचेति रमिति वह्निबीजाभिजप्तदक्षिणकरेण स्पृष्ट्वा दोषान् दग्ध्वा वामकरसौधरसाभिपूरणमिति वामहस्तेन पिधाय वंबीजजपेनाऽमृतरसाभिपूर्णं विचिन्त्य मूलमन्त्रेणाऽमृतरूपं विचिन्त्याऽथाऽनन्तरं तदेतादृशं नैवेद्यम् अभिमृशन् स्पृष्ट्वा मनुं मन्त्रम् अष्टशः अष्टवारं प्रजपतु सुरभिमुद्रिकया धेनुमुद्रिकया परिपूर्णं नैवेद्यं विचिन्त्यगन्धमुखैः चन्दनाद्यैः पूजयतु। दानप्रकारं दर्शयति-हरिमित्यादिना। कृतप्रसवाञ्जलिर्हरिं प्रत्यर्चयेत् नैवेद्यग्रहणायाऽस्यतस्तेजो निःसरत्विति प्रार्थयेत्। अथानन्तरम् अस्य हरेरास्यतो मुखतस्तेजो निःसरेत् प्रसरत्विति चिन्तयेत्। नैवेद्ये संयोजयेदिति त्रिपाठिनः ॥५३॥५४॥

उन निवेदनीय पदार्थों को 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से सिक्त करे तथा चक्रमुद्रा से रक्षित करे। वायु बीज (यम्) के मन्त्र के जप से उसका दोष सुखावे पुनः

'रम्' इस अग्नि मन्त्र के जप से उसे जला देवे फिर उसे वायें हाथ से ढक कर 'वम्' इस वरुण मन्त्र का जप कर अमृत रस से परिपूर्ण करे। इस प्रकार के अन्न को स्पर्श करते हुए मूल मन्त्र का आठ वार जप करे। तदनन्तर धेनु मुद्रा दिखाकर नैवेद्य को सर्वथा निर्दोष बनावे। तदनन्तर गन्धादि दान से उसे पूजितकर हाथ जोड़ कर भगवान् के सामने प्रत्यर्पित करे और प्रार्थना करे कि उनके मुख से तेज प्रवाहित होवे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वीतिहोत्रदयितान्तमुच्चरन्
मूलमन्त्रमथनिक्षिपेज्जलम् ।
अर्पयेत्तदमृतात्मकं हवि-
दोर्युजा सकुसुमं समुद्धरन् ॥ ५५ ॥

अथानन्तरं वीतिहोत्रदयितान्तं स्वाहाकारान्तं मूलमन्त्रमुच्चरन् किञ्चिज्जलन्तदुपरि क्षिपेत् प्रोक्षयेत्। अत्र स्वाहान्तेऽपि मन्त्रे पुनः स्वाहापद-प्रयोगः कार्यः एतद्बलादेव अनन्तरन्दोर्युजा हस्तद्वयेन सकुसुमं सपुष्पं समुद्धरन् उत्तोलयन् तदमृतात्मकं हविः समर्पयेत् ॥ ५५ ॥

मूलमन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर उच्चारण करते हुए नैवेद्य में जल छोड़े। इस प्रकार उस अमृतात्मक हविष्य को दोनों हाथों में पुष्प लेकर भगवान् को समर्पित करे ॥ ५५ ॥

नैवेद्यार्पणमन्त्रमाह—निवेदयामीति ।

निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे ।
निवेद्यार्पणमन्त्रोऽयं सर्वार्चासु निजाख्यया ॥ ५६ ॥

अयं मन्त्रः सर्वासु देवानां पूजासु निजाख्ययेति हरे इत्यस्मिन् स्थाने यस्मै देवाय दीयते तन्नामग्रहणं कर्तव्यमिति निजाख्याशब्दार्थः। निवेद्या-ख्ययेति केचित् ॥ ५६ ॥

नैवेद्य समर्पण के लिए 'निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे' यह मन्त्र पढ़े। इसी प्रकार सभी देवताओं को नैवेद्य समर्पण करने के लिए मन्त्र में उस देवता का नाम जोड़ देवे ॥ ५६ ॥

भोजनोपयोगिमुद्राविशेषं दर्शयति—ग्रासेति ।

ग्रासमुद्रां वामदोष्णा विकचोत्पलसन्निभाम् ।
प्रदर्शयेद्दक्षिणेन प्राणादीनां च दर्शयेत् ॥ ५७ ॥

वामदोष्णा ग्रासमुद्रां दर्शयेत्। किम्भूताम्? प्रफुल्लोत्पलसदृशीम्। अनन्तरं दक्षिणहस्तेन प्राणादीनां वक्ष्यमाणां मुद्रां दर्शयेदिति ॥ ५७ ॥

तदनन्तर अपने बायें हाथ से फूले हुए कमल के सदृश ग्रास मुद्रा प्रदर्शित करे। फिर दाहिने हाथ से आगे कही जाने वाली प्राणादि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ५७ ॥

प्राणादीनां मुद्रां दर्शयति—स्पृशेदिति।

स्पृशेत्कनिष्ठोपकनिष्ठिके द्वे
अङ्गुष्ठमूर्ध्ना प्रथमेह मुद्रा।
तथाऽपरा तर्जनिमध्यमे स्या-
दनामिकामध्यमिके च मध्या ॥ ५८ ॥
अनामिकातर्जनिमध्यमाः स्या-
त्तद्वच्चतुर्थी सकनिष्ठिकास्ताः।
स्यात्पञ्चमी तद्वदिति प्रदिष्टाः
प्राणादिमुद्रा निजमन्त्रयुक्ताः ॥ ५९ ॥

कनिष्ठोपकनिष्ठिके कनिष्ठानामिके द्वे स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना स्पृशेत्। इह मुद्रा प्रथमा तथा तर्जनीमध्यमे स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना स्पृशेत् अनामिकामध्यमिके च तेन स्पृशेदेवं व्यानमुद्रा अनामातर्जनीमध्यमाः तेन स्पृशेत् चतुर्थी उदानस्य तास्तिस्रः कनिष्ठासहिताः तद्वत् स्वाङ्गुष्ठमूर्ध्ना यदि स्पृशेत्तदा समानमुद्रा इत्यनेन प्रकारेण प्राणादिमुद्राः प्रदिष्टाः कथिताः। किम्भूताः? यथायोग्य-स्वमन्त्रसहिताः मन्त्रसाहित्येन तासां मुद्रात्वम्भवति विल्वमुद्रा-वदित्यर्थः ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दाहिने हाथ के अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग से कनिष्ठा तथा अनामिका अङ्गुलियों को मिलावे तो प्रथमा प्राण मुद्रा तथा तर्जनी और मध्यमा को अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग में मिलावे तो द्वितीया, (अपान) अनामिका और मध्यमा मिलावे तो तृतीया (व्यान मुद्रा) अनामिका तर्जनी और मध्यमा मिलावे तो चतुर्थी उदान मुद्रा पुनः कनिष्ठा अनामिका मध्यमा एवं तर्जनी अङ्गुलियों को अङ्गुष्ठ के ऊपरी भाग में मिलावे तो पञ्चमी समान मुद्रा हो जाती है। इन पाँच मुद्राओं को बनाते समय क्रमशः वक्ष्यमाण मन्त्रों को भी पढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ।

के ते मन्त्रा इत्याकाङ्क्षायां प्राणादीनां मन्त्रानाह—प्राणेति ।

प्राणापानव्यानोदानसमानाः क्रमाच्चतुर्थ्यन्ताः ।
ताराधारा बध्वा चेद्धाः कृष्णाध्वनस्त्विमे मनवः ॥ ६० ॥

प्राणादयः पञ्च क्रमाच्चतुर्थीविभक्तिसहिताः तथा ताराधाराः ॐकाराधाराः प्रणवाद्या इत्यर्थः । तथा कृष्णाध्वनोऽग्नेर्वध्वा प्रियया इद्धा उद्दीप्ताः सम्बद्धाः स्वाहाकारान्ता इत्यर्थः । एवं च सति ॐप्राणाय स्वाहा इत्याद्याः पञ्च मन्त्रा भवन्तीत्यर्थः ॥ ६० ॥

प्राणादि मन्त्र—

प्राण, अपान; व्यान, उदान और समान—इन्हें क्रम से एक एक को चतुर्थी विभक्ति से युक्त करके तथा आदि में प्रणव लगाकर और अन्त में स्वाहा लगाना चाहिए ॥ ६० ॥

विमर्श—इस प्रकार 'ॐ प्राणाय स्वाहा' ॐ अपानाय स्वाहा, ॐव्यानाय स्वाहा' ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा—ये प्राणादि मन्त्रों के स्वरूप हुए ॥ ६० ॥

निवेद्य मुद्रां प्रदर्शयन्मन्त्रं च दर्शयति—

ततो निवेद्य मुद्रिकां प्रधानया करद्वये ।
स्पृशन्ननामिकां निजं मनुं जपन् प्रदर्शयेत् ॥ ६१ ॥

ततस्तदनन्तरं निवेद्यमुद्रां प्रदर्शयेत् । किङ्कुर्वन् करद्वये करयोरनामिकां प्रधानयाऽङ्गुष्ठेन स्पृशन् । पुनः किङ्कुर्वन् ? निजं स्वीयं मनुं मन्त्रं प्रजपन् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर दोनों हाथों की अनामिकाओं को दोनों हाथ के अँगूठों से स्पर्श करे वक्ष्यमाण का जप करते हुए नैवेद्य मुद्रा प्रदर्शित करे ॥ ६१ ॥

मन्त्रमुद्धरति—नन्देति ।

नन्दजोऽम्बुमनुबिन्दुयुङ्नतिः
पाश्वरामरुदवात्मनेऽनि च ।
रुद्धङेयुक्निवेद्य मात्मभू
मांसपार्श्वमनिलस्तथाऽमियुक् ॥ ६२ ॥

नन्दजः ठकारः अम्बु वकारः मनुः औकारः बिन्दुः एतैर्युक्ता नतिर्नमः पार्श्वः पकारः रा इति स्वरूपं मरुत् यकारः अवात्मने इति अनिस्वरूपं रुद्धं इति स्वरूपं ङेचतुर्थी अनिरुद्धशब्दश्चतुर्थीयुक्त इत्यर्थः। निवेद्यमिति त्रयः आत्मभूः ककारः मांसो लकारः पार्श्वः पकारः लकारयकाराभ्यां युक्तोऽनिलो यकारः अमीति स्वरूपं तथा ठ्वौँ नमः परायाऽवात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि इतिमन्त्रः ॥ ६२ ॥

मन्त्रोद्धार—

नन्दज (ठकार) अम्बु (मकार) मनु (औकार) इन सभी वर्णों को संयुक्तकर उस पर बिन्दु लगावे। तदनन्तर नमः शब्द जोड़कर पार्श्व (पकार) आगे 'रा' उसके आगे मरुत् (यकार) जोड़े फिर, 'अवात्मने' जोड़कर अनिरुद्ध शब्द के आगे चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसमें 'नैवेद्य' शब्द जोड़े फिर ककार के आगे 'लकार और पकार' को संयुक्त कर आमि शब्द जोड़ देवे ॥ ६२ ॥

विमर्श—इस प्रकार 'ठठौं नमः परायावात्मने अनिरुद्धाय नैवेद्यं कल्पयामि' यह मन्त्र का उद्धार हुआ ॥ ६२ ॥

मण्डलमभित इति—

मण्डलमभितो मन्त्री
बीजाङ्कुरभाजनानि विन्यस्य।
पिष्टमयानपिदीपान्
घृतपूर्णान् विन्यसेत्सुदीप्तशिखान् ॥ ६३ ॥

मण्डलपरितो बीजाङ्कुरपात्राणि संस्थाप्य तथैव पिष्टकृतान् घृतपरिपूर्णान् प्रज्वलितशिखान् प्रदीपान् स्थापयेत् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर मन्त्रवेत्ता गुरु मण्डप के चारों ओर बीजाङ्कुर के पात्रों को रखकर उसके समीप पिष्ट (पिसान या चूर्ण) का दीपक बनाकर उसे घी से पूर्ण कर वत्ती से युक्त कर ऊर्ध्व शिखावाली दीपों को स्थापित करे ॥ ६३ ॥

दीक्षाङ्गहोमविधिं दर्शयति—अथेति।

अथ संस्कृते हुतवहेऽमलधी-
रभिवाह्य सम्यगभिपूज्य हरिम्।
जुहुयात् सिताघृतयुतेन पयः-
परिसाधितेन सितदीधितिना ॥ ६४ ॥

अष्टोत्तरं सहस्रं समाप्य होमं पुनर्बलिं दद्यात् ।
राशिष्वधिनाथेभ्यो नक्षत्रेभ्यस्ततश्च करणेभ्यः ॥ ६५ ॥

अथानन्तरं शास्त्रोक्तसंस्कारैः संस्कृते वह्नौ निर्मलबुद्धिः यथोक्तरूपं हरिमावाहय गन्धादिभिश्च यथाविधि सम्पूज्याऽष्टोत्तरसहस्रं जुहुयात् । केन सितदीधितिना भक्तेन कीदृशेन पयःपरिसाधितेन दुग्धपरिपाचितेन परमान्नेनेत्यर्थः । पुनः कीदृशेन ? सिताघृतयुतेन शर्कराघृतसहितेन अनन्तरं यथोक्तहोमं समाप्याऽवशिष्टपरमान्नेन राशिषु मेषादिषु अधिनाथेभ्यो राशिदेवताभ्यो मङ्गलादिभ्यः नक्षत्रेभ्योऽश्विन्यादिभ्यः करणेभ्यो ववादिभ्यो वलिं दद्यात् । प्रयोगस्तु मेषवृश्चिकाधिपतये मङ्गलाय एष बलिर्नमः एवं वृषतुलाधिपतये शुक्राय मिथुनकन्याधिपतये बुधाय कर्कटाधिपतये चन्द्राय सिंहाधिपतये सूर्याय धनुर्मीनाधिपतये गुरुवे मकरकुम्भाधिपतये शनये एष वलिर्नमः एवम् अश्वनीभरणीकृत्तिकापादीयमेषराशये एष वलिर्नम इत्यादि एवं ववबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिभ्यः एष वलिर्नमः ॥ ६४ ॥६५ ॥

इसके बाद शास्त्ररीति से संस्कार की गयी अग्नि में विशुद्धान्तःकरण वाला ब्राह्मण श्री कृष्ण का आवाहन कर गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करे । पुनः दूध में पकाये गए शर्करा घृतयुक्त परमान्न (खीर) से १०८ बार हवन करे । तदनन्तर होम समाप्त करने के पश्चात् वचे हुये शेष खीर से राशियों के नामग्रहणपूर्वक उनके अधिपतियों को नक्षत्रों के नामग्रहण पूर्वक उनके राशियों को तथा करणादिकों के लिए बलि प्रदान करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

विमर्श—प्रयोग विधि–यथा 'मेषवृश्चिकाधिपतये मङ्गलाय एष बलिर्नमः, वृषतुलाधिपतये शुक्राय एष बलिर्नमः मिथुनकन्याधिपतये बुधाय एष वलिर्नमः, कर्कटाधिपतये चन्द्राय एष वलिर्नमः, सिंहाधिपतये सूर्याय एष वलिर्नमः, धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष वलिर्नमः, मकरकुम्भाधिपतये शनये एष बलिर्नमः । इसी प्रकार अश्विनीभरणीकृत्तिकापादीय मेषराशये एष बलिर्नमः, कृतिकारोहिणी मृगशिरःपादीयवृषराशये एष बलिर्नमः । पुनश्च 'ववबालकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिभ्यः एष वलिर्नमः इत्यादि ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

पूजानन्तरं प्रकारमाह—सम्पाद्येति ।

सम्पाद्य पानीयसुधां समर्प्य
दत्वाऽम्भ उद्वास्य मुखार्चिरास्ये ।

नैवेद्यमुद्धृत्य निवेद्य विष्वक्-
सेनाय पृथ्वीमुपलिप्य भूयः ।। ६६ ।।

पानीयमेव धेनुमुद्रया सुधां कृत्वा पानार्थं कृष्णाय समर्प्याऽम्भो दत्वा जलमाचमनार्थं दत्वा मुखार्चिर्देवमुखान्नैवेद्येऽवतारितं तेजः आस्ये देवमुखे उद्वास्य निवेश्य नैवेद्यमुत्तोल्य विश्वक्सेनाय देवगणाय नैवेद्यं समर्प्य पृथिवीमुपलिप्य ।। ६६ ।।

पुनः (धेनुमुद्रा दिखाकर) जल को अमृतमय बनाते हुए पीने के लिए जल देकर आचमन के लिये जल देवे। पुनः नैवेद्य के लिए अवतररित मुख से निकले हुए तेज को भगवान के मुख में समाविष्ट कर (द्र.४.५४) थोड़ा नैवेद्य निकाल कर विष्वक्सेन नामक विष्णु गण को समर्पित करे, फिर पृथ्वी को लीपकर (आगे का कार्य करे) ।। ६६ ।।

गण्डूषदन्तधवनाचमनास्यहस्त-
मृज्यानुलेपमुखवासकमाल्यभूषाः ।
ताम्बूलमप्यभिसमर्प्य सुवाद्यनृत्य-
गीतैः सुतृप्तमभिपूजयतात्पुनरेव ।। ६७ ।।

भूयः पुनरपि गण्डूषं चुलुकोदकं दन्तधवनं दन्तकाष्ठम् । दन्तधवनं दन्तधावनमिति त्रिपाठिनः । आचमनं शेषाचमने द्विराचमनम् आस्यहस्तयोर्मृज्यं मुखहस्तयोः प्रोञ्छनवस्त्रम् अनुलेपश्चन्दनादिः मुखं वास्यते सुरभि क्रियते अनेनेति मुखवासङ्कर्पूरादि माल्यं पुष्पं भूषाऽलङ्करणं ताम्बूलमपि समुच्चये एतानि समर्प्य पुनरेव यथापूर्वं पूजा कृता एवं सुवाद्यनृत्यगीतैः सुतृप्तं हरिं नत्वा अभिपूजयेत् ।। ६७ ।।

गण्डूष (कुल्ला करने के लिए एक चुल्लू जल) दन्त काष्ठ, आचमन, मुख-हाथ पोंछने के लिए वस्त्र एवं सुगन्ध के लिए चन्दनादि द्रव्य, मुखावास (कर्पूरादि) माला अलङ्कार तथा ताम्बूल इन सभी वस्तुओं को एक साथ समर्पित करे। फिर पूर्व में जिस प्रकार पूजा की गयी थी उसी प्रकार वाद्य, नृत्य और गीत के द्वारा तृप्त हुए परमात्मा श्री कृष्ण का पुनः पूजन करे ।। ६७ ।।

गन्धादिभिः सपरिवारमथाऽर्घमस्मै
दत्वा विधाय कुसुमाञ्जलिमादरेण ।

स्तुत्वा प्रणम्य शिरसा चुलुकोदकेन
स्वात्मानमर्पयतु तच्चरणाब्जमूले ॥ ६८ ॥

कैः ? गन्धादिभिः सपरिवारं पूर्वोक्तावरणसहितम् अथानन्तरम् अस्मै हरये अर्घ्यं दत्वा आदरेण पुष्पाञ्जलिन्दत्वा स्तुत्वा शिरसा प्रणम्य तच्चरणारविन्दमूले स्वात्मानं चुलुकेन अर्घ्यशेषजलेन समर्पयतु ॥ ६८ ॥

इसके अनन्तर ऊपर कहे गये सात आवरणों से युक्त (द्र० ४.२८–४५) इन परमात्मा श्री कृष्ण को श्रद्धा सहित अर्घ्य प्रदान कर पुष्पाञ्जलि देकर स्तुति करे और शिर से साष्टाङ्गप्रणाम कर अर्घ्य के लिए विशेष प्रकार का जल लेकर अपने को समर्पित कर देवे ॥ ६८ ॥

आत्मनः समर्पणमन्त्रमाह—इत इत्यादिना स्वात्मसमर्पणे इत्यन्तेन ग्रन्थेन।

इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं च सकलं हरये सम्यगर्पये ॐतत्सदिति च प्रोक्तमन्त्रः स्वात्मसमर्पणे ॥

एतच्च मन्त्रत्रयं स्पष्टत्वान्न लिख्यते—अनुस्मरन्निति।

अनुस्मरन्कलशगमच्युतं जपेत्
सहस्रकं मनुमथ साष्टकं बुधः।
वपुष्यथो दितिजजितः समावृती–
विलाप्य तास्तदपि नयेत्सुधात्मताम् ॥ ६९ ॥

अथानन्तरं बुधः पण्डितः कलशगङ्कुम्भादिनिष्ठं हरिश्चिन्तयन् साष्टकम् अष्टसहितं सहस्रं मनुं मन्त्रं जपेत् अथानन्तरं दितिजजितः श्रीकृष्णस्य वपुषि शरीरे ताः पूर्वोक्ताः समावृतीः आवरणदेवता विलाप्य विलीना इति विचिन्त्य तदपि देववपुः सुधात्मताम् अमृततां नयेत् ॥ ६९ ॥

आत्मसमर्पण का मन्त्र—

इससे पहले प्राण, बुद्धि, देह और धर्माधिकार रूप से जागते हुए, स्वप्न में सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में मनसा, वाचा, कर्मणा, हाथ, पैर, उदर या शिश्न जो

स्मृत हुआ, जो कहा गया या जो किया गया कार्य है वह सभी ब्रह्म को समर्पित होवे। मैं और मेरा सब कुछ हरि को समर्पित है ॐ तत्सत्' इस प्रकार 'इतः पूर्व से लेकर ॐ तत्सत्' पर्यन्त मन्त्र को पढ़ कर परमात्मा श्री कृष्ण के लिए अपने को समर्पित करे।

तदनन्तर बुद्धिमान् साधक कुम्भ में अधिष्ठित हुए भगवान् श्री कृष्ण की भावना करते हुए पुनः १००८ बार मूल मन्त्र का जप करे। फिर श्री कृष्ण के शरीर में पूर्वोक्त आवरण देवताओं को विलीन हुआ जान श्री कृष्ण के वपुः स्वरूप (कलश) को अमृत की स्वरूपता को प्राप्त करावे ॥ ६९ ॥

ध्वजेति।

ध्वजतोरणदिक्कलशादिगता-
मपि मण्डपमण्डलकुण्डगताम्।
अभियोज्य चितिं कलशे कुसुमैः
परिपूज्य जपेत्पुनरष्टशतम् ॥ ७० ॥

कलशे चितिं मन्त्रदेवतां चैतन्यरूपम् अभियोज्य कुसुमैः पुष्पैः सम्पूज्य पुनरष्टसहितं शतं जपेत्। किम्भूताम्? चितिं ध्वजतोरणदिक्कलशादिगतां न केवलं ध्वजादिगताम् अपितु मण्डले मण्डपे कुण्डगताम् ॥ ७० ॥

पुनः ध्वज, तोरण, दिशाएँ, कलश में स्थित समस्त चैतन्य स्वरूप देवताओं को तथा मण्डल, मण्डप एवं कुण्ड के मध्य स्थित समस्त चैतन्य स्वरूप देवताओं को एक जगह कलश में एकत्र कर फूलों से पूजा कर पुनः १०८ बार मन्त्र का जप करे ॥ ७० ॥

अथेति।

अथ शिष्य उपोषितः प्रभाते
कृतनैत्यः सुसिताम्बरः सुवेशः।
धरणीधनधान्यगोकुलै-
र्धिनुयाद्विप्रवरान् हरेः प्रसत्यैः ॥ ७१ ॥

अथानन्तरम् उपोषितः कृतोपवासः शिष्यः प्रभाते प्रातःकाले कृतनित्यकृतः शुक्लवस्त्रधरः सुवेशः शोभनभूषणः धरणी पृथिवी धनं सुवर्णादि धान्यं

व्रीह्यादि गौर्दोग्ध्री दुकूलं पट्टवस्त्रम् एतैर्यथा योग्यं विप्रवरान् ब्राह्मणश्रेष्ठान् धिनुयात् प्रीणयेत् । किमर्थम् ? हरेः श्रीकृष्णस्य प्रसादार्थम् ॥ ७१ ॥

इसके बाद पूर्व दिन में उपवास करने वाला शिष्य दूसरे दिन के प्रभात काल की नित्य क्रिया संपादन कर श्वेत वस्त्र से संयुक्त हो सुन्दर वेश में सन्नद्ध होकर श्री कृष्ण प्रीत्यर्थ पृथ्वी, सुवर्ण, धान्य, सवत्सा गौ और वस्त्रों का दान कर उत्तमोत्तम ब्राह्मणों को प्रसन्न करे ॥७१॥

भूय इति ।

भूयः प्रतर्प्य प्रणिपत्य देशिकं
तस्मै परस्मै पुरुषाय देहिने ।
तां वित्तशाठ्यं परिहृत्य दक्षिणां
दत्वा तनुं स्वां च समर्प्पयेत्सुधीः ॥ ७२ ॥

भूयः पुनरपि प्रतर्प्य ब्राह्मणान् सन्तोष्य पुनः कथनम् अत्यन्ततर्प्पणार्थं परीत्येति पाठे प्रदक्षिणी कृत्येत्यर्थः । देशिकं गुरुं प्रणिपत्य नमस्कृत्य तस्मै गुरवे देहिने देहधारिणे परस्मै पुरुषाय श्रीकृष्णाय धनशाठ्यं परिहृत्य वैभवानुसारेण तां प्रसिद्धां वित्तार्द्धं चतुर्थांशं वा दत्वा न तु दक्षिणामिव मन्त्रादानानन्तरमेव तत्प्रसङ्गात्स्वां स्वीयां तनुं सुबुद्धिः समर्पयेत् ॥ ७२ ॥

इस प्रकार पर्याप्त धन से ब्राह्मणों को संतुष्ट करने के अनन्तर दीक्षा लेने वाला बुद्धिमान् शिष्य परब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण के विग्रह स्वरूप अपने गुरु को वित्त की शठता त्याग कर उन्हें पर्याप्त दक्षिणा देवे और उन्हें अपना शरीर अर्पण कर देवे ॥ ७२ ॥

अथेति ।

अथाऽभिषेकमण्डपे सुखोपविष्टमासने ।
गुरुर्विशोधयेदमुं पुरेव शोषणादिभिः ॥ ७३ ॥

अथानन्तरं गुरुः अमुं शिष्यं पुरेव पूर्ववदेव शोषणादिभिः भूतशुद्ध्यादि-भिर्विशोधयेत् । कीदृशम् ? अभिषेकमण्डपे आसने सुखोपविष्टम् ॥ ७३ ॥

इसके बाद गुरु अभिषेक मण्डप में सुखपूर्वक बैठे हुए शिष्य को पूर्ववत् भूत शुद्ध्यादि (पञ्चतत्व की शुद्धिरूप) क्रियाओं के द्वारा शुद्ध करे ॥ ७३ ॥

पीठेति ।

पीठन्यासावसानं वपुषि विमलधीर्न्यस्य तस्यासिकाया
मन्त्रेणाऽभ्यर्च्य दूर्वाक्षतकुसुमयुतां रोचनां के निधाय ।
आशीर्वादैर्द्विजानां विशदपटुरवैर्गीतवादित्रघोषै-
र्माङ्गल्यैरानयत्तं कलशमभिवृतस्तत्समीपं प्रतीतः ॥ ७४ ॥

तस्य शिष्यस्य वपुषि शरीरे पीठन्यासावसानं पीठन्यासपर्यन्तं सकलं न्यासं विन्यस्य आसिकाया आसनस्य मन्त्रेणासनं पूजयित्वा रोचनां मस्तके निधाय तिलकंकारयित्वा । कीदृशीं रोचनाम्? दूर्वाक्षतपुष्पसहिताम् । अनन्तरं द्विजानामाशीर्वादैर्गीतिमङ्गलादिशब्दैः कीदृशैरेतैः ? विशदपटुरवैः स्पष्टोत्तम-शब्दैः तथा अन्यैरपि माङ्गल्यैः मङ्गलस्योपयुक्तैः सहितं तं कलसम् अभिवृतः आचार्यत्वेन वृतः तत्समीपं शिष्यसमीपम् आनयेत् । कीदृशः ? शिष्यात्मीय-तया प्रतीतो विश्वासान्वितो यः कश्चिदित्यर्थः—इति त्रिपाठिनः ॥ ७४ ॥

शुद्ध चित्त गुरु अपने उस शिष्य के शरीर में पीठन्यास पर्यन्त समस्त न्यास कर उसके आसन को आसन के मन्त्रों से पूजित करे । तदन्तर दूर्वा-अक्षत और फूल से संयुक्त गोरोचन का तिलक मस्तक में लगावे । पुनः ब्राह्मणों द्वारा वैदिक आशीर्वादों के उच्च घोष द्वारा तथा गीत-वाद्य के माङ्गलिक शब्दों द्वारा आचार्य-त्वेन अभिवृत गुरु उस कलश को आत्मीय शिष्य के समीप लावे ॥७४॥

तनेति ।

तेनाऽभिलीनमणिमन्त्रमहौषधेन
धाम्ना परेण परमामृतरूपभाजा ।
सम्पूरयन्वपुरमुष्य ततो वितन्वन्
तत्सामरस्यमभिषेचयताद्यथावत् ॥ ७५ ॥

कुम्भस्य पल्लवान् शिष्यशिरसि निधाय तेन कलसेनेत्यर्थाद्यथावत् यथा-युक्तप्रकारेणाऽभिषेचयेत् अभिषेचनं कुर्यात् ।

तदुक्तम्—

विधिवत् कुम्भमुद्धृत्य तन्मुखस्थान् सुरद्रुमान् ।
शिशोः शिरसि विन्यस्य मातृकां मनसा जपेत् ॥ इति ।

किम्भूतेन ? अभिलीनः संलीनः मणिर्नव रत्नानि मन्त्रः ऋक् महौषधं दिव्यपिप्पलीप्रभृति यत्र तेन । कीदृशेन ? परेण धाम्ना परतेजःस्वरूपेण ।

पुनः कीदृशेन ? परमामृतरूपभाजा परमामृतरूपमयेन । किङ्कुर्वन् ? अमुष्य शिशोर्वपुः शरीरं पूरयन् । किङ्कुर्वन् ? ततस्तदनन्तरं तत्सामरस्यं तेन तेन तेजोरूपेण कलशैक्यं वितन्वन् ॥ ७५ ॥

फिर गुरु उस कलश के पल्लवों को शिष्य के शिर पर धारण करे और नवरत्न, ऋग्वेद के मन्त्र एवं पिप्पल आदि दिव्य महौषध से परिपूर्ण, परमामृत-स्वरूप एवं परतेजःस्वरूप उस कलश के जलसे शिष्य की एकरूपता हो जावे ॥७५॥

अभिषेकमाह—क्षाद्यैरित्यादि ।

क्षाद्यैरान्तैर्वर्णैरभिपूर्णतनुस्त्रिरुक्तमन्त्रान्तैः ।
परिहितसिततरवसनद्वितीयो वाचंयमः समाचान्तः ॥ ७६ ॥

क्ष आदिर्येषां तैः आन्तैः अकार अन्तो येषां तैर्वर्णैर्मातृकाक्षरैर्मूलमन्त्र-त्रिजपावसानैरभिषिक्तशरीरः शिष्यः धृतनवीनातिशुक्लवसनयुगलः मौनी कृतद्विराचमनः ॥ ७६ ॥

बहुशः प्रणम्य देशिकनामानं हरिमथोपसङ्गम्य ।
तद्दक्षिणत उपास्तामभिमुखमेकाग्रमानसः शिष्यः ॥ ७७ ॥

बहुवारं देशिकनामानं गुरुरूपं हरिं नत्वा अथानन्तरम् उपसंगृह्य गुरु-चरणौ व्यस्त्यस्तहस्तद्वयं कृत्वा तद्दक्षिणतो गुरुदक्षिणे अभिमुखं गुरुसन्मुखम् एकाग्रमानसः एकचित्तस्तिष्ठेत् उपविशेत् ॥ ७७ ॥

क्षकार वर्ण अभिषेक के लिए मातृका मन्त्र से आरम्भ कर अकारपर्यन्त मातृका वर्णों को तीन बार पढ़ते हुए आचार्य शिष्य का उस कलश के जल से अभिषेक करें। पुनः शुक्ल नवीन वस्त्र धारण किया हुआ शिष्य मौन हो दो बार आचमन करने के उपरान्त गुरु के स्वरूप में साक्षात् विष्णु को व्यत्यस्त हाथों से अर्थात् दाहिने हाथ से दाहिना पैर एवं बायें हाथों से बायां पैर पकड़कर अनेक बार प्रणाम करे। पुनः गुरु के दाहिनी ओर गुरुके सामने एकाग्र चित्त हो बैठे ॥७६-७७॥

न्यासैरिति ।

न्यासैर्यथाविधि तमच्युतसाद्विधाय
गन्धाक्षतादिभिरलङ्कृतवर्ष्मणोऽस्य ।
ऋष्यादियुक्तमथ मन्त्रवरं यथावद्
ब्रूयात्त्रिशो गुरुरनर्घ्यमवामकर्णे ॥ ७८ ॥

अथानन्तरं यथाविधि यथोक्तप्रकारेण न्यासैः पञ्चाङ्गन्यासादिभिः ते शिष्यम् अच्युतसाद्विधाय श्रीकृष्णरूपं कृत्वा गन्धाक्षतपुष्पैः विभूषितशरीरस्याऽस्य अवामकर्णे दक्षिणकर्णे ऋषिच्छन्दोदेवतासहितम् अनर्घ्यममूल्यं मन्त्रवरं मन्त्रश्रेष्ठं त्रिशः त्रिवारं ब्रूयात् यथावत् यथोक्तप्रकारेण स च प्रकारः प्रथमं दक्षिणहस्ते गुरुर्जलं ददाति अमुकमन्त्रं ददामीति अनेन शिष्योऽपि ददस्व इति ब्रूयात् ततो मन्त्रं दद्यादिति अत्राऽवश्यं वारत्रयं गुरुणा मन्त्रः पठनीयः दत्ते यावच्छिष्यस्य मन्त्रः स्वायत्तो भवति तावत्पठनीय इति ॥ ७८ ॥

इसके बाद पञ्चाङ्गन्यासादि से उस शिष्य को श्रीकृष्ण का स्वरूप बना कर आचार्य स्वयं गन्धाक्षतपुष्पों से उसके शरीर को पूजित करे। इस प्रकार भूषित शरीर वाले शिष्य के दाहिने कान में ऋषि छन्द-एवं देवता सहित सभी मन्त्रों में उत्तमोत्तम इस दशाक्षर मन्त्र का तीन बार यथोक्त प्रकार से उपदेश करे ॥ ७८ ॥

विमर्श—उपदेश का प्रकार इस विधि से है—सर्व प्रथम आचार्य शिष्य के हाथ में जल दे और कहे कि मैं अमुक दशाक्षर मन्त्र तुम्हें दे रहा हूँ। फिर शिष्य कहे कि 'दीजिये'। तब आचार्य शिष्य के दाहिने कान में तीन बार मन्त्रोपदेश करे। अथवा जब तक मन्त्र शिष्य को याद न हो तब तक उपदेश के रूप में पढ़ता रहे ॥ ७८ ॥

मन्त्रग्रहणानन्तरं शिष्यकृत्यं दर्शयति—गुरुणेति।

गुरुणा विधिवत्प्रसादितं
मनुमष्टोद्र्ध्वशतं प्रजप्य भूयः।
अभिवाद्य ततः शृणोतु सम्यक्-
समयान्भक्तिभरेण नम्रमूर्त्तिः ॥ ७९ ॥

यथाविधि गुरुणा हेतुना प्राप्तं मन्त्रं प्रसाधितम् अनुग्रहेण दत्तमिति त्रिपाठिनः। अष्टौ ऊर्ध्वं यस्य तस्य तदष्टाधिकशतं प्रजप्य भूयः पुनरपि गुरुमभिवाद्य नमस्कृत्य दण्डवत्प्रणम्य ततो गुरुतः समयान् आचारान् सम्यक्कृत्वा शृणोतु यत्तु विद्यामष्टकृत्वो जपेदिति तत्तन्न्यूनसङ्ख्याकजपनिषेधपरम्। कीदृशः? भक्त्यातिशयेन नम्रशरीरः ॥ ७९ ॥

तदनन्तर गुरु के द्वारा दिये गये मन्त्रों को विनयशील शिष्य १०८ वार जप करे, फिर गुरु को प्रणाम करे और उनके मुख से दीक्षित शिष्यों के नियमाचार का श्रवण करे ॥ ७९ ॥

मन्त्रदानानन्तरं गुरुकृत्यमाह—दत्वेति ।

दत्त्वा शिष्याय मनुं न्यस्याऽथ गुरुः कृतात्मयजनविधिः ।
अष्टोत्तरं सहस्रं स्वशक्तिहान्यनवाप्तये जप्यात् ॥ ८० ॥

अथानन्तरं गुरुः शिष्याय मन्त्रं दत्त्वा न्यस्य न्यासादिकं कृत्वा कृतात्मयजनविधिः कृताभ्यन्तरयागः अष्टाधिकं सहस्रं स्वसामर्थ्यहान्यनवाप्तये स्वसामर्थ्यरक्षार्थं दत्तमन्त्रं जपेत् ॥ ८० ॥

इस प्रकार शिष्य को मन्त्र देने के बाद स्वयं गुरु भी न्यास कर अभ्यन्तर याग सम्पादन कर दीक्षा देने से शक्ति की हानि न हो एवं अपनी शक्ति पूर्ण बनी रहे एतदर्थ १००८ बार पुनः मूल मन्त्र का जप करे ॥ ८० ॥

शिष्यकृत्यमाह—कुम्भादिकमिति ।

कुम्भादिकं च सकलं गुरवे समर्प्य
सम्भोजयेद् द्विजवरानपि भोज्यजातैः ।
कुर्वन्त्यनेन विधिना य इहाऽभिषेकं
ते सम्पदां निलयनं हि त एव धन्याः ॥ ८१ ॥

कुम्भादिकं सकलं मण्डलसहितं मण्डपावस्थितद्रव्यं गुरवे समर्प्य दत्वा भोज्यसमूहैर्द्विजश्रेष्ठान्सन्तोषयेत् एतत्करणस्य फलमाह—इह जगति अनेन विधिना अनया परिपाट्या ये अभिषेकं कुर्वन्ति ते सम्पदां सर्वसमृद्धीनां निलयनं स्थानं त एव धन्याः पुरुषार्थभागिनः ॥ ८१ ॥

मण्डप में स्थित कलश को तथा अन्य वस्तु जात द्रव्यों को गुरु को समर्पण कर दीक्षित शिष्य नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे । जो इस प्रकार की परिपाटी से अभिषेक करते हैं वे संपूर्ण समृद्धियों के एक मात्र स्थान होते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करते हैं ॥ ८१ ॥

उक्तमर्थमुपसंहरति—सङ्क्षिप्येति ।

संक्षिप्य किञ्चिदुदिता दीक्षा संस्मरणाय हि विशदधियाम् ।
एतां प्रविश्य मन्त्री सर्वान् जपेज्जुहोतु यजेच्च मनून् ॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीकेशवाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
दीक्षापूजानाम चतुर्थपटलः ॥ ४ ॥

—०—

किञ्चित् सङ्क्षिप्य दीक्षा उक्ता कथिता विशदधियां निर्मलबुद्धीनां संस्मरणाय एतां दीक्षां प्रविश्य प्राप्य मन्त्री साधकः सर्वान् मन्त्रान् जपेत् यजेज्जुहोतु ॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाया
विवरणे चतुर्थपटलः ॥ ४ ॥

—०—

निर्मल अन्तःकरण वालों के स्मरण के लिए मैंने संक्षेप मे दीक्षा विधान का वर्णन किया। इस प्रकार दीक्षा के मार्ग में प्रविष्ट हुआ साधक सभी मन्त्रों का जप करे, हवन करे तथा पूजन करे ॥ ८२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीकेशवाचार्यविरचित क्रमदीपिका की डा० सुधाकर मालवीयकृत
'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का चतुर्थ पटल समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

—●—

पञ्चमपटलम्

अधुना दीक्षितस्य मन्त्रविधिं दर्शयति—

चैत्रे कृत्वैतन्मासि कर्माऽच्छपक्षे
पुण्यर्क्षे भूयो देशिकात्प्राप्य दीक्षाम् ।
तेनाऽनुज्ञातः पूर्वसेवां द्वितीये
मासि द्वादश्यामारभेताऽमलायाम् ।। १ ।।

चैत्रे मासि पुण्यर्क्षे शुभनक्षत्रे अच्छपक्षे शुक्लपक्षे एतत्कर्म मन्त्र-दीक्षात्मकं कर्म कृत्वा भूयः पुनरपि देशिकात् गुरोर्दीक्षां मन्त्रोपदेशं प्राप्याऽनन्तरं तेन गुरुणाऽनुज्ञातः द्वितीये मासि वैशाखे अमलायां द्वादश्यां तिथौ पूर्वसेवां पुरश्चरणमारभेत् । 'चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्यात्' इति वचनं गोपाल-मन्त्रभिन्नदीक्षाविषयम् ।। १ ।।

दीक्षा लेने वाला शिष्य चैत्र मास के शुक्ल पक्षमें जब पुण्य नक्षत्र हो उस समय आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर पुनः उनकी आज्ञा ले वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में जब द्वादशी तिथि आवे उस समय से पुरश्चरण प्रारम्भ करे ।। १ ।।

विमर्श—'चैत्र में दीक्षा दुखद होती है' यह वचन गोपालमन्त्र से भिन्न दीक्षा का विषय है ।। १ ।।

कृत्वेति ।

कृत्वा स्नानाद्यं कर्म देहार्चनान्तं
वर्त्माऽऽश्रित्य प्रागीरितं मन्त्रिमुख्यः ।
शुद्धो मौनी सन् ब्रह्मचारी निशाशी
जप्याच्छान्तात्मा शुद्धपद्माक्षदाम्ना ।। २ ।।

मन्त्रिमुख्यः साधकः स्नानमारभ्यात्मयागान्तं कर्म कृत्वा प्रागीरितं वर्त्माऽऽश्रित्य पूर्वोक्तपूजाप्रकारमाश्रित्य शुद्धो गायत्रीजपेन निष्पापः ब्राह्मणा-द्युक्तबाह्यान्तरशौचयुक्तो मौनी वाग्यतः ब्रह्मचारी अष्टविधमैथुनत्यागी

निशाशी रात्रिभोजी शान्तात्मा अनुद्धतचित्तः शुक्लपद्मबीजमालया जप्यात् ।

अत्रैवमागमान्तरोक्तं बोद्धव्यम् ।

शुभे दिने क्रोशं क्रोशद्वयं वा क्षेत्रं विहारार्थं परिकल्प्य क्षीरद्रुमभववितस्तिपरिमिताऽष्टकीलकाः प्रत्येकमेकदैव वा दशकृत्वः शतकृत्वो वा जपित्वा अष्ट दिग्देवताः सम्पूज्य मध्ये क्षेत्रे क्षेत्रपालबलिं दत्वा पूजां कृत्वा पूर्वाद्यष्टदिक्षु तान्निखन्यात् तत्र तत्र तत्तन्नाम्ना दिक्पतिबलिं च दत्वा दीपकं च दत्वा जपपूर्वदिवसे एकभोजनमुपवासो वा गुरुं ब्राह्मणांश्च तर्पयेत् ।

तथाच सनत्कुमारकल्पे—

विप्रांश्च भोजयेदन्नभोजनाच्छादनादिभिः ।

बहुभिर्वस्त्रभूषाभिः सम्पूज्य गुरुमात्मनः ।।

आरभेत जपं पश्चात् तदनुज्ञापुरस्सरम् । इति ।

ततोऽग्रिमदिने स्नानादिकं कृत्वा सङ्कल्पं कुर्यात् ॐअद्यों नम इत्याद्युच्चार्याऽमुकमन्त्रस्य सिद्धिकाम इयत्सङ्ख्याकजपतद्दशांशामुकद्रव्यहोमतद्दशांशामुकद्रव्यतर्पणतद्दशांशामुकाभिषेकतद्दशांशब्राह्मणसंप्रदानकभोज्यदानात्मकपुरश्चरणकर्म करिष्ये इति सङ्कल्पं कुर्यात् ततो मन्त्रर्षिच्छन्दोदेवतानां कामस्थाने पुरश्चरणजपे विनियोग इति ।

जपे चायं नियमः—

नैरन्तर्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत् ।
शयनं दर्भशय्यायां शुचिः प्रयतमानसः ।
दिवसातिक्रमे दोषः सिद्धिबाधः प्रजायते ।

नारदीये—

शनैः शनैरविस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
न न्यूनं नाधिकं वाऽपि जपं कुर्याद् दिने दिने ।

तथान्यत्र—

अनन्यमानसः प्रातः कालान् मध्यंदिनावधि ।

नारदीये तथैव च—

न वदन्नस्वपन् गच्छन्नान्यत् किमपि संस्मरन् ।
न क्षुज्जृम्भणहिक्कादिविकलीकृतमानसः ।।
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति तस्माद्यत्नपरो भवेत् ।
उष्णीषो कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशः तथैव च ।।

प्रसारितपाणिपादो नोच्चपादासनो भवेत् ।

तथा वैशम्पायनसंहितायाम्—

स्नानं त्रिसवनं प्रोक्तमशक्तौ द्विः सकृत्तथा ।
अस्नातस्य फलं नाऽस्ति न चाऽतर्प्पयतः पितॄन् ॥
नाऽसत्यमभिभाषेत नेन्द्रियाणि प्रलोभयेत् ।
शयनं दर्भशय्यायां शुचिः प्रयतमानसः ॥
तद्वासः क्षालयेन्नित्यमन्यथा विघ्नमावहेत् ।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्री कदाचन ॥
उपर्यधो वहिर्वस्त्रे पुरश्चरणकृद्व्रजेत् ।

तथा नारदीये—

स्त्रीशूद्राभ्यां न सम्भाषेद्रात्रौ जपपरो न च ।
जपेन्न सन्ध्याकालेषु प्रदोषे नोभयेषु च ॥

ब्राह्मणानीतवस्त्रशुद्धजलेनकर्मकृद्भवेदिति ॥ २ ॥

मन्त्र ग्रहण से दीक्षित साधक स्नान क्रिया से लेकर आत्मयोग (अपने शरीर में श्री कृष्ण की भावना कर उसी में उनकी पूजा) पर्यन्त सारी क्रिया समाप्त कर पूर्वोक्तपूजा के क्रमानुसार गायत्री जप से अपने को निष्पाप करे। इस प्रकार भीतरी तथा बाहरी समस्त पापों से रहित हो मौन धारण करते हुये ब्रह्मचर्य (अष्टविध मैथुन त्याग) का व्रत धारण करे। रात्रि में भोजन करे तथा प्रशान्त चित्त हो कबलगट्टे के बीज से बनी हुई माला द्वारा जप प्रारम्भ करे ॥ २ ॥

जपितुः कृत्यमाह—तन्वन्निति ।

तन्वन् शुश्रूषां गोषु ताभ्यः प्रयच्छन्
ग्रासं भूतेषु प्रोद्वहँश्चानुकम्पाम् ।
मन्त्राधिष्ठात्रिं देवतां बन्दमानो
दुर्गां दुर्वोधध्वान्तभानुं गुरुं च ॥ ३ ॥

गोषु शुश्रूषां गोपरिचर्यां धूमकण्डूयनादिरूपां सेवां विस्तारयन् । किङ्कुर्वन् ? ताभ्यो गोभ्यो ग्रासं प्रयच्छन् गोपालमन्त्र एव ग्रासादिकम् अत्रोपादानादन्यत्रानुक्तेश्च भूतेषु प्राणिषु करुणां धारयन् मन्त्राधिष्ठातृदेवतां दुर्गाम् अज्ञानान्धकारसूर्यं गुरुं च वन्दमानः ॥ ३ ॥

नित्य गायों की (धूआँ आदि से मशकों को दूर करे उनके शृङ्गादि स्थानों में खुजलावे) सेवा करे। उन्हें गोग्रास देवे। सभी प्राणियों पर दयालु बना रहे।

संपूर्ण मन्त्रों की अधिष्ठात्री माँ दुर्गा की बन्दना करे। इसी प्रकार अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले गुरु को भी श्रद्धा समेत प्रणाम करे ॥ ३ ॥

कुर्वन्निति।

कुर्वन्नात्मीयं कर्म वर्णाश्रमस्थं
मन्त्रं जप्त्वा त्रिः स्नानकालेऽभिषिञ्चेत्।
आचामन् पाथस्तत्त्वसङ्ख्याप्रजप्तं
भुञ्जानश्चाऽन्नं सप्तजप्ताञ्जनादि ॥ ४ ॥

स्वीयं वर्णाश्रमोक्तं कर्म कुर्वन् आत्मीयं आत्मनो यो वर्णो ब्राह्मणादिर्यो वाऽऽश्रमो ब्रह्मचर्यादिस्तत्र तत्रस्थं कर्म विहितं तत्तत्कुर्वन्नित्यर्थः। मन्त्रजप्तं जलेन काले वारत्रयं स्वात्मानमभिषिञ्चेत् तत्त्वसङ्ख्याप्रजप्तं द्वात्रिंशत्सङ्ख्या-प्रजप्तं पञ्चविंशतिप्रजप्तं वा तथा जलम् आचामन् इत्थमेवाऽन्नं भुञ्जानः। पुनः कीदृशः? सप्तजप्तं अञ्जनादि कज्जलादि यस्य स तथा आदिशब्देन गन्धमाल्यादीनां परिग्रहः। अञ्जनाद्य इति क्वचित्पाठः॥ ४॥

अपने वर्ण एवं आश्रम के लिय विहित कर्म का अनुष्ठान करे। मन्त्र जप किये हुए जल से समय समय पर तीन बार अपने को अभिषिक्त करे। तत्त्व संख्या (३२ अथवा २५) बार मूल मन्त्र का जप कर आचमन करे। पुनः ७ बार मूल मन्त्र से जपे हुये अन्नादि का भोजन करे तथा उतनी ही बार जप से अभिमन्त्रित जलादि भी नेत्रों में लगावे ॥ ४ ॥

जपस्थानमाह—अद्रेरिति।

अद्रेः शृङ्गे नद्यास्तटे बिल्वमूले
तोये हृद्घ्ने गोकुले विष्णुगेहे।
अश्वत्थाधस्तादम्बुधेश्चाऽपि तीरे
स्थानेष्वेतेष्वासीन एकैकशस्तु ॥ ५ ॥

प्रजपेदयुतचतुष्कं दशाक्षरं मनुवरं पृथक् क्रमशः।
अष्टादशाक्षरं चेदयुतद्वयमित्युदीरिता सङ्ख्या ॥ ६ ॥

पर्वतशृङ्गे नदीतीरे बिल्ववृक्षसमीपदेशे हृदयप्रमाणजले गोष्ठे विष्णु-प्रतिमाधिष्ठितगेहे पिप्पलवृक्षसमीपदेशे समुद्रस्य तीरे अष्टसु स्थानेषु आसीनः

उपविष्टः एकैकश एकैकस्मिन् स्थाने स्थानेषु क्रमशः क्रमेण पृथक् अयुत-चतुष्कं कृत्वा दशाक्षरमन्त्रं जपेत् यदाऽष्टादशाक्षरमन्त्रः तदाऽयुतद्वयं कृत्वा इति जपसंङ्ख्योदीरिता अत्र न प्रतिस्थानम् अयुतचतुष्कायुतद्वयजपः किन्तु तथा जप्तव्यं येन सर्वत्र जपेन तावत्येव संख्या भवति अन्यथा ऽष्टसु स्थानेषु जपेनाऽष्टादशाक्षरे षोडशायुतजपः स्यात् ।

प्रपञ्चसारेऽपि—'अयुतद्वितयावधिजपः स्याद्' इति ।

यद्यप्यष्टादशाक्षरे इयं सङ्ख्या तथाऽपि तुल्यन्यायाद् दशाक्षरेऽपि इयमेव व्यवस्थेति रुद्रधरः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पर्वत की चोटी पर, नदीके किनारे, विल्ववृक्ष के नीचे, हृदयपर्यन्त जलमें, गोष्ठ में, विष्णुमन्दिर में, पीपल के नीचे और समुद्र तट पर इन आठों स्थानों में वारी वारी से जप करना चाहिए। सब मिलाकर आठों स्थानों में जप की संख्या चार अयुत (चालीस हजार) होनी चाहिए एवं अष्टादशाक्षर की संख्या दो अयुत (बीस हजार) होनी चाहिए। यहाँ तक हमने जप के स्थान एवं मन्त्र के जप की संख्या का उल्लेख किया ॥ ५-६ ॥

उक्तेषु स्थानेषु क्रमेणाऽऽहारनियममाह-शाकमिति ।

शाकं मूलं फलं गोस्तनभवदधिनी भैक्षमन्नं च सक्तुं
दुग्धान्नं चेत्यदानः क्षितिधरशिखरादौ क्रमात्स्थानभेदे ।
एकं चैषामशक्तौ गदितमिह मया पूर्वसेवाविधानं
निर्वृत्तेऽस्मिन्पुनश्च प्रजपतु विधिवत्सिद्धये साधकेशः ॥ ७ ॥

क्षितिधरशिखरादौ पूर्वोक्तपर्वतशृङ्गादौ स्थानविशेषे क्रमादेकैकं क्रमेण विहितं शाकं वास्तुकादि मूलं शूरणादि फलम् आम्रादि गोस्तनभवं दुग्धं दधि च द्वन्द्वः भैक्षं भिक्षात उपलब्धमन्नं च प्रशस्तं हैमतिकं सितास्विन्नं सक्तुं भृष्टयवचूर्णं दुग्धान्नं पायसम् अदानो भक्षमाणः जपं कुर्यात् मितोदनम् ।

शस्तान्नं च समश्नीयान् मन्त्रसिद्धिसमीहया ।
तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन शस्तान्नाशी भवेन्नरः ॥ इति ॥

अशक्तं प्रत्याह एकमिति अशक्तो चैषामद्रिशृङ्गाद्यष्टस्थानानां मध्ये एकं स्थानं समाश्रित्य शाकाद्यष्टविधेष्वेकं भोजनमाश्रित्य जपं कुर्यात् ।

तदुक्तं नारदीये—

मृदु सोष्णं सुपक्वं च कुर्याद्वै लघु भोजनम् ।
नेन्द्रियाणां यथा वृद्धिस्तथा भुञ्जीत साधकः ॥

यद्वा तद्वा परित्याज्यं दुष्टानां सङ्गमं तथा ।

इह ग्रन्थे पूर्वसेवाविधानं मया गदितम् कथितम् अस्मिन्निवृत्ते सम्पूर्णे पुरश्चरणजपे पुनश्च प्रजपतु सिद्धये विशिष्टफलसिद्धये विधिवत् यथोक्त-प्रकारेण अत्र केचिदस्मिन्पूर्वसेवारम्भे कर्मणि निर्वृत्ते समाप्ते पुनःपुरश्च-रणजपं करोत्वित्याहुः ॥ ७ ॥

अब उपर्युक्त तत्तत् स्थानों में जप करते समय क्रमशः किस किस आहार का सेवन करना चाहिए उसे इस श्लोक में बताते हैं—

१ शाक, २ मूल, ३ फल, ४ गोदुग्ध, ५ दही, ६ भिक्षा से प्राप्त हुआ अन्न, ७ सक्तू और ८ दूध में पकाया गया अन्न (पायस या खीर) का भोजन क्रमशः प्रशस्त कहा गया है। यदि इन स्थानों में सर्वत्र जप करना संभव न हो तो किसी एक स्थान पर बैठकर ऊपर कहे गये आठ भोजनों में कोई एक भोजन कर जप करे। इस प्रकार हमने इस ग्रन्थ में पुरश्चरण की विधि कही। एक पुरश्चरण समाप्त होने पर साधक पुनः अपनी सिद्धि के लिए जप का प्रारम्भ करे ॥ ७ ॥

देहार्चनान्ते दिनशो दिनादौ
दीक्षोक्तमार्गान्यतरं विधानम् ।
आश्रित्य कृष्णं प्रयजेद्विविक्ते
गेहे निषण्णो हुतशिष्टभोजी ॥ ८ ॥

देहार्चनान्ते देहपूजावसाने दिनशः प्रतिदिनं दिनादौ प्रातर्दीक्षोक्तमार्गेषु षोडशपञ्चोपचारादिषु अन्यतरमेकं वर्त्माश्रित्य कृष्णं प्रयजेत् पूजयतु आवरणभेदाद्वर्त्मभेदः। कीदृशः ? विविक्त एकान्ते गृहे निषण्ण उपविष्टः। पुनःकीदृशः ? हुतशिष्टभोजी प्रात्यहिकजपदशांशहोमावशिष्टभोजी ॥ ८ ॥

साधक प्रतिदिन प्रातःकाल शरीर अर्चन के अन्त में दीक्षामार्ग में कही गई विधि के अनुसार षोडशोपचार-पञ्चोपचार इन दोनों में से किसी एक विधि से श्री कृष्ण का पूजन घर में बैठकर किसी एकान्त स्थान में करे और प्रतिदिन के किये गये जप के दशांश हवन से शेष बचे अन्न का भोजन करे ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरमपि महते फलाय पुरश्चरणमाह—दशलक्षमिति रुद्रधरः। वयं तु पश्यामः।

प्रकृतयथोक्तपुरश्चरणमाह—दशलक्षमिति।

दशलक्षमक्षयफलप्रदं मनुं
प्रतिजप्य शिक्षितमतिर्दशाक्षरम् ।

जुहुयाद् गुडाज्यमधुसंप्लुतैर्नवै-
रुणाम्बुजैर्हुतवहे दशायुतम् ॥ ९ ॥

शुद्धमतिः साधकः अक्षयफलदं मोक्षफलं दशाक्षरं मनुं दशलक्षं प्रतिजप्य हुतवहे संस्कृताग्नौ अरुणाम्बुजैररुणकमलैर्दशायुतं लक्षमेकं जुहुयात्। कीदृशैः? गुडाज्यमधुसंप्लुतैः गुडघृतमधुसयुक्तैः ॥ ९ ॥

शुद्धबुद्धि वाला साधक अक्षय [मुक्ति] फल देने वाले इस दशाक्षर मन्त्र का दश लाख जप करे। पुनः लाल कमल से युक्त गुड़-घी-मधु आदि हविष्य पदार्थों से उसका दशांश [एक लाख] होम सुसंस्कृत अग्नि में करे ॥ ९ ॥

शुषिरेति।

शुषिरयुगलवर्णं चेन्मनुं पञ्चलक्षं
प्रजपतु जुहुयाच्च प्रोक्तक्लृप्त्याऽर्द्धलक्षम्।
अमलमतिरलाभे पायसैरम्बुजानां
सहितघृतसितैरेवाऽऽरभेद्धोमकर्म ॥ १० ॥

शुषिरयुगलवर्णं शुषिरं छिद्रं नवसङ्ख्यात्मकं तस्य युगलं द्वन्द्वम् अष्टादशाक्षरं जपेत् तदा पञ्चलक्षं प्रजपतु प्रोक्तक्लृप्त्या पूर्वोक्तपरिपाट्या चाऽर्द्धलक्षं जुहुयात् यथोक्तहोमद्रव्यालाभे द्रव्यान्तरमाह अमलमतिरिति शुद्धमतिः अम्बुजानां पद्मानामलाभेऽप्राप्तौ पायसैः परमान्नैर्होममारभेत। कीदृशैः? सहिते घृतसिते येषु तैः घृतशर्करासहितैरित्यर्थः। स्वाहान्तेन होमपूजेति सर्वत्र बोद्धव्यं होमादेश्चानुष्ठानप्रकारो मत्कृतहोमानुष्ठानपद्धतेरवगन्तव्यः।

नारदीये यथा—
जपस्य तु दशांशेन होमः कार्यो दिने दिने।
अथवा लक्षपर्यन्तं होमः कार्यो विपश्चित ॥ इति ॥ १० ॥

ऊपर कहे गए होम के लिये हविष्य पदार्थों की अशक्तता हो तो मात्र १८ हजार का जप और कर देवे, किन्तु यदि जप की संख्या पाँच लाख हो तो आधे लाख मन्त्र से हवन करे। उपर्युक्त हविष्य पदार्थों के लिए कमल न मिलने पर केवल शर्करा युक्त पायस से हवन करे। होम में मन्त्र के अन्त से स्वाहा शब्द का उच्चारण अवश्य करना चाहिए।

विमर्श—इसके लिये तन्त्रकार द्वारा बनायी गयी 'होमानुष्ठानविधि' नामक ग्रन्थ देखे ॥ १० ॥

होमाशक्तं प्रत्याह—अशक्तानामिति।

असक्तानां होमे निगमरसनागेन्द्रगुणितो
जपः कार्यश्चेति द्विजनृपविशामाहुरपरे।
सहोमश्चेदेषां सम इह जपो होमरहितो
य उक्तो वर्णानां स खलु विहितस्तच्चलदृशाम् ॥११॥

तावद्द्रव्याद्यसम्पत्त्या होमकर्मणि असमर्थानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां यथासङ्ख्यं निगमा वेदाश्चत्वारः रसाः षट् नागेन्द्राः अष्टौ एतैर्गुणितैर्जपोऽनुष्ठेय इत्यपरे आचार्या आहुः। तत्र कृत एव जपः एतैर्गुणित इति रुद्रधरः।

वस्तुतस्तु।
होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्।
षड्गुणं चाष्टगुणितं यथासङ्ख्यं द्विजातयः॥
इतिपुरश्चरणचन्द्रिकोक्तमेव युक्तं पश्यामः।
होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणो हि विधीयते॥

इति एतेषां मतापेक्षया अपर इत्युक्तम्। एतेषां च मते तर्पणादिव्यतिरेकेण मूलभूतजपद्विगुणजपेनैव पुरश्चरणसिद्धिर्भवति तथैव ग्रन्थान्तरेऽभिधानात्। एषां ब्राह्मणादीनां होमसहितश्चेज्जपः तदा त्रयाणामपि अयुतचतुष्टयादिसमानमेव वर्णानां ब्राह्मणादीनां होमरहितो य उक्तो जपः, अत्र होमरहितो यश्चतुर्गुणो जप इति भैरवत्रिपाठिनः। स एव तच्चलदृशां तत् पत्नीनां विहितः॥ ११॥

होम करने में असमर्थ ब्राह्मण प्राप्त होम संख्या का चार गुना, क्षत्रिय छः गुना और वैश्य आठ गुना जप बढ़ा देवे। यदि जप के अन्त में होम करना हो तो सभी वर्णों को जप की संख्या समान ही समझनी चाहिए। जप में होम न करना हो तो ऊपर सभी वर्णों के लिए विहित जप संख्या कह दी गयी है, जो ब्राह्मणादि वर्णों के लिए जप एवं होम संख्या कही गयी है, वही उनकी स्त्रियों के लिए भी समझनी चाहिए॥ ११॥

शूद्रं प्रत्याह—यमिति।

यं वर्णमाश्रितो यः शूद्रः स च तन्नतभ्रुवाम्।
विदधीत जपं विधिवच्छ्रद्धावान् भक्तिभरावनम्रतनुः ॥१२॥

ब्रह्मणादीनां मध्ये यं वर्णं शूद्रः समाश्रितः स तन्नतभ्रुवां तेषामेव द्विजात्यादीनां स्त्रीणां विहितं जपं विधिवत् कथितप्रकारेण विहितं कुर्यात् । कीदृशः ? श्रद्धायुतः । पुनः कीदृशः ? भक्तिभरेण भक्त्यतिशयेन नम्रा तनुः शरीरं यस्य स तथा । जपश्चायं होमरहित इति रुद्रधरः ॥ १२ ॥

जिस वर्ण का आश्रय लेकर शूद्र निवास करे तो उस वर्ण के स्त्री को भी उनके पतियों के समान उतनी ही जप संख्या का विधान है जप विधि पूर्वक श्रद्धा एवं भक्ति युक्त विनम्रभाव से करना चाहिए ॥ १२ ॥

पुरश्चरणोत्तरकृत्यमाह—पुनरिति ।

पुनरभिषिक्तो गुरुणा विधिवद्विश्राण्य दक्षिणां तस्मै ।
अभ्यवहार्य च विप्रान् विभवैः सम्प्रीणयेच्च भक्तियुतः ॥१३॥

गुरुणा पुनरपि विधिवत् यथोक्तविधिना अभिषिक्तः कृताभिषेकः तस्मै गुरुवे दक्षिणां विश्राण्य दत्वा विप्रानभ्यवहार्य भोजयित्वा भक्तियुतः सन् सम्प्रीणयेत् धनधान्यादिभिः प्रीतिं कुर्यात् ॥१३॥

पुरश्चरण के पूर्ण हो जाने पर साधक पुनः गुरु से विधिपूर्वक अभिषेक करावे, उन्हें पर्याप्त दक्षिणा देवे। ब्राह्मणों को भोजन करावे और विपुलधनधान्यादि विभवों से उन्हें भक्तिपूर्वक संतुष्ट करे ॥ १३ ॥

सिद्धमन्त्रस्य कृत्यमाह—इतीति ।

इति मन्त्रवरद्वितयान्यतरं
परिसाध्य जपादिभिरच्युतधीः ।
प्रयजेत्सवनत्रितये दिनशो
विधिनाऽथ मुकुन्दममन्दमतिः ॥ १४ ॥

इत्यनेन प्रकारेण मन्त्रद्वितयान्यतरं मन्त्रद्वितययोर्मध्ये एकं जपादिभिर्जपपूजाहोमतर्पणादिभिः परिसाध्य साधयित्वा अच्युतधीः अच्युते श्रीकृष्णे धीर्बुद्धिर्यस्य स तथा यद्वा अच्युता न क्षरिता विष्णौ बुद्धिर्यस्य स तथा सवनत्रितये सन्ध्यादित्रये दिनशः प्रतिदिनं विधिना उक्तप्रकारेण मुकुन्दं कृष्णं प्रयजेत् पूजयतु अमन्दमतिः शुद्धमतिः ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण को आत्मसमर्पण करने वाले साधक को उपर्युक्त दशाक्षर एवं अष्टा-

दशाक्षर मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र को जप, होम एवं तर्पण से सिद्ध कर लेने के पश्चात् तीनों सन्ध्या [प्रातः; मध्याह्न एवं सायम्] में स्नान करना चाहिये और परमात्मा श्री कृष्ण की अटूट श्रद्धाभाव से प्रति दिन पूजा करनी चाहिये ।। १४ ।।

पूजायां प्रातःकालिकध्यानमाह—अथेति ।

अथ श्रीमदुद्यानसंवीतहैम-
स्थलोद्भासिरत्नस्फुरन्मण्डपान्तः ।
लसत्कल्पवृक्षाध उद्दीप्तरत्न-
स्थलीधिष्ठिताम्भोजपीठाधिरुढम् ॥ १५ ॥

सप्तश्लोकान्तं कुलकम् ।

अथानन्तरं भक्तिनम्रः भक्त्यतिशयेन नम्रदेहः प्रगे प्रातःकाले कथितरूपं कृष्णमनुस्मृत्य ध्यात्वा तदङ्गेन्द्रवज्रादिभिः तस्य कृष्णस्याङ्गानि पूर्वोक्तानि हृदयादीनि इन्द्रादयो दश दिक्पालाः वज्रादयस्तदायुधानि च तैः सह पूजयित्वा तं कृष्णं सिता शर्करा मोचा कदलीविशेषः हैयङ्गवीनं सद्योजातघृतम्, एभिस्तथा दध्ना विमिश्रेण दधिसंयुक्तेन दौग्धेन पायसेन च मन्त्री सम्प्रीणयेत् । कीदृशम्? श्रीमत् शोभायुक्तं यदुद्यानं क्रीडावनं तेन संवीतं वेष्टितं यद्धैमस्थलं लसत्काञ्चनभूमिस्तत्रोद्भासीनि उद्गतकिरणानि यानि यानि रत्नानि तैः स्फुरत् देदीप्यमानो यो मण्डपस्तस्याऽन्तर्मध्ये देदीप्यमानो यः कल्पवृक्षस्तस्याधश्छायायाम् उद्गता दीप्तिर्यस्य तादृशं रत्नमयं यत्स्थानं तदधिष्ठितं तत्रावस्थितं यदम्भोजं पद्मं तदेव पीठं तत्राधिरूढमुपविष्टम् ॥ १५ ॥

अब (श्री कृष्णकी पूजा में ध्यान का स्वरूप कहते हैं) साधक को सुशोभित हो रहे उद्यान से परिवेष्टित जगमगाती हुई सुवर्णमयी भूमि में जहाँ रत्नों से देदीप्यमान मण्डप है उसके बीच में शोभित कल्प वृक्ष के नीचे प्रकाशित रत्नस्थली के ऊपर बने हुये कमल के आसन पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥ १५ ॥

महानीलेति ।

महानीलनीलाभमत्यन्तवालं
गुडस्निग्धवक्त्रान्तविस्रस्तकेशम् ।

अलिव्रातपर्याकुलोत्फुल्लपद्म-
प्रमुग्धाननं श्रीमदिन्दीवराक्षम् ॥ १६ ॥

पुनः कीदृशम् ? महानील इन्द्रनील: तद्वन्नीलाभं श्यामम्, पुनः अत्यन्त-वालं पञ्चवार्षिकम्, पुनः गुडाः कुटिलाः स्निग्धाः चिक्कणाः कर्णान्ते कपोले विस्रस्ताः पर्याकुलाः वक्त्रान्तेति पाठे विश्रस्ता मुखावलम्बिताः केशा यस्य तम् अलिव्रातेन भ्रमरसमूहेन पर्याकुलं चञ्चलं व्याप्तं वा यत्फुल्लं विकसितं पद्मं तद्वत्प्रमुग्धं मनोहरम् आननं मुखं यस्य तम्, पुनः श्रीमत् दोषरहितं यद् इन्दीवरं नीलपद्मं तत्सदृशे अक्षिणी यस्य तम् ॥ १६ ॥

जिन श्री कृष्ण के शरीर की कान्ति इन्द्रनीलमणि के समान है, जो अभी पाँच वर्ष के बालक हैं, जिनके गण्डस्थल पर चिक्कण, कुटिल एवं गमुआरे केश बिखरे हुये हैं, जिनका मुखमण्डल भौरों के गुञ्जार से युक्त प्रफुल्लित एवं निर्दोष नीले कमल के समान मनोहर रूप से शोभित हो रहा है ॥ १६ ॥

चलदिति ।

चलत्कुण्डलोल्लासिसंफुल्लगण्डं
सुघोणं सुशोणाधरं सुस्मितास्यम् ।
अनेकाश्मरश्म्युल्लसत्कण्ठभूषा-
लसन्तं वहन्तं नखं पौण्डरीकम् ॥ १७ ॥

पुनः कीदृशम् ? चञ्चले ये कुण्डले ताभ्यामुन्नतौ उल्लसितौ शोभमानौ संफुल्लौ विकाशितौ गण्डौ यस्य तम्, पुनः शोभमाना घोणा नासा यस्य तम्, पुनः सुशोणो लोहितोऽधरो यस्य तम्, पुनः शोभनं यत् स्मितमीषद्धासस्तद्युक्त-मास्यं यस्य तम्, पुनः अनेकानि यान्यश्मानि इन्द्रनीलप्रभृतीनि रत्नानि तेषां ये रश्मयः किरणाः तैरुल्लसन्ती या कण्ठभूषा तया लसन्तं शोभमानम्, पुनः पौण्डरीकं व्याघ्रसम्बन्धिनखं वहन्तं धारयन्तम् ॥ १७ ॥

जिनका गण्डस्थल चलायमान कुण्डलों से शोभित हो रहा है, नासिका अत्यन्त मनोहर है, अधर रक्तवर्ण के हैं, और जिनका ईषद्धास्य युक्त मुख मण्डल है, जिनका ग्रीवा प्रदेश नाना प्रकार के इन्द्रनीलादि मणियों से विभूषित है तथा जो व्याघ्रनख को धारण किये हुए हैं ॥ १७ ॥

समुद्धूसर इति ।

समुद्धूसरोरःस्थलं धेनुधूल्या
सुपुष्टाङ्गमष्टापदाकल्पदीप्तम्   ।
कटीरस्थले चारुजङ्घान्तयुग्मे-
पिनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥ १८ ॥

पुनः कीदृशम् ? धेनुधूल्या गोरजसा समुद्धूसरं धूसरितम् उरः स्थलं यस्य तं गवामनुगमनात् सुष्ठु पुष्टमङ्गम् यस्य तम्, कीदृशम ? अष्टापदाकल्पदीप्तम्—सुवर्णघटितालङ्कारेण शोभमानम्, पुनः कीदृशम् ? क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना शब्दायमान क्षुद्रघण्टिकासमूहमालया कटिस्थले श्रोणितटे चारुजङ्घान्तयुग्मे मनोहरगुल्फद्वयोर्द्ध्वप्रदेशे पिनद्धं बद्धम् ॥ १८ ॥

गौओं के खुरो से उठी हुई धूलि से जिनका वक्षःस्थल धूसरित हो रहा हैं, अङ्गावयव अत्यन्त सुपुष्ट हैं तथा सुवर्णमय अलङ्कारों से जगमगा रहा हैं ; मनोहर दोनो गुल्फ प्रदेश से ऊपर के कटितट में बँधी हुई काञ्ची की क्षुद्रघण्टिकाओं से जिनका श्रोणीतट (नितम्ब प्रदेश) शब्दायमान हो रहा है ॥ १८ ॥

हसन्तमिति ।

हसन्त हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभां पाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
करे दक्षिणे पायसं वामहस्ते
दधानं नवं शुद्धहैयङ्गवीनम् ॥ १९ ॥

पुनः कीदृशम् ? पाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या हस्तचरणपद्मविपुलशोभया हसद्बन्धुजीवपुष्पकान्ति हसन्तम् उपहसन्तम्, पुनः कीदृशम् ? दक्षिणे करे हस्ते पायसं सव्यहस्ते वामकरे नवं नूतनं शुद्धं निष्कलुषं हैयङ्गवीनं नवनीतं ह्यो गोदोहोद्भवं घृतं दधानं धारयन्तम् ॥ १९ ॥

जो अपने हस्त कमल एवं चरण कमलों की कान्ति से बन्धु जीव के पुष्पों का उपहास करते हुए ज्ञात हो रहे हैं, जिनके दाहिने हाथ में पायस तथा बायें हाथ में सद्यः निकाला गया ताजा-ताजा मक्खन शोभा पा रहा है ॥ १९ ॥

महीति ।

महीभारभूतामरारातियूथा-
ननःपूतनादीन्निहन्तुं प्रवृत्तम् ।

प्रभुं गोपिकागोपगोवृन्दवीतं
सुरेन्द्रादिभिर्वन्दितं देववृन्दैः ॥ २० ॥

पुनः कीदृशम् ? महीभारभूतामरारातियूथान् पृथिवीभाररूपदैत्यसमूहान् अनःपूतनादीन् शकटासुरप्रभृतीन् निहन्तुं प्रवृत्तम्, पुनः कीदृशम् ? प्रभुं समर्थम् ईश्वरम्, पुनः कीदृशम् ? गोपिका गोपस्त्री गोपः गौः एतेषां समूहेन वीतं वेष्टितम्, पुनः कीदृशम् ? इन्द्रादिभिर्देवसमूहैर्नमस्कृतम् ॥ २० ॥

जो पृथ्वी के भारभूत शकटासुरादि समूहों एवं पूतनादि महा राक्षसियों के वध के लिए अवतार धारण किये हुए हैं, जो गोपिका एवं गोप समूहों से परिवेष्टित हैं एवं इन्द्रादि देवताओं से नमस्कृत सर्वलोक के स्वामी हैं ॥ २० ॥

प्रगे पूजयित्वेत्यनुस्मृत्य कृष्णं
तदङ्गेन्द्रवज्रादिकैर्भक्तिनम्रः ।
सितामोचहैयङ्गवीनैश्च दध्ना
विमिश्रेण दौग्धेन सम्प्रीणयेत्तम् ॥ २१ ॥

पूर्वश्लोके व्याख्यातमपि क्रमानुरोधेन व्याख्याते प्रगे प्रातःकाले उक्त-प्रकारेण कृष्णमनुस्मृत्य ध्यात्वा उपचारैः सम्पूज्य अङ्गाद्यावरणैः सह सम्पूज्य नैवेद्यं दद्यात् । नैवेद्यद्रव्यमाह—सितेति । सिता शर्करा मोचा कदली हैयङ्गवीनं दौग्धेन पायसेन ॥ २१ ॥

साधक भक्ति से विनम्र हो (इस प्रकार के श्री कृष्ण के स्वरूप का ध्यान कर प्रातः काल में नाना प्रकार के उपचारों से आयुध सहित इन्द्रादि आवरण देवताओं के साथ परमात्मा श्री कृष्ण का पूजन करे । पुनः शर्करा, कदली, नवनीत, दही, चावल के बने हुए पायसों का नैवेद्य समर्पित करे ॥ २१ ॥

प्रातःसवनपूजाफलमाह—इतीति ।

इति प्रातरेवार्चयेदच्युतं यो
नरः प्रत्यहं शश्वदास्तिक्ययुक्तः ।
लभेताचिरेणैव लक्ष्मीं समग्रा-
मिहप्रेत्य शुद्धं परं धाम भूयात् ॥ २२ ॥

इत्यनेन प्रकारेण प्रत्यहं शश्वत्सर्वदा आस्तिक्ययुक्तः सन् यो नरः प्रातः-

काले अच्युतमर्चयेत् तमेवावश्यं पूजयति स इह लोके अचिरेणैवाल्पकालेनैव समग्रां सम्पूर्णां लक्ष्मीं सम्पदं लभते प्राप्नोति प्रेत्य देहं परित्यज्य परं शुद्धं ब्रह्माख्यं महः भूयात् प्राप्नोति तत्सरूपो भवतीत्यर्थः ॥ २२ ॥

आस्तिकता से युक्त जो साधक प्रतिदिन इस प्रकार के उपचारों से परमात्मा श्री कृष्ण का पूजन करता है वह थोड़े ही दिनों में इस लोक में समस्त लक्ष्मी (=समृद्धि) प्राप्त करता है और मरणोत्तर शुद्ध परब्रह्म के तेज में सायुज्य पदवी प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

प्रातः पूजायामेव नैवेद्यं तर्पणं च दर्शयति—अह्नोमुख इति ।

अह्नोमुखेऽनुदिनमित्यभिपूज्य शौरिं
दध्नाथ वा गुडयुतेन निवेद्य तोयैः ।
श्रीमन्मुखे समनुतर्प्य च तद्धिया तं
जप्यात्सहस्रमथ साष्टकमादरेण ॥ २३ ॥

अथवा शब्दः पादपूरणे इति पूर्वोक्तप्रकारेण अह्नोमुखे प्रातःकाले अनुदिनं प्रत्यहं शौरिं कृष्णम् अभिपूज्य गुडसहितेन दध्ना नैवेद्यं दत्वा जलैस्तद्धिया गुडसहितबुद्ध्या श्रीमतः कृष्णस्य मुखे समनुतर्प्य अथानन्तरं तं मन्त्रमादरेण साष्टकं सहस्रम् अष्टोत्तरसहस्रं जपेत् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल में प्रतिदिन श्रीकृष्ण का पूजन कर गुड़मिश्रित दही का नैवेद्य निवेदन कर जल में गुड़मिश्रित जल की भावना करते हुए उसी से आचमन द्वारा श्रीकृष्ण को तृप्त कर मूल मन्त्र का १००८ बार जप करे ॥ २३ ॥

विमर्श—यहाँ प्रातःकाल की पूजा में नैवेद्य एवं तर्पण की विधि का प्रतिपादन किया गया है ॥ २३ ॥

मध्यन्दिनसवनध्यानमाह—मध्यंदिन इति ।

मध्यं दिने जपविधानविशिष्टरूपं
वन्द्यं सुरर्षियतिखेचरमुख्यवृन्दैः ।
गोगोपगोपवनितानिकरैः परीतं
सान्द्राम्बुदच्छविसुजातमनोहराङ्गम् ॥ २४ ॥

चतुर्थश्लोकस्थक्रियया योजना एवमनेन प्रकारेण मध्यन्दिने यध्याह्ने नन्दजं कृष्णं ध्यात्वा इन्दिरा श्रीस्तस्या आप्त्यर्थम् अर्चयतु। कीदृशम् ? जपविधानेन विशिष्टं रूपं यस्य तं जपार्थं यत् ध्यानम् अथ प्रकटसौरभेत्यादि तृतीयपटलोक्तध्यानं तदेवात्रापीति त्रिपाठिनः। पुनः कीदृशम् वन्द्यं श्रेष्ठम्, पुनः कीदृशं सुरा इन्द्रादय ऋषय नारदादयः यतयः सनकादयः खेचरा स्वर्गवासिनः एतेषां मुख्या श्रेष्ठाः तेषां वृन्दैः समूहैः तथा गौः गोपः गोपस्त्री च एतेषां निकरैः समूहैः परीतं वेष्टितं सान्द्रो निविडो यो अम्बुदो मेघस्तद्वच्छविर्यस्य तत्, अथ च सुजातं दोषरहितम्, अथ च मनोहरं नेत्रोत्सवकारकमङ्गं यस्य ॥ २४ ॥

अब दोपहर काल में परमात्मा श्री कृष्ण के ध्यान का वर्णन करते हैं—पुनः साधक महाश्री की प्राप्ति के लिए मध्याह्नकालिक जप के लिये विहित श्रीकृष्ण के इस प्रकार के स्वरूप का ध्यान करे। जो सर्वलोक वन्द्य है और इन्द्रादि देवगणों, नारदादि महर्षियों, सनकादिसिद्धों तथा मुख्यमुख्य स्वर्गवासियों एवं गोपों और गोपियों से घिरे हुए हैं तथा घने बादलों के समान जिनका शरीर श्याम, निर्दोष एवं नेत्रों के लिए परमह्लादकारक है ॥ २४ ॥

मायूरपत्रपरिक्लृप्तवतंसरम्य-
धम्मिल्लमुल्लसितचिल्लिकमम्बुजाक्षम् ।
पूर्णेन्दुबिम्बवदनं मणिकुण्डलश्री-
गण्डं सुनासमतिसुन्दरमन्दहासम् ॥ २५ ॥

पुनः कीदृशम् ? मयूरस्येदं मायूरं पत्रं पक्षः मायूरं च तत्पत्रं चेति मायूरपत्रं तेन परिक्लृप्तो यो वतंसः शिरोभूषणम्। 'वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यकारलोपः। तेन रम्यो मनोहरो धम्मिल्लः केशपाश यस्य तम् पुनः कीदृशम् ? अम्बुजवत् पद्मवत् अक्षिणी यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? सम्पूर्णो य इन्दुबिम्बश्चन्द्रमण्डलं तद्वद्वदनं मुखं यस्य स तथा तम्, पुनः कीदृशम् ? मणिमयं यत् कुण्डलं तेन श्रीयुक्तौ शोभासहितौ गण्डौ यस्य तं, पुनः कीदृशम् ? शोभना नासा यस्य तम्, पुनः कीदृशम् ? मनोहरेषद्धास्ययुक्तम् ॥ २५ ॥

शिरः प्रदेश में स्थित मयूर पुच्छ निर्मित आभूषणों से जिनके सँवारे गये केश शोभित हो रहे हैं, भाल प्रदेश में मनोहर तिलक उल्लसित हो रहा है एवं नेत्र

कमल के समान विकसित हैं, मुखमण्डल चन्द्रमण्डल के समान मनोहर है, जिनके दोनों गण्डस्थलों पर मणिनिर्मित कुण्डल जगमगा रहे हैं, नासिका अत्यन्त सुन्दर है और मुख मन्दमुसकान से युक्त है ॥ २५ ॥

पीताम्बरं रुचिरनूपुरहारकाञ्ची-
केयूरकोर्मिकटकादिभिरुज्ज्वलाङ्गम् ।
दिव्यानुलेपनपिशङ्गितमंसराज-
दम्लानचित्रवनमालमनङ्गदीप्तम् ॥ २६ ॥

पुनः कीदृशम् ? पीतमम्बरं वस्त्र यस्य तम्, पुनः कीदृशम् ? मनोहरनूपुरादिभिः शोभितमङ्गं यस्य तं हारो मुक्तावली काञ्ची क्षुद्रघण्टिका केयूरमङ्गदम् ऊर्मिर्मुद्रिका कटकः कङ्कणः आदिपदेन किरीटादीनां परिग्रहः, पुनः कीदृशम् ? देवसम्बन्धिनाऽनुलेपनेन कुङ्कुमादिना पिशङ्गितं पिञ्जरितम् अंसे स्कन्धे राजन्ती शोभमाना अम्लाना अक्लिष्टा चित्रा नानाप्रकारिका वनमाला पत्रपुष्पमयी आपादलम्बिनी माला यस्य तम्, पुनः कीदृशम् ? अनङ्गवत् कामवत् दीप्तम् ॥ २६ ॥

जो पीताम्बर धारण किये हुए हैं, मनोहर नूपुर, हार, करधनी, केयूरक (अङ्गद), अंगूठी एवं कङ्कण आदि (किरीटादि) से जिनका श्री अङ्ग शोभित हो रहा है एवं दिव्य कुङ्कुमादि के अनुलेपन से जो पीत वर्ण जैसा प्रतीत हो रहा है, कन्धों पर विराजमान कभी न मुरझाने वाली नाना प्रकार के पुष्पों से निर्मित वनमालाओं से जिनका श्री अङ्ग कामदेव के शरीर के समान शोभित हो रहा है ॥ २६ ॥

विमर्श—द्र० ३.१३ ।

वेणुं धमन्तमथवा स्वकरे दधानं
सव्येतरे पशुपयष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे मणिप्रवरमीप्सितदानदक्षं
ध्यात्वैवमर्चयतु नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥ २७ ॥

पुनः कीदृशम् ? वेणुं धमन्तं वादयन्तम् अथवा पक्षान्तरे स्वकरे सव्येतरे वामे गोरक्षणदण्डं दधानं तथा दक्षे दक्षिणे ईप्सितदानदक्षं मणिं दधानम्, पुनः कीदृशम् ? उदारवेषम् । उद्भटवेषमिति रुद्रधरः । वस्तुतस्तु वेणुं वादयन्तं

तदेव दर्शयति अथेति वामकरे सव्यं दक्षिणवामयोरित्यभिधानात् द्वयोरेवात्र-तन्त्रेण संग्रहः तत्र सव्ये द्वितीयवामहस्ते पशुपयष्टिं परशुरक्षार्थं यष्टिं दण्डं तथा सव्ये दक्षिणे हस्ते मणिप्रवरं मणिश्रेष्ठ चिन्तामणिं दधानम्, कीदृशम् ? मणिप्रवरम् ईप्सितदानदक्षं वाञ्छितार्थदानक्षमम् इत्यर्थः ॥ २७ ॥

जो वेणु को बजा रहे हैं अथवा उसे अपने हाथों में धारण किये हुए हैं, अथवा जिनका बाया हाथ गोरक्षा के लिए धारण किए गये दण्ड एवं दाहिना हाथ ईप्सित फल प्रदान करने वाली चिन्तामणि से परिपूर्ण है, इस प्रकार जिनका वेष उदारता से परिपूर्ण है ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान मध्याह्न काल में पूजन के समय करना चाहिए ॥ २७ ॥

आवरणनैवेद्यदानप्रकारमाह–दामादिकेति ।

दामादिकाङ्गदयितासुहृदङ्घ्रिपेन्द्र-
वज्रादिभिः समभिपूज्य यथाविधानम् ।
दीक्षाविधिप्रकथितं च निवेद्यजातं
हैमे निवेदयतु पात्रवरे यथावत् ॥ २८ ॥

दाम आदिर्यस्य, आदिपदेन सुदामादीनां परिग्रहः । अङ्गानि पूर्वोक्तानि पञ्च दयिता रुक्मिण्याद्याः सुहृदो वसुदेवाद्याः अङ्घ्रिपा मन्दराद्याः पूर्वोक्ता इन्द्रादयो दश दिक्पालाः वज्रादीनि च तेषाम् आयुधानि पूर्वोक्तानि एतैर्यथा-विधानं यथोक्तप्रकारेण कृष्णं संम्पूज्य दीक्षाविधाने कथित नैवेद्यसमूहं हैमे सुवर्णमये पात्रश्रेष्ठे यथावत् निवेदयतु ॥ २८ ॥

तदनन्तर पूर्वोक्त दाम-सुदाम आदि गोपसखारूप अङ्गों रुक्मिण्यादि, पट्टमहिषियों वसुदेवादि सुहृदों, पारिजातादि कल्पवृक्षों, इन्द्रादि दश दिक्पालों तथा वज्रादि रूप उनके आयुधों के सहित पहले कही गयी विधि के अनुसार उनका पूजन करे तथा दीक्षा विधान में कही गयी वस्तुओं को सुवर्णमय पात्र में रखकर नैवेद्य निवेदित करे ॥ २८ ॥

होमादिकमाह–अष्टोत्तरमिति ।

अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्पयोन्नैः
सर्पिःप्लुतैः सुसितशर्करया विमिश्रैः ।

दद्याद् बलिं च निजदिक्षु सुरर्षियोगि-
वर्गोपदैवतगणेभ्य उदग्रचेताः ॥ २९ ॥

अनन्तरं पयोन्नैः पायसैः सर्पिःप्लुतैः सुसितशर्करया विमिश्रैः अतिशुभ्र-शर्करया मिलितैः अष्टाधिकं शतं जुहुयात् होमं कुर्यात् । साहचर्यात् कल्पना-लाघवाच्च होमोक्तद्रव्येणैव निजदिक्षु स्वस्वदिक्षु सुरर्षियोगिवर्गोपदैवत-गणेभ्यो बलिं दद्यात् । तत्र सुरा विरञ्चिप्रभृतयः पूर्वदिक्स्थाः ऋषयो नारदादयो दक्षिणदिक्स्थाः योगिवर्गः सनकादिः पश्चिमदिक्स्था उपदेव-गणाः यक्षसिद्धगन्धर्वविद्याधराद्याः उत्तरदिक्स्था इतित्रिपाठिनः । उपदेव-गणाः दशदिक्पाला इति रुद्रधरः । उदग्रचेता उद्भटचित्तः सोत्साह इत्यर्थः ॥ २९ ॥

तदनन्तर घृतपरिप्लुत, अत्यन्त स्वच्छ शर्करा विमिश्रित परमान्न (खीर) से १०८ बार होम करे। पुनः उसी होम द्रव्य से उत्साह युक्त चित्त से अपनी अपनी दिशाओं के क्रमशः अधिपति देवताओं, ऋषियों, योनि वर्गों एवं उपदेव गणों को बलिप्रदान करे। अर्थात् पूर्वदिशा में ब्रह्मादि देवताओं को, दक्षिण दिशा में नारदादि ऋषियों को, पश्चिम में सनकादि सिद्धों को तथा उत्तर में यक्ष-सिद्ध गन्धर्व-विद्याधरादिकों को भी बलि प्रदान करे ॥ २९ ॥

नवनीतेति ।

नवनीतमिलितपायसधियाऽर्चनान्ते जलैर्मुखे तस्य ।
सन्तर्प्य जपतु मन्त्री सहस्रमष्टोत्तरशतं वाऽपि ॥ ३० ॥

अर्चनान्ते पूजावसाने तस्य देवस्य मुखे नवनीतेन मिलितं सम्बद्धं यत् पायसं तद्बुध्या जलैः सन्तर्प्य तर्पणं कृत्वा मन्त्री साधकः अष्टाधिकं सहस्रं शतं वा जपतु ॥ ३० ॥

इस प्रकार नैवेद्यादि सामग्री से समर्चा के बाद मन्त्रवेत्ता साधक श्री कृष्ण के मुख को जल में नवनीत विमिश्रित पायस की भावना करते हुए उसी से तृप्त करे। पुनः १००८ बार अथवा १०८ बार मूल मन्त्र का जप करे ॥ ३० ॥

एतत्फलमाह—अह्न इति ।

अह्नो मध्ये बल्लवीवल्लभं तं
नित्यं भक्त्याऽभ्यर्चयेत् यो नराग्र्यः ।

देवाः सर्वे तं नमस्यन्ति शश्वत्
वर्तेरन् वै तद्वशे सर्वलोकाः ॥ ३१ ॥

यो नराग्रयो नरश्रेष्ठः अह्नः मध्ये मध्याह्ने तं वल्लवीवल्लभं गोपीप्रियं नित्यं सर्वदा भक्त्या सात्त्विकेन भावेनार्चयेत् तं नरश्रेष्ठं सर्वे देवाः नमस्यन्ति तथा शश्वत्सर्वदा सर्वे जना एव तद्वशे वर्तेरन्, तद्वश्याः स्युरित्यथः ॥ ३१ ॥

अब इस मध्याह्न पूजा की फलश्रुति प्रतिपादन करते हैं—जो श्रेष्ठ मनुष्य मध्याह्न काल में कही गयी विधि से सात्त्विक भावना से युक्त हो श्री कृष्ण परमात्मा का अर्चन करता है उस मनुष्य को देवता भी सर्वदा नमस्कार करते हैं और संसार के सारे प्राणी उसके वशीभूत हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

मेधेति ।

मेधायुःश्रीकान्तिसौभाग्ययुक्तः
पुत्रैर्मित्रैर्गोमहीरत्नधान्यैः ।
भोगैश्चान्यैर्भूरिभिः सन्निहाढ्यो
भूयात् भूयो धाम तच्चाच्युताख्यम् ॥ ३२ ॥

तथा इह लोके मेधा धारणावती बुद्धिः आयुः जीवन श्रीः लक्ष्मीः कान्तिः शरीरशोभा सौभाग्यं सर्वजनप्रियता एतैः युक्तः सम्बद्धः तथा पुत्रैरौरसैः मित्रैः सुहृद्भिर्गौः पृथिवी रत्न धान्यं व्रीह्यादिः एतैश्च तथा अन्यैर्भूरिभिः प्रचुरैः सुखैराढ्यः उपचितः सन् पुनः देहावसाने अच्युताख्यं कृष्णनामकं तेजो महो भूयात् तद्रूपो भवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

वे इस लोक में धारणा, दीर्घजीवन, महालक्ष्मी, शरीर सौन्दर्य, सौभाग्य, पुत्र, मित्र, पृथ्वी, रत्न एवं धान्यादि से समन्वित हो सभी प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं और देहत्याग के पश्चात् श्री कृष्ण के परम तेज में मिलकर एकरूपता को प्राप्त करते हैं ॥ ३२ ॥

तृतीयकालपूजाव्यवस्थामाह—तृतीयेति ।

तृतीयकालपूजायामस्ति कालविकल्पना ।
सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदन्त्येके विपश्चितः ॥ ३३ ॥

तृतीयकालपूजायां कालस्य वेलायां विकल्पना विकल्पोऽस्ति तमेवाह—सायाह्ने सन्ध्यायां निशि रात्रौ वेति अत्र एके विपश्चितो वदन्ति ॥ ३३ ॥

अब तृतीय काल की पूजा में काल के विषय में विद्वानों का मतभेद प्रस्तुत करते हैं—कोई तो तृतीय काल की पूजा को सायङ्काल करना चाहिए और कोई कहते हैं कि यह तृतीय काल की पूजा रात्रि में करनी चाहिए ॥ ३३ ॥

किं तत्राह— दशाक्षरेणेति ।

दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायाह्नेऽष्टादशार्णतः ।
उभयोमुभयेनैव कुर्यादित्यपरे जगुः ॥ ३४ ॥

चेद्यदि दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजादिकं तदा रात्रौ यद्यष्टादशार्णतो अष्टादशाक्षरेण मन्त्रेण तदा सायाह्ने इत्येकेषां मतम् । अपरे च पुनः उभयीम् उभयपूजाम् उभयेनैव दशाक्षरेणाऽष्टादशाक्षरेण च तत् कुर्यात् इति जगुः कथयन्ति, तथा चैच्छिको विकल्प इति भावः ॥ ३४ ॥

कोई इस विषय में व्यवस्था देते हैं कि यदि दशाक्षर मन्त्र से पूजा करनी हो तो रात्रि के समय पूजा करनी चाहिए और अष्टादशाक्षर मन्त्र से पूजा करनी हो तो सायङ्काल में पूजा करनी चाहिए। कोई कहते हैं कि दोनों प्रकार की पूजायें दोनों समय में (सायंकाल अथवा रात्रि में) करनी चाहिए ॥ ३४ ॥

सायाह्न इत्यादि—अत्र नवश्लोकान्तं कुलकम् ।

सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते ।
द्व्यष्टसाहस्रसङ्ख्यातैर्भवनैरभिसंवृते ॥ ३५ ॥
हंससारससङ्कीर्णैः कमलोत्पलशालिभिः ।
सरोभिरमलाम्भोभिः परीते भवनोत्तमे ॥ ३६ ॥
उद्यत्प्रद्योतनद्योतसद्युतौ मणिमण्डपे ।
मृद्वास्तरे सुखासीनं हेमाम्भोजासने हरिम् ॥ ३७ ॥
नारदाद्यैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये ।
तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशन्तं परमक्षरम् ॥ ३८ ॥

सायाह्ने एवमेतादृशवेषधारिणं हरिं ध्यात्वाऽर्चयेत्, कीदृशम् ? मृद्वास्तर-

कोमलासनरूपे हेमाम्भोजासने कनकपद्मासने समासीनम् उपविष्टं कुत्रावस्थितं मणिमण्डपे, किं विशिष्टे ? उद्गच्छन् यः प्रद्योतनः सूर्यः तस्य द्योतस्य समाना द्युतिर्यस्य तस्मिन् कुत्र भवनोत्तमे गृहश्रेष्ठे किंविशिष्टे चित्रोद्यानोपशोभिते बहुधोपवनसेविते, पुनः किं विशिष्टे ? द्वारवत्यां विद्यमाने, पुनः किं विशिष्टे ? भवनैर्गृहैरभिसंवृते, कीदृशैः ? द्व्यष्टसहस्रसंख्यातैः ।

पुनः किंविशिष्टे ? सरोभिः सरोवरैः परीते, कीदृशैः ? अमलाम्भोभिर्निर्मलजलैः, पुनः कीदृशैः, ? हंससारससङ्कीर्णैः हंसादिपक्षिगणैर्व्याप्तैः, पुनः कीदृशैः ? कमलोत्पलशालिभिः पद्मोत्पलसहितैः ।

हरिं कीदृशम् ?

नारदाद्यैः मुनिभिः परिवृतं वेष्टितम् ; किमर्थम् ? आत्मतत्वविनिर्णये आत्मतत्वनिश्चये निमित्ते, पुनः कीदृशम् ? तेभ्यो नारदादिभ्यः स्वं धाम ज्ञानस्वरूपमात्मानं कथयन्तम, पुनः कीदृशम् ? परमविद्यातत्कार्यरहितम्, पुनः कीदृशम् ? अक्षरम् अविनाशि ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सायङ्काल में बहुत प्रकार के चित्र विचित्र उद्यानों से एवम् १६ हजार उत्तमोत्तम भवनों से सुशोभित द्वारवती (द्वारिका) पुरी के हंस सारस समूहों से व्याप्त, नील एवं रक्तकमलों से सुशोभित स्वच्छजलपूर्ण अनेकों सरों से घिरे हुए सर्वोत्तम भवन में, जहाँ उदीयमान सूर्य के समान देदीप्यमान मणिमय मण्डप है, उसमें सुवर्णमय कमल के मृदु आस्तरण से युक्त आसन पर सुखपूर्वक बैठे हुए नारदादि मुनियों से चारों ओर घिरे हुए और उन्हें परमविद्या के कार्य से विहीन नित्य आत्मतत्त्व का उपदेश करते हुए श्री कृष्ण का पूजन करना चाहिए ॥ ३५-३८ ॥

इन्दीवरनिभं सौम्यं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।
स्निग्धकुन्तलसंभिन्नकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ३९ ॥

पुनः कीदृशम् ? इन्दिवरनिभं नीलाम्भोजसदृशं सौम्यम् उग्रतारहितम्, पुनः कीदृशम् ? पद्मपत्रवदायते दीर्घे ईक्षणे यस्य तम्, पुनः स्निग्धाः चिक्कणा ये कुन्तलाः केशास्तैः सम्भिन्ने मिलिते किरीटमुकुटे ताभ्यामुज्ज्वलं देदीप्यमानम् तत्र किरीटशब्देन ललाटाश्रितः त्रिशृङ्गोऽलङ्कारविशेषः कथ्यते, मुकुटशब्देन च मूर्ध्नि मध्यभागाश्रितं तच्च दीपशिखाकारोऽलङ्कारविशेषः कथ्यते ॥ ३९ ॥

जो श्री कृष्ण नील कमल के समान उग्रता से रहित सौम्य वर्ण धारण किये

हुए हैं, और जिनके नेत्र रक्त कमल के समान विशल एवं लाल है तथा चिक्कण वालों से संयुक्त किरीट और मुकुट के आभूषणों से जो निरन्तर प्रकाशित हो रहे हैं ऐसे श्री कृष्ण का ध्यान कर पूजन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ४० ॥

पुनः कीदृशम् ? चारु मनोहरं प्रसन्नं फलदायि वदनं यस्य तम्, पुनः स्फुरती देदीप्यमाने मकराकृती कुण्डले यस्य तम्, पुनः श्रीवत्सो विप्रपाद-प्रहारकृतचिह्नविशेषो वक्षसि यस्य तम्, पुनः भ्राजन् देदीप्यमानः कौस्तुभो मणिविशेषो यस्य त पुनः वनमालाधारिणम् ॥ ४० ॥

जिनका मुखमण्डल अत्यन्त प्रसन्न है, जिनके कानों में धारण किये गये मकरा-कृति कुण्डल जगमगा रहे हैं, उरःप्रदेश पर श्रीवत्स एवं कौस्तुभ शोभित हो रहा है और जिनके गले में आप्रपदीन वन माला लटक रही है। ऐसे श्री कृष्ण का ध्यान कर पूजन करना चाहिए ॥ ४० ॥

काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम् ।
हारकेयूरकटकरसनाद्यैः परिष्कृतम् ॥ ४१ ॥

काश्मीरेण कुङ्कुमवर्णम् उरो यस्य तं, पुनः पीतवस्त्रधारिणम्, पुनः हारः मुक्ताहारः केयूरमङ्गदं बाह्वलङ्कारः कटकः कङ्कणः रसना क्षुद्रघण्टिका आदिशब्देनाऽङ्गुलीयकादेः परिग्रहः एतैः परिष्कृतं शोभितम् ॥ ४१ ॥

जिनका उरःप्रदेश केशर से आरक्त है जो पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जो अङ्गद, कङ्कण, क्षुद्रघण्टिका तथा अंगूठी आदि आभूषणों से अलंकृत हैं ऐसे परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ४१ ॥

हृतविश्वम्भराभूरिभारं मुदितमानसम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम् ॥ ४२ ॥

पुनः कीदृशम् ? हृतोऽपनीतो विश्वम्भरायाः पृथ्व्या भूरिर्भरो वृहद्भा-रोऽसुरादिलक्षणो येन तम्, पुनः मुदितं हृष्टं मानसं यस्य तम्, पुनः शङ्खचक्र-गदापद्मैः शोभितं बाहुचतुष्टयं यस्य तम् ॥ ४२ ॥

जिन्होंने पृथ्वी के समस्त भारभूत असुरों का संहार कर पृथ्वी का भार उतार दिया है, जिनका मन अत्यन्त प्रसन्न है एवं जिनके बाहुचतुष्टय शङ्ख, चक्र, गदा

और पद्म से सुशोभित हैं ऐसें श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजन करना चाहिए ।। ४२ ।।

एवं ध्यात्वाऽर्चयेन्मन्त्री तदङ्गैः प्रथमावृतिम् ।
द्वितीयां महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत् ॥ ४३ ॥

अत्र पूजायाम् अङ्गैः पूर्वोक्तैः पञ्चाङ्गैः प्रथमावरणं भवति, द्वितीयावरणं महिषीभिः रुक्मिण्यादिभिः, तृतीयायामावृतौ दिक्षु पूर्वादिदिक्षु वक्ष्यमाणान् नारदादीन् अग्रे च विनतासुतं गरुडं पूजयेत् ।। ४३ ।।

मन्त्रवेत्ता साधक इस प्रकार पूर्वोक्त पाँच दाम-सुदाम आदि सखाओं से युक्त श्रीकृष्ण की प्रथमावरण में पूजा करे । द्वितीयावरण में श्री कृष्ण की रुक्मिणी आदि पटरानियों का तथा तृतीयावरण में पूर्वादि दिशाओं में आगे कहे जाने वाले नारदादि ऋषियों का और आगे गरुड़ का पूजन करना चाहिए ।। ४३ ।।

तानेवाह ।

नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान् ।
विश्वक्सेनं च सैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ।। ४४ ।।

पर्वतनामा मुनिविशेषः जिष्णुरर्जुनः निशठो यादवविशेषः उद्धवोऽपि तथा दारुकः कृष्णसारथिः विष्वक्सेनः भाण्डागारिकः शैनेयः सात्यकिः ।। ४४ ।।

साधक पूर्व में नारद का, आग्नेय कोण में पर्वत का, दक्षिण में अर्जुन का, नैर्ऋत्य में निशठ का, पश्चिम में उद्धव का, वायव्य में दारुक (कृष्णसारथि) का, उत्तर में विष्वक्सेन का तथा ईशान में सात्यकि का पूजन करे और आगे विनतापुत्र नारद का पूजन करे । इस प्रकार तीसरे आवरण में पूजा करे ।। ४४ ।।

लोकेशैस्तत्प्रहरणैः पुनरावरणद्वयम् ।
इति संपूज्य विधिवत्पायसेन निवेदयेत् ।। ४५ ।।

लोकेशैरिन्द्रादिभिरेकमावरणं तत्प्रहरणैस्तदायुधैर्वज्रादिभिरपरावरणम् एवं क्रमेणाऽवरणद्वयम् इत्यनेन प्रकारेण पञ्चावरणकेन संम्पूज्य विधिवद् दीक्षाकथितं पायसं दद्यात् ।। ४५ ।।

फिर इन्द्रादि दिक्पालों का एक आवरण में तथा उनके वज्रादि आयुधों का द्वितीय आवरण में इस प्रकार कुल पाँच आवरणों में श्री कृष्ण का पूजन कर

दीक्षा प्रकरण में कही गयी विधि के अनुसार पायस का नैवेद्य अर्पित करे ॥ ४५ ॥

तर्पणप्रकारं जपसंङ्ख्यां च दर्शयति—तर्पयित्वेति ।

तर्पयित्वा खण्डमिश्रैर्दुग्धबुद्ध्या जलैर्हरिम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्री भावयन् पुरुषोत्तमम् ॥ ४६ ॥

खण्डेन शर्करया विमिश्रं मिलितं यद्दुग्धं तद्बुद्धया जलैः कृष्णं तर्पयित्वा पुरुषोत्तमं भावयन् ध्यायन् मन्त्री साधकः अष्टाधिकशतं जपेत् । यद्यपि तर्पणस्य क्त्वाप्रत्ययेन पूर्वकालता प्रतीयते तथापि प्रथमं जपः तदनु तर्पणं कार्यं तथैवानुक्रमात् सम्प्रदायाच्चेति रुद्रधरः ॥ ४६ ॥

पुनः जल में शर्करामिश्रित दूध की भावना कर उसी से श्रीकृष्ण को तृप्त करे और उन पुरुषोत्तम का ध्यान करते हुए मन्त्रवेत्ता साधक १०८ बार मूलमन्त्र का जप करे ॥ ४६ ॥

पूजास्विति ।

पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यंदिनेऽथवा ।
आसनादर्घ्यपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा नमेत्सुधीः ॥ ४७ ॥

सर्वासु तिसृष्वपि पूजासु होमं कुर्यात् । पक्षान्तरमाह–अथवेति । मध्यंदिने मध्याह्नपूजायां वा होमं कुर्यादित्यर्थः । आसनादिति । आसनमन्त्रादारभ्याऽर्घपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा स्तवनं कृत्वा नमेत् दण्डवत्प्रणमेत् । अवसानार्घपर्यन्तमितिपाठे अयमर्थः—पूजां कृत्वा पूजाशेषकर्तव्यार्घ्यमवशेषयित्वा मध्ये होमं कृत्वा ततः पूजाशेषार्घ्यमवसानार्घ्यसंज्ञकं पराङ्मुखार्घ्यापरपर्यायं दद्यादित्यर्थः ॥ ४७ ॥

तीनों काल की पूजा में हवन करना चाहिए अथवा केवल मध्याह्न काल में ही होम करे । पुनः होमान्त में आसन से लेकर अर्घ्य पर्यन्त विशेष पूजा कर स्तुति करे । तदनन्तर साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥ ४७ ॥

समर्प्येति ।

समर्प्यात्मानमुद्वास्य तत्स्वे हृत्सरसीरुहे ।
विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥ ४८ ॥

आत्मसमर्पणमन्त्रेण स्वात्मानं परमेश्वरे समर्प्य तत् परमेश्वरतेजः पूजास्थानादुद्वास्य उद्वृत्य स्वकीयहृदयपद्मे विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानं पूजयेत् ॥ ४८ ॥

पुनः 'ब्रह्मार्पणम्' इस पूर्वोक्त मन्त्र से श्रीकृष्ण को आत्मसमर्पण करे और परमेश्वर के इस उस तेज को वहाँ से विसर्जित कर उसे अपने हृत्कमल में स्थापित करे पुनः तन्मय हो अपना पूजन करे ॥ ४८ ॥

सायाह्नपूजाफलमाह—सायाह्न इति ।

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं यजेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते स याति परमां गतिम् ॥ ४६ ॥

यो नरः सायाह्ने वासुदेवं नित्यं सर्वदा एवं कथितप्रकारेण यजेत् पूजातर्पणहोमादिभिः परितोषयेत्सर्वान् कामान्वाञ्छितानर्थान् अवाप्य देहावसाने परां गतिं विष्णुसायुज्यं प्राप्नोति ॥ ४९ ॥

इस प्रकार जो मनुष्य सायङ्काल में परमात्मा श्री कृष्ण का पूजन करता है उसकी सारी अभिलाषाए पूर्ण हो जाती हैं और वह मनुष्य अन्त में विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

रात्राविति ।

रात्रौ चेन्मन्मथाक्रान्तमानसं देवकीसुतम् ।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ॥ ५० ॥

चेद् यदि रात्रौ पूजा क्रियते तदा रासः क्रीडाविशेषस्तेन परिश्रान्तं देवकीनन्दनं यजेत् मन्मथेनाक्रान्तं मानसं हृदयं यस्य तम्, पुनः गोपीनां मण्डलं गोष्ठीविशेषः तस्य मध्ये स्थितम् ॥ ५० ॥

यदि रात्रि में पूजा करनी हो तो गोपीमण्डल के मध्य में रास से परिश्रान्त एवं कामासक्त मन वाले श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥ ५० ॥

रासक्रीडां तदर्शयति—पृथुमिति ।

पृथुं सुवृत्तं मसृणं वितस्ति-
मात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शङ्कुम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरात्त-
हस्तैर्भ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥ ५१ ॥

इतरेतरात्तहस्तैः परस्परगृहीतहस्तैः अयं भ्रमो भ्रमणं रासगोष्ठी किंकृत्वा कौ पृथिव्यां पृथुं स्थूलं सुवृत्तं वर्तुलाकारं मसृणं स्निग्धं वितस्ति-

त्रोत्थितं द्वादशाङ्गुलप्रमाणेनोद्ध्वं स्थितं शङ्कुकाष्ठखण्डं विनिखन्य पुनः किंकृत्वा ? पद्भ्यां शङ्कुमाक्रम्य नियन्त्र्य ॥ ५१ ॥

पृथ्वी में मोटे गोल चिकने तथा एक वित्ते प्रमाण के ऊँचे गड़े हुए काष्ठ के निर्मित कील पर दोनों पैरों के बल से खड़े होकर एक दूसरे के हाथों को पकड़कर घूमते रहने की जो विधि है उसे 'रासगोष्ठी' कहते हैं ॥ ५१ ॥

ध्यानमाह—स्थूलेत्यादि ।

स्थलनीरजसूनपरागभृता
लहरीकणजालभरेण सता ।
मरुता परितापहृताऽध्युषिते
विपुले यमुनापुलिने विमले ॥ ५२ ॥

द्वादशश्लोकान्तं कुलकम् ।

कल्याणमयस्वरूपमजं विचिन्त्य प्रथमोदितपीठवरे पूर्वोक्तदीक्षासम्बन्धि-पूजापीठश्रेष्ठे विधिवत् यथाविधि प्रयत्नेन पूजयेत् । कीदृशम् ? यमुनापुलिने यमुनातटे इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ अन्योन्यबद्धहस्त-स्त्रीसमूहपरिकल्पितक्रीडाविशेषविधौ मणिशङ्कुगं मणिमयशङ्कुमध्यगतं कीदृशे ? पुलिने वायुनाऽध्युषिते आक्रान्ते, कीदृशेन, स्थलनीरजं स्थल कमलं तं पुष्पपरागभृता तत्केशरसंनिकृष्टपुष्परजोयुक्तेन अनेन सौगन्ध्यं वर्णितं पुनः लहरीतरङ्गस्तस्य कणजालं बिन्दुसमूहः तस्य भरेण प्रकर्षेण सताम, उत्कृष्टेन युक्तेनेति त्रिपाठिनः । अनेन शैत्यमुक्तम्, पुनः परितापहृता-खेदविनाशकेन•अनेन मान्द्यमुक्तम्, पुनः कीदृशे पुलिने ? विपुले विस्तीर्णे पुनः विमले शुद्धे ॥ ५२ ॥

स्थलकमलिनी (गुलाब) के पुष्पों के पराग को धारण करने से सुगन्धित और यमुना के लहरों के कणसमूहों को धारण करने से शीतल तथा सद्यः खेद को दूर करने के कारण मन्द इस प्रकार तीनों प्रकार के वायु से युक्त यमुना के स्वच्छ एवं विशाल तट पर दीक्षा प्रकरण में कहे गये पूजा के श्रेष्ठ पीठ पर कल्याणस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर यथाविधि प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करे ॥ ५२ ॥

विमर्श—यहाँ से १२ श्लोक पर्यन्त रासगोष्ठी का वर्णन करते हैं—(द्र० भागवत० १०.३३) ॥ ५२ ॥

अशरीरनिशातशरोन्मथित-
प्रमदाशतकोटिभिराकुलिते ।
उडुनाथकरैर्विशदीकृतदिक्-
प्रसरे विचरद्भ्रमरीनिकरे ॥ ५३ ॥

पुनः कीदृशम् ? अशरीरः कामः तस्य यो निशातशरस्तीक्ष्णबाणस्तेन उन्मथिता व्यग्रीकृता याः प्रमदास्तासां शतकोटिभिराकुलीकृते इतस्ततो-व्याप्ते, पुनः कीदृशे ? उडुनाथश्चन्द्रस्तस्य करैः । किरणैर्विशदीकृतः प्रका-शितो दिक्प्रसरो दिगवकाशो यत्र तस्मिन्, पुनः कीदृशे ? विचरन्ती भ्रमन्ती या भ्रमरी तस्या निकरः समूहो यत्र तस्मिन् ॥ ५३ ॥

कामबाण से आहत करोड़ों गोपाङ्गनाओं से इधर-उधर व्याप्त, चन्द्रमा के किरणों से प्रकाशित दिशा वाले और गुञ्जार युक्त भ्रमरीसमूहों से युक्त यमुनातट पर श्रीकृष्ण का (अष्टदल कमल का) पीठ पर ध्यान करते हुए पूजन करे ॥ ५३ ॥

पुनः कीदृशम् ?

विद्याधरकिन्नरसिद्धसुरैः
गन्धर्वभुजङ्गमचारणकैः ।
दारोपहितैः सुविमानगतैः
खस्थैरभिवृष्टसुपुष्पचयैः ॥ ५४ ॥

विद्याधरप्रभृतयो यथाप्रसिद्धाः तथाभुजङ्गमः हस्तपादादिशरीरान्वितो नागलोकस्थः सर्पः एतैर्दारोपहितैः सस्त्रीकैः शोभनविमानगतैः आकाशनिष्ठैः कृतपुष्पवृष्टिसमूहैः आकुलिते ॥ ५४ ॥

अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर आकाश स्थित विमानों पर बैठे हुए तथा पुष्प-समूहों की वर्षा करते हुए विद्याधरों किन्नरों, सिद्धों, गन्धर्वों, भुजङ्गमो (हस्तपादादि शरीरावयवधारी नागलोकस्थ विशेष प्राणियों) और चारणों से युक्त यमुना तट पर विशुद्ध आधारपीठ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण का ध्यान कर उनकी पूजा करे ॥ ५४ ॥

इतरेतरबद्धकरप्रमदा-
गणकल्पितरासविहारविधौ ।

मणिशङ्कुगमप्यमुनावपुषा
बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम् ॥ ५५ ॥

प नः कीदृशं कृष्णम् ? अमुना वपुषा अनेन मणिशङ्कुगतेम शरीरेण नानाप्रकारकृतस्वीयदिव्यशरीरम् ॥ ५५ ॥

प्रत्येक गोपाङ्गनाओं के दोनो हाथों को अपने दोनों हाथों से बाँधे हुए (अर्थात् दो-दो गोपाङ्गनाओं के मध्य में स्थित उनके दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों में रखे हुए) इस प्रकार के होने वाले रास-विहार में एवं उसी प्रकार के शरीर से मणिशङ्कु पर भी विराजमान तथा इस प्रकार से नाना दिव्य शरीर धारण करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥ ५५ ॥

विमर्श—यहाँ दो गोपियों के मध्य में रहने पर भी रासगोष्ठी गत मध्य शङ्कु भी विराजमान होने से श्रीकृष्ण का अनन्तरूप वर्णित किया गया है इसी बात को आगे के श्लोक में स्पष्ट कर रहे हैं ॥ ५५ ॥

सुदृशामुभयोः पृथगन्तरगं
दयितागणबद्धभुजद्वितयम् ।
निजसङ्गविजृम्भदनङ्गशिखि-
ज्वलिताङ्गलसत्पुलकालियुजाम् ॥ ५६ ॥

पुनः कीदृशम् ? सुदृशां कामिनीनामुभयोर्द्वयोः पृथक् द्वयद्वय क्रमेण अन्तरगं मध्यगतम् । पुनः कीदृशम् ? दयितागणेन नारीसमूहेन बद्धं स्वहस्तेनान्योऽन्यं ग्रन्थितं भुजद्वितयं यस्य तम् एतेनैतदुक्त भवति कामिन्योर्मध्ये कामिनीनामेव हस्तेन गृहीतहस्तः परमेश्वर इति अपि समुच्चयेन केवलं शङ्कुगं कामिनीनामपि अन्तरेण युक्तमिति भावः । कीदृशाम् ? निजसङ्गेन गोपालकृष्णसङ्गेन विजृम्भमाणः प्रज्वलितो यो अनङ्गशिखी कामाग्निस्तेन ज्वलितं प्रदीप्तं यदङ्गं तत्र लसन्ती शोभमाना या पुलकाली रोमाञ्चपंक्तिस्तया युज्यन्ते इति तद्युजस्तासाम् ॥ ५६ ॥

श्रीकृष्ण का स्पर्श होने से प्रज्वलित कामके कारण जिनके शरीर में पुलकावली उत्पन्न हो गई है ऐसी दो दो गोपाङ्गनाओं के मध्य अलग अलग रूप से दो-दो रूप धारण कर उनके दोनों हाथों को अपने दोनों हाथों से बाँधे हुए परमात्मा श्रीकृष्ण का पीठासन पर ध्यान करे ॥ ५६ ॥

विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतर-

स्वरसप्तकमूर्छनतालगणैः ।

भ्रममाणममूभिरुदारमणि-

स्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतरम् ॥ ५७ ॥

पुनः कीदृशम् ? अमूभिर्गोपीभिः सह भ्रममाणं भ्रमींकुर्वाणं कैः विविधो नानाप्रकारः श्रुतिर्नामस्वरारम्भकावयवः शब्दविशेषः तेन भिन्नं सङ्गतं मनोज्ञतरम् अतिहृदयग्राहि यत्स्वरसप्तकं निषादेत्यादि तस्य या मूर्छना एकविंशतिप्रकारिका भागतालाश्वतालपरितालादयः ऊनपञ्चाशत् एतेषाङ्गणैः समूहैः । पुनः कीदृशम् ? उदार उद्गढो यो मणिस्तस्य स्फुटं प्रव्यक्तम् अतितेजस्वितया यन्मण्डनं तस्य शिञ्जितं शब्दितं तेन चारुतरं हृदयंगमम् ॥ ५७ ॥

नाना प्रकार के स्वरावयवों से सङ्गत होने के कारण उससे उत्पन्न अत्यन्त मनोहर निषाद गान्धारादि जो सप्त स्वर उनकी मूर्छना एवं तालों से युक्त, शब्दायमान मणिमय अलङ्कारों से परम मनोहर श्री कृष्णको गोपियों के साथ घूमते हुए आधार पीठ पर ध्यान कर उनका पूजन करना चाहिए ॥ ५७ ॥

इति भिन्नतनुं मणिभिर्मिलितं

तपनीयमयैरिव मारकतम् ।

मणिनिर्मितमध्यगशङ्कुलस-

द्विपुलारुणपङ्कजमध्यगतम् ॥ ५८ ॥

पुनः कीदृशम् ? इति भिन्नतनुम् । अनेन प्रकारेण गोपीभिर्मिलितदेहङ्गोपालकृष्णं कमिव तपनीयमयैः सुवर्णमयैः मणिभिर्मिलितं ग्रथितं मरकतमणिमिवः । पुनः कीदृशम् ? मणिनिर्मितो मध्यगतो यः शङ्कुः तल्लग्नं लसद् देदीप्यमानं यद्विपुलं बृहदरुणपङ्कज तस्य मध्यगतम् ॥ ५८ ॥

अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण मणियों के बीच पिरोई गई ज्योतिर्मयी नीलमणि के समान एवं मणिनिर्मित मध्यस्थ शङ्कु पर रखे गये अरुणकमल के मध्य भाग में विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजन करे ॥ ५८ ॥

अतसीकुसुमाभतनुं तरुणं

तरुणारुणपद्मपलाशदृशम् ।

नवपल्लवचित्रसुगुच्छलस-
च्छिखिपिच्छपिनद्धकचप्रचयम् ॥ ५९ ॥

पुनः कीदृशम् ? अतसीप्रसिद्धा तस्याः कुसुमानीवाभा दीप्तिर्यस्यास्तनोस्तादृशी तनुर्यस्य तम् । पुनः कीदृशम् ? तरुणेति नूतनारुणपद्मपत्रसदृशनेत्रम् । पुनः कीदृशम् ? नवेति नूतनपल्लवनानाविधस्तबकशोभमानमयूरपुच्छसम्बद्धकेशसमूहम् ॥ ५९ ॥

अतसी के पुष्प के समान जिनके शरीर की कान्ति प्रस्फुटित हो रही है, नवीन रक्त कमल के पत्ते के समान जिनके नेत्र विशाल हैं, नवीन पल्लव के बिचित्र गुच्छे में शोभायमान मयूरपिच्छों से जिनके केश समूह आबद्ध हैं—ऐसे श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥ ५९ ॥

चटुलभ्रुवमिन्दुसमानमुखं
मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगम् ।
शशरक्तसदृक्दशनच्छदनं
मणिराजदनेकविधाभरणम् ॥ ६० ॥

पुनः कीदृशम् ? चटुलभ्रुवञ्चलदम्भ्रूलताकम् । पुनः कीदृशम् ? शुक्लपक्षीयपूर्णचन्द्रसदृशाननम्, पुनः कीदृशम् ? मणिमयकुण्डलशोभितगण्डद्वयम्, पुनः कीदृशम् ? शशशोणिततुल्याधरम्, पुनः कीदृशम् ? मणिना शोभमाननानाप्रकाराभरणम् ॥ ६० ॥

जिनकी भ्रूलतायें निरन्तर चलायमान हैं तथा मुख पूर्णचन्द्र के समान हैं, दोनों गण्डस्थल मणिनिर्मित कुण्डलों से शोभित हो रहे हैं, जिनका अधर खरगोश के रक्त के समान रक्त वर्ण का है और जो नाना प्रकार के मणियों के आभरण से शोभित हो रहे हैं—ऐसे परमात्मा श्रीकृष्ण का आधार पीठ पर ध्यान कर पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

असनप्रसवच्छदनोज्ज्वलस-
द्वसनं सुविलासनिवासभुवम् ।
नवविद्रुमभद्रकराङ्घ्रितलं
भ्रमराकुलदामविराजितनुम् ॥ ६१ ॥

पुनः कीदृशम् ? असनो वृक्षविशेषः तस्य प्रसवः पुष्पं तस्य छेदनं पत्रं च तद्वदुज्ज्वलं शोभमानं मनोहरं वस्त्रं यस्य तम्, पुनः कीदृशम् ? शोभनक्रीडाविचित्रस्थानम् । पुनः कीदृशम् ? नवो नूतनो यो विद्रुमः प्रवालस्तद्वत् भद्रं मनोहरं कराङ्घ्रितलं यस्य तम् । पुनः कीदृशम् ? भ्रमरैराकुलं व्याप्तं यत् पुष्पदाममाला तेन विराजितं भुजद्वयं यस्य तं यद्वा मालया विराजिता तनुर्यस्य तम् ॥ ६१ ॥

पीतवर्ण वाले असन वृक्ष के पुष्प एवं पत्तों के समान जिनका उत्तम पीताम्बर शोभा पा रहा है, जो सम्पूर्ण काम चेष्टाओं के विचित्र स्थान हैं, जिनके हाथ तथा पैर के तलवे नवीन प्रवाल के समान हैं एवं जिनके शरीर में पहनी हुई वनमाला पर भ्रमर समूह गुञ्जार कर रहे हैं—ऐसे परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

तरुणीकुचयुक्परिरम्भमिलत्-
घुसृणारुणवक्षसमुक्षगतिम् ।
शिववेणुसमीरितगानपरं
स्मरविह्वलितं भुवनैकगुरुम् ॥ ६२ ॥

पुनः कीदृशम् ? युवतीनां स्तनद्वयालिङ्गनसम्बद्धकुङ्कुमारुणितमुरःस्थलं यस्य तम् । पुनः कीदृशम् ? उक्षगतिं वृषभगतिम् । पुनः कीदृशम् ? शिवःकल्याणप्रदो यो वेणुवंशस्तेन समीरितं संपादितं यद्गानङ्गीतं तत्परं तदासक्तम् । पुनः कीदृशम् ? स्मरेण कामेन विह्वलितमनायत्तम् । पुनः कीदृशम् ? भुवनत्रयस्य एकम् अद्वितीयं गुरुम् ॥ ६२ ॥

युवती गोपाङ्गनाओं के दोनों स्तनों के आलिङ्गन से जिनका वक्षःस्थल अरुणवर्ण का हो गया है। वृषभ के समान जिनकी चाल, है जो कल्याणकारी वेणु से निकले हुए गान में आसक्त हैं, जो काम के वशीभूत हो जाने के कारण व्यग्र हैं—ऐसे लोक के अद्वितीय गुरु श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

विमर्श—(भागवत १०.३३.१—२६) ॥ ६२ ॥

प्रथमोदितपीठवरे विधिवत्
प्रयजेदिति रूपमरूपमजम् ।
प्रथमं परिपूज्य तदङ्गवृतिं
मिथुनानि यजेद्रसगानि ततः ॥ ६३ ॥

इति रूपमजं प्रथमोदिते पीठवरे पूर्वकथितदेवताक्लृप्तपीठे यजेत् अरूप निर्गुणम् । आवरणानि दर्शयति—प्रथममिति । तदङ्गवृति पूर्वोक्ताङ्गावरणं प्रथमं परिपूज्य ततस्तदनन्तरं मिथुनानि केशवकीर्त्यादीनि रासगानि रासक्रीडागतानि ।। ६३ ।।

इस प्रकार पहले कहे गये आधार पीठ पर निर्गुण एवं अजन्मा परमात्मा श्री कृष्ण के स्वरूप का ध्यान कर पूजन करें। सर्व प्रथम पूर्व में कहे गये उनके पाँच दाम सुदामादि अङ्गों का पूजन करे, तदनन्तर रास में रहने वाले उनके केशव कीर्त्यादि द्वन्द्व स्वरूपों का पूजन करे ।। ६३ ।।

दलषोडशके स्वरमूर्तिगणं
सहशक्तिकमुत्तमरासगतम् ।
सरमामदनं स्वकलासहित
मिथुनाह्वमथेन्द्रपविप्रमुखान् ।। ६४ ।।

दलषोडशके षोडशपत्रे पूजयेत्—

मिथुनमेव कथयति स्वरमूर्त्तिगणम् इति स्वरभवा अकारादिवर्णभवाः केशवादिषोडशमूर्तयः, स्वरमूर्त्तिगणं कीदृशम् ? सहशक्तिकं कीर्त्यादिशक्तिसहितम् । पुनः कीदृशम् ? उत्तमो यो रासः तत्र गतम् । क्वचिदुत्तररासगतमिति पाठः । तत्र मध्यरासे परमेश्वरपूजा उत्तरादिरासे केशवादिकं पूजयेत् ।

पुनः कीदृशम् ? रमाश्रीबीजं मदनः कामबीजम् एताभ्यां सहितम् । पुनः कीदृशम् ? स्वकीया याः कलाः षोडशस्वराः तैः सहितं प्रयोगश्च श्रीं क्लीम् अं केशवकीर्तिभ्यां नमः इत्यादि। पुनः कीदृशम् ? मिथुनाह्वं मिथुनसंज्ञकम् । अथानन्तरम् इन्द्रपविप्रमुखान् इन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेदित्यर्थः ।। ६४ ।।

षोडशदल के कमल पर अकारादिवर्णों से उत्पन्न उत्तम रास क्रीडा में विद्यमान कीर्त्यादि शक्ति सहित षोडश केशवादि मूर्त्तियों की रमा के बीज मन्त्र 'श्री' एवं काम बीज 'क्लीम्' इन दो बीजमन्त्रों से युक्त षोडशस्वरों से प्रथम पूजा करे। तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं की तथा उनके वज्रादि आयुधों की भी पूजा करे ।।६४।।

विमर्श—प्रयोग विधि यथा 'श्रीं क्लीं अं केशवकीर्त्तिभ्यां नमः' इत्यादि ।। ६४ ।।

पूर्वोक्तावृतिसंख्यापूर्वकं नैवेद्य कथयति—इतीति ।

इति सम्यगमुं परिपूज्य हरि
चतुरावृतिसंवृतमार्द्रमतिः ।
रजतारचिते चषके ससितं
सुभृतं सुपयोऽस्य निवेदयतु ॥ ६५ ॥

अनेन प्रकारेण चतुरावरणवेष्टितममुं हरिं सम्यक् यथाविधि सम्पूज्य श्रद्धावान् रजतारचिते रूप्यनिर्मिते चषके पात्रे अस्य हरेः ससितं सशर्करं सघृतं घृतसहितं पाठान्तरम् । सुशृतम् आवर्त्तितं पयो दुग्धं निवेदयतुम् ॥६५॥

इस प्रकार चार आवरणों से युक्त श्रीकृष्ण परमात्मा की सविधि पूजा कर श्रद्धावान् साधक चाँदी के बने हुए पात्रों में शर्करा घृत सहित उष्ण पायस का नैवेद्य निवेदित करे ॥ ६५ ॥

विभवे सति कांस्यमयेषु पृथक्
चषकेषु तु षोडशसु क्रमशः ।
मिथुनेषु निवेद्य पयः ससितं
विदधीत पुरोवदथो सकलम् ॥ ६६ ॥

विभवे सति यदि तादृशमैश्वर्यं भवति तदा कांस्यघटितेषु पृथक् एकैकं षोडश चषकेषु क्रमेण मिथुनगणेषु ससितं पयो निवेद्य अथानन्तरं पुरोवत् निवेदयामि भगवते इत्याद्युक्तप्रकारेण सकलं पूजाविशेषं समापयेत् ॥ ६६ ॥

यदि ऐश्वर्यवान् हो तो अलग अलग षोडश काँस के बने हुये पात्र में अलग अलग सिता घृत सहित पायस को षोडश शक्ति सहित उन केषवादि मूर्त्तियों को 'निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे' (द्र० ४. ५६) इस मन्त्र से निवेदित करे । तदनन्तर पूर्ण कथित मुद्रादि प्रदर्शित कर पूजा समाप्त करे ॥ ६६ ॥

रासपूजाफलमाह—सकलेति ।

सकलभुवनमोहनं विधिं यो-
नियतममुं निशिनिश्युदारचेताः ।
भजति स खलु सर्वलोकपूज्यः
श्रियमतुलां समवाप्य यात्यनन्तम् ॥ ६७ ॥

अमुं विधिं रासपूजाप्रकारं सकलभुवनमोहनं सकलभुवनवश्यकरं नियतमबाधेन यो निशि निशि प्रतिरजनि उदारचेताः प्रसन्नमनाः सन् सम्यक् भजति कुर्यात् स सर्वलोकपूज्यः सन् अतुलामतिशयितां श्रियं समृद्धिं समवाप्य अनन्तं विष्णुं याति प्राप्नोति ॥ ६७ ॥

जो मनुष्य प्रसन्न होकर संपूर्ण विश्व को मोहित करने वाली इस प्रकार की विधि से नियमपूर्वक प्रत्येक रात्रि में श्रीकृष्ण परमात्मा का पूजन करता है, वह सर्वलोक पूज्य बन जाता है और इस लोक में अतुल संपत्ति प्राप्त कर अन्त में मरने के बाद विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ६७ ॥

निशि वेति ।

निशि वा दिनान्तसमये-
प्रपूजयेन्नित्यशोऽच्युतं भक्त्या ।
समफलमुभयं हि ततः
संसाराब्धिं समुत्तितीर्षति यः ॥ ६८ ॥

यः पुमान् संसारसागरन्तरितुमिच्छति सोऽच्युतं भक्त्या निशि वा दिनान्तसमये वा सध्यायां पूजयेत् नित्यशः प्रत्यहं हि यतः उभय निशासंध्यापूजनद्वयं समफलं ततस्तस्माद्धेतोः निशि वा दिनान्ते वा पूजयेदित्यर्थः ॥ ६८ ॥

संसार सागर को पार करने वाला जो पुरुष सायङ्काल के समय भक्ति श्रद्धा से युक्त हो नियमपूर्वक निरन्तर इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्ण का पूजन करता है, वह सायङ्काल के पूजन का तथा निशाकाल के पूजन का समान रूप से फल प्राप्त करता है। इसलिये चाहे तो सायङ्काल में अथवा रात्रि के समय (जैसी सुविधा हो किसी समय) श्रीकृष्ण परमात्मा की पूजा करे ॥ ६८ ॥

उक्तमुपसंहरति—इत्येवमिति ।

इत्येवं मनुविग्रहं मधुरिपुं यो वा त्रिकालं यजे-
त्तस्यैवाऽखिलजन्तुजातदयितस्याम्भोधिजावेश्मनः ।
हस्ते धर्मसुखार्थमोक्षतरवः सद्वर्गसम्प्रार्थिताः
सान्द्रानन्दमहारसद्रवमुचो येषां फलश्रेणयः ॥ ६९ ॥

इति अमुना प्रकारेण यः पुमान्मन्त्रशरीरं मधुसूदनं त्रिकालं वा पूजयेत् तस्य नानाविधप्राणिसमूहवल्लभस्य अम्भोधिजावेश्मनो लक्ष्मीनिवासस्य धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयवृक्षाः हस्ते भवन्तीति शेषः। कीदृशाः? सतां वर्गः समूहः तेन प्रार्थिताः। संसर्गीति पाठे ससर्गिभिर्निकटस्थैः यद्यपि मोक्षस्य फलं नास्ति तथापि मोक्षपदेन तद्धेतुभूतं तत्त्वज्ञानमुक्तं येषां वृक्षाणां फलपङ्क्तयः नित्यानन्दब्रह्म स्वरूपमहारसद्रवदाः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार की विधि से जो मनुष्य मन्त्रशरीरात्मक श्रीकृष्ण का त्रिकाल पूजन करता है, वह त्रैलोक्य के सारे प्राणियों का प्रिय हो जाता है। उसके घर में कमलनिवासिनी महालक्ष्मी का निवास हो जाता है और उसे सज्जनों से प्रार्थित धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष के ऐसे वृक्ष अपने आप उपस्थित हो जाते हैं जिनमें ब्रह्मस्वरूपमहारस की अमृतमय फलों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं ॥ ६९ ॥

अथेति।

अथोच्यते पूर्वसमीरितानां
पूजावसाने परमस्य पुंसः।
कल्पस्तु काम्येष्वपि तर्पणानां
विनाऽपि पूजां खलु यैः फलं तत् ॥ ७० ॥

अथानन्तरं परमस्य पुंसः श्रीगोपालकृष्णस्य पूजावसाने पूजानन्तरं पूर्वसमीरितानां श्रीमन्मुख-इत्यादिकथितानां नित्यतर्पणानां कल्पः प्रकारः काम्येष्वपि तर्पणेषु प्रकार उच्यते यैस्तर्पणैः पूजां विनापि तत्फलं पूजाफलं प्राप्नोति यथापूजा तथैव तर्पणम् ॥ ७० ॥

अब उसके बाद मैं गोपाल स्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण के पूजा के अन्त में 'श्री मन्मुखे' (द्र० ५.२३) इत्यादि श्लोक में पूर्वकथित नित्य तर्पण के प्रकार को काम्य कर्मों के अनुष्ठान के लिये कहता हूँ; जिसके कल्प से पूजा के बिना भी पूजा का फल प्राप्त हो जाता है। अर्थात् पूजा से जो फल प्राप्त होता है वह फल मात्र तर्पण से प्राप्त हो जाता है ॥ ७० ॥

संतर्प्येति।

संतर्प्य पीठमन्त्रैः सकृत्सकृत्प्रथममच्युतं तत्र।
आवाह्य पूजयेत्तं तोयैरेवाखिलैः समुपहारैः ॥ ७१ ॥

प्रथमं पीठमन्त्रैराधारशक्त्यादिमन्त्रैः पीठाङ्गभूतदेवतां सकृत्सकृदेकैक-वारं संतर्प्य अनन्तरं तत्र तोयमये पीठे अच्युतमावाह्य जलैरेव गन्धादि-सकलोपचारात्मकैः पूजयेत् ॥ ७१ ॥

प्रथम (१.४०-४५) कहे गये 'आधार शक्त्यै नमः' इत्यादि आधार शक्ति के मन्त्रों से पीठाङ्गभूत देवताओं का एक एक बार जल से अर्चन करे। पुनः उस जलमय पीठ पर परमात्मा श्रीकृष्ण का आवाहन कर जल में ही गन्धादि उपचारों की भावना कर उसी से उनका पूजन करे ॥ ७१ ॥

बद्ध्वेति ।

बद्ध्वाऽथ धेनुमुद्रां तोयैः सम्पाद्य तर्पणद्रव्यम् ।
तद्बुद्ध्याऽञ्जलिना तं सुवर्णचषकीकृतेन तर्पयतु ॥ ७२ ॥

ततो धेनुमुद्रां बद्ध्वा तोयैस्तर्पणद्रव्यं संपाद्य तद्द्रव्यरूपतया तोयं भावयित्वा तद्बुद्धया तत्कथितद्रव्यतर्पणद्रव्यबुद्धया तं कृष्णं तर्पयतु केनाञ्जलिना कीदृशेन सुवर्णचषकतया विचिन्तितेनेत्यर्थः ॥ ७२ ॥

इसके अनन्तर धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर उस जल में ही तर्पण की सारी सामग्री की भावना कर उस समस्त द्रव्यमान जलों से युक्त अपनी अञ्जलि में सुवर्णपात्र की संभावना करते हुये उसी से श्रीकृष्ण का तर्पण करे ॥ ७२ ॥

विंशतीति ।

विंशतिरष्टोपेता कालत्रयतर्पणेषु सङ्ख्योक्ता ।
भूयः स्वकालविहितान्सकृत्तर्पयेच्च परिवारान् ॥ ७३ ॥

कालत्रयतर्पणेषु त्रिकालतर्पणेषु एकस्मिन् कालेऽष्टोपेता अष्टाविंशतिः तर्पणस्य संख्योक्ता पुनः स्वकालविहितान् स्वस्मिन् प्रातर्मध्याह्नादौ ये ये विहिताः परिवारा आवरणदेवतास्तान् सकृदेकैकवारं सन्तर्पयेत् ॥ ७३ ॥

तीनों काल में श्रीकृष्ण के तर्पण के लिये प्रत्येक काल में तर्पण की संख्या २८ बार बताई गई है। इस प्रकार तर्पण कर लेने के पश्चात् प्रातः, मध्याह्न एवं सायङ्काल की पूजन विधि में कहे गये तत्तदावरणोक्त देवताओं का भी एक-एक बार तर्पण करे ॥ ७३ ॥

कालत्रयस्य तर्पणद्रव्यमाह—प्रातरिति ।

प्रातर्दधिगुडमिश्रं मध्याह्ने पायसं सनवनीतम् ।
क्षीरं तृतीयकाले ससितोपलमित्युदीरितं द्रव्यम् ॥ ७४ ॥

गुडसहितं दधि प्रातःकाले नवनीतसहित पायसं मध्याह्ने ससितो पलं शर्कराविकारसहितं क्षीरं तृतीयकाले इत्यमुना प्रकारेण द्रव्यं तर्पणद्रव्यं कथितम् ॥ ७४ ॥

अब तीनों काल में तर्पण के लिये द्रव्य विशेष कहते हैं—प्रात:काल में गुड-मिश्रित जल, मध्याह्न में नवनीतयुक्त पायस और सायङ्काल में मिश्री से युक्त दूध से तीनों काल में तर्पण के द्रव्य कहे गये हैं ॥ ७४ ॥

तर्पणमन्त्रमाह—तर्पयामीत्यादि ।

तर्पयामिपदं योज्यं मन्त्रान्ते स्वेषु नामसु ।
द्वितीयान्तेषु तु ततः पूजाशेषं समापयेत् ॥ ७५ ॥

मन्त्रान्ते मूलमन्त्रावसाने स्वकीयानि तर्पणीयदेवतानां नामानि तेषु तत्समीपेषु द्वितीयान्तेषु अमुकदेवतामित्यादिरूपेषु तर्पयामीतिपदं योज्यम् अनन्तरं पूजाशेषं समापयेत् ॥ ७५ ॥

मूल मन्त्र के अन्त में तर्पण के देवताओं के नाम को द्वितीया विभक्ति से संयुक्त करे। पुन: 'तर्पयामि' पद का प्रयोग करे। पुन: तर्पण करने के पश्चात् पूजा का क्रम समाप्त करे ॥ ७५ ॥

विमर्श—प्रयोग विधि–'गोपीजन वल्लभाय नम: श्रीकृष्ण देवता तर्पयामि' समझना चाहिये ॥ ७५ ॥

उत्तरकृत्यमाह—अभ्युक्ष्येति ।

अभ्युक्ष्य तत्प्रसादाद्भिरात्मानं प्रपिवेदपः ।
तज्जप्त्वा तमथोद्वास्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ॥ ७६ ॥

तत्प्रसादाद्भिः परमेश्वरप्रसादततर्पणजलैः आत्मानं शरीरं सिक्त्वा-तज्जप्त्वा मन्त्रं जप्त्वा अपः प्रपिबेत्, अथानन्तरं तं देवमुद्वास्य स्वहृदये संयोज्य तन्मयः सन्मन्त्रं जपेत् ॥ ७६ ॥

इस प्रकार परमेश्वर श्रीकृष्ण के प्रसाद युक्त जल से अपने को अभिषिक्त कर मूल मन्त्र का जप करते हुये प्रोक्षण शेष जल पी जावे। फिर उनका विसर्जन कर एवं उन्हें अपने हृदय प्रदेश में स्थापित कर तन्मय हो मूल मन्त्र का जप करे ॥ ७६ ॥

सप्रकारं सद्रव्यं काम्यं तर्पणमाह—अथेति ।

अथ द्रव्याणि काम्येषु वक्ष्यन्ते तर्पणेषु तु ।
तानि प्रोक्तविधानानामाश्रित्यान्यतरं भजेत् ॥ ७७ ॥

अथानन्तरं काम्येषु तर्पणेषु यानि नारदादिभिः कथितानि द्रव्याणि तानि वक्ष्यन्ते प्रोक्तविधानानां त्रिकालोक्तविधानानाम् अनन्तरम् एकं विधानमाश्रित्य काम्यतर्पणकर्म भजेत् ॥ ७७ ॥

मैं काम्य कर्मों के विषय में नारदादि महर्षियों द्वारा कहे गये द्रव्यों को आगे कहूँगा। काम्य विधि के लिये त्रिकाल में तर्पण के लिये कही गई विधियों में से किसी एक विधि का आश्रय लेकर काम्य तर्पण करे ॥ ७७ ॥

द्रव्यैरित्यादि ।

द्रव्यैः षोडशभिरमुं प्रतर्पयेदेकशश्चतुर्वारम् ।
स चतुःक्षीराद्यन्तैः सकृज्जलाद्यन्तमच्युतं भक्त्या ॥ ७८ ॥

षोडशभिर्द्रव्यैरमुं श्रीकृष्णम् एकशश्चतुर्वारं तत्द्रव्यबुद्धया जलैरेव तर्पयेत् । कीदृशैः ? चत्वारि क्षीराणि आद्यं येषां तैः । षोडशद्रव्याणाम् आदौ दुग्धाञ्जलिचतुष्टयम् अन्ते च चतुष्टयमित्यर्थः । सकृज्जलाद्यन्तमिति क्रिया विशेषणम् । तथा च प्रथममेकवारं जलेन ततश्चतुर्वारं ततः चतुर्वारं क्षीरैः ततः सकृज्जलेन इति पर्यवसन्नम् ॥ ७८ ॥

वक्ष्यमाण षोडश द्रव्यों से वारी वारी एक एक द्रव्य से चार चार बार भक्तिपूर्वक परमात्मा श्री कृष्ण का तर्पण करना चाहिये ॥ ७८ ॥

विमर्श—अर्थात् प्रथम एक जलाञ्जलि जल से तर्पण करे, तदनन्तर चार बार दुग्ध से, पुनः चार बार दुग्ध से तर्पण करे। इस प्रकार प्रथम द्रव्य का तर्पण हुआ। तदनन्तर एक बार जल से तर्पण कर, पुनः चार बार दधिमिश्रित अन्न से तर्पण करे। इस प्रकार दूसरे द्रव्य से तर्पण हुआ। यही क्रम सर्वत्र १६ द्रव्यों के लिये समझना चाहिये ॥ ७८ ॥

षोडशद्रव्याण्याह—पायसमिति ।

पायसदाधिकक्कसरङ्गौडान्नपयोदधीनि नवनीतम् ।
आज्यं कदलीमोचारजस्वलाचोचमोदकापूपम् ॥ ७९ ॥

पृथुकं लाजोपेतं द्रव्याणां कथितमिह षोडशकम् ।
लाजान्तेऽन्त्यक्षीरात्प्राक्समर्प्य सितोपलापुञ्जैः ॥ ८० ॥

पायसं परमान्नं दाधिकं दध्ना परिष्कृतम् अन्नं कृसरं मुद्गौदनं गौडान्नं गुडोदकपक्वम् अन्नम्-पयोदुग्धम् दधि प्रसिद्धम् नवनीतम् आज्यम् घृतम् कदली चम्पाकदली मोचा स्वर्णकदली रजस्वला कदलीविशेषः चोचोऽपि कदलीविशेषः मोदको लड्डुकः अपूपम् पूलिका पृथुकं चिपिटकं लाजसमेतम् लाजसहितम इति द्रव्याणां षोडशकम् कथितम् इह ग्रन्थे लाजेति । लाज-तर्पणानन्तरम् अन्त्यचतुःक्षीरतर्पणात् पूर्वं सितोपलापुञ्जैः श्वेतशर्करासमूहैः भावनया तोयभावापन्नैः सकृत् संतर्पयेत् ॥ ७९ ॥ ८० ॥

१ पायस (परमान्न या खीर) २ दधि से परिष्कृत, अन्न मिला हुआ मूँग और चावल, ३ गुड के जल में पकाया हुआ चावल, ४ दूध ५ दही ६ नवनीत ७ (मक्खन) घी, ८ कदली, ९ मोचा (सुवर्णवर्णा कदली) १० रजस्वला (एक प्रकार की कदली) ११ चोच १२ (यह भी एक विशेष प्रकार की कदली) १३ लड्डु, १४ अपूप (पूआ) १५ चिउड़ा, और लावा १६ ये तर्पण के लिये षोडश द्रव्य कहे गये हैं । अन्त में लाजा से तर्पण करने के पश्चात् अन्त में क्षीरतर्पण पुनः करे । किन्तु उससे पहले सितोपल्लापुञ्ज (मिश्री समूह) की भावना करते हुये जल से श्रीकृष्ण का एक बार तर्पण करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥

उक्त काम्यतर्पणस्य फलमाह—प्रगे इति ।

प्रगे चतुःसप्ततिवारमित्यमुं
प्रतर्पयेद् योऽनुदिनं नरो हरिम् ।
अनन्यधीस्तस्य समस्तसम्पदः
करे स्थिता मण्डलतोऽभिवाञ्छिताः ॥ ८१ ॥

इत्यनेन प्रकारेण प्रगे प्रातःकाले चतुःसप्ततिवारम् अमुं हरिं कृष्णं यो नरः अनुदिनं प्रत्यहमनन्यधीः एकाग्रचित्तः सन् संतर्पयेत् तस्य पुंसः मण्डलतः एकोनपञ्चाशद्दिवसात् अर्वागिति त्रिपाठिनः अष्टचत्वारिंशद्दिव-साभ्यन्तर इति लघुदीपिकाकारः, पञ्चत्रिंशद्दिवसाभ्यन्तर इति रुद्रधरः, अभिवाञ्छिता आकाङ्क्षिताः सकलसिद्धिसमृद्धयः हस्तस्थिता भवन्ति अत्र सितोपलापुञ्जस्य गणना न कार्या ॥ ८१ ॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन प्रातः काल इस विधि से ७४ बार परमात्मा श्री कृष्ण का तर्पण करता है उसे मण्डल संख्यात्मक दिन (४९ दिन से) पहले आकाङ्क्षित सारी संपत्ति हस्तगत हो जाती है ॥ ८१ ॥

काम्यतर्पणान्तरमाह—धारोष्णेति ।

धारोष्णपक्वपयसीदधिनवनीते घृतं च दौग्धान्नम् ।
मत्स्यण्डीमध्वमृतं द्वादशशः तर्पयेन्नवभिरेभिः ॥ ८२ ॥

धारोष्णम्पयः तदानींतनमेव निष्पादितं दुग्धं तथापक्वम्पयः साधितं दुग्धं धारोष्णपक्वे च पयसीच अमू धारोष्णपक्वपयसी दधि प्रसिद्धं नवनीतं घृतं दौग्धान्नं पायस मत्स्यण्डीशर्कराविशेषः सशर्करं विनष्टदुग्धमिति-त्रिपाठिनः । मधुप्रसिद्धम् अमृतम् एतैर्नवभिर्द्रव्यैर्द्वादशवारं तर्पयेत् ॥ ८२ ॥

काम्य विधि में अन्य प्रकार का तर्पण धारोष्ण १ दूध, २ पकाया हुआ दूध, ३ दही नवनीत, ४ घृत, ५ दुग्ध में पकाया गया अन्न, ६ मिश्री ७ मधु और ८ अमृत, ९ जल । इन नवों द्रव्यों में प्रत्येक से बारह-बारह वार परमात्मा श्रीकृष्ण का तर्पण करे ॥ ८२ ॥

एतस्य फलमाह—तर्पणेति ।

तर्पणविधिरयमपरः पूर्वोदितसमफलोऽष्टशतसङ्ख्यः ।
कार्मणकर्मणि कीर्त्तौ जनसंवनने विशेषतो विहितः ॥ ८३ ॥

अयं तर्पणप्रकारः पूर्वोक्ततर्पणप्रकाराद्भिन्नः, कीदृशः ? पूर्वकथिततर्पणफलसमफलः । पुनः कीदृशः ? अष्टोत्तरशतप्रमाणकः ततो नवभिर्द्रव्यैर्द्वादश-कृत्वा तर्पणेनाष्टोत्तरसंख्या भवति । पुनः कीदृशः ? कार्मणकर्मणि वश्यकरण-कर्मणि तथा कीर्त्तौ सत्कथायां जनसंवनने लोकवशीकरणे लोकप्रियत्वेन वा विशेषेण विहितः ॥ ८३ ॥

यह तर्पण का प्रकार पूर्वोक्त कहे गये तर्पण के प्रकार से भिन्न है । किन्तु इसके तर्पण से पूर्वोक्त तर्पण का फल प्राप्त हो जाता है । इन नवों द्रव्यों से (प्रत्येक से बारह बारह बार तर्पण करने से) कुल १०८ बार तर्पण करना चाहिये । यह तर्पण काम्य कर्मों में विशेष कर कीर्त्ति प्राप्ति के लिये एवं वशीकरण के लिये विशेष रूप से विहित हैं ॥ ८३ ॥

तर्पणान्तरमाह—सखण्डेति ।

सखण्डधारोष्णधियामुकुन्दं
व्रजन् पुरग्राममपि प्रतर्प्य ।
लभेत भोज्यं सरसं सभृत्यै-
र्वासांसि धान्यानि धनानि मन्त्री ।। ८४ ।।

शर्करायुक्त सद्यो दुग्धबुद्धचा जलेन मुकुन्दं प्रतर्प्य नगरं तथा ग्रामं व्रजन् साधकः अनुगैः सह सरसं मधुरादिरससहितं भक्षणीयं तथा वस्त्राणि धान्यानि सुवर्णादीनि प्राप्नोति ।। ८४ ।।

मनुष्य नगर अथवा ग्राम में जाते समय जल में खांडयुक्त दूध की भावना कर उसी से श्रीकृष्ण का तर्पण करे तो उस साधक पुरुष को एवं उसके साथ में रहने वाले समस्त अनुचरो को मधुर भोजन वस्त्र और सुवर्णादि विविध द्रव्य अवश्य प्राप्त होते हैं ।। ८४ ।।

तर्पणस्याऽशेषफलदातृतां तर्पणोत्तरकृत्यं च दर्शयति—यावदित्यादि ।

यावत्संतर्पयेन्मन्त्रीतावत्सङ्ख्यं जपेन्मनुम् ।
तर्पणेनैव कार्याणि साधयेदखिलान्यपि ।। ८५ ।।

अखिलानि समस्तानि कार्याणि वाञ्छितानि तर्पणेनैव विनापि पूजाहोमं साधयेत् । अत्र यावत्संख्यं तर्पणं करोति तावत्संख्यं मन्त्रं जपेत् ।। ८५ ।।

इस प्रकार साधक तर्पण के द्वारा ही अपने समस्त अभिलषित कार्यों को सिद्ध करे । मन्त्र वेत्ता साधक जितनी बार तर्पण करे उतनी ही वार मन्त्रो का जप भी करे ।। ८५ ।।

प्रयोगान्तरमाह—द्विज इति ।

द्विजोभिक्षावृत्तिय इह दिनशो नन्दतनयः
स्वयं भूत्वा भिक्षामटति विहरन् गोपसुदृशाम् ।
अमा चेतोभिः स्वैर्ललितललितैर्नर्मविधिभि-
र्दधिक्षीराज्याढ्यां प्रचुरतरभिक्षां स लभते ।। ८६ ।।

भिक्षावृत्तिर्जीवनोपायो यस्य स द्विजो त्रैवर्णिको दिवसः प्रतिदिनं स्वयं नन्दतनयो भूत्वा तद्रूपेणात्मानं विचिन्त्य इह भिक्षामटति याचते किङ्कुर्वन् स्वकीयैर्ललितललितैः अतिमनोहरैः नर्मविधिभिः क्रीडाकर्मभिर्गोपसुदृशां गोपस्त्रीणां चेतोभिः सार्द्धं विहरन् अमाशब्दः सहार्थे सदधिदुग्धघृतप्रचुरां बहुभिक्षां प्राप्नोति ॥ ८६ ॥

भिक्षावृत्ति से जीने वाला ब्राह्मण प्रतिदिन स्वयम् अपनी आत्मा में श्रीकृष्ण की भावना (पूर्वोक्त आत्मयाग कर) कर इस लोक में भिक्षा के लिये प्रस्थान करे तो वह नर्म (कामकला) युक्त अपने मनोहर बचनों से गोपस्त्रियों के साथ विहार करते हुये दुग्ध, दही एवं घृत युक्त प्रचुर भिक्षा प्राप्त करता हैं ॥ ८६ ॥

यन्त्रमाह—मध्य इति ।

मध्ये कोणेषु षट्स्वप्यनलपुरपुटस्यालिखेत्कर्णिकायां
कन्दर्पं साध्ययुक्तं विवरगतषडर्णं द्विशः केशरेषु ।
शक्तिश्रीपूर्वकानिद्विनवलिपिमनोरक्षराणि च्छदानां
मध्ये वर्णान् दशानां दशलिपिमनुवर्यस्य चैकैकशोऽब्जम् ॥८७॥

दशदलपद्मं विलिख्य कर्णिकायां षट्कोणं वह्निगृहं विलिख्य वह्निगृहयुग्मस्य मध्ये षट्कोणेषु विलिखेत्, लेखनप्रकारमाह-कर्णिकायां मध्ये साध्यनामसहितम् अमुकस्यामुकं सिद्धयत्विवत्यनेन सहितं कन्दर्पं कामबीजं विलिखेत्, तथाविवरगतं षडर्णं षट्कोणगतवक्ष्यमाणषडक्षरं विलिखेत् तथा केशरेषु दशदलमूलेषु द्विशः द्वौ द्वौ कृत्वा द्विनवलिपिमनोरष्टादशाक्षरमन्त्रस्य शक्तिश्रीपूर्वकानि भुवनेश्वरीबीजश्रीबीजाद्यान्यक्षराणि विलिखेत् तथा दशानां पात्राणां मध्ये दशलिपिमनुवर्यस्य दशाक्षरमन्त्रश्रेष्ठस्य वर्णान् एकैकशो विलिखेत् ततोऽब्जं पद्मम् ॥ ८७ ॥

गोपाल मन्त्र लिखने की विधि—

सर्व प्रथम दशदल का पद्म बनावे। पुनः उसकी कर्णिका में षट्कोण निर्माण करे। कर्णिका के मध्य में साध्य नाम और उसका कार्य काम बीज मन्त्र के साथ लिखे। ('क्लीँ देवदत्तस्य पुत्रसिद्धिरस्तु' इत्यादि प्रयोग समझना चाहिये) पुनः षट्कोण में 'क्लीँ कृष्णाय नमः' यह षडक्षर मन्त्र लिखे। दशदल के मूलभाग में ॐ ह्रीं श्रींपूर्वकं अष्टादशाक्षर मन्त्र के दो-दो अक्षरों को लिखे। यदि दशाक्षर मन्त्र लिखना हो तो एक एक पत्र में एक मन्त्र का अक्षर लिखे ॥ ८७ ॥

भूसद्मनाऽभिवृतमस्रगमन्मथेन
गोरोचनाऽभिलिखितं तपनीयसूच्या ।
पट्टे हिरण्यरचिते गुलिकीकृतं तद्-
गोपालयन्त्रमाखिलार्थदमेतदुक्तम् ॥ ८८ ॥

(गोपालयन्त्रमुक्तं किंभूतम् ?) भूबिम्बेन चतुरस्रेण वेष्टितं कुर्यात् कीदृशेन ? भूसद्मना अस्रगमन्मथेन कोणगतकामबीजेन एतदखिलार्थदं गोपालयन्त्रमुक्तं कीदृशम् ? सुवर्णशलाकया गोरोचनादिना सुवर्णरचिते पट्टे लिखितम् अनन्तरं वर्तुलीकृतम् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार लिखे गये गोपाल यन्त्र को चौकोर चतुष्कोण से युक्त कर उसके चारो कोनों में काम बीज (क्लीं) लिखे । यह गोपाल यन्त्र सुवर्ण की शलाका से गोरोचन द्वारा सोने के पत्ते पर लिखे फिर उस मन्त्र की गुलिका बनावे । इस प्रकार बनाया गया यह गोपाल यन्त्र संपूर्ण कामनाओं को सिद्ध करता है ॥ ८८ ॥

संपातसिक्तमभिजप्तमिदं महद्भि-
र्धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम् ।
रक्षायशःसुतमहीधनधान्यलक्ष्मी
सौभाग्यलिप्सुभिरजस्रमनर्घ्यवीर्यम् ॥ ८९ ॥

इदं यन्त्रं संपातसिक्तम् आहुतिदानशेषपुरःस्थितघृतसिक्तं तथा मन्त्रेणाभिमन्त्रितं रक्षाभयनिवारणं यशः सत्कथाप्रकाशः सुतः पुत्रः महीपृथिवी धनं सुवर्णादि लक्ष्मीः सर्वसंपत्तिः सौभाग्यं सर्वजनप्रियत्वम् एतत्प्राप्तुमिच्छद्भिर्महद्भिः शौचयुक्तैः सततं धारणीयम् । अयमर्थः—यथोक्तं यन्त्रं सम्पाद्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा पञ्चामृतादिभिः अभिषिच्य अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा संपातघृतसिक्तं कृत्वा यथोक्तसंख्यं जप्त्वा धारयेदिति कीदृशम् ? जगत्त्रयायत्तीकरणकुशलम् । पुनः अनर्घ्यवीर्य्यं महाप्रभावम् ॥ ८९ ॥

इस गोपालयन्त्र को आहुति देने के पश्चात् शेष घृत से सिक्त करे तथा पुनः अभिमन्त्रित करे । इस प्रकार बनाये गये गोपाल यन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा करे । पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत को छींटा देकर इसे अभिषिक्त करे । पुनः १०८ वार अथवा १००८ वार मूलमन्त्र का जप करे । तब सारे जगत् को वश में करने वाला यह

अप्रमेय यन्त्र शक्ति से संपन्न हो जाता है। यह यन्त्र महाभय को दूर करता है; इसलिये यशः, पुत्र, पृथ्वी, धन-धान्य, लक्ष्मी और सौभाग्य चाहने वाले महान् पुरुषों को इस अनर्घ्य मन्त्र को धारण करना चाहिये ॥ ८९ ॥

यन्त्रस्य दर्शयति धारणादन्यत्राप्युपयोगम् — भूतोन्मादेति।

भूतोन्मादापस्मृतिविषमूर्छाविभ्रमज्वरार्त्तानाम्।
ध्यायन् शिरसि प्रजपेन्मन्त्रमिमं झटितिशमयितुं विकृतिम् ॥९०॥

भूतः श्मशानदेशवर्त्ती अदृश्यरूपोऽनिष्टकारीउन्मादश्चित्तविभ्रमः अपस्मृतिरपस्मारणयोगः विषं मूर्छाकारिस्थावरं जङ्गमञ्च मूर्छा अचेष्टा विभ्रमः प्रमादः ज्वरो रोगविशेषः एतैरार्त्तानां पीडितानां शिरसि मस्तकोपरि इदं यन्त्ररूपं ध्यायन् इमङ्गोपालमन्त्रं जपेत् किङ्कर्तुम्? विकृतिं झटिति शीघ्रं शमयितुं नाशयितुम् ॥ ९० ॥

भूत (श्मशान में रहने वाला अदृश्य, एवं अनिष्टकारी देव विशेष) उन्माद (चित्त का विभ्रम), अपस्मार (मृगी), विष, मूर्च्छा, प्रमाद, एवं ज्वर रोग से ग्रस्त रोगियों के शिर पर इस मन्त्र को रखकर अथवा उसका ध्यान कर गोपाल मन्त्र का जप करे तो समस्त विकृतियाँ शीघ्रातिशीघ्र शान्त हो जाती हैं ॥ ९० ॥

यन्त्रे षडक्षरमन्त्रमुद्धरति—स्मरेति।

स्मरत्रिविक्रमाक्रान्तश्चक्रीष्णायहृदित्यसौ।
षडक्षरोऽयं संप्रोक्तः सर्वसिद्धिकरो मनुः ॥ ९१ ॥

स्मरः कामबीजं त्रिविक्रमः ऋकारः तेन क्रान्तः संबद्धः चक्री ककारः तथाकृ इति ष्णायेति स्वरूपं हृन्नमः इत्यनेन प्रकारेणासौ षडक्षरोऽयं मन्त्रः सम्प्रोक्तः सर्वसिद्धिकरः अखिलकामदः ॥ ९१ ॥

स्मर (काम बीज क्लीम्) पुनः त्रिविक्रम (ऋकार) से युक्त चक्री (ककार) उसके आगे ष्णाय और पुनः नमः लगावे तो यह षडक्षर मन्त्र हो जाता है। सभी सिद्धियों को देने वाला 'क्लीँ कृष्णाय नमः' यही उस षडक्षर मन्त्र का संप्रोक्त स्वरूप हुआ ॥ ९१ ॥

शक्तिबीजमुद्धरति—क्रोड इति।

क्रोडोऽग्निदीप्तो मायावीलवलाञ्छितमस्तकः।
सैषा शक्तिः परासूक्ष्मा नित्या संवित्स्वरूपिणी ॥ ९२ ॥

क्रोडो हकारः। कीदृशः? अग्निना रेफेण दीप्तः। पुनः मायावी दीर्घ-ईकारः तद्युक्तः। पुनः लवेन बिन्दुना लाञ्छितं मस्तकं यस्य स तथा सानुस्वार इत्यर्थः। एषा शक्तिः परा उत्कृष्टा सूक्ष्मा मृणालतन्तुसदृशी नित्या जन्मनाशरहिता संवित्स्वरूपिणी स्वप्रकाशरूपिणी ॥ ९२ ॥

शक्ति बीज का उद्धार—

क्रोड (हकार), उसे अग्नि (रकार) से युक्त करे। फिर मस्तक पर बिन्दु (अनुस्वार) की मात्रा लगायें, इस प्रकार की (ह्रीम्) यह शक्ति, उत्कृष्टा, सूक्ष्मा, नित्या एवं स्वप्रकाशरूपिणी है ॥ ९२ ॥

श्रीबीजमुद्धरति—अस्थीति।

अस्थ्यग्निगोविन्दलवैर्लक्ष्मीबीजं समीरितम्।
आभ्यामष्टादशलिपिः स्याद्विंशत्यक्षरो मनुः ॥ ९३ ॥

अस्थिशकारः अग्निः रेफः गोविन्दो दीर्घ ईकारः लवो बिन्दुः एतैः संयुक्तैः श्रीबीजं समीरितं कथितम्। आभ्यां शक्तिश्रीबीजाभ्यां सहितः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः विंशत्यक्षरो भवति ॥ ९३ ॥

श्री बीज का उद्धार—

अस्थि (शकार) उसे अग्नि (रेफ) और गोविन्द (दीर्घ ईकार) से युक्त करे। पुनः उसके शिर पर अनुस्वार की मात्रा लगावें तो इस प्रकार (श्रीं) श्री का बीज निष्पन्न होता है। इन शक्ति (ह्रीं) और श्रीं (श्रीम्) के बीजों को अष्टादशाक्षर मन्त्र के आदि में लगावे तो वह २० अक्षर का हो जाता है ॥ ९३ ॥

परमेश्वर—पूजास्थाननियतिं दर्शयति—शालग्राम इत्यादिना।

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च।
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवल भूतले ॥ ९४ ॥

शालग्रामे प्रसिद्धे मणौ गोमेदपद्मरागादौ यन्त्रेऽस्मिन्नेव गोपालयन्त्रे मण्डले सर्वतोभद्रादौ सोमसूर्याग्निमण्डले वेति रुद्रधरः, प्रतिमासु सुवर्णादि-गोपालप्रतिमायाम्। अत्र हरेर्नित्यं सर्वदा पूजा कार्या न तु केवलायां भूमौ ॥ ९४ ॥

शालग्राम में, मणि में, गोपालादि यन्त्र में, सर्वतोभद्रादि मण्डल में; सुवर्णादि निर्मित गोपाल जी की प्रतिमा में सर्वदा विष्णु की पूजा करनी चाहिये, केवल भूमि में ही नहीं ॥ ९४ ॥

कथितप्रकाराणां फलं दर्शयति—इतीति ।

इति जपहुतपूजातर्पणाद्यैर्मुकुन्दं
य इह भजति मन्वोरेकमाश्रित्यनित्यम् ।
स तु सुचिरमयत्नात्प्राप्यभोगान् विशेषान्
पुनरमलतरन्तद्धामविष्णोः प्रयाति ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीकेशवभट्टाचार्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

—-०—-

इति कथितप्रकारैर्जपहोमपूजातर्पणैः आदिपदादभिषेकादिना यो मुकुन्दं नित्यं सेवते । किं कृत्वा ? मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं गृहीत्वा इहलोके अयत्नात्सुचिरं सर्वकालं सर्वान्भोगान्प्राप्य पुनरन्ते प्रसिद्धं निर्मलं तेजः प्राप्नोति तद्धामाभवतीत्यर्थः ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायाः
विवरणे पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

—-०—-

इस ग्रन्थ में कहे गये जप होम तर्पण एवं अभिषेकादि प्रकारों से जो परमात्मा श्री कृष्ण की दशाक्षर मन्त्रों द्वारा अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्रों द्वारा सेवा करता है वह बिना यत्न के सर्वकाल में सभी भोगों को प्राप्त कर पुनः मरणोपरान्त सर्वोत्तम विष्णु तेज को प्राप्त कर लेता है ॥ ९५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीकेशवाचार्य विरचित क्रमदीपिका की
डा० सुधाकर मालवीयकृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्य का
पञ्चम पटल समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

—-०—-

षष्ठपटलम

अथैवं साधितमन्त्रयोः प्रयोगादीन् दर्शयति—विनियोगानिति ।

विनियोगानथो वक्ष्ये मन्त्रयोरुभयोः समान् ।
तदर्थकारिणोऽनन्तवीर्यान्मन्त्रांश्च कांश्चन ॥ १ ॥

अथो अनन्तरं मन्त्रयोर्दशाष्टादशाक्षरयोः समान् ध्यानविशेषेण विनियोगान् तथा तदर्थकारिणोऽनन्तवीर्यान् बहुफलदातॄन् कांश्चिन्मन्त्रान् वक्ष्ये ॥ १ ॥

अब दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर इन दोनों मन्त्रों के समानरूप से ध्यान विशेषपूर्वक विनियोग एवं उन दोनों के अर्थ तथा प्रचुर फलों का संपादन करने वाले कुछ अन्य मन्त्रों को भी कहता हूँ ॥ १ ॥

प्रयोगार्थं दशाष्टादशाक्षरयोर्ध्यानमाह—वन्द इति ।

वन्दे तं देवकीपुत्रं सद्योजातं द्युसप्रभम् ।
पीताम्बरं करलसच्छङ्खचक्रगदाम्बुजम् ॥ २ ॥

उक्तरूपं प्रसिद्धं देवकीपुत्रं सद्योजातं बालकं द्युसप्रभम् आकाशसमानः कान्ति श्यामं पीतवस्त्रं करे लसन्ति शोभमानानि शङ्खचक्रगदापद्मानि यस्य तं वन्दे नमस्करोमि ॥ २ ॥

मैं आकाश के समान नीलवर्ण वाले बालस्वरूप पिताम्बरधारी देवकी पुत्र श्री कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जिनके हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और कमल शोभित हो रहे हैं ॥ २ ॥

विमर्श—यहाँ प्रयोग करने के लिये दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर इन दोनों मन्त्रों का ध्यान कहा गया है ॥ २ ॥

एवमिति ।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं मन्त्रं ब्राह्मे मुहूर्तके ।
स्वादुप्लुतैश्च कुसुमैः पलाशैरयुतं हुनेत् ॥ ३ ॥

एवममुना प्रकारेण ब्राह्मे मूहूर्त्तके उदयात्प्राक् दण्डद्वये दण्डचतुष्टय इति कश्चित् मन्त्रम् उभयोरेकं लक्ष जपेत् । अनन्तरं पलाशपुष्पैः स्वादुप्लुतै· र्घृतमधुशर्करासहितैर्दशसहस्रं जुहुयात् ॥ ३ ॥

ब्राह्ममुहूर्त्त (सूर्योदय से दो दण्ड पहले) में उठकर उपर्युक्त रूप वाले श्रीकृष्ण का ध्यान कर एक लाख दशाक्षर मन्त्र का, अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र का जप करे । इसके अनन्तर घृत, मधु एवं शर्करासहित पलाश पुष्पों की दश हजार आहुति देवे ॥ ३ ॥

फलमाह—मन्वोरिति ।

मन्वोरन्यतरेणैवं कुर्याद्यः सुसमाहितः ।
स्मृतिं मेधां मतिबलं लब्ध्वा स कविराड् भवेत् ।
स्यान् मनुस्तत्समजपध्यानहोमफलोऽपरः ॥ ४ ॥

मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरन्यतरेण एकेन सुसमाहितः सुसंयतः सन् य एवं कुर्यात् स स्मृतिं स्मरणं मेधां धारणावतीं बुद्धिं मतिं सम्यक् ज्ञानं बलं महाप्राणत्वम् एतत्सर्वं प्राप्य कविराट् कविश्रेष्ठो भवति स्यादिति अपरोऽग्रे वक्ष्यमाणमन्त्रः कथितमन्त्रद्वयसमानजपध्यानहोमफलो भवति ॥ ४ ॥

अष्टादशाक्षर अथवा दशाक्षर इन दो मन्त्रों में से किसी एक के द्वारा जो एकाग्र मन से पूजन करता है वह स्मरणशक्ति धारणाशक्ति, और स्थिर ज्ञान तथा महाप्राण प्राप्त कर श्रेष्ठ कवि हो जाता है, आगे कहे, जाने वाले मन्त्र का जप होम और ध्यान करने से ऊपर कहे गये उन दोनों मन्त्रों के समान ही फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

मन्त्रमाह—श्रीमन्मुकुन्देति ।

श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदेति शरणं ततः ।
अहं प्रपद्य इत्युक्तो मौकुन्दोऽष्टादशाक्षरः ॥ ५ ॥

श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदेति स्वरूपं ततस्तदनन्तरं शरणमिति स्वरूपम् अहं प्रपद्य इति स्वरूपमित्यनेन प्रकारेण मौकुन्दो मुकुन्दसम्बन्धी अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कथितः ॥ ५ ॥

'श्रीमन्मुकुन्दचरणौ सदा शरणमहं प्रपद्ये' यह अष्टादशाक्षर मुकुन्द का मन्त्र कहा गया है। (जप, ध्यान एवं होम से अष्टादशाक्षर एवं दशाक्षर के समान ही फल देता है) ॥ ५ ॥

ऋष्यादिकमाह—नारद इति।

नारदोऽस्य तु गायत्री मुकुन्दश्चर्षिपूर्वकाः।
प्रातः प्रातः पिबेत्तोयं जप्तं योऽष्टोत्तरं शतम् ॥
अनेन षड्भिर्मासैः स भवेच्छ्रुतधरो नरः ॥ ६ ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदो मुनिर्गायत्रीछन्दो मुकुन्दो देवता ऋषिपूर्वकाः ऋष्याद्याः ऋषिच्छन्दो देवता इत्यर्थः। ते च नारदादयः।

प्रयोगमाह—प्रातः प्रत्यहम् अष्टोत्तरं शतं जप्तं मन्त्रजप्तं जलं पिबेत्। स नरो अनेन विधानेन षड्भिर्मासैः श्रुतधरो भवेत् ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का प्रथम प्रयोग—

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, और मुकुन्द देवता हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल एक सौ आठ बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने वाला व्यक्ति ६ महीने में श्रुतधर हो जाता है ॥ ६ ॥

प्रयोगान्तरमाह—

उपसंहृतदिव्याङ्गं पुरोवन्मातुरङ्कगम्।
चलद्दोश्चरणं बालं नीलाभं संस्मरन् जपेत् ॥ ७ ॥

उपसंहृतदिव्याङ्गं त्यक्तचतुर्बाहुरूपं धृतबाहुद्वयं पुरोवत् यथावसुदेवसद्मनि भीतेम दिव्याङ्गमुपसंहृतं मातुरङ्कगं देवकीक्रोडे स्थितं चलद्दोश्चरणं चञ्चलहस्तपादं बालं शिशुं नीलाभं कृष्णं संस्मरन् ॥ ७ ॥

अब इसी मन्त्र का दूसरा प्रयोग कहते हैं—

वसुदेव के घर में चार भुजा वाले अपने दिव्य रूप को त्याग कर कंस के भय से द्विबाहु रूप धारण करने वाले एवं माता की गोद में रहकर हाथ पैर चलाते हुये नील वर्ण वाले बालक श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये इस मुकुन्द मन्त्र का दस हजार जप करे ॥ ७ ॥

अयुतं तावदेवाज्यैर्जुहुयाच्च हुताशने।
सलंभेदचलां भक्तिं श्रद्धां शान्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८ ॥

अयुतं जपेत् तावदेवाग्नावाज्यैर्घृतैर्जुहुयात् यः स स्थिरां परमेश्वर-विषयिणीमाराध्यत्वबुद्धिं शुद्धां शास्त्रबोधितेऽर्थेऽवश्यम्भाविनिश्चयाऽऽत्मिकां शान्तिं मोक्षरूपां शाश्वतीं नित्यां प्राप्नोति दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिदं प्रयोगार्थमिति भैरवत्रिपाठिनः ॥ ८ ॥

पुनः उतने ही मन्त्रों से अग्नि में घृत की आहुति देने वाला मनुष्य परमेश्वर में दृढ भक्ति, श्रद्धा एवं शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

मन्त्रान्तरमाह—मनुनैतदिति ।

मनुनैतत्समस्तान्ते मरुन्नमितशब्दतः ।
बाललीलात्मने हुं फट् नम इत्यमुनाऽथवा ॥ ९ ॥

अथवा अमुना वक्ष्यमाणमन्त्रेणैतत्प्रयोगजातं साधयेत् । मन्त्रमाह—समस्तेति । स्वरूपम् अस्याऽन्ते मरुन्नमित इति स्वरूपम् । एतस्माच्छब्दात् बाललीलात्मने हुंफडिति स्वरूपं नम इति स्वरूपम् । अयमप्यष्टादशाक्षरः दशाष्टादशाक्षरसमानः ॥ ९ ॥

अब अन्य मन्त्र कहते है—

'समस्त मरुन्नमितः बाललीलात्मने हुं फट् नमः' भी अष्टादशाक्षर मन्त्र है, इससे भी दशाक्षर एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र के समान समस्त प्रयोग सिद्ध किये जा सकते हैं ॥ ९ ॥

ऋष्यादीनाह—नलेति ।

नलकूबरगायत्रीबालकृष्णा इतीरिताः ।
ऋष्याद्याः सिद्धयः सर्वाः स्युर्जपाद्यैरिहामुना ॥ १० ॥

अस्य मन्त्रस्य ऋष्याद्याः ऋषिः छन्दो देवता नलकूबरप्रभृतयः । तत्र नलकूबरो मुनिर्गायत्री छन्दः बालकृष्णो देवता इति । इह भुवने जपाद्यैः सर्वाः सिद्धयो भवन्ति ॥ १० ॥

इस मन्त्र के नलकूबर ऋषि हैं । गायत्री छन्द है । बालकृष्ण देवता हैं । इसके जप से इस संसार में सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ १० ॥

लम्बितमिति ।

लम्बितं बालशयने रुदन्तं पल्लवीजनैः ।
प्रेक्ष्यमाणं दुग्धबुद्ध्या तर्पयेत्सोऽस्नुतेऽशनम् ॥ ११ ॥

बालशयने आन्दोलिकायां लम्बितं स्थितं रुदन्तं क्रन्दमानं वल्लवीजनगोंपीभिः प्रेक्ष्यमाणं दृश्यमानं प्रेर्यमाणमिति पाठे चाल्यमानमित्यर्थः। दुग्धबुद्ध्या जलेन तर्पयेत्। अशनं भक्ष्यवस्तु अश्नुते प्राप्नोति ॥ ११ ॥

पलने में शयन करते हुये जो रो रहे हैं, एवं जिनकी ओर गोपियाँ देख रही हैं ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये जल में दुग्ध की भावना करते हुये तर्पण करने वाला मनुष्य सभी प्रकार की भोज्य वस्तुयें प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

मन्त्रान्तरमाह—

अमुना वाऽन्नरूपान्ते रसरूपपदं वदेत्।
तुष्टरूप नमो द्वन्द्वमन्नाधिपतये मम।
अन्नं प्रयच्छ स्वाहेति त्रिंशदर्णोऽन्नदो मनुः ॥ १२ ॥

अमुना मन्त्रेण पूर्वोक्तं कुर्यात्।

मन्त्रमाह—अन्नरूप इति शब्दान्ते रसरूप इति स्वरूपं तुष्टरूपेति स्वरूपं नमो द्वन्द्वमिति नमो नम स्वरूपम् अन्नाधिपतये ममान्नं प्रयच्छ स्वाहेति त्रिंशदक्षरो अन्नदमन्त्रः दशाष्टादशाक्षरसमानः ॥ १२ ॥

अब अन्य मन्त्र कहते हैं—

'अन्नरूप रसरूप तुष्टरूप नमो नमः अन्नाधिपतये ममान्नं प्रयच्छ स्वाहा' यह तीस अक्षर का मन्त्र है, इस मन्त्र से भी पूर्वोक्त क्रिया करे। यह भी अष्टादशाक्षर एवं दशाक्षर मन्त्र के समान ही है ॥ १२ ॥

ऋष्यादीनाह—नारदेति।

नारदानुष्टुबन्नाधिपतयोऽस्यर्षिपूर्वकाः।
भूतबालग्रहोन्मादस्मृतिभ्रंशाद्युपद्रवैः।
पूतनास्तनपातारं ग्रस्तमूर्द्ध्नि स्मरन् जपेत् ॥ १३ ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदो मुनिः; अनुष्टुप्छन्दः, अन्नाधिपतिर्देवता। प्रयोगमाह—भूतेति। भूतपिशाचादिर्बालग्रहो रोगविशेषः। उन्मादश्चित्तभ्रमः स्मृतिभ्रंशः सम्मोहः एतैरुपद्रवैरुपतापैः ग्रस्तमूर्द्ध्नि उपतप्तमस्तके पूतनास्तनपायिनं कृष्णं स्मरन् मन्त्रं जपेत् ॥ १३ ॥

सासुचूषणनिर्भिन्नसर्वाङ्गीं रुदतीं च ताम् ।
आविश्य सर्वे मुक्त्वा तं विद्रवन्ति द्रुतं ग्रहाः ॥ १४ ॥

तां पूतनां रुदतीं क्रन्दमानां भावयेत्—

पुनः कीदृशीम् ? सासुचूषणं सह प्राणेन यत् चूषणं समाकर्षणं तेन निर्भिन्नमनायतं सर्वाङ्गं यस्याः सा, तथा तां किं भूत्वा जपेत् ? आविश्य अहमेव हरिरिति भावयित्वा, अनन्तरं तं ग्रस्तं सर्वे ग्रहा उपद्रवा मुक्त्वा परित्यज्य द्रुतं शीघ्रं विद्रवन्ति पलायन्ते, अत्र दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिदं प्रयोगार्थमिति त्रिपाठिनः ॥ १४ ॥

इस त्रिंशदक्षरात्मक महामन्त्र के नारद ऋषि हैं। इसका छन्द अनुष्टुप् है और अन्नाधिपति देवता हैं (अब इसके प्रयोग की विधि कहते हैं—) भूत, बालग्रह, उन्माद एवं मूर्छा आदि उपद्रवों से ग्रस्त प्राणी के शिर पर (हाथ रखकर) नीचे लिखे हुये श्रीकृष्ण के रूप को अपने में आविष्ट कर 'मैं स्वयं श्रीकृष्ण हूँ' इस प्रकार की भावना से इस त्रिंशदक्षरात्मक मन्त्र का जप करे तो उसके समस्त उपद्रव शीघ्रातिशीघ्र दूर भाग जाते हैं। (अपने में आविष्ट किये जाने वाले श्रीकृष्ण का स्वरूप इस प्रकार है) जो श्रीकृष्ण पूतना का स्तन पान कर रहे हैं दुग्ध पान के साथ साथ उसके प्राणों का भी अपहरण करने के कारण उसके प्राणों के आश्रयभूत समस्त मर्मस्थान भी फट रहे हैं इस प्रकार के पूतना के स्तन का पान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को अपने में आविष्ट कर जप करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

प्रयोगान्तरमाह—जुहुयादिति ।

जुहुयात् खरमञ्जर्या मञ्जरीभिर्विभावसौ ।
सुस्नातः पञ्चगव्याद्भिः पूतनाहन्तुराननेः ॥ १५ ॥

खरमञ्जर्या अपामार्गस्य मञ्जरीभिरग्रभागैः पञ्चगव्यजलैः सिक्तैः विभावसौ वह्नौ पूतनाहन्तुः कृष्णस्याननरूपे जुहुयात् ॥ १५ ॥

प्राशयेच्छिष्टगव्यं तत् कलशेनाऽभिषेचयेत् ।
साध्यं सहस्रजप्तेन सर्वोपद्रवशान्तये ॥ १६ ॥

होमावशिष्टं पञ्चगव्यसाध्यं प्राशयेत् सहस्रजप्तेन पूर्वोक्तविधिना साधितेन कलशेन वाऽभिषेचयेत् सर्वोपद्रवनिवृत्त्यर्थम् ॥ १६ ॥

अब इस मन्त्र का अन्य प्रयोग कहते हैं—

[आचार्य] अच्छी प्रकार स्नान कर अपामार्ग की मञ्जरियों (अग्रभागों) को पञ्चगव्य के जल से सिक्त कर उसी से त्रिंशदक्षरात्मक मन्त्रों को पढ़ते हुये (१००० बार) श्रीकृष्ण के मुख स्वरूप अग्नि में हवन करे। तदनन्तर होमावशिष्ट पञ्चगव्य रोगी को पिला दे। अथवा एक हजार बार जप कर कलश के जल से रोगी का अभिषेक करे तो उसका सारा उपद्रव शान्त हो जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

मन्त्रान्तरमाह—अमुनैतदिति।

अमुनैतद्द्वादशार्णं हुंफट्स्वाहान्तकेन वा।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्रीग्रहघ्नहरयोऽस्य तु ॥ १७ ॥

एतत्पूर्वोक्तप्रयोगद्वयं वक्ष्यमाणमन्त्रेण वा कुर्यात्। मन्त्रमाह द्वादशेति—पूर्वोक्तवासुदेवद्वादशाक्षरान्ते हुंफट्स्वाहेति षोडशाक्षरो मन्त्रः दशाष्टादशाक्षरसमानः ऋष्यादिकमाह—ऋष्याद्या इति। ऋषिप्रभृतयो ब्रह्मादयः। तत्र ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीछन्दः ग्रहघ्नरूपो हरिर्देवता ॥ १७ ॥

अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र के आगे 'हुं फट् स्वाहा' लगाकर उसे षोडशाक्षर बनाकर पूर्वोक्त विधि से किये गये होम से शिष्ट पञ्चगव्य का प्राशन करावे अथवा इसका १००० वार जप कर कलश के जल से यजमान को अभिषिक्त करे तो उसका सारा उपद्रव शान्त हो जाता है ॥ १७ ।

निजेति।

निजपादाम्बुजाक्षिप्तशकटं चिन्तयन् जपेत्।
अयुतं मन्त्रयोरेकं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १८ ॥

निजचरणकमलनिक्षिप्तशकटं हरिं चिन्तयेत्। मन्त्रयोः पूर्वमन्त्रापरमन्त्रयोरेकमयुतं जपेत्। किमर्थम्? सकलविघ्नोपशमनार्थं दशाष्टादशाक्षरयोरेव सर्वविघ्नशान्त्यर्थं विशेषध्यानमिति त्रिपाठिनः ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण विघ्नों के शमन के लिये अपने पैर से शकट को दूर फेंक देने वाले परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान कर अष्टादशाक्षर अथवा दशाक्षर मन्त्रों में किसी एक का दस हजार जप करे तो समस्त विघ्नों की शान्ति हो जाती है ॥ १८ ॥

अधुना पूर्वोक्त श्रीमन्मुकुन्देत्यादि चतुर्णां मन्त्राणामङ्गावरणानि दर्शयति—अङ्गानीति।

अङ्गान्यमीषां मन्त्राणामाचक्रादिभिरर्चना ।
अङ्गैरिन्द्रादिवज्राद्यैरुदिता सम्पदे सदा ॥ १९ ॥

अमीषां कथितमन्त्राणाम् आचक्रादिभिर्दशाक्षरकथितैरङ्गानि कार्याणि अर्चना पूजास्तु अङ्गैस्तथेन्द्राद्यैस्तदायुधैश्चेति सम्पत्त्यर्थं सदा कथिता ॥ १९ ॥

इन सभी मन्त्रों के दशाक्षर मन्त्र में कही गयी विधि के अनुसार 'चक्र' से लेकर इन्द्रादि उनके आयुध पर्यन्त आवरणों की पूजा संपत्ति प्राप्ति के उद्देश्य से करनी चाहिये ॥ १९ ॥

विमर्श—यहाँ पूर्वोक्त 'श्रीमन्मुकुन्दचरणौ' इत्यादि अष्टादशाक्षर, समस्त मरुन्नमित आदि अष्टादशाक्षर, अन्नरूपादि त्रिंशदक्षर, 'नमो भगवते' इत्यादि षोडशाक्षर इन चारों मन्त्रों के अङ्गावरणों को प्रदर्शित किया गया है ॥ १९ ॥

मृत्युञ्जयविधिं दर्शयति—बाल इति ।

बालो नीलतनुर्दोर्भ्यां दध्युत्थं पायसं दधत् ।
हरिर्वोऽव्याद् द्वीपिनखकिङ्किणीजालमण्डितः ॥ २० ॥

दशाष्टादशाक्षरयोर्वाऽऽरोग्यार्थं विशेषध्यानमाह-बाल इत्यादिनेति त्रिपाठिनः ।

हरिर्वो युष्मान् रक्षतु । कीदृशः बालः ? पञ्चवर्षीयः, पुनः कीदृशः ? नीलतनुः, पुनः कीदृशः ? हस्ताभ्यां दध्युत्थं नवनीतं पायसं परमान्नञ्च धारयन् । पुनः कीदृशः ? व्याघ्रनखक्षुद्रघण्टिकासमूहाभ्यामलंकृतः ॥ २० ॥

ध्यात्वैवमग्नौ जुहुयात् शतवीर्याङ्कुरत्रिकैः ।
पयःसर्पिःप्लुतैर्लक्षमेकं तावज्जपेन्मनुम् ॥ २१ ॥

एवंभूतं हरिं ध्यात्वा वह्नौ शतवीर्याङ्कुरैः दुर्वाङ्कुरैस्त्रिभिः । कीदृशैः ? पयो दुग्धं सर्पिर्घृतं ताभ्यां प्लुतैः सिक्तैः एकं लक्षं जुहुयात् लक्षमेकं जपेत् ॥ २१ ॥

अब मृत्यु को दूर करने की विधि प्रदर्शित करते हैं—

'नील शरीर धारण किये हुये अपने हाथों में दही से सद्यः निकाले गये नवनीत एवं दूध में परिपक्व सिता एवं मधु आज्यादियुक्त पायस लिये हुये व्याघ्र नख

क्षुद्रघण्टिका समूहों के आभरणों से भूषित परमात्मा श्रीकृष्ण आप की रक्षा करें।' इस प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये दूध एवं घृत में परिप्लुत दूर्वाङ्कुरों से अग्नि में एक लाख आहुति प्रदान करे, और उतनी ही संख्या में उस मन्त्र का जप भी करे ॥ २० ॥ २१ ॥

गुरवे दक्षिणां दत्वा भोजयेद् द्विजपुङ्गवान् ।
स ह्यब्दानां शतं जीवेन्न रोगो नाऽत्र संशयः ॥ २२ ॥

अनन्तरं गुरवे दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेच्च स वर्षाणां शतं रोग-रहितः सन् जीवेत्—अत्र संशयो नास्ति ॥ २२ ॥

तदनन्तर गुरु को दक्षिणा देवे और उत्तम ब्राह्मणों को भोजन करावे। ऐसा करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक स्वस्थ रह कर जीवित रहता है। उसके पास कभी भी रोग नहीं फटकते ॥ २२ ॥

मन्त्रान्तरमाह—अत्रेति ।

अत्राऽपरो मनुर्द्वादशार्णान्ते पुरुषोत्तम ।
आयुर्मे देहि सम्भाष्य विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २३ ॥
नमोन्तो द्व्यधिकत्रिंशदर्णोऽस्यार्षिस्तु नारदः ।
छन्दोऽनुष्टुप्देवता च श्रीकृष्णोऽङ्गान्यतो ब्रुवे ॥ २४॥

एतादृशे कार्येऽपरो मन्त्रोऽस्ति । मन्त्रमाह—

द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रान्ते पुरुषोत्तम इति स्वरूपम् आयुर्मे देहीतिस्वरूपं विष्णवे प्रभविष्णवे इति स्वरूपं, नम इत्यन्तो द्व्यधिकत्रिंशदर्णो द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रः कथितः तु। पुनः अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दो देवता श्रीकृष्णः इति अतोऽनन्तरम् अङ्गानि ब्रुवे वदामि ॥ २३ ॥ २४ ॥

मृत्यु को दूर करने के लिये अन्य मन्त्र कहते हैं—

'ॐ' नमो भगवते वासुदेवाय पुरुषोत्तम आयुर्मे देहि विष्णवे प्रभविष्णवे नमः' इस ३२ अक्षर के मन्त्र के नारद ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है और श्रीकृष्ण देवता हैं। इसके बाद (मन्त्र के) अङ्गों को कहता हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥

रवीति ।

रविभूतेन्द्रियवसुनेत्रार्णैश्चात्मने युतैः ।
महानन्दपदज्योतिर्मायाविद्यापदैः क्रमात् ॥ २५ ॥

द्वादशपञ्चपञ्चाष्टद्विसंख्यातैर्मन्त्राक्षरैरात्मनेपदान्तैर्महानन्दादिपदैः सह क्रमेण पञ्चाङ्गानि, सहानन्देत्यपि क्वचित्पाठः ॥ २५ ॥

उपर्युक्त द्वादश, पाँच, पाँच, आठ और दो कुल मिलाकर ३२ अक्षरों में कहे गये मन्त्र के १ महानन्द, २ ज्योति, ३ माया, ४ विद्या और ५ आत्मा ये पाँच अङ्ग हैं (अतः इस मन्त्र के जप के पूर्व इन अङ्गों का भी पूजन करे) ॥ २५ ॥

एतस्य पुरश्चरणादिमाह—जप्त्वेति ।

जप्त्वा लक्षमिमं मन्त्रमयुतं पायसैर्हुनेत् ।
पूर्ववद् दूर्वया जुह्वदायुर्दीर्घतरं लभेत् ॥ २६ ॥

इमं मन्त्रं लक्षं जप्त्वा पायसैरयुतं हुनेत् जुहुयात् । एवं मन्त्रं संसाध्य पूर्ववद्दूर्वयाऽङ्कुरकैः दुग्धघृतमिलितैर्लक्षमेकं जुहुयात् । जपँश्च दीर्घतरमतिशतमायुः प्राप्नोति ॥ २६ ॥

उपर्युक्त ३२ अक्षर वाले इस मन्त्र का एक लाख जप करे और पूर्ववत् घृत दूध परिप्लुत दूर्वा से दस हजार आहुति देवे तो पुरुष दीर्घायु प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

दारयन्तमिति ।

दारयन्तं बकं दोर्भ्यां कृष्णं संगृह्य तुण्डयोः ।
स्मरन् शिशूनामातङ्के स्पृष्ट्वाऽन्यतरमभ्यसेत् ।
तज्जप्ततिलजाभ्यङ्गाद्भवेयुः सुखिनश्च ते ॥ २७ ॥

शिशूनां बालानामातङ्के भये समुपस्थिते तान् बालान् स्पृष्ट्वा कृष्णं स्मरन् अन्यतरमुक्तेष्वेकं मन्त्रमभ्यसेज्जप्यात् । कीदृशं कृष्णम् ? कराभ्यां तुण्डयोः संगृह्य बकनामानमसुरं विदारयन्तम् । तन्मन्त्रजप्ततैलाभ्यङ्गात्ते बालाः सुखिनो भवन्ति । स्मरन्निति शिशुनामानं कृष्णं स्मरन्, के शिरसि स्पृष्ट्वा जप्यादिति बोद्धव्यमन्त्र दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिति त्रिपाठिनः ॥ २७ ॥

बालकों के भय उपस्थित होने पर उस बाल रोगी को स्पर्श कर अपने दोनों हाथों से बकासुर के दोनों तुण्डों (मुखाग्रभाग चोंच) को पकड़कर उसे फाड़ते हुये परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर ऊपर कहे गये दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र

का जप करे। अथवा उस मन्त्र से अभिषिक्त तेल के लगाने से बालक सद्यः सुखी हो जाते हैं ॥ २७ ॥

विमर्श—कोई विद्वान् कहते हैं कि यह जप रोगी बालक के शिर पर हाथ रख कर करना चाहिये ॥ २७ ॥

अस्मिन्नेव बालरक्षार्थेऽन्योऽपि मन्त्रोऽस्तीत्याह—अत्राप्यन्य इति।

अत्राऽप्यन्यो मनुर्बालवपुषे वह्निवल्लभा।
गोरक्षायां क्वणद्वेणुं चारयन्तं पशूँस्तथा॥ २८॥

बालवपुषे इति स्वरूपं वह्निवल्लभेति स्वाहा अस्मिन्नर्थे गोरक्षायां च विशेषध्यानमाह—क्वणदिति। वेणुवादनपरं पशूंश्चारयन्तं कृष्णं स्मरन् जप्यात् ॥ २८ ॥

अब बालक की रक्षा के लिये अन्य मन्त्रों को कहते हैं—

'बालवपुषे' स्वाहा इस मन्त्र को वेणु बजाते हुये एवं पशुओं को चराते हुये इस प्रकार गोरक्षा में लगे श्रीकृष्ण का ध्यान कर जप करे तो समस्त बालारिष्ट दूर हो जाता है ॥ २८ ॥

अस्मिन्नेव बालकरक्षार्थे गोरक्षायां च मन्त्रान्तरमाह—उक्त्वेति।

उक्त्वा गोपालकपदं पुनर्वेशधराय च।
वासुदेवाय वर्मास्त्रशिरांस्यष्टादशाक्षर॥ २९॥

गोपालक इत्युक्त्वा पुनर्वेशधराय इत्युक्त्वा वासुदेवायेति वदेत् वर्महुम् अस्त्रं फडिति शिरः स्वाहा एतानि वदेत्। एवं सति अष्टादशाक्षरो भवति ॥ २९ ॥

प्रथम 'गोपालक' पद कहे उसके बाद 'वेशधराय' पद, तदनन्तर 'वासुदेवाय' पद पुनः वर्म ('हुम्') पुनः अस्त्र ('फट्') पुनः शिर ('स्वाहा') इस पद का उच्चारण करे ॥ २९ ॥

विमर्श—'गोपालक वेशधराय; वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' यह अष्टादशाक्षर मन्त्र इस प्रकार निष्पन्न होता है।

मनोर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरनेन वा।
कुर्याद् गोपालसंरक्षामाचक्राद्यङ्गिना बुधः॥ ३०॥

अस्य पूर्वोक्तस्य च मनोर्नारदो मुनिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीकृष्णो देवता अनेन वा मन्त्रेण उक्तद्रव्यादिना वा गोपालरक्षां कुर्यात्। कीदृशेन ? आचक्राद्यङ्ग-युक्तेन ॥ ३० ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, गायत्री छन्द हैं और परमात्मा श्रीकृष्ण देवता हैं। इसके 'चक्र' से लेकर पूर्वोक्त वज्रान्त आयुध पर्यन्त आवरण देवता हैं। अतः उपरोक्त ध्यान पर्वक इन अङ्गों के साथ श्रीकृष्ण का पूजन कर इस मन्त्र का कही गई संख्या में जप करे, उतनी ही संख्या से अग्नि में आहुति देवे तो बालक की रक्षा होती है ॥ ३० ॥

विषहरणप्रयोगमाह—कुम्भीनसेति ॥

कुम्भीनसादिक्ष्वेडार्त्तौ दष्टमूर्द्ध्नि स्मरन् हरिम्।
नृत्यन्तं कालियफणारङ्गेऽन्यतरमभ्यसेत् ॥ ३१ ॥
दृशा पीयूषवर्षिण्या सिञ्चन्तं तत्तनुं बुधः।
तर्जयन् वामतर्जन्या तं द्राङ्मोचयते विषात् ॥ ३२ ॥

कुम्भीनसादिक्ष्वेडार्त्तौ सर्पविषपीडायाम्। 'कुम्भीनसास्तु ते सर्पा ये स्युर्दृष्टिविषोल्वणाः।' इति धरणिः।

आदिपदाद् वृश्चिकादिसंग्रहः दष्टमूर्द्ध्नि आर्त्तमस्तके स्पृष्ट्वा कालियः नागविशेषस्तस्य फणा सैव रङ्गभूमिस्तत्र नृत्यन्तं स्मरन् अन्यतममन्त्रमभ्य-सेत् जपेत्। कीदृशम् ? हरिं तत्तनुं शरीरम् अमृतवर्षिण्या दृष्ट्या सिञ्चन्तम्। किंकुर्वन् ? स्मरेत् वामतर्जन्यातर्जयन्। एवं सति तं दष्टं मन्त्री द्राक् शीघ्रं विषान्मोचयेत्। अत्र दशाष्टादशाक्षरयोर्विशेषध्यानमिति त्रिपा-ठिनः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अब विष उतारने की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं—

अपनी दृष्टिमात्र से विष का सञ्चार करने वाले कुम्भीनसादि सर्पों के विष से ग्रस्त अथवा वृश्चिकादि दष्ट विष से ग्रस्त प्राणी के शिर पर हाथ रख कर कालिय नाग के फण रूपी रंगमञ्च पर नृत्य करते हुये एवं अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि से उसे सींचते हुये इस प्रकार श्रीकृष्ण का ध्यान कर 'बालवपुषे स्वाहा' अथवा 'गोपालकवेशधराय वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' इन दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र का जप करे तो वह मन्त्र वेत्ता शीघ्रातिशीघ्र विष दष्ट उस पुरुष को विष से मुक्त कर देता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

प्रयोगान्तरमाह—आपूर्येति ।

आपूर्य कलशं तोयैः स्मृत्वा कालियमर्दनम् ।
जप्त्वाऽष्टशतमासिञ्चेद्विषिणं स सुखी भवेत् ॥ ३३ ॥

कलशं तोयैरापूर्याऽनन्तरङ्कालियमर्दनं देवं स्मृत्वाऽऽष्टाधिकं शतं जप्त्वा तेन कलशेन विषिणं विषयुक्तम् आसिञ्चेत् । अनन्तरं विषात्सुखी भवति ॥ ३३ ॥

अब विष उतारने का अन्य प्रयोग कहते हैं—

कलश को जल से पूर्ण कर कालिय मर्दन श्री कृष्ण का ध्यान करते हुये १०८ बार ऊपर के मन्त्र से अभिमन्त्रित उस कलश के जल से विषग्रस्त प्राणी का अभिषेक करे तो शीघ्र ही उसका विष उतर जाता है ॥ ३३ ॥

कालियमर्दनमन्त्रमाह—काव्यमध्य इति ।

काव्यमध्ये लियस्यान्ते फणामध्येदिवर्णकान् ।
उक्त्वा पुनर्वदेन्नृत्यङ्करोति तमनन्तरम् ॥ ३४ ॥
नमामि देवकीपुत्रमित्युक्त्वा नृत्यशब्दतः ।
राजानमच्युतं ब्रूयादिति दन्तलिपिर्मनुः ॥ ३५ ॥

काव्य इत्यक्षरद्वयोर्मध्ये लियस्येति स्वरूपम् एतस्यान्ते फणामध्येदि इति स्वरूपम् इत्यन्तान् वदेत् अनन्तरं नृत्यं करोति तमिति । अनन्तरं नमामि देवकीपुत्रम् इति वदेत् । अनन्तरं नृत्यशब्दतः नृत्यशब्दान्ते राजान मच्युतमिति ब्रूयादित्यनेन प्रकारेण दन्तलिपिर्द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रः कथितः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

'का' और 'व्य' इन दो अक्षरों के मध्य 'लिए' पुनः व्य के अन्त में 'फणामध्ये' इतना उच्चारण के बाद 'नृत्यं करोति' तदनन्तर 'तं नमामि देवकीपुत्रम्' तदनन्तर 'नृत्य' शब्द कहकर 'राजानमच्युतम्' यह पद बोले । इस प्रकार ३२ अक्षरों का मन्त्रोद्धार हुआ । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—'कालिय व्यफणामध्ये इति नृत्यं करोति तं देवकीपुत्रं नमामि नृत्य राजानमुच्यतम्' ॥ ३४-३५ ॥

अस्य मन्त्रस्य अङ्गादीनि दर्शयति—अस्येति ।

अस्याऽङ्गान्यङ्घ्रिभिर्न्यस्तैः समस्तैर्नारदो मुनिः ।
छन्दोऽनुष्टुप्देवता च कृष्णः कालियमर्दनः ॥ ३६ ॥

अस्य मन्त्रस्य व्यस्तैरेकैकम् अङ्घ्रिभिश्चतुर्भिः पादैः समस्तैर्मन्त्रात्मकैश्चाङ्गानि पञ्चाङ्गानि कथितानि मुनिः नारदः छन्दोऽनुष्टुप् कालीयमर्दनः कृष्णो देवता ॥ ३६ ॥

इस मन्त्र को अलग-अलग चार पादों में विभक्त कर पुनः समस्त मन्त्रों को पढ़कर इस प्रकार कुल पाँच अङ्गन्यास करें। इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है तथा कालियमर्दन परमात्मा श्रीकृष्ण देवता हैं ॥ ३६ ॥

पुरश्चरणमाह—जप्य इति।

जप्यो लक्षं मुनरयं होतव्यं सर्पिषाऽयुतम्।
अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरर्चनाऽस्य समीरिता ॥ ३७ ॥

अयं मन्त्रः लक्षं जप्यः सर्पिषा घृतेन पुनरयुतं होतव्यम्। अङ्गदिक्पालवज्राद्यैस्त्रिभिरावरणैरर्चना पूजा कथिता ॥ ३७ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करे। पुनः घी से दस हजार होम करे। इस मन्त्र के जप अङ्ग (दाम सुदामादि) दिक्पाल (इन्द्रादि) तथा आयुध (वज्रादि) तीन आवरणों कीं पूजा करनी चाहिए ॥ ३७ ॥

प्रयोगमाह—क्रियेति।

क्रिया सर्वा च कर्तव्या विषघ्नी पूर्वमीरिता।
सदृशोऽनेन जगति नहि क्ष्वेडहरो मनुः ॥ ३८ ॥

पूर्वमन्त्रकथिता विषघ्नी सर्वा क्रिया अमुनैव मन्त्रेण कर्त्तव्या हि यतः जगति संसारे अनेन मन्त्रेण सदृशः समानः क्ष्वेडहरः विषहरो नास्ति ॥ ३८ ॥

पूर्व में कही गयी विष उतारने की सारी प्रक्रिया इस मन्त्र से करनी चाहिए, क्योंकि विष दूर करने के लिए इस मन्त्र के समान दूसरा कोई मन्त्र नहीं है ॥३८॥

विषघ्नं प्रयोगान्तरमाह—अङ्गैरिति।

अङ्गैः शुकतरोः पिष्टैर्गुलिका धेनुवारिणा।
आननस्याऽञ्जनालेपैर्विषघ्नी साधिताऽमुना ॥ ३९ ॥

शुकतरोः करञ्जवृक्षस्येति भैरवत्रिपाठिनः, किंशुकवृक्षस्येति लघुदीपिकाकारः, अङ्गैस्त्वग्भिरिति रुद्रधरः, पञ्चाङ्गैरिति त्रिपाठिनः।

धेनुवारिणा सवत्सा गोमूत्रेण पिष्टैः संपादिता गुलिका अमुना मन्त्रेण साधिता सती विषघ्नी भवति कैराननस्याऽञ्जनालेपप्रकारैः ॥ ३९ ॥

शुक वृक्ष (करञ्ज या सेमर) के अङ्ग (केवल त्वम् अथवा पचाङ्ग) को सवत्सा गाय के मूत्र से पीसकर मुख पर लेप कर, गोली बनावे, उससे अञ्जन के समान मुख पर लेप करे तो सारा विष शीघ्र उतर जाता है, क्योंकि यह क्रिया विषघ्नी कही गयी है ॥ ३९ ॥

अधुना प्रयोगान्तरं दर्शयति—उद्दण्डेति ।

उद्दण्डवामदोर्दण्डधृतगोवर्धनाचलम् ।
अन्यहस्ताङ्गुलीव्यक्तस्वरवंशार्पिताननम् ॥ ४० ॥
ध्यायन् हरिं जपन्मन्वोरेकं छत्रं विना व्रजेत् ।
वर्षवाताशनिभ्यः स्याद्भयं तस्य नहि क्वचित् ॥ ४१ ॥

उत्तोलितो यो वामबाहुदण्डस्तेन धृतो गोवर्धनाचलो येन तम् अन्यहस्ताङ्गुलिभिः व्यक्तस्वरो यस्य वंशस्य तत्रार्पितमाननं येन तम् एवभूतं हरिं चिन्तयन् मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं जपन् छत्रं विना व्रजेत् यस्तस्य वृष्टिवायुवज्रादिभ्योभयं क्वापि न विद्यते ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अपने बायें बाहुदण्ड को ऊपर उठाकर उस पर गोवर्धन पर्वत को धारण किए हुए एवं दाहिने हाथ की अंगुलियों से बजायी जाने वाली वंशी में मुख लगाए हुए, इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर अष्टदाशाक्षर अथवा दशाक्षर दोनों मन्त्रों में किसी एक का जप करते हुए बिना छाता के ही चलने वाले मनुष्य को वर्षा, वात एवं बिजली का भय कभी किसी अवस्था में नहीं होता ॥ ४०-४१ ॥

प्रयोगान्तरमाह—मोघेति ।

मोघमेघौघयत्नापगतेन्द्रं तं स्मरन् हुनेत् ।
लवणैरयुतसंख्यातैरनावृष्टिर्न संशयः ॥ ४२ ॥

मोघो निष्फलो यो मेघसमूहस्तस्य यत्नः तेनापगतः इन्द्रो यस्मात् तमेतादृशं हरिं चिन्तयन् अयुतसंख्यातैर्लवणैर्जुहुयात् अनन्तरमनावृष्टिर्भवति नात्र संशयः ॥ ४२ ॥

अपने मेघ समूहों का समस्त प्रयत्न निष्फल हुआ देख कर जिसके भय से इन्द्र कम्पित होकर भाग रहे हैं ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान कर ऊपर कहे गये मन्त्र

से नमक द्वारा दस हजार आहुति अग्नि में दे तो निश्चय ही अनावृष्टि होती है इसमें संशय नहीं ॥ ४२ ॥

प्रयोगान्तरमाह—क्रीडन्तमिति ।

क्रीडन्तं यमुनातोये मज्जनप्लवनादिभिः ।
तच्छीकरजलासारैः सिच्यमानं प्रियाजनैः ॥ ४३ ॥
ध्यात्वाऽयुतं पयःसिक्तै हुनेद्वानीरतर्पणैः ।
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नाऽत्र संशयः ॥ ४४ ॥

यमुनाजले मज्जनोन्मज्जनैः क्रीडन्तं क्रीडां कुर्वन्तं, पुनः कीदृशम् ? प्रियाजनैः रुक्मिणीप्रभृतिभिस्तच्छीकरजलासारैः यमुनाजलधारारूपैः सिच्यमानम् एवं भूतं कृष्णं ध्यात्वा वानीरतर्पणैः वेतससमिद्भिः पयःसिक्तैर्दुग्धोक्षितैरयुतं जुहुयात् । एवं सति अकालोऽपि महतीवृष्टिभर्वति नात्र संशयः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

यमुना जल में डूबते उतराते क्रीडा करते हुए एवं [रुक्मिणी आदि] प्रिय पत्नियों के द्वारा यमुना जल की धारा से सिच्यमान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये दुग्धसिक्त वेतस की समिधा से अग्नि में उपर्युक्त मन्त्र से दस हजार आहुति देवे तो अकाल में भी महान् वृष्टि होने लगती हैं ॥ ४३-४४ ॥

अनेनैव ध्यानेन प्रयोगान्तरमाह—अमुमेवेति ।

अमुमेव स्मरन् मूर्द्धिन विषस्फोटज्वरादिभिः ।
सदाहमोहैरार्त्तस्य जपेच्छान्तिर्भवेत् क्षणात् ॥ ४५ ॥

दाहमोहसहितैर्विषस्फोटज्वरादिभिरार्तस्य मूर्द्धिन मस्तके अमुमेव पूर्वोक्तरूपं कृष्णं ध्यात्वा जपेत् अनन्तरं तस्य पीडितस्य क्षणाद् शान्तिः स्वास्थ्यं भवति ॥ ४५ ॥

दाह, मोह, विष, विस्फोटक एवं ज्वर से आर्त्त पुरुष के शिर पर हाथ रखकर इसी प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान कर जप करे तो उस रोगी को क्षण में ही शान्ति मिलती है और वह स्वस्थ हो जाता है ॥ ४५ ॥

एतस्यामेवाऽऽर्त्तौ प्रकारान्तरमाह—अथ वेति ।

अथवा गरुडारूढं बलप्रद्युम्नसंयुतम् ।
निजज्वरविनिष्पिष्टज्वराभिष्टुतमच्युतम् ॥ ४६ ॥

ध्यात्वा ज्वराभिभूतस्य मूर्द्ध्न्यन्यतरमभ्यसेत् ।
शान्ति व्रजेदसाध्योऽपि ज्वरः सोपद्रवः क्षणात् ॥ ४७ ॥

अथवा ज्वराभिभूतस्य मस्तकेऽच्युतं ध्यात्वा अन्यतरम् द्वयोर्मध्ये एकं मन्त्रम् अभ्यसेत् जपेत् । कीदृशम् ? अच्युतं गरुडारूढं, पुनः कीदृशम् ? बलप्रद्युम्नाभ्यां संयुतम् । पुनः कीदृशम् ? निजज्वरेण वैष्णवज्वरेण शीताख्ये-नाऽऽयुधरूपेण विनिष्पिष्टः चूर्णितो यो रौद्रज्वर उष्णाख्यायुधरूपस्तेन स्तुतम् । अनन्तरम् अस्याऽसाध्योऽपि ज्वरः शीघ्रमेव नाशं गच्छति । कीदृशो ज्वरः ? उपद्रवो गात्रपीडादि तत्सहितः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथवा बलप्रद्युम्न के सहित गरुड़ के ऊपर आरूढ़ वैष्णव ज्वर से चूर्ण किये गये रुद्रज्वर द्वारा अभिष्टुत परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान ज्वराभिभूत व्यक्ति के मस्तक पर करे और ऊपर कहे गये दो मन्त्रों में किसी एक का जप करे तो असाध्य भी ज्वर जो त्रिदोषादि उपद्रव करने वाला है वह भी शीघ्रातिशीघ्र विनष्ट हो जाता है ॥ ४६-४७ ॥

अनेनैव ध्यानेन प्रयोगान्तरमाह—ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवमग्नावभ्यर्च्य पयोऽक्तैश्चतुरङ्गुलैः ।
जुहुयादमृताखण्डैरयुतं ज्वरशान्तये ॥ ४८ ॥

एवं पूर्वोक्तरूपं कृष्णं ध्यात्वा वह्नौ सम्पूज्य ज्वरशान्त्यर्थं चतुरङ्गुल-परिमितैर्दुग्धासिक्तैरमृताखण्डैर्गुडूचीखण्डैरयुतम् जुहुयात् ॥ ४८ ॥

इस प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान कर अग्नि में उनकी पूजा कर घृत परिप्लुत अमृता (गुरुच) की चार चार अङ्गुल की समिधा से ज्वर की शान्ति के लिये हवन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

प्रयोगान्तरमाह—निशातेति ।

निशातशरनिर्भिन्नभीष्मतापनुदं हरिम् ।
स्मृत्वा स्पृशन् जपेदार्त्तं पाणिभ्यां रोगशान्तये ॥ ४९ ॥

निशातः तीक्ष्णो यः शरस्तेन निर्भिन्नो विद्धो यो भीष्मस्तस्य यस्तापस्तं हरति । एवंभूतं हरिं ध्यात्वा आर्त्तं ज्वरादिपीडितं पाणिभ्यां स्पृष्ट्वा ज्वरनाशार्थं मन्त्वोरेकतरं जपेत् ॥ ४९ ॥

तीक्ष्ण बाणों के लगने से अत्यन्त परितापयुक्त भीष्म के दुःखों को दूर करने वाले परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करते हुये रोगार्त प्राणी को दोनों हाथों से स्पर्श कर उक्त मन्त्र का जप समस्त रोगों की शान्ति के लिये करना चाहिये ॥ ४९ ॥

प्रयोगान्तरमाह—अपमृत्युविनाशायेति ।

अपमृत्युविनाशाय सान्दीपनिसुतप्रदम् ।
ध्यात्वाऽमृतलताखण्डैः क्षीराक्तैरयुतं हुनेत् ॥ ५० ॥

सान्दीपनिः कृष्णगुरुः तस्य सुतप्रदं कृष्णं ध्यात्वा अमृतलताखण्डैः गुडूचीखण्डैः क्षीराक्तैर्दुग्धसिक्तैरयुतं हुनेत् जुहुयात् । कस्मै अपमृत्युरकालमरणं तस्य विनाशाय निवृत्तये ॥ ५० ॥

अपमृत्यु के विनाश के लिये अपने गुरु सान्दीपनी को उनका मरा हुआ पुत्र भेंट करते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान कर दुग्ध सिक्त गुडुची की समिधा से दस हजार हवन करना चाहिये ॥ ५० ॥

प्रयोगान्तरमाह—मृतपुत्रायेति ।

मृतपुत्राय ददतं सुतान् विप्राय सार्जुनम् ।
ध्यात्वा लक्षं जपेदेकं मन्वोः सुतविवृद्धये ॥ ५१ ॥

मृतपुत्राय विप्राय पुत्रान् ददतं सार्ज्जुनं अर्ज्जुनसहितं ध्यात्वा मन्वोरेकं लक्षं जपेत् । किमर्थम् ? सुतवृद्धिनिमित्तम् ॥ ५१ ॥

जिसके कई पुत्र मर चुके हैं ऐसे ब्राह्मण को उसके मरे हुये समस्त पुत्रों को प्रदान करते हुये अर्जुन के सहित परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये दो मन्त्रों में से किसी एक का जप सन्तान वृद्धि के लिये करना चाहिये ॥ ५१ ॥

प्रयोगान्तरमाह—पुत्रजीवेति ।

पुत्रजीवेन्धनयुते जुहुयादनलेऽयुतम् ।
तत्फलैर्मधुराक्तैः स्युः पुत्रा दीर्घायुषोऽस्य तु ॥ ५२ ॥

जीवापुत्रेति यस्य प्रसिद्धिः तस्य इन्धनेन युते संपादिते वह्नौ तत्फलैः पुत्रजीवाफलैर्मधुराक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्मन्वोरेकेनाऽयुतं जुहुयात् । अनन्तरम् अस्य होमकर्त्तुः पुत्राः दीर्घायुषो भवन्ति ॥ ५२ ॥

पुत्र जीव नामक वृक्ष की समिधा से मधु घी एवं शर्करा से युक्त उसी वृक्ष के फल से दस हजार आहुति दे तो पुत्र को दीर्घायुष्य प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

प्रयोगान्तरमाह—क्षीरेति ।

क्षीरद्रुक्वाथसंपूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि ।
जप्त्वाऽयुतं प्रगे नारीमभिषिञ्चेद् द्विषट्दिनम् ॥ ५३ ॥
सा वन्ध्याऽपि सुतान् दीर्घजीविनो गदवर्जितान् ।
लभते नाऽत्रसंदेहस्तज्जप्ताज्याशिनी सती ॥ ५४ ॥

कलशपूरणविधानेन क्षीरवृक्षक्वाथेन सम्पूर्णं कलशं निशि रात्रौ सम्पूज्याऽयुतं जप्त्वा प्रगे प्रातःकाले पुत्रार्थिनीं स्त्रियं द्विषट् दिनं द्वादश दिनानि व्याप्याऽभिषिञ्चेत् । अनन्तरं साऽभिषिक्ता वन्ध्याऽपि अपत्यजननसमययोग्या अजनितापत्याऽपि पुत्रान् दीर्घायुषो रोगरहितान् प्राप्नोति । किम्भूता सती ? मन्त्रजप्ताज्यभोजिनी सती, अत्रार्थे सन्देहो नास्ति ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

क्षीरीवृक्षों के क्वाथ के जल से कलशस्थापन पूर्वक कलश में जल पूर्ण करने की विधि से पूर्ण किये गये कलश का पूजन करे । पश्चात् दस हजार इस मन्त्र का जप करे । प्रातः काल पुत्रार्थिनी नारी का उस जल से अभिषेक करे और मन्त्र से अभिमन्त्रित घी प्राशन कराते रहना चाहिये । इस प्रकार निरन्तर बारह दिनों तक प्रयोग करने से बन्ध्या भी स्त्री दीर्घायुष्य एवं नीरोग पुत्र पैदा करती है ॥ ५३-५४ ॥

प्रयोगान्तरमाह—प्रातरिति ।

प्रातर्वाचंयमा नारी बोधिच्छदपुटे जलम् ।
मन्त्रयित्वाऽष्टोत्तरशतं पिबेत्पुत्रीयती ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

प्रातःकाले वाचंयमा मौनिनी पुत्रीयती आत्मनः पुत्रमिच्छन्ती बोधिच्छदपुटे पिप्पलपत्रपुटे जलं मन्त्रोरन्यतरेणाष्टोतरशतं जप्तं मासं व्याप्य पिबेत् । अनन्तरं पुत्रं प्राप्नोतीति शेषः । जलपानमन्त्रमाह—देवकीपुत्रेति । अत्र प्रसङ्गात् अस्मिन् ग्रन्थे अनुक्तोऽपि सन्तानगोपालमन्त्रः कथ्यते । तद्यथा—

देवकीपुत्र गोविन्द वासुदेव जगद्गुरो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥

अस्य मन्त्रस्य नारदो मुनिः अनुष्टुप्छन्दः सन्तानप्रदो गोपाल कृष्णो देवता पदैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा पञ्चाङ्गानि ।

ध्यानं यथा—

शङ्खचक्रधरं कृष्णं रथस्थं च चतुर्भुजम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं पीतवाससमच्युतम् ॥
मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुतेजोपबृंहितम् ।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान् ॥
करुणामृतसंपूर्णदृष्टयेक्षन्तं च तं द्विजाम् ॥ ५५ ॥ इति

पुत्र चाहने वाली स्त्री प्रातः काल में मौन धारण कर पीपल के पत्ते के दोने में १०८ वार उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीए तो निश्चय ही पुत्र प्राप्त करती है ॥ ५५ ॥

प्रयोगान्तरमाह—प्रहितामिति ।

प्रहितां काशिराजेन कृत्यां छित्वा निजारिणा ।
तत्तेजसा तन्नगरीं दहन्तं भावयन् हरिम् ॥ ५६ ॥
स्वस्नेहाक्तैर्हुनेद्रात्रौ सर्षपैः सप्तवासरम् ।
कृत्या कर्तारमेवाऽसौ कुपिता नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

प्रहितां प्रेषितां काशीश्वरेण कृत्यां घातकर्त्रीं निजारिणा निजचक्रेण छित्वा अनन्तरं तत्तेजसा तस्य काशिराजस्य नगरीं दहन्तं कृष्णं भावयन् स्वस्नेहाक्तैः सर्षपतैलयुक्तैः सर्षपैः सप्तदिनानि व्याप्य रात्रौ मन्त्वोरेकतरेण जुहुयात् । अथाऽनन्तरम् असौ कृत्या क्रुद्धा सती ध्रुवं निश्चितं कर्त्तारमेव नाशयेत् ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

काशिराज के द्वारा भेजी गई कृत्या का अपने सुदर्शनचक्र से विनाश करते हुये, और उसी तेज से काशिराज की नगरी का दाह करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये सर्षप के तेल में डुबाये गये सर्षप बीजों से रात्रिकाल में सात दिन पर्यन्त (दस दस हजार) हवन करे तो वह कृत्या क्रुद्ध होकर स्वयं अपने कर्त्ता का भी विनाश निश्चित रूप से कर देती है ॥ ५६-५७ ॥

प्रयोगान्तरमाह—आसीनमिति ।

आसीनमाश्रमे दिव्ये बदरीषण्डमण्डिते ।
स्पृशन्तं पाणिपद्माभ्यां घण्टाकर्णकलेवरम् ॥ ५८ ॥

ध्यात्वाऽच्युतं तिलैर्लक्षं हुनेत्त्रिमधुराप्लुतैः ।
मुक्तये सर्वपापानां शान्तये कान्तये तनोः ॥ ५९ ॥

बदरीषण्डो बदरीसमूहस्तेनमण्डिते शोभिते दिव्ये उत्कृष्टे आश्रम आसीनम् । उपविष्टं तथा हस्तपङ्कजाभ्यां घण्टाकरणस्य महादेवमूर्त्तेः कस्यचिन् महादेवभक्तस्य वा कलेवरं शरीरं स्पृशन्तमच्युतं ध्यात्वा तिलैः त्रिमधुराप्लुतैर्घृतमधुशर्करामिश्रितैर्मन्त्वोरेकेन लक्ष जुहुयात् । किमर्थम् ? मोक्षाय तथा सकलपापानां विनाशार्थं तथा तनोर्देहस्य कान्तये दीप्त्यर्थम् ॥ ५८-५९ ॥

अब अन्य प्रयोग कहते हैं—

बदरी वृक्षों से मण्डित दिव्य आश्रम में बैठे हुये घण्टाकर्ण के शरीर को अपने हस्तकमल से स्पर्श करते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान कर शर्करा, मधु एवं घृत से मिश्रित तिलों द्वारा एक लाख आहुति अग्नि में प्रदान करे तो सभी प्रकार के पापों से छुटकारा मिल जाता है तथा शरीर के तेज की अभिवृद्धि होवी है—॥ ५८-५९ ॥

प्रयोगान्तरमाह—द्वेषयन्तमिति ।

द्वेषयन्तं रुक्मिबलौ द्यूतासक्तौ स्मरन् हरिम् ।
जुहुयादिष्टयोर्द्विष्ट्यै गुलिका गोमयोद्भवाः ॥ ६० ॥

द्यूतासक्तौ द्यूतकर्मकुर्वन्तौ रुक्मिबलभद्रौ द्वेषयन्तं परस्परं द्वेषमुत्पादयन्तं हरिं स्मरन् गोमयोत्पन्ना गुलिका मन्त्वोरेकेन जुहुयात् । अत्र सहस्रहोमो बोद्धव्यः ।

अनुक्तायां तु संख्यायां सहस्रं तत्र निर्दिशेत् ।
इति वचनात् ।
किमर्थम् ? इष्टयोर्मित्रयोर्द्विष्ट्यै विद्वेषणार्थम् ॥ ६० ॥

परस्पर जुआ खेलने में लगे हुये बलराम एवं रुक्मी में द्वेष कराने वाले श्रीकृष्ण का ध्यान कर सूखे हुये गोमय के कण्डे से एक हजार आहुति प्रदान करे तो परस्पर मित्रों में भी द्वेष हो जाता है ॥ ६० ॥

प्रयोगान्तरमाह—ज्वलदिति ।

ज्वलद्वह्निमुखैर्बाणैर्वर्षन्तं गरुडध्वजम् ।
धावमानं रिपुगणमनुधावन्तमच्युतम् ॥ ६१ ॥

ध्यात्वैवमभ्यसेन्मन्त्वोरेकं सप्तसहस्रकम् ।
उच्चाटनं भवेदेतद्रिपूणां सप्तभिर्दिनैः ॥ ६२ ॥

ज्वलन् देदीप्यमानो यो वह्निस्तद्वन्मुखं येषां तैर्बाणैर्वर्षन्तं ताडयन्तं तथा गरुडारूढं तथा धावमानं शत्रुसमूहमनुपश्चाद्धावन्तं हरिं ध्यात्वा मन्त्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकं सप्तसहस्रमभ्यसेत् जपेत् । एवं कृते सति एतस्य शत्रूणां सप्तभिर्दिनैरुच्चाटनं भवति स्वदेशादपयानं भवति ॥ ६१-६२ ॥

अग्नि के समान तीक्ष्ण बाणों की शत्रुओं पर वर्षा करते हुये गरुड़ पर आसीन एवं भागने वाले शत्रुओं के पीछे दौड़ते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान कर दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र का प्रति सात हजार जप करे तो सात ही दिन में शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ ६१-६२ ॥

प्रयोगान्तरमाह—उत्क्षिप्तेति ।

उत्क्षिप्तवत्सकं ध्यायन् कपित्थफलहारिणम् ।
अयुतं प्रजपेत्साध्यमुच्चाटयति तत्क्षणात् ॥ ६३ ॥

उत्क्षिप्त उद्ध्वं क्षिप्तो वत्सो वत्सरूपो वत्सकासुरो येन तथा कपित्थस्य फलं हरतीति कृष्णं ध्यात्वा मन्त्वोर्मध्ये एकमयुतं जपेत् । अनन्तरं तत्क्षणात् शीघ्रमेव साध्यमुच्चाटनीयमुच्चाटयति ॥ ६३ ॥

वत्सासुर को ऊपर उठा कर फेंकते हुये और कपित्थ फल का अपहरण करते हुये परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर इस मन्त्र का दस हजार जप करे तो उसी क्षण जिसका चाहे उसका उच्चाटन करा सकता है ॥ ६३ ॥

प्रयोगान्तरमाह—आत्मानमिति ।

आत्मानं कंसमथनं ध्यात्वा मञ्चान्निपातितम् ।
कंसात्मानमरिं कर्षन् गतासुं प्रजपेन् मनुम् ॥ ६४ ॥
अयुतं जुहुयाद्वाऽस्य जन्मोडुतरुतर्पणैः ।
अपि सेवितपीयूषो म्रियतेऽरिर्नसंशयः ॥ ६५ ॥

आत्मानं कंसमथनं कृष्णं ध्यात्वा कंसमथनात् मनोरैक्यं विचिन्त्य तथा रिपुं कंसस्वरूपम् अपगतप्राणं ध्यात्वा रिपुकंसयोरभेदं विचिन्त्येति भावः ।

मञ्चादधःकृतम् आकर्षयन् आकर्षणं भावयन् मन्वोरेकमयुतं जपेत्। अस्य रिपोः जन्मोडुतरुतर्पणैः समिद्भिर्जुहुयाच्च—

कारस्करोऽथ धात्रीस्यादुदुम्बरतरुः पुनः।
जम्बूखदीरकृष्णाख्या वंशपिप्पलसंज्ञकौ ॥ १ ॥
नागरोहितनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ।
अम्बष्ठविल्वार्ज्जुनाख्यं विकङ्कतमहीरुहः ॥ २ ॥
वहलः सवलः खर्ज्जुर्भण्डिलः पनसार्ककौ।
शमीकदम्बाम्रनिम्बमधुका ऋक्षशाखिनः ॥ ३ ॥

इति सप्तविंशतिनक्षत्राणां वृक्षाः। जन्मनक्षत्रवृक्ष एवं कृते सेवितपीयूषोऽपि म्रियते नात्रसंशयः ॥ ६४-६५ ॥

अपनी आत्मा में कंस का वध करने वाले श्रीकृष्ण की भावना कर और शत्रु में कंस की भावना कर उसे मञ्च से नीचे गिरा कर मार डालने के कारण प्राण· रहित उसके शरीर को खींचते हुये जैसी भावना कर दो मन्त्रों में से किसी एक का दस हजार की संख्या में जप करे और उसके जन्मनक्षत्र के वृक्ष में तर्पण करे और उसी जन्म नक्षत्र के वृक्ष की समिधा से हवन करे तो अमृत पीने वाला भी शत्रु मर जाता है ॥ ६४-६५ ॥

विमर्श—अब यहाँ टीकाकार प्रसङ्गतः २७ नक्षत्रों के वृक्ष कह रहे हैं कारस्कार, धात्री, उदुम्बर, जम्बू, खदिर, कृष्ण, वाँस·पीपल, नाग, रोहित, पलाश, प्लक्ष, अम्बष्ठ, विल्व, अर्जुन, विकङ्कत, वहल, सवल, खर्जु, भण्डिल, पनस, अर्क, शमी, कदम्ब, आम्र-निम्ब और मधूक ये २७ नक्षत्रों के वृक्ष कह गये हैं ॥ ६४·६५ ॥

इदं प्रयोजनं प्रकारान्तरेणापि भवतीति दर्शयति—अथवेति।

अथवा निम्बतैलाक्तैर्हुनेदेधोभिरक्षजैः।
अयुतं प्रयतो रात्रौ मरणाय रिपोः क्षणात् ॥ ६६ ॥

निम्बतैलसिक्तैः अक्षजैः विभीतकसमिद्भिः प्रयतः पवित्रः सन् रात्रौ मन्वोरेकेन अयुतं हुनेत्। किमर्थम्? शत्रोः शीघ्रविनाशाय ॥ ६६ ॥

[शत्रु मारण का अन्य प्रयोग कहते हैं] अथवा निम्बतैल में भिगोई गई विभीतक वृक्ष की समिधा से पवित्रता पूर्वक रात्रि में दो मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र के द्वारा दस हजार अग्नि में हवन करे तो शत्रु का शीघ्र विनाश हो जाता है ॥ ६६ ॥

अस्मिन्नेवार्थे प्रयोगान्तरमाह—दोषेति।

दोषारिष्टदलव्योषकार्पासास्थिकणैर्निशि ।
हुनेदेरण्डतैलाक्तैः श्मशानस्थोऽरिशान्तये ॥ ६७ ॥

दोषा हरिद्रा अरिष्टदलं विभीतकपत्रमिति रुद्रधरः। भल्लातकपत्रमिति-रुद्रधरः। निम्बपत्रमिति भैरवत्रिपाठिनः। व्योषन्त्रिकटुकं कार्पासाऽस्थि-कार्पासबीजं कणः पिप्पली एतैर्मिलितैरेरण्डतैलसिक्तैः श्मशानस्थः मृत-संस्कारस्थानस्थः सन् निशि रात्रौ मन्वोरेकेन जुहुयात्। किमर्थम्? शत्रुनाशार्थम् ॥ ६७ ॥

हरदी, बहेड़ा का पत्ता (किसी के मत में भल्लातक पत्र और किसी के मत में निम्ब पत्र) त्रिकटुकी, कपास का बीज और पीप्पली इन्हें एरण्ड के तेल में भिगोकर श्मशान में रात्रि के समय दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र से हवन करे तो शत्रु का विनाश हो जाता है ॥ ६७ ॥

रागान्मारणप्रयोगे प्रायश्चित्तमाह—न शस्तमिति।

न शस्तं मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं जपेत् ।
हुनेद्वा पायसैस्तावत् शान्तये शान्तमासः ॥ ६८ ॥

मारणं कर्म शिष्टजनस्य न प्रशस्तं तथाऽपि यदि वा रागात् कुर्यात्तदा मन्वोर्मध्ये एकं मन्त्रम् अयुतं जपेत् परमान्नेन वा अयुतं जुहुयात्। शान्तये पापनाशाय शान्तमानसोनिर्मत्सरः ॥ ६८ ॥

ऐसे तो मारण कर्म सर्वथा निषिद्ध कहा गया है। यदि आवश्यकता वश इसे कर भी ले तो इसकी शान्ति के लिये शुद्धचित्त से दस हजार मन्त्र का जप करे अथवा पायस से उतनी ही संख्या में होम करे ॥ ६८ ॥

विमर्श—मारण प्रयोग अत्यन्त गर्हित और खतरनाक है। साधक जरा-सी असावधानी से स्वयं मर सकता है वैसे इसमें बिना अच्छे गुरु के कभी भी प्रवेश नहीं हो सकता। इसे नहीं ही करना चाहिए क्योंकि लोक में भी यही देखा जाता है कि दूसरे को सताने वाले गुण्डे बदमाश ही मारे जाते हैं। इस कार्य को करने वाले को कभी भी सुख-समृद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। यही कारण है कि स्वयं तन्त्रकार ने भी इसे निषिद्ध कहा है ॥ ६८ ॥

प्रयोगान्तरमाह— जयकाम इति।

जयकामो जपेल्लक्षं पारिजातहरं हरिम्।
स्मरन् पराजयस्तस्य न कुतश्चिद्भविष्यति ॥ ६९ ॥

जयकामः पुमान् बलादिन्द्रसकाशात् स्वर्गस्थपारिजातापहारिणं कृष्णं भावयन् मन्वोरेकं लक्षं जपेत् एवं कृतेतस्य भङ्गः कस्मादपि न भविष्यतीति ॥ ६९ ॥

शत्रु पर विजय चाहने वाला पुरुष इन्द्रलोक से पारिजात का हरण करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये उक्त दो मन्त्रों में किसी एक का एक लाख जप करे तो किसी से उसका पराभव नहीं हो सकता ॥ ६९ ॥

प्रयोगान्तरमाह—पार्थ इति।

पार्थे दिशन्तं गीतार्थं व्याख्यामुद्राकरं हरिम्।
रथस्थं भावयन् जप्याद्धर्मवृद्धयै शमाय च ॥ ७० ॥

पार्थे अर्जुने गीतार्थं दिशन्तं कथयन्तं तथा व्याख्यामुद्रा करे यस्य तम् उत्तानतर्जन्यङ्गुष्ठयुताव्याख्यामुद्रा तथा रथारूढं हरिं भावयन् मन्वोरेकं लक्षं जपेत्। किमर्थम्? धर्मोत्पत्त्यर्थं मोक्षार्थञ्च ॥ ७० ॥

पार्थ को गीता का उपदेश करते हुये हाथ से व्याख्या की मुद्रा प्रदर्शित करते हुये रथ पर अधिष्ठित श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये धर्म की वृद्धि एवं मोक्ष प्राप्ति के लिये जप करना चाहिये ॥ ७० ॥

प्रयोगान्तरमाह—लक्षमिति।

लक्षं पलाशकुसुमैर्हुनेद् यो मधुराप्लुतैः।
व्याख्याता सर्वशास्त्राणां स कविर्वादिराड् भवेत् ॥ ७१ ॥

यः पलाशपुष्पैर्घृतमधुशर्करामिश्रैर्मन्वोरेकेन लक्षं जुहुयात् सः सकलशास्त्राणां व्याख्याता कविराट् कविश्रेष्ठश्च भवेत् ॥ ७१ ॥

त्रिमधु (शर्करा घृत ओर मधु) से मिश्रित पलाश पुष्पों से अग्नि में एक लाख आहुति देने वाला पुरुष सभी शास्त्रों का व्याख्याता, कवि, एवं वादियों को पराजित करने वाला पण्डित-सम्राट् होता है ॥ ७१ ॥

प्रयोगान्तरमाह—विश्वेति ।

विश्वरूपधरं प्रोद्यद्भानुकोटिसमद्युतिम् ।
द्रुतचामीकरनिभमग्निसोमात्मकं हरिम् ॥ ७२ ॥
अर्काग्निद्योतदास्याङ्घ्रिपङ्कजं दिव्यभूषणम् ।
नानायुधधरं व्याप्तविश्वाकाशावकाशकम् ॥ ७३ ॥
राष्ट्रपूर्ग्रामवास्तूनां शरीरस्य च रक्षणे ।
प्रजपेन्मन्त्रयोरेकतरं ध्यात्वैवमादरात् ॥ ७४ ॥

विश्वरूपधरम् एतद् व्याचष्टे उद्यदादित्यकोटिसमानकान्ति तथा द्रवीभूतसुवर्णतुल्यं तथा अग्निसोमस्वरूपम्, सूर्यसोमात्मकमिति त्रिपाठिनः, तथा सूर्याग्निवदुज्ज्वलं मुखं पादपद्मं यस्य, तथा चारुभूषणं तथा विविधशस्त्रधरं तथा व्याप्तसंसाराकाशाभ्यन्तरम् एतादृश हरिं ध्यात्वा आदरात् मन्त्रयोरेकं जपेत् । किमर्थम् ? राष्ट्रो देशः पूर्नगरं ग्रामोऽल्पजनवासस्थानं वास्तु एकगृहस्वामिवासः, क्षेत्रम् इति गोविन्दमिश्राः । वस्त्विति पाठे हिरण्यादि, एतेषां शरीरस्य च रक्षणे रक्षानिमित्तम् ॥ ७२–७४ ॥

उदीयमान करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान पिघले हुये सुवर्ण के समान कान्ति को धारण करने वाले अग्नि सोमात्मक विश्वरूप, सूर्याग्नि के समान देदीप्यमान मुख से युक्त एवं कमल के समान कोमल चरणों वाले नाना प्रकार के आभूषणों से उद्दीप्त नाना प्रकार के आयुधों को धारण किये हुये, संसार के अणु अणु में व्याप्त परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुये राष्ट्र; ग्राम; नगर एवं गृह की रक्षा के लिये दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र का श्रद्धा पूर्वक जप करना चाहिये ॥ ७२-७४ ॥

प्रकारान्तरमाह—अथ वेत्यादि ।

अथवा व्यस्तसर्वाङ्घ्रिरचिताङ्गार्जुनर्षिकम् ।
त्रिष्टुप्छन्दसिकं विश्वरूपविष्ण्वधिदैवतम् ॥ ७५ ॥
जपेद् गीतामनुं स्थानेहृषीकेशाद्यमाज्यकैः ।
हुनेद्वा सर्वरक्षायै सर्वदुःखोपशान्तये ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीकेशवभट्टाचार्य्यविरचितायां क्रमदीपिकायां
षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

——०——

अथवा स्थानेहृषीकेशाद्यं गीतामनुं जपेत्। किंभूतं मनुम्? व्यस्तम् एकैकं सर्वं समस्ता ये अङ्घ्रयः पादचतुष्टयं तैः रचितम् अङ्गं पञ्चाङ्गम्। अर्जुनः ऋषिर्यत्र तं व्यस्तसर्वाङ्घ्रिरचिताङ्गश्चार्जुनऋषिकश्चेति द्वन्द्वः तं त्रिष्टुप्छन्दो यत्र तं विश्वरूपो विष्णुरधिदेवता यस्य तम्, आज्यकैर्घृतैर्हुनेद्वा वाशब्दः समुच्चये हुनेत्। टीकान्तरे उक्तप्रयोगेषु यत्र जपहोमयोः संख्या न उक्ता तत्र संनिधानोक्ता गृह्यते तदभावेऽष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा अष्टौ-सहस्राणीत्येके।

जगन्मोहनाख्यतन्त्रे—

लक्षं वाप्ययुतं वापि सहस्रं शतमेव च।
कार्याणां गौरवान्मन्त्रीतत्तद्धोमं समाचरेत्॥ ७५-७६ ॥

॥ इति श्रीविद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकायाः विवरणे
षष्ठः पटलः॥ ६ ॥

——०——

अथवा गीता में कहे गये 'स्थानेहृषीकेश' इस मन्त्र का उक्त संख्या में जप करे। जप से पूर्व इस श्लोक के पृथक् पृथक् चार चरणों से और पुनः समस्त श्लोक से—इस प्रकार पञ्चाङ्ग द्वारा न्यास करे। इस श्लोक के अर्जुन ऋषि हैं। त्रिष्टुप् छन्द है। विश्वरूपधारी परमात्मा श्रीकृष्ण देवता हैं। गीता में कहे गए उक्त मन्त्र का जप करने के पश्चात् घी से दशांश हवन करे तो सभी प्रकार के दुःखों से रक्षा हो जाती है तथा सारे दुःख अपने आप शान्त हो जाते हैं।

विमर्श—कार्य के गौरव एवं लाघव का विचार कर एक लाख एक सहस्र अथवा १०८ वार जप की संख्या तथा होम की संख्या समझ लेनी चाहिये॥ ७५-७६ ॥

॥ इस प्रकार श्री केशवाचार्य विरचित क्रमदीपिका की डा० सुधाकरमालवीय कृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का छठवाँ पटल समाप्त हुआ॥ ६ ॥

——०——

सप्तमं पटलम्

अनेकमन्त्रकथनार्थं सप्तम पटलमुपक्रामति—वक्ष्य इत्यादिना ।

वक्ष्येऽक्षयधनावाप्त्यै प्रतिपत्तिं श्रियः पतेः ।

सुगुप्तां धननाथाद्यैर्धन्यैर्या क्रियते सदा ॥ १ ॥

श्रियः पतेर्गोपालस्य प्रतिपत्तिं ध्यानं मन्त्रपूजाध्यानादिप्रकारं वा वक्ष्ये । या प्रतिपत्तिर्धननाथाद्यैः कुबेरप्रभृतिभिर्महाधनैः क्रियते । कस्यै ? अक्षयमविनाशि यद्धनं तत्प्राप्त्यै, सुगुप्तां नात्यन्तप्रकटितां द्विजैरित्यर्थः ॥ १ ॥

अब मैं लक्ष्मी पति गोपाल के मन्त्र, पूजा और ध्यानादि प्रकार कहता हूँ जिसे अक्षय धन प्राप्ति के लिये कुवेर प्रभृति महाधनी लोग करते आ रहे हैं और जो अब तक (ब्राह्मणों ने) गुप्त रखा है ॥ १ ॥

द्वारवत्यामित्यादि सप्तश्लोकैर्मध्यकुलकम् ।

द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः ।

अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मण्डपोत्तमे ॥ २ ॥

अच्युतो ध्येयः कुत्र द्वारवत्यां मणिमण्डपे मणिसिंहासनाम्बुजे आसीनो द्वारकानगरीगतमणिमण्डपावस्थितमणिमयसिंहासनपद्मोपविष्टः मणिमण्डपे । कीदृशे ? भवनोत्तमैः गृहोत्तमैः कल्पवृक्षैश्च परीते वेष्टिते । किम्भूतैः ? सहस्रसूर्याः तद्वद्भास्वरैर्दीप्तैरनल्पैर्विस्तरैः ॥ २ ॥

[यहाँ से सात श्लोक तक कुलक है]:—

द्वारका पुरी में सहस्रों सूर्यों के समान भासमान, उत्तमोत्तम भवनों से तथा असंख्य कल्प-वृक्षों से घिरे हुये मणिमण्डप में मणिनिर्मित सिंहासनाम्बुज पर बैठे हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥ २ ॥

ज्वलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुड्यके ।

फुल्लस्रगुल्लसच्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके ॥ ३ ॥

पुनः कीदृशे ? ज्वलन्ति दीप्तानि यानि रत्नानि तन्मयं तत्प्रधानं स्तम्भः गृहाधारभूतं द्वारतोरणं कुड्यं भित्तिर्यत्र तस्मिन् प्रफुल्ला विकासनीया स्रक् पुष्पमाला उल्लसच्छोभमानं पवित्रं नानाप्रकारं वितानं तत्रालम्बि मौक्तिकं यत्र तत्र ॥ ३ ॥

जिस मणिमय मण्डप के खम्भे, द्वार, तोरण तथा भित्तियाँ देदीप्यमान रत्नों से बने रहने के कारण जगमगा रही हैं। जिसमें लगे हुये प्रफुल्लित पुष्पों की माला से उल्लसित वितान में मोतियाँ लटक रही है (ऐसे मण्डप में बैठे श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ३ ॥

पद्मरागस्थलीराजद्रत्ननद्योश्च मध्यतः ।

अनारतगलद्रत्नसुधस्य स्वस्तरोरधः ॥ ४ ॥

पुनः कीदृशे मणिमण्डपे ? पद्मरागमयी या स्थली राजद्देदीप्यमान रत्नमयी च या नदी तयोर्मध्ये स्वस्तरोः पारिजातस्याधः स्वस्तरोः । किंभूतस्य ? अनारतं सर्वदा गलन्ती रत्नमयी सुधा अमृतं यस्य तस्य ॥ ४ ॥

पद्मरागमणि निर्मित स्थली एवं देदीप्यमान रत्नमयी नदी के मध्य में विराजमान, निरन्तर रत्न के समान सुधा धारा की वर्षा करने वाले कल्पवृक्ष के नीचे (बैठे हुए श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ४ ॥

रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे ।

उद्यदादित्यसंकाशे मणिसिंहासनाम्बुजे ॥ ५ ॥

पुनः कीदृशे ? मणिमण्डपे—रत्नप्रदीपावलिभिर्ज्वलद्रत्नैः प्रदीपितम् उद्भासितं दिशामन्तरालम् अवकाशो यत्र मणिसिंहासने । किंभूते ? उद्यन् प्रादुर्भवन् य आदित्यस्तस्य सङ्काशे सदृशे ॥ ५ ॥

समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसंनिभः ।

समानोदितचन्द्रार्कतडित्कोटिसमद्युतिः ॥ ६ ॥

अच्युतः किम्भूतः ?

द्रुतहाटकसन्निभः द्रवीभूतस्वर्णतुल्यः समानोदिता एकदोद्गता या चन्द्रार्काणां कोटिः तडितामपि कोटिः तत्समाद्युतिर्यस्य सः ॥ ६ ॥

जहाँ रत्नों के बने हुये जलते दीप समूहों से दिग् दिगन्तर उद्भासित हो रहे हैं ऐसे स्थल पर उदीयमान सूर्य के समान बने हुये मणि निर्मित सिंहासनाम्बुज

पर बैठे हुये उत्तप्त सुवर्ण के समान जगमगाते हुये एवं करोड़ों सूर्य चन्द्रमा तथा बिजली के समान शरीर की आत्मा वाले अच्युत श्रीकृष्ण परमात्मा का ध्यान करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ।
पीतवासाश्चक्रशङ्खगदापद्मोज्ज्वलद्भुजः ॥ ७ ॥

पुनः किम्भूतः ? सर्वाङ्गेन मुखादिना सुन्दरो रम्यः सौम्योऽनुद्धतः सर्वाभरणेन कुण्डलाद्यलंकारेण भूषितः पीतवासाः पीतेवाससी यस्य सः शङ्खचक्रगदापद्मैः उज्ज्वला दीप्ता भुजा यस्य सः ॥ ७ ॥

जो श्रीकृष्ण अपने सभी मुखादि अङ्गावयवों से मनोहर हैं संपूर्ण आभूषणों से भूषित हैं, पीताम्बर धारण किये हुए है और अपनी भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुये है। (ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये) ॥ ७ ॥

अनारतोच्छलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन् ।
वामपादाम्बुजाग्रेण मुष्णाता पल्लवच्छविम् ॥ ८ ॥

पुनः कीदृशः ? वामपादाम्बुजाग्रेण अनारतं सर्वदा उच्छलन्ती या रत्नधारा तस्या ओघः प्रवाहो यत्र स चासौ कलसश्चेति कर्मधारयः । तं स्पृशन् वामपादाम्बुजाग्रेण । किम्भूतेन ? पल्लवच्छविं मुष्णता किशलयकान्तिं चोरयता ॥ ८ ॥

नवीन किसलय की कान्ति को तिरोहित करने वाले, अपने वामपाद के अग्रभाग से निरन्तर छलकती हुई रत्नों की धारा वाले कलश का स्पर्श करते हुये परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥ ८ ॥

अष्टमहिषीध्यानमाह—

रुक्मिणीसत्यभामेऽस्य मूर्ध्निरत्नौघधारया ।
सिञ्चिन्त्यौदक्षवामस्थे स्वदोःस्थकलशोत्थया ॥ ९ ॥

रुक्मिणीसत्यभामे ध्येये । किम्भूते ? अस्य हरेर्मूर्ध्नि शिरसि रत्नप्रवाहधारया सिचन्त्यौ । कीदृशे ? दक्षवामस्थे । अत्र रुक्मिणीदक्षिणे सत्या वामे । किम्भूतया धारया ? स्वहस्तस्थघटोद्भवया ॥ ९ ॥

(अब श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों का ध्यान कहते हैं)—

जिन परमात्मा श्रीकृष्ण के शिर पर दाहिनी ओर से रुक्मिणी एवं बाईं

ओर से सत्यभामा अपने हाथों में घड़ा लेकर रत्न प्रवाह की धारा उडेल रही हैं ऐसी रुक्मिणी और सत्यभामा का ध्यान करे ॥ ९ ॥

नाग्नजितीसुनन्दे च ध्येये–एते कीदृशे ?

नाग्नजितीसुनन्दा च दिशन्त्यौ कलशौ तयोः ।
ताभ्यां च दक्षवामस्थे मित्रविन्दासुलक्ष्मणे ॥ १० ॥

तयो रुक्मिणीसत्यभामयोः स्थाने रत्नघटौ दिशन्त्यौ ददत्यौ । कीदृशे ? दक्षवामस्थे; तथा मित्रविन्दासुलक्ष्मणे दक्षिणवामस्थे ध्येये । किम्भूते ? ताभ्यां नाग्नजितीसुनन्दाभ्यां कलशं दिशन्तीभ्यां कलशं ददत्यौ ॥ १० ॥

दाहिनी ओर से नाग्नजिती रुक्मिणी को तथा बाईं ओर से सुनन्दा सत्यभामा को रत्नपूर्ण कलश दे रही हैं इस प्रकार नाग्नजिती और सुनन्दा का ध्यान करना चाहिये ॥ १० ॥

रत्नन‍द्यासमुद्धृत्यरत्नपूर्णौ घटौ तयोः ।
जाम्बवतीसुशीला च दिशन्त्यौ दक्षवामगे ॥ ११ ॥

तथा दक्षवामे जाम्बवतीसुशीले च ध्येये । किम्भूते ? रत्नन‍द्या रत्नपूर्णौ घटौ समुद्धृत्य तयोर्मित्रविन्दासुलक्ष्मणयोर्दिशन्त्यौ ॥ ११ ॥

इसी प्रकार दाहिनी ओर से मित्रविन्दा नाग्नजिती को तथा बाईं ओर से सुलक्ष्मणा सुनन्दा को रत्नपूर्ण कलश प्रदान कर रही हैं इस प्रकार मित्रविन्दा एवं सुलक्ष्मणा का भी ध्यान करना चाहिये ॥ ११ ॥

वहिः षोडशसाहस्रसंख्याताः परितः स्त्रियः ।
ध्येयाः सकलरत्नौघधारयुक्कलशोज्ज्वलाः ॥ १२ ॥

तद्वहिः परितः षोडशसाहस्रसंख्याताः प्रिया ध्येयाः । किम्भूताः ? कनकं सुवर्णं रत्नानि पद्मादीनि तेषामोघः समूहः, तस्य धारां युनक्तीति तद्युक् यः कलशः तेन दीप्ताः ॥ १२ ॥

रत्ननदी से घट को डुबोकर दाहिनी ओर से मित्रविन्दा को रत्नपूर्णकलश देती हुई जाम्बवती का एवं बाईं ओर से रत्ननदी में डुबो कर रत्नपूर्ण कलश सुलक्ष्मणा को देती हुई सुशीला का भी इसी प्रकार ध्यान करना चाहिये ॥ १२ ॥

तद्बहिश्चाष्टनिधयो ध्येयाः-कीदृशाः ।

तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयन्तो धनैर्धराम् ।
तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्चसुरादयः ॥ १३ ॥

धरां पृथ्वीं धनैः पूरयन्तः तद्बहिर्वृष्णयो यादवा ध्येयाः अनन्तरं पुरोवत् दिक्षुस्थिताः सुरादयः देवर्षिसिद्धाविद्याधरगन्धर्वप्रभृतयो रत्नाभिषेकं कुर्वन्तो ध्येयाः ॥ १३ ॥

उसके बाहर धन से पृथ्वी को पूर्ण करती हुई आठों निधियों का ध्यान करे। पुनः उसके बाहर यादवों का ध्यान करे। तदनन्तर दिशाओं में स्थित हुये देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर एवं गन्धर्वादिकों का जो रत्न के द्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण का अभिषेक कर रहे हैं उनका भी ध्यान करना चाहिये ॥ १३ ॥

ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं परमात्मानं विंशत्यर्णं मनुं जपेत् ।
चतुर्लक्षं हुनेदाज्यैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ १४ ॥

एवं परमात्मरूपम् अशरीरिणं ध्यात्वा विंशत्यक्षरं मन्त्रं चतुर्लक्षं जपेत् आज्यैर्घृतैश्चत्वारिंशत्सहस्रकं हुनेत् जुहुयात् ॥ १४ ॥

इस प्रकार परमात्मा का ध्यान कर २० अक्षर वाले मन्त्र का चार लाख जप करे तथा ४० हजार मन्त्रों से घी द्वारा अग्नि में आहुति प्रदान करे ॥ १४ ॥

विंशत्यक्षरमन्त्रमुद्धरति—शक्तीति ।

शक्तिश्रीपूर्वकोऽष्टादशार्णोविंशतिवर्णकः ।
मन्त्रेणानेन सदृशो मनुर्नहि जगत्त्रये ॥ १५ ॥

शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं श्रीः श्रीबीजम् एतद्बीजद्वयपूर्वकः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः एवं विंशत्यक्षरो भवतीत्यर्थः, अनेन मन्त्रेण सदृशो मन्त्रो जगत्त्रये नास्ति ॥ १५ ॥

शक्ति (ह्रीं) श्री (श्रीं) पूर्वक अष्टादशाक्षर मन्त्र ही २० अक्षर का मन्त्र हो जाता है। इस विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के समान त्रिलोकी में कोई मन्त्र नहीं है ॥ १५ ॥

विमर्श—प्रयोग इस प्रकार है—ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः । द्र० २.२३. ॥ १५ ॥

ऋष्यादिकं दर्शयति ।

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्रीछन्दः कृष्णस्तु देवता ।
पूर्वोक्तवदेवास्य बीजशक्त्यादिकल्पना ।। १६ ।।

अस्य मन्त्रस्य बीजशक्त्यादिकल्पना पूर्वोक्तवत् दशाक्षरवत् तथा च दशाक्षरस्य यद्बीजादिकं तदस्यापीत्यर्थः ।। १६ ।।

इस विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्ण देवता हैं । दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसके बीज और शक्त्यादि समझना चाहिये ।। १६ ।।

पूजाप्रकारमाह-कल्प इत्यादिना ।

कल्पः सनत्कुमारोक्तो मन्त्रस्याऽस्योच्यतेऽधुना ।
पीठन्यासादिकं कृत्वा पूर्वोक्तक्रमतः सुधीः ।। १७ ।।

अस्य मन्त्रस्य सनत्कुमारकथितः पूजाप्रकारः सम्प्रति मया कथ्यते । पूर्वोक्तक्रमतः दशाक्षरोक्त प्रकारेण पीठन्यासप्राणायामादिकं कृत्वा ।। १७ ।।

[अब इसके पूजा का प्रकार कहते हैं—]

अब मैं सनत्कुमार के द्वारा कही गई इस मन्त्र की पूजा की विधि कहता हूँ । साधक दशाक्षर मन्त्र में कहे गये पीठन्यास एवं प्राणायामादि क्रिया को करने के पश्चात् (पूजा करे) ।। १७ ।।

करद्वन्द्वाङ्गुलितलेष्वङ्गषट्कं प्रविन्यसेत् ।
मन्त्रेण व्यापकं कृत्वा मातृकां मनुसंपुटाम् ।। १८ ।।
संहारसृष्टिमार्गेण दशतत्वानि विन्यसेत् ।
पुनश्च व्यापकं कृत्वा मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत् ।। १९ ।।

उभयकराङ्गुलिषु उभयकरतलेषु च षडङ्गानि क्रमान्न्यसेत् । मन्त्रेणेति विंशत्यक्षरमन्त्रेण व्यापकं सर्वतनौ न्यासं कृत्वा मातृकां मातृकान्यासं मनुसपुटां विंशत्यक्षरपुटितप्रत्यक्षरां पूर्वोक्तमातृकास्थानेषु विन्यसेत् । प्रयोगश्च-ह्रीं अं ह्रीं नम, इत्यादिः । एवं भपर्यन्तं द्विरावृत्तिः । ततो ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः क्लीं क्रीं पं क्लीं क्रीं नम इत्यादिः । संहारसृष्टिमार्गेण दशतत्वानि महीसलिलप्रभृतीनि विन्यसेत् । पुनरपि विंशत्यक्षरमन्त्रेण

व्यापकन्यासं कृत्वा विंशतिमन्त्राक्षराणि तनौ स्वशरीरे न्यसेत् ॥ १८-१९ ॥

दोनों हाथ की अङ्गुलियों में तथा दोनों हाथ के तलवे में षडङ्गन्यास करे। पुनः विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र से व्यापक करे। फिर प्रत्येक मन्त्राक्षर से संपुटित मातृकाक्षरों द्वारा मातृका के तत्तत्स्थानों का न्यास करे। (प्रयोग यथा—ह्रीं अं ह्रीं नमः।) इस प्रकार भपर्यन्त दो आवृत्ति। तदनन्तर ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः क्लीं क्लीं पं क्लीं क्लीं नमः इत्यादि संहार सृष्टिमार्ग से सलिलादि दश तत्त्वों का न्यास करे। पुनः विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र से व्यापक न्यास कर उसके प्रत्येक अक्षर से सारे शरीर में न्यास करे ॥ १८-१९ ॥

विमर्श—सलिलादि दश तत्त्व के लिए २.३० देखें। और मातृका का स्थान के लिए ७.२०-२१ में देखें।

अक्षरन्यासस्थानान्याह—मूर्ध्नीति।

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः।
आनने चिबुके कण्ठे दोर्मूले हृदि तुन्दके ॥ २० ॥
नाभौ लिङ्गे तथाऽऽधारे कट्योर्जान्वोश्च जङ्घयोः।
गुल्फयोः पादयोर्न्यसेत्सृष्टिरेषा समीरिता ॥ २१ ॥

मस्तके भाले ललाटे भ्रूमध्ये इत्यादावेकैकमक्षरं न्यसेत्। आधारे लिङ्गाधस्त्रिकोणस्थाने एष सृष्टिन्यासप्रकार उक्तः ॥ २०-२१ ॥

[अब उन अक्षरों के न्यास का स्थान कहते हैं—]

(१) मस्तक पर (२) ललाट पर (३) दोनों भ्रुवों के मध्य में (४) दोनों नेत्र (५) दोनों कान (६) दोनों नाक (७) मुख (८) चिबुक (९) कण्ठ (१०) दोनों हाथों के मूल प्रदेश (११) हृदय (१२) उदर (१३) नाभि (१४) लिङ्ग (१५) आधार (लिङ्ग के नीचे त्रिकोण भाग में) (१६) दोनों कोटि (१७) दोनों जानु (१८) दोनों जङ्घा, (१९) दोनों गुल्फ तथा (२०) दोनों पैरों में इन २० स्थानों में एक एक अक्षर का न्यास करे। यहाँ तक 'सृष्टि' न्यास कहा गया ॥ २०-२१ ॥

स्थितिर्हृदादिकां सान्ता संहृतिश्चरणादिका।
विधायैवं पञ्चकृत्वः स्थित्यन्तं मूर्त्तिपञ्जरम्।
सृष्टिस्थिती च विन्यस्य षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ २२ ॥

हृदादिकांसां ता स्थितिः हृदयमारभ्यांऽसपर्यन्तन्यासः स्थितिः संहृतिश्चरणादिकापादावारभ्यमूर्द्धान्तन्यासः विधायेति। एवं पञ्चवारान् स्थित्यन्तं न्यासं कृत्वा इति गृहस्थाभिप्रायेण तथा पूर्वोक्तमूर्तिपञ्जरन्यासं कृत्वा पुनः सृष्टिस्थिती विन्यस्य सृष्टिस्थितिप्रकारेण मन्त्रवर्णान् विन्यस्य षडङ्गन्यासमाचरेत्॥ २२॥

पुनः 'हृदय' से आरम्भ कर अंस पर्यन्त 'स्थिति' न्यास करे। पैर से आरम्भ कर मूर्धा पर्यन्त संहार न्यास करे। इस प्रकार पाँच बार स्थित्यन्त न्यास कर पूर्वोक्त मूर्तिपञ्जर न्यास करे। पुनः सृष्टि स्थिति के प्रकार से तत्तद् वर्णों का न्यास कर षडङ्गन्यास करे॥ २२॥

षडङ्गानि दर्शयति—गुणेति।

गुणाग्निवेदकरणकरणाक्ष्यक्षरैर्मनोः ।

मुद्रां बध्वा किरीटाख्यां दिग्बन्धं पूर्ववच्चरेत्।

ध्यात्वा जप्त्वार्चयेद्देहे मूर्त्तिपञ्जरपूर्वकम् ॥ २३॥

मनोर्मन्त्रस्य गुणास्त्रयः अग्नयस्त्रयः वेदाश्चत्वारः करणमन्तः-करणचतुष्टयं पुनः करणचतुष्टयम् अक्षिद्वयमेतैरक्षरैर्मन्त्रसम्भवैः षडङ्गानि कार्याणीत्यर्थः।

मुद्रामिति। किरीटाख्यां किरीटाभिधां बद्ध्वा कृत्वा किरीटाद्यामिति पाठे कौस्तुभश्रीवत्समुद्रयोः परिग्रहः पूर्ववदस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धनं कुर्यात्।

आत्मपूजामाह–ध्यात्वेति।

पूर्वोदितं ध्यानं कृत्वा अष्टोत्तरशतं च जप्त्वा मूर्त्तिपञ्जरपूर्वकं देहे पूजयेत् तथाचाऽऽभ्यन्तरे प्रथमं परमेश्वराराधनं तदनु मूर्त्तिपञ्जरस्य तदनु सृष्टिस्थितिन्यास तदनु षडङ्गस्येति॥ २३॥

[षडङ्गन्यास की विधि इस प्रकार है—]

विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के तीन अक्षरों से, पुनः तीन अक्षरों से, पुनः चार अक्षरों से, इसके बाद पुनः चार अक्षरों से, पुनः दो अक्षरों से हृदयादि स्थानों पर षडङ्ग न्यास करे। पुनः किरीट मुद्राप्रदर्शित करे। पूर्ववत् अस्त्र मन्त्र (हुंफट) से दिग्बन्धन करे। पुनः पूर्वोक्त रीति से ध्यान कर १०८ बार मूल मन्त्र का जप कर मूर्त्तिपञ्जर पूर्वक शरीर में यजन करे॥ २३॥

विमर्श—वह यजन इस प्रकार करे—सर्व प्रथम अभ्यन्तर में परमेश्वराराधन, तदनन्तर मूर्त्तिपञ्जर का, फिर सृष्टि स्थितिन्यास का, तदनन्तर षडङ्ग का यजन करे ॥ २३ ॥

बाह्यपूजाप्रकारमाह—अथेति ।

अथवा ह्यऽर्चयेद्विष्णुं तदर्थं यन्त्रमुच्यते ।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं तत्र पीठं निधापयेत् ॥ २४ ॥

अथात्मपूजानन्तरं बाह्ये विष्णुं पूजयेत् । तत्पूजार्थं पूजास्थानमुच्यते । गोमयजलेन पृथिवीमुपलिप्य तत्र लिप्तस्थाने पीठं पूजाधारप्रियं पात्रं स्थापयेत् ॥ २४ ॥

[अब बाह्य पूजा का क्रम कहते हैं—]

इस [आत्म पूजा] के अनन्तर विष्णु की बाह्य पूजा का विधान कहते हैं—सर्वप्रथम गोमयोदक से पृथ्वी को लीपना चाहिए, पुनः उसी पर पूजा का प्रिय आधार पात्र स्थापित करे ॥ २४ ॥

विलिप्य गन्धपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम् ।
कर्णिकायां तु षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् ॥ २५ ॥

अनन्तरं तत्पीठं चन्दनपङ्केन विलिप्य तत्राष्टदलपद्म विलिख्य कर्णिकायां पद्मं विलिख्य मध्यस्थाने षट्कोणपुटितं वह्निपुरद्वयं लिखेत् । तत्र षट्कोणमध्ये ससाध्यं कर्मसहितं साध्यनामसहितं मन्मथं कामबीजं लिखेत् । साध्यग्रहणात् धारणार्थमप्येतद्बोद्धव्यमिति त्रिपाठिनः ॥ २५ ॥

उस आधार पीठ को घिसे चन्दन के पङ्क से लीपना चाहिए, पुनः अष्टदल कमल का आकार बनाकर कर्णिका मे षट्कोण बनावे । उसमें काम बीज के सहित साध्य नाम लिखे ॥ २५ ॥

विमर्श—प्रयोग इस प्रकार होगा—क्लीं अमुकस्य अमुक कार्यं सिद्धयतु' लिखे ॥ २५ ॥

शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्मरम् ।
प्राग्रक्षोऽनिलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम् ॥ २६ ॥

शिष्टैः सप्तदशभिरक्षरैस्तं कामबीजं वेष्टयेत् । षट्कोणस्य पूर्वनिर्ऋति-वायव्यकोणेषु श्रियं श्रीबीजत्रयं लिखेत् । शिष्टेषु त्रिषु कोणेषु पश्चिमे-

शानाग्निकोणेषु संविदं भुवनेश्वरीबीजं विलिखेत् ।। २६ ।।

उस काम बीज को १७ अक्षर ['कृष्णाय गोविन्दाय' गोपिजनवल्लभाय नमः'] के साथ लिख कर घेर देवे । पुनः षट्कोण के तीन कोणों में 'श्रीं' यह मन्त्र तीन वार लिखे और शेष तीन कोणों में 'ह्रीं' यह मन्त्र तीन बार लिख देवे ।। २६ ।।

षडक्षरं संधिषु च केशरेषु त्रिशस्त्रिशः ।
विलिखेत्स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दलाष्टके ।। २७ ।।
षड्शः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ।
भूबिम्बं च लिखेद् बाह्ये श्रीमाये दिग्विदिक्ष्वपि ।। २८ ।।

सन्धिषु षट्कोणसन्धिषु षडक्षरङ्कामबीजपूर्वक कृष्णाय नम इति षडक्षरं लिखेत् । केशरस्थाने कामगायत्रीं वक्ष्यमाणां त्रिशोऽक्षरत्रयं कृत्वा विलिखेत् पत्राष्टके वक्ष्यमाणां मालामन्त्रं षट्शः षडक्षराणि कृत्वा विलिख्य पद्मबाह्ये मातृकाक्षरैर्वेष्टयेत् । मातृकावेष्टनबाह्य एव वक्ष्यमाणस्वरूपं भूबिम्बं च लिखेत् । भूबिम्बदिग्विदिक्षु श्रीमाये दिक्षु श्रीबीजं कोणेषु भुनेश्वरीबीजं लिखेदित्यर्थः ।। २७-२८ ।।

षट् कोण की छः सन्धियों में 'क्लीं कृष्णाय नमः' इस मन्त्र का एक अक्षर लिखे । केशर स्थान में आगे कही जाने वाली २४ अक्षरों की कामगायत्री के तीन तीन अक्षर लिखे । पुनः अष्टदल कमल पर आगे कहे जाने वाले ४८ अक्षर वाले माला मन्त्र को छः छः अक्षरों के क्रम से लिखे । फिर उसे मातृकाक्षरों से घेर देवे । बाहर भूपुर लिखे । उसके पूर्वादि चारों दिशाओं में श्री बीज (श्रीं) तथा चारों कानों पर भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) लिखे ।। २७-२८ ।।

एताद्यन्त्रं हाटकादिपट्टेष्वालिख्य पूर्ववत् ।
साधितं धारयेद् यो वै सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि ।। २९ ।।

एतद्यन्त्रं पूजायामभ्युपयुक्तं यो धारयेत् स देवैरपि पूज्यते । किं कृत्वा ? सुवर्णरजतताम्रादि पट्टेषु यथाकथितद्रव्येणालिख्य पूर्ववद्यः पूजासु यद्वा पूर्वमन्त्रवत् कृतप्राणप्रतिष्ठादिक्रियम् । कीदृशम् ? साधितं यथाकथितप्रकारेण सम्पादित प्रजप्तं च ।। २९ ।।

इस यन्त्र को सोने के पत्र पर लिख कर पूर्ववत् (द्र. ५.८९) प्राण प्रतिष्ठा संपादन कर एवं यथोक्त रीति से पूजा कर जो धारण करता है वह देवताओं से

भी पूजित होता है ॥ २९ ॥

कामगायत्रीमुद्धरति ।

स्याद् गायत्रीकामदेवपुष्पबाणौ तु ङन्तकौ ।
विद्महेधीमहियुतौ तन्नोनङ्गः प्रचोदयात् ।
जप्याज्जपादौ गोपालमनूनांजनरञ्जनीम् ॥ ३० ॥

कामदेवपुष्पबाणशब्दौ क्रमेण चतुर्थ्यन्तौ । किंभूतौ ? विद्महेधीमहिशब्दसहितौ तदनु तन्नोनङ्गः प्रचोदयादिति स्वरूपम् । एवं सति काम गायत्री स्यात् भवति । जप्यादिति गोपालमन्त्राणां जपादौ जपोपक्रमे एतां कामगायत्रीं जप्यात् । यत इयं जनरञ्जनीं वश्यकरीमित्यर्थः ॥ ३० ॥

[अबकामगायत्री का उद्धार बताते हैं—]

'कामदेव' के आगे चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'विद्महे' तदनन्तर 'पुष्पबाण' शब्द के आगे चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'धीमहि' शब्द कहे । तदनन्तर 'तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्' यह शब्द कहे । इस प्रकार कामगायत्री का स्वरूप कहा गया । गोपाल के सभी मन्त्रों के अनुष्ठान के पहले इस गायत्री का जप करना चाहिये क्योंकि यह सभी लोगों को वश में करने वाली है ॥ ३० ॥

विमर्श—इसका स्वरूप इस प्रकार हुआ—'कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्' ॥ ३० ॥

मालामन्त्रमुद्धरति—नत्यन्त इत्यादिना ।

नत्यन्ते कामदेवाय ङन्तं सर्वजनप्रियम् ।
उक्त्वा सर्वजनान्ते तु संमोहनपदं तथा ॥ ३१ ॥
ज्वलज्वल प्रज्वलेति उक्त्वा सर्वजनस्य च ।
हृदयं मम च ब्रूयाद्वशङ्कुरु युगं शिरः ।
कृत्वा मदनमन्त्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः ॥ ३२ ॥

नमः शब्दान्ते कामदेवायेति स्वरूपं तदनु चतुर्थ्यन्त सर्वजनप्रियशब्दमुच्चार्य तदनु सर्वजनशब्दमुक्त्वा सम्मोहनपदं वदेत् । तदनु ज्वलज्वलप्रज्वलेति स्वरूपमुक्त्वा सर्वजनस्य हृदयं ममेति स्वरूपमुक्त्वा वशमिति स्वरूपमुक्त्वा कुरु कुरु इति स्वरूपमुक्त्वा शिरः स्वाहा इति वदेत् । एवं च सति अष्टचत्वारिंशदक्षरकैर्मदनमन्त्रः कथितः ॥ ३१-३२ ॥

[अब मालामन्त्र का उद्धार बताते हैं—]

सर्व प्रथम 'नमः' कहे तदनन्तर कामदेवाय पुनः 'सर्वजनप्रिय' के आगे एवं सर्वजन संमोहनः इन दो पदों में प्रत्येक को चतुर्थी विभक्ति से युक्त करे। पुनः 'ज्वल ज्वल प्रज्वल' यह शब्द कह कर 'सर्वजनस्य हृदयं वंश कुरु कुरु' कह कर 'स्वाहा' पद का उच्चारण करे। इस प्रकार यह मालामन्त्र का उद्धार कहा गया ॥ ३१-३२ ॥

विमर्श—इसका स्वरूप है 'नमः कामदेवाय सर्वजनप्रिया सर्वजनसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' इस प्रकार यह माला मन्त्र ४८ अक्षरों का होता है ॥ ३१-३२ ॥

विनियोगं दर्शयति—जपादाविति।

जपादौ मारबीजाद्यो जगत्त्रयवशीकरः

भूगृहं चतुरस्रं स्यात्कोणवज्राद्यलंकृतम् ॥ ३३ ॥

यन्त्रे यथोद्भूत एव जपपूजाहोमादौ तु यदि कामबीजाद्यो भवति तदा जगत्त्रयवशीकरणक्षमः यदाय मन्त्रः स्वतन्त्रेण जप्यते तदेति त्रिपाठिनः। भूगृहमुद्धरति—भूगृहमिति। कोणसंलग्नाष्टवज्रालंकृतचतुरस्रं कोणचतुष्टयसहितं भूबिम्बमिति पाठो वा ॥ ३३ ॥

[अब इस मन्त्र का विनियोग कहते हैं—]

यन्त्र में अथवा जप पूजा एवं होम वाले मन्त्रों में प्रथम यदि काम बीज लगा कर तत्तत्कार्यों को करे तो उससे सारा जगत् वश में हो जाता है।

[अब भूगृह (भूपुर) या भूबिम्ब का लक्षण कहते हैं—]

यह चौकोर होता है, इसमें चार कोने होते हैं, और कोणयुक्त आठ बज्र से अलङ्कृत होता है ॥ ३३ ॥

यन्त्रे पूजाप्रकारमाह—

पीठं पूर्ववदभ्यर्च्य मूर्त्तिसंकल्प्य पौरुषीम्।

तत्राऽऽवाह्याऽच्युतं भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत् ॥ ३४ ॥

पूर्ववत् दशाक्षरवत् गुर्वापीठपूजान्तमभ्यर्च्य तत्र पौरुषीं पुरुषाकृतिं मूर्त्तिं पारमेश्वरीं विचिन्त्य तत्र मूर्त्तावच्युतमावाह्य सकलीकृत्य भक्त्या पूजयेत्। सुषुम्णा प्रवाहनाड्यापुष्पयुक्ते उत्तानपाणीहृदयस्थमूर्त्तेस्तेजः संयोज्य तेजो देवता ब्रह्मरन्ध्रेण देवशरीरगतं विचिन्त्य स्वस्वमुद्रया बाह्ये

संस्थाप्य सन्निधाप्य संनिरुद्ध्यावगुण्ठ्य सकलीकृत्य देवताङ्गे षडङ्गन्यासं कृत्वा षोडशोपचारैः सम्पूजयेदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

[अब मन्त्र में पूजा का प्रकार कहते हैं—]

दशाक्षर मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार प्रथम गुरु का पूजन कर तदनन्तर पीठ की पूजा करे। पुनः उस पर स्थापित पुरुषाकार मूर्त्ति में परमेश्वर का ध्यान कर उसी में श्रीकृष्ण का आवाहन कर उसे स्थापित करे, उसी में परमेश्वर को निरुद्ध करे, पुनः जल से अवगुण्ठन करे, पुनः षडङ्गन्यास करे। इस प्रकार मूर्त्ति का सकलीकरण कर षोडशोपचार से परमात्मा श्रीकृष्ण का पूजन करे ॥ ३४ ॥

आसनेति—

आसनादि भूषणान्तं पुनर्न्यासक्रमात् यजेत् ।
सृष्टिस्थिती षडङ्गं च किरीटं कुण्डलद्वयम् ॥ ३५ ॥
चक्रशङ्खगदापद्ममालाश्रीवत्सकौस्तुभान् ।
गन्धाक्षतप्रसूनैश्च मूलेनाभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

आसनादि विभूषान्तं यथा स्यादेवं पूजयेत् आसनमारभ्य भूषान्तैरुपचारैः पूजयेदित्यर्थः। पुनर्न्यासक्रमात् सृष्ट्यादीन् यजेत्। प्रथमं सृष्ट्यादीनां न्यासं विधाय ततस्तान् पूजयेत्, अथवा न्यासक्रमाद्यथा तेषां न्यासः कृतस्तेन क्रमेणेत्यर्थः ॥ ३५ ॥

गन्धाक्षतेति—अक्षता यवा गन्धाक्षतपुष्पैश्च पूर्ववत् मूलमन्त्रेण कृष्णं पूजयित्वा सप्तावृतीः सम्पूजयेदित्यर्थः ॥ ३६ ॥

'आसन दान' से आरम्भ कर 'भूषण दान' पर्यन्त उपचारों से श्रीकृष्ण की पूजा करे। पुनः न्यास के क्रम से सृष्टि स्थिति तथा षडङ्ग न्यास कर उसी क्रम से सृष्टि स्थिति षडङ्ग किरीट दोनों कुण्डल, शङ्ख, चक्र, गदा, वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ का तथा श्रीकृष्ण का मूल मन्त्र से गन्धाक्षत एवं पुष्पों से पूर्ववत् अर्चन करे ॥ ३५-३६ ॥

आवरणान्याह—आदाविति।

आदौ वह्निपुरद्वन्द्वकोणेष्वङ्गानि पूजयेत् ।
सहृच्छिरः शिखावर्मनेत्रमस्त्रमिति क्रमात् ॥ ३७ ॥

प्रथमं वह्निपुरयुगलसम्बन्धिषट्कोणेषु आग्नेयकोणमारभ्य षडङ्गानि

प्रणम्य परिवारगणैः सह केशवं हृदये उद्वासयेत् उत्तोल्य स्थापयेत् ।। ४३ ।।

तदनन्तर [छत्र एवं चामर आदि] राजोपचार प्रदान कर परमात्मा श्रीकृष्ण की स्तुति करे और नमस्कार करे। पुनः आवरण सहित उनका उद्वासन कर अपने हृदय प्रदेश में स्थापित करे ।। ४३ ।।

न्यस्त्वेति ।

न्यस्त्वाऽऽत्मानं समभ्यर्च्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ।
रत्नाभिषेकध्यानेज्याविंशत्यर्णाश्रितेरिता ॥ ४४ ॥
जपहोमार्चनैर्ध्यानैर्योऽमुं प्रभजते मनुम् ।
तद्वेश्म पूर्यते रत्नैः स्वर्णधान्यैरनारतम् ॥ ४५ ॥

न्यस्त्वा पूजापूर्वोक्तं सृष्टयादिन्यास कृत्वा आत्मपूजां विधाय तन्मयः पूज्यदेवस्वरूपो भूत्वा पूजाङ्गमन्त्रं जपेत् ।

प्रकृतमुपसंहरति—रत्नेति ।

ध्यानं च इज्या च पूजा च इत्यर्थः । तथा च यस्यां पूजायां कृष्णस्य रत्नाभिषेकध्यानं तत्र कृष्णस्य विंशत्यक्षरोक्ता पूजेयमुक्ता ।

फलं दर्शयति—जपेति । जपादिभिर्यो अमुं मन्त्रं सेवते तस्य गृहं पद्मरागादिभिः रत्नैः काञ्चनैर्धान्यैश्चाऽनारतमनवरतं पूर्यते ।। ४४-४५ ।।

पुनः अपने शरीर में पूर्वोक्त सृष्टयादि न्यास कर स्वयं अपनी पूजा करे। पुनः श्रीकृष्ण स्वरूप बनकर मन्त्र का जप करे। इस प्रकार विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के जप के लिये रत्नाभिषेक युक्त परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान एवं पूजा का प्रकार हमने कहा। जो इस प्रकार जप, होम एवं ध्यान द्वारा रत्नाभिषिक्त परमात्मा श्रीकृष्ण की सेवा करता है, उसका घर नाना प्रकार के रत्नों, सुवर्णों एवं धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता हैं ।। ४४-४५ ।।

पृथ्वी पृथ्वी करे तस्य सर्वसस्यकुलाकुला ।
पुत्रैर्मित्रैः सुसम्पन्नः प्रयात्यन्ते परां गतिम् ।। ४६ ।।

तथा पृथ्वी महती—पृथिवी साधकस्य करे आयत्ता भवति । किंभूता ? सर्वसस्य धान्यादेः कुलेन समूहेनाकुला परिपूर्णा तथा औरसपुत्रैः सुहृद्भिश्च समेतः सन् शरीरपातानन्तरं विष्णुलोकं गच्छति ।। ४६ ।।

सम्पूर्ण धन-धान्य एवं शस्त्रों से युक्त महती पृथ्वी ऐसे पुरुष के हस्तगत हो जाती है, वह पुत्र पौत्र से परिपूर्ण हो अन्त में विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है ॥ ४६ ॥

प्रयोगं दर्शयति—वह्नाविति ।

वह्नावभ्यर्च्य गोविन्दं शुक्लपुष्पैः सतण्डुलैः ।
आज्याक्तैरयुतं हुत्वा भस्म तन्मूर्द्धिन धारयेत् ।
तस्याऽन्नादिसमृद्धिः स्यात्तद्वशे सर्वयोषितः ॥ ४७ ॥

यथोक्तप्रकारेणाग्निमाधाय तत्र यथोक्तप्रकारेण गोविन्दं सम्पूज्य घृताक्तैस्तण्डुलसहितैः शुक्लपुष्पैर्दशसहस्राणि हुत्वा होमाग्निभस्म यः पुमान् मूर्द्धिन धारयेत् तस्य नानासमृद्धिः सम्पत्तिर्भवति सर्वाश्च स्त्रियस्तदायत्ता भवन्ति ॥ ४७ ॥

शास्त्रीय रीति से बने कुण्डादि अग्नि स्थापन कर उसमें श्री गोपाल जी की अर्चना कर घी में डुबोये गये चावल एवं शुक्ल पुष्प से दस हजार आहुति दे । पुनः उसका भस्म शिर पर धारण करे तो उसकी निरन्तर अन्नादि की वृद्धि होती रहती है । किं बहुना समस्त स्त्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं ॥ ४७ ॥

प्रयोगान्तरमाह—आज्यैरिति ।

आज्यैर्लक्षं हुनेद्रक्तपद्मैर्वा मधुराप्लुतैः ।
श्रिया तस्यैन्द्रमैश्वर्यं तृणलेशायते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

घृतैः केवलैः घृतमधुशर्करायुतैः रक्तपद्मैर्वा यो लक्षं जुहोति तस्य साधकस्य श्रिया लक्ष्म्या कृत्वा इन्द्रसम्बन्धि ऐश्वर्यं तृणसमानं भवति ध्रुवमुत्प्रेक्षायाम् ॥ ४८ ॥

[अब अन्य प्रयोग कहते हैं—]

केवल मात्र घृत से अथवा घृत में परिप्लुत रक्तपद्मों से ऊपर कहे गये मन्त्र से एक लाख आहुति अग्नि में प्रदान करे तो उसके घर में निश्चित ही इतनी संपत्ति आ जाती है कि इन्द्र की भी संपत्ति उसके सामने तुच्छ हो जाती है ॥ ४८ ॥

प्रयोगान्तरमाह—शुक्लेति ।

शुक्लादिवस्त्रलाभाय शुक्लादिकुसुमैर्हुनेत् ।
त्रिमध्वक्तैर्दशशतमाज्याक्तैर्वाऽष्टसंयुतम् ॥ ४९ ॥

शुक्लादिवस्त्रप्राप्त्यर्थं घृतमधुशर्करासहितैः शुक्लपुष्पैः घृताक्तैर्वा अष्टाधिकं दशशतं जुहुयात् ।। ४९ ।।

शुक्लादि नाना वस्त्रों की प्राप्ति के लिये त्रिमधु (शर्करा, घृत एवं मधु) से परिपूर्ण शुक्ल पुष्पों से अथवा मात्र घृत से परिपूर्ण शुक्ल पुष्पों से एक हजार आठ आहुति देना चाहिये ।। ४९ ।।

प्रयोगान्तरमाह—क्षौद्रसिक्तैरिति ।

क्षौद्रसिक्तैः सितैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम् ।
हुनेन्नित्यं स षड्मासान् पुरोधा नृपतेर्भवेत् ।। ५० ।।

मधुमिश्रितैः शुक्लपुष्पैरष्टाधिकसहस्रं प्रत्यहं यो जुहुयात् स षट्के अतीते राज्ञः पुरोहितो भवति ।। ५० ।।

[प्रयोगान्तर कहते हैं ।] मधु परिप्लुत शुक्ल पुष्पों से जो १००८ बार नित्य उपर्युक्त मन्त्र से होम करता है वह छः महीने में ही राजा का पुरोहित (पूज्य) बन जाता जाता हैं ।। ५० ।।

दशाष्टेति ।

दशाष्टादशवर्णोक्तं जपध्यानहुतादिकम् ।
विदध्यात्कर्म चाऽनेन ताभ्यामप्यत्र कीर्त्तितम् ।। ५१ ।।

दशाष्टदशाक्षरयोरुक्तं जपध्यानहोमादिकम् अनेन मन्त्रेण कुर्यात् । अत्र मन्त्रे कथितं प्रयोगादिकं ताभ्यां च कुर्यात् ।। ५१ ।।

दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र में कहे गये जप, ध्यान एवं होमादि कार्यों को इस मन्त्र से संपादित करे । इस प्रकार इस मन्त्र में कहे गये समस्त प्रयोगों को उन दोनों मन्त्रों से किया जा सकता है ।। ५१ ।।

मन्त्रान्तरमाह—श्रीशक्तिरिति ।

श्रीशक्तिस्मरकृष्णाय गोविन्दाय शिरो मनुः ।
रव्यर्णो ब्रह्मगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरथाऽस्य तु ।। ५२ ।।

श्रीबीजं शक्तिबीजं स्मरः कामबीजं कृष्णाय गोविन्दायेति स्वरूपं शिरः स्वाहेति स्वरूपं रव्यर्णो द्वादशार्णो मन्त्रः ऋषिरादौ येषां ते ऋष्यादयो ब्रह्मगायत्रीकृष्णा ऋष्यादय इत्यर्थः । अस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः कृष्णो देवता इत्यर्थः । बीजशक्त्यादिपूर्ववत् ।। ५२ ।।

श्री बीज (श्रीं) शक्ति बीज (ह्रीं) काम बीज (क्लीं) पूर्वक कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा' (ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा) इस द्वादशाक्षरात्मक मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द हैं एवं परमात्मा श्रीकृष्ण देवता हैं ।। ५२ ।।

बीजैरित्यादि ।

बीजैस्त्रिवेदयुग्मार्णैरङ्गषट्कमिहोदितम् ।
विंशत्यर्णोदितजपध्यानहोमार्चनक्रियाः ।
मन्त्रोऽयं सकलैश्वर्यकाङ्क्षिभिः सेव्यताम्बुधैः ।। ५३ ।।

इह मन्त्रे अङ्गषट्कं षडङ्गं कथितं कैस्त्रिभिर्बीजैरङ्गत्रयं तथा त्रिवेदयुग्मार्णैः त्रिभिश्चतुर्भिर्द्वाभ्यां चाऽपराङ्गत्रयमिति ।

विंशेति । अयं मन्त्रः विंशत्यक्षरमन्त्रोक्तजपध्यानहोमपूजासहितः सकलैश्वर्यकामैः पण्डितैरुपास्यताम् ।। ५३ ।।

[इस मन्त्र में ६ अङ्ग हैं—]

प्रथम कहे गये तीन बीज तीन अङ्ग हैं । पुनः 'कृष्णाय' यह तीन अक्षर चौथा अङ्ग है । 'गोविन्दाय' चार अक्षर पाँचवाँ अङ्ग है एवं 'स्वाहा' यह दो अक्षर छठा अङ्ग है । विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के लिये कही गई सारी जप, ध्यान, होम एवं अर्चा की क्रिया इस मन्त्र से भी करनी चाहिये । अथवा सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान इस मन्त्र का भी प्रयोग करे ।। ५३ ।।

मन्त्रान्तरमाह—श्रीति ।

श्रीशक्तिकामपूर्वोऽङ्गजन्मशक्तिरमान्तकः ।
दशाक्षरः सरावादौ स्याच्चेच्छक्तिरमायुतः ।
मन्त्रौ विकृतिरव्यर्णावाचक्राद्यङ्गिनाविमौ ।। ५४ ।।

श्रीबीजं भुवनेश्वरीबीजं कामबीजं च, एते पूर्वे यस्य दशाक्षरस्य तथाऽङ्गजन्म कामबीजं शक्तिः भुवनेश्वरीबीजं रमाश्रीबीजम्—एते अन्ते यस्य दशाक्षरस्य । एवं भूताद्यन्तविशिष्टो दशाक्षरो षोडशाक्षरमन्त्रो भवति तथा स एव दशाक्षरो मन्त्रः आदौ शक्तिरमायुतः भुवनेश्वरीश्रीबीजसहितश्चेत्तदा द्वादशाक्षरमन्त्रो भवति । एवं च सति इमौ विकृतिरव्यर्णौ षोडशाक्षरद्वादशाक्षरौ मन्त्रौ आचक्राद्यङ्गिनौ दशाक्षरोक्तानि आचक्राद्यङ्गानि ययोस्तादृशौ ज्ञेयो ।। ५४ ।।

दशाक्षर मन्त्र के पहले श्रीबीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) लगावे और अन्त में कामबीज (क्लीं), पुनः शक्तिबीज (ह्रीं), पुनः रमाबीज (श्रीं) लगावे। इस प्रकार 'श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय नमः क्लीं ह्रीं श्रीं' यह षोडश अक्षर का मन्त्र हुआ। यदि इसी दशाक्षर मन्त्र के आदि में शक्तिबीज (ह्रीं) एवं रमाबीज (श्रीं) लगा दिया जाय तो द्वादशाक्षरात्मक मन्त्र निष्पन्न हो जाता है। इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों के भी दशाक्षरमन्त्रोक्त चक्रादि अङ्ग समझना चाहिए ॥ ५४ ॥

विंशत्यर्णेति ।

विंशत्यर्णोक्त यजनविधी ध्यायेदथाऽच्युतम् ।
वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यन्तं स्वाङ्कगे प्रिये ।
पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रदरोज्ज्वलम् ॥ ५५ ॥

विंशत्यक्षरकथितपूजाप्रकारावेतौ अथानन्तरम् अच्युतं चिन्तयेत्। कीदृशम् ? स्वाङ्कगे स्वक्रोडस्थिते प्रिये लक्ष्मीसरस्वत्यौ, यद्वा रुक्मिणीसत्यभामे श्लिष्यन्तम् आलिङ्गन्तम् । काभ्याम् ? वरदाभयहस्ताभ्याम्, वरं ददातीति वरदः, न विद्यते भयं यस्मात्स वरदाभयौ च तौ हस्तौ चेति वरदाभय हस्तौ ताभ्यामित्यर्थः । प्रिये कीदृशे ? पद्मं सामान्यपङ्कजम् उत्पलं नीलपद्मं ते करयोर्ययोस्ते तादृग्विधे । पुनः कीदृशम् ? ताभ्यां प्रियाभ्यां श्लिष्टम् आलिङ्गितम् । पुनः कीदृशम् ? शङ्खचक्राभ्यामुज्ज्वलम् ॥ ५५ ॥

इन दोनों मन्त्रों के पूजा के प्रकार विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र में कह आये हैं। अब इनका ध्यान कहते हैं—अपने क्रोड में स्थित दोनों हाथों में कमल लिये हुये लक्ष्मी, सरस्वती का अथवा रुक्मिणी, सत्यभामा का वरमुद्रा एवं अभयमुद्रा से आलिङ्गन करते हुये तथा उन दोनों प्रियाओं से स्वयं भी आलिङ्गित एवं शङ्ख और चक्र से उज्ज्वल दिखाई पड़ने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥ ५५ ॥

पुरश्चरणजपादिकमाह—दशलक्षेत्यादि ।

दशलक्षं जपेदाज्यैस्तावत्सहस्रहोमतः ।
सिद्धाविमौ मनू सर्वसम्पत्सौभाग्यदौ नृणाम् ॥ ५६ ॥

दशलक्षसंख्यं जपेत् आज्यैर्घृतैस्तावत्संख्यसहस्रहोमतो दशसहस्रहोमतः सिद्धौ इमौ मन्त्रौ मनुष्याणां सर्वैश्वर्यसर्वजनप्रियप्रदौ भवतः ॥ ५६ ॥

[पुरश्चरण के लिये दो मन्त्रों में से किसी एक का दश लाख जप करे, एवं घी से दस हजार होम करे तो इस मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। सिद्ध हो जाने पर ये दोनों मन्त्र मनुष्यों को सर्वैश्वर्य एवं सर्वजनप्रियता प्रदान करते हैं ॥ ५६ ॥

इदानीं क्रमेण मन्त्रमुद्धरति—मारशक्तीत्यादिना।

मारशक्तिरमापूर्वः शक्तिश्रीमारपूर्वकः।
श्रीशक्तिमारपूर्वश्च दशार्णो मनवस्त्रयः ॥ ५७ ॥

अत्राद्यः कामभुवनेश्वरीश्रीबीजपूर्वो दशाक्षरः भुवनेश्वरी श्रीर्मारः [त्रा] पूर्वो यस्येति द्वितीयः श्रीभुवनेश्वरीकामबीजपूर्वो दशाक्षर इति तृतीयः ॥ ५७ ॥

काम बीज (क्लीं) भुवनेश्वरी, बीज (ह्रीं), श्रीबीज (श्रीं) पूर्वक दशाक्षर एक मन्त्र, इसी प्रकार शक्ति (ह्रीं), श्री (श्रीं) एवं मार (क्लीं) पूर्वक दशाक्षर दूसरा मन्त्र, एवं श्री (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), और मार (क्लीं) पूर्वक दशाक्षर यह तृतीय मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

विमर्श—'क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह प्रथम मन्त्र तथा 'ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह दूसरा और 'श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह तीसरा मन्त्र हुआ ॥ ५७ ॥

एतेषां मनुवर्याणामङ्गर्ष्यादिदशार्णवत्।
शङ्खचक्रधनुर्बाणपाशाङ्कुशधरोऽरुणः ।
वेणुं धमन् धृतं दोर्भ्यां कृष्णो ध्येयो दिवाकरे ॥ ५८ ॥
आद्ये मनौ ध्यानमेवं द्वितीये विंशदर्णवत्।
दशार्णवत् तृतीयेऽङ्गदिक्पालाद्यैः समर्चना ॥ ५९ ॥
पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसैर्हुनेत्।
ततः सिध्यन्ति मनवो नृणां सम्पत्तिकान्तिदाः ॥ ६० ॥

एतेषामित्यादि सुगमम्। दिवाकरे सूर्यमण्डले ॥ ५८-६० ॥

इन सभी तीनों मन्त्रों के अङ्ग, ऋषि, छन्द तथा देवता दशाक्षर मन्त्र के समान ही समझना चाहिये। सूर्यमण्डल में शङ्ख, चक्र, धनुष, बाण, पाश और अङ्कुश

धारण किये हुये अरुण वर्ण वाले, दोनों हाथों से वेणु बजाते हुये परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान प्रथम मन्त्र के लिये कहा गया है; द्वितीय मन्त्र के लिये यह विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के लिये कहा गया ध्यान करे एवं तृतीय मन्त्र के लिये दशाक्षर मन्त्र में कहे गये ध्यान को करना चाहिये। अङ्गों तथा दिक्पालों की अर्चना भी तीनों में पूर्ववत् करनी चाहिये। इन तीनों मन्त्रों में किसी एक का पाँच लाख जप करे और दस हजार से पायस का हवन करे तो ये मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध होने पर ये मन्त्र मनुष्यों को संपत्ति एवं कान्ति प्रदान करते हैं ॥ ५८-६० ॥

स्पष्टं मन्त्रान्तरमुद्धरति—अष्टादशार्णेति।

अष्टादशार्णो मारान्तो मनुः सुतधनप्रदः।
ऋष्याद्यष्टादशार्णोक्तं मारारूढस्वरैः क्रमात्।
अङ्गान्यस्य मनोरङ्ग दिक्पालाद्यैः समर्चना ॥ ६१ ॥

कामबीजान्तः पूर्वोक्ताष्टादशाक्षरमन्त्रः सुतधनप्रदः मारारूढैर्नपुंसक-रहितकामबीजसहितैः दीर्घस्वरषट्कैः क्रां क्रीमित्यादि षट्कैः क्रमादस्य मनोः षडङ्गानि ॥ ६१ ॥

अष्टादशाक्षर मन्त्र के अन्त में काम बीज (क्लीं) लगाने से निष्पन्न मन्त्र सुत और धन प्रदान करता है। अष्टादशाक्षर मन्त्र में कहे गये ऋषि-छन्द तथा देवता-इस मन्त्र के लिये भी विहित हैं। 'क्रां क्रीं क्रू क्रैं क्रौं क्रः' ये ६ इस मन्त्र के अङ्ग कहे गये हैं ॥ ६१ ॥

ध्यानमाह—

पाणौ पायसपक्वमाहितरसं बिभ्रन्मुदा दक्षिणे
सव्ये शारदचन्द्रमण्डलनिभं हैयङ्गवीनं दधत्।
कण्ठे कल्पितपुण्डरीकनखरमप्युद्दामदीप्तिं वहन्
देवो दिव्यदिगम्बरो दिशतु वः सौख्यं यशोदाशिशुः ॥ ६२

पाणौपायसपक्वं सुपक्वं पायसं सुस्वाद्वित्यर्थः, अत्युद्दामदीप्तिम् अत्युद्भटकान्ति दिव्य इति दिव्यश्चासौ दिगम्बरश्चेति समासः दिव्यदेव-स्वरूप इति ॥ ६२ ॥

[अब इस मन्त्र का ध्यान कहते हैं—]

जो अपने दाहिने हाथ में सरस पका हुआ पायस (परमान्न या खीर) प्रसन्नता

पूर्वक धारण किये हुये हैं, तथा बायें हाथ में शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान नवनीत का गोला लिये हुये हैं और कण्ठ में श्वेत कमल के समान देदीप्यमान व्याघ्रनख धारण किये हुये हैं ऐसे दिव्य दिगम्बर (नङ्गे घिड़ङ्गे) देवता स्वरूप यशोदानन्दन परमात्मा श्रीकृष्ण आप सभी को सौख्य प्रदान करें। इस प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान करें ॥ ६२ ॥

दिनशोऽभ्यर्च्य गोविन्दं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।
जप्त्वा दशांशं जुहुयात्सिताज्येन पयोऽन्धसा ॥ ६३ ॥

सिताज्येन पयोऽन्धसाशर्करांघृतसहितेन परमान्नेन ॥ ६३ ॥

इस प्रकार के परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर प्रतिदिन उनका पूजन करे और ३२ लाख मन्त्र का जप करे। उसका दशांश शर्करा एवं घृतमिश्रित खीर से हवन करे ॥ ६३ ॥

पद्मस्थं देवमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखाम्बुजे ।
क्षीरेण कदलीपक्वैर्दध्ना हैयङ्गवेन च ॥ ६४ ॥
सुतार्थी तर्पयेद्देवं वत्सराल्लभते सुतम् ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणादेव सिद्ध्यति ॥ ६५ ॥

क्षीरेणेत्यादिना तर्पणं यदुक्तं तज्जलेनैव क्षीरादिद्रव्यबुद्ध्या कार्यम् ॥ ६४–६५ ॥

पुनः कमल पर बैठे हुए परमात्मा श्रीकृष्ण की पूजा कर उनके मुख में दूध, पके हुये केले, दही तथा नवनीत मिलाकर तर्पण करे ॥ ६४ ॥

पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुरुष यदि इस प्रकार श्रीकृष्ण का पूजन कर उपर्युक्त पदार्थों से तर्पण करे तो वह एक वर्ष के भीतर ही पुत्र प्राप्त करता है। इतना ही नहीं वह जिस जिस वस्तु की अभिलाषा करता है, वह सब उसे इस तर्पण द्वारा प्राप्त हो जाती है ॥ ६५ ॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—वाग्भवमिति ।

वाग्भवं मारबीजं च कृष्णाय भुवनेश्वरी ।
गोविन्दाय रमा गोपीजनवल्लभङेशिरः ॥ ६६ ॥

चतुर्दशस्वरोपेतः शुक्लः सर्गी तदूर्ध्वतः।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वस्य साधकः ॥ ६७ ॥

वाग्भवम् ऐम् इति बीजं मारबीजं क्लीं कृष्णयेति स्वरूपं भुवनेश्वरी-बीजं ह्रीं गोविन्दायेति स्वरूपं रमाश्रीबीजं गोपीजनवल्लभ इति स्वरूपं ङे चतुर्थ्येकवचनं शिरः स्वाहा शुक्लः शकारश्चतुर्दशस्वरेणोपेत औकारसहितः शुक्र इति पाठे दन्त्य सकारः सं शुक्रात्मने नम इति, न्यासविधानात् सर्गी विसर्गसहितः तदूर्ध्वत इति तस्य उद्ध्वम् तस्य एकविंशत्यक्षरस्य उद्ध्वतः प्रथमबीजमेतदिति रुद्रधरः।

तदूर्ध्वतः—

स्वाहाकारोर्ध्वतः इति लघुदीपिकाकारः।

अनेन बीजेन सह द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो भवति। कीदृशोऽयम्? वचने-श्वरत्वदाता ॥ ६६–६७ ॥

वाग्भव (ऐं) और मारबीज (क्लीं) पूर्वक 'कृष्णाय' तदनन्तर भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं), पुनः 'गोविन्दाय', तदनन्तर रमा बीज (श्रीं), 'तदनन्तर गोपीजन वल्लभाय स्वाहा', तदनन्तर शुक्ल (शकार) उस पर चौदहवाँ स्वर (औकार) उसे विसर्ग सहित करे। इस प्रकार यह २२ अक्षरात्मक मन्त्र का उद्धार हुआ। इस मन्त्र का जप वागीश्वरत्व प्रदान करता है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श—इसका स्वरूप 'ऐं क्लीं कृष्णाय, ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा शौः' है ॥ ६६-६७ ॥

अष्टादशार्णेति।

अष्टादशार्णवत्सर्वमङ्गष्यादिकमस्य तु।
पूजा च विंशत्यर्णोक्ता प्रतिपत्तिस्तु कथ्यते ॥ ६८ ॥

अस्य ऋषिच्छन्दोधिष्टातृदेवताबीजशक्तयङ्गानि सर्वाणि अष्टादशार्ण-वत् यथाष्टादशाक्षरमन्त्रे तथात्रापीत्यर्थः। पूजा पुनः विंशत्यक्षरकथिता बोद्धव्या प्रतिपत्तिर्ध्यानं कथ्यते पुनः ॥ ६८ ॥

इसके ऋषि, छन्द एवं अधिष्ठातृ देवता अष्टादशाक्षरात्मक मन्त्र के समान ही हैं, और पूजा का प्रकार विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के प्रसङ्ग में कहा जा चुका है, अब इसका ध्यान कहते हैं ॥ ६८ ॥

वामोद्र्ध्वेति ।

वामोद्र्ध्वहस्ते दधतं विद्यासर्वस्वपुस्तकम् ।
अक्षमालां च दक्षोद्र्ध्वे स्फाटिकीं मातृकामयीम् ॥ ६९ ॥

शब्दब्रह्ममयं वेणुमधःपाणिद्वयेरितम् ।
गायन्तं पीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ॥ ७० ॥

बर्हिबर्हकृतोत्तंसं सर्वज्ञं सर्ववेदिभिः ।
उपासितं मुनिगणैरुपतिष्ठेद्धरिं सदा ॥ ७१ ॥

श्लोकत्रयेणात्रादिकुलकम् ।

हरिम् उपतिष्ठेत् ध्यायेत् । वामोद्र्ध्वहस्ते विद्यासर्वस्वपुस्तकं वेदान्तपुस्तकं धारयन्तं दक्षोद्र्ध्वे पञ्चाशत्संख्यमातृकाक्षरसमितां पञ्चाशत्स्फटिकबद्धामक्षमालां धारयन्तम् । पुनः कीदृशम् ? अधः स्थितकरद्वयेन ईरितं वादितं शब्दब्रह्ममयं शब्दब्रह्मस्वरूपं वेणुरन्ध्रं दधानम् । पुनः कीदृशम् ? वेणुनैव गायन्तम् । पुनः कीदृशम् ? पीतवस्त्रं यस्य तं श्यामवर्णं च । पुनः कीदृशम् ? कोमला मनोहरा छविर्यस्य स तथा तम् । पुनः कीदृशम् ? बर्हीमयूरस्तस्य बर्हं पिच्छं तेन कृत उत्तंसः शिरोभूषणं येन तम् । पुनः कीदृशम् ? सर्वसाक्षिणं पुनः कीदृशम् ? सर्वदा उपासितं सेवितम् । कैः ? सर्ववेदिभिः अतीतानागतज्ञैः मुनिगणैः सनकादिभिः ॥ ६९-७१ ॥

ऊपर के बायें हाथ में वेदान्त की पुस्तक धारण किये हुये तथा ऊपर के हाथ में मातृकामयी स्फटिकनिर्मित जपमाला धारण किये हुये एवं अपने नीचे के दोनों हाथों से शब्दब्रह्ममय वेणु को पकड़कर गाते हुये पीताम्बरधारी श्यामवर्ण वाले, मनोहर शोभायुक्त मयूरपुच्छनिर्मित शिरोभूषण धारण किये हुये, सर्वसाक्षी तथा भूतभविष्यवेत्ता मुनिगणों से उपासित परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥ ६९-७१ ॥

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवं प्रमदावेशविलासं भुवनेश्वरम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रमिमं मन्त्री सुसंयतः ॥ ७२ ॥

एवं पूर्वोक्तं भुवनेश्वरं श्रीकृष्णं प्रमदा स्त्री तस्या वेशः संस्थानविशेषः

तस्य विलास आल्हादो यस्य तं प्रमदारूपधारिणमित्यर्थः। यद्वा स्त्रीरूपधरं स्त्रीविलासञ्च ध्यात्वा इमं मन्त्रं लक्षचतुष्टयं जपेत्सुसंयतः सन् पूर्वोक्त-पुरश्चरणवान् ॥ ७२ ॥

[अब पुरश्चरण की प्रक्रिया कहते हैं—]

इस प्रकार प्रमदावेश धारण किये हुए एवं स्त्रियोचित हावभाव प्रदर्शित करते हुये भुवनेश्वर श्रीकृष्ण का ध्यान कर उपर्युक्त द्वाविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र का जप समाहित चित्त होकर करे ॥ ७२ ॥

होममाह—पलाशेति।

पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम्।
जुहुयात्कर्मणाऽनेन मनुः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

घृतमधुशर्करान्वितैः पलाशपुष्पैश्चत्वारिंशत्सहस्रकं जुहुयात्। [अनेन विधिना अवश्यं मन्त्रः सिध्यति ॥ ७३ ॥

[अब होमविधान कहते हैं—]

मधु, शर्करा एवं घृत से परिप्लुत पलाशपुष्प से चालीस हजार आहुति देवे तो इस कर्म से अवश्य ही इस मन्त्र की सिद्धि हो जाती है ॥ ७३ ॥

फलं दर्शयति—योऽस्मिन्निति।

योऽस्मिन्निष्णातधीर्मन्त्री वर्तते वक्त्रगह्वरात्।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य गङ्गाप्रवाहवत् ॥ ७४ ॥

यो मन्त्री अस्मिन् मन्त्रे निष्णातधीर्दत्तमतिर्वर्तते तस्य साधकस्य वक्त्रगह्वरात् मुखमध्यतो गद्यपद्यमयीवाणी प्रवर्त्तते गङ्गाप्रवाहवत् विशुद्धानवरतत्वेन गङ्गाप्रवाहेणोपमा ॥ ७४ ॥

जो मन्त्री इस मन्त्र में अपनी बुद्धि श्रद्धायुक्त कर लगाये रहता है उसके मुख विवर से गद्य-पद्यमयी वाणी गङ्गा के प्रवाह के समान अनवरत प्रवाहित होती है ॥ ७४ ॥

सर्वेति।

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु सङ्गीतेषु च पण्डितः।
संवित्तिं परमां लब्ध्वा चाऽन्ते भूयात्परम्पदम् ॥ ७५ ॥

सर्वेषु ऋग्वेदादिषु शास्त्रेषु वेदान्तेषु पण्डितो विवेकबुद्धियुक्तः सन् संवित्तिम् उत्कृष्टज्ञानं प्राप्य अन्ते देहावसाने विष्णुलोकं प्राप्नोति ॥ ७५ ॥

ऐसा पुरुष संपूर्ण वेदशास्त्र और सङ्गीत का पण्डित हो जाता है और संपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मरणोपरान्त विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥ ७५ ॥

मन्त्रान्तरमाह—तारमिति ।

तारं हृद्भगवान् ङेऽन्तो नन्दपुत्रपदं तथा ।
अनन्दान्ते वपुषेऽस्थ्यग्निमायान्ते दशवर्णकः ॥ ७६ ॥
अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ब्रुवे द्वात्रिंशदक्षरम् ।
नन्दपुत्रपदं ङेऽन्तं श्यामलाङ्गं पदं तथा ।
ङेन्ता बालवपुःकृष्णगोविन्दा दशवर्णकः ॥ ७७ ॥

तारं प्रणवः हृत् नमः ङेऽन्त चतुर्थ्यन्तो भगवान् भगवत इति स्वरूपं नन्दपुत्रं तथा ङेन्तं चतुर्थ्यन्तं नन्दपुत्रायेति पदान्ते आनन्द इति शब्दशेषे वपुषे इति स्वरूपम् । अस्थिशकारः अग्नी रेफः माया दीर्घ ईकारः तथा च श्रीबीजम् अस्याऽन्ते दशार्णकः दशाक्षरमन्त्रः एतेनायं मन्त्रः अष्टाविंशत्यक्षरो भवति ।

अधुना द्वात्रिंशदक्षरमन्त्रान्तरमुद्धरति—ब्रुवे वच्मीति ।

प्रतिज्ञामन्त्रमुद्धरति—नन्देति ।

नन्दपुत्रपदं चतुर्थ्यन्तं श्यामलाङ्गं पदमपि चतुर्थ्यन्तं बालवपुः कृष्णगोविन्दशब्दाश्च प्रत्येकं चतुर्थ्यन्ताः । अनन्तरं पूर्वोक्तदशाक्षरमन्त्रः एतेन द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो भवति ॥ ७६-७७ ॥

तार (प्रणव ॐकार) उसके बाद 'नमः' पद, तदनन्तर चतुर्थ्यन्त भगवत् पद (भगवते), फिर नन्द पुत्र का चतुर्थ्यन्त (नन्दपुत्राय), पुनः आनन्द युक्त वपुषे पद (आनन्दवपुषे), तदनन्तर अस्थि (शकार), अग्नि रेफ, उसे माया (ईकार) से संयुक्त कर अर्थात् 'श्रीं' पद इसके बाद दशाक्षर मन्त्र इस प्रकार अष्टाविंशत्यक्षर का यह मन्त्रोद्धार हुआ ॥ ७६ ॥

विमर्श—इसका स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये—'ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' ॥ ७६ ॥

[अब द्वात्रिंशदक्षरात्मक मन्त्र कहते हैं—]

चतुर्थ्यन्त 'नन्दपुत्र' पद (नन्दपुत्राय), पुनः चतुर्थ्यन्त श्यामलाङ्ग पद (श्याम-

लाङ्गाय), पुनः वालवपुः, कृष्ण और गोविन्द इन तीनों शब्दों में प्रत्येक को चतुर्थ्यन्त विभक्ति से युक्त करे (बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय) । पुनः दशाक्षर मन्त्र इस प्रकार ३२ अक्षरात्मक मन्त्र का उद्धार कहा गया ।। ७७ ।।

विमर्श—प्रयोग—'नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' ।। ७७ ।।

ऋष्यादिकं दर्शयति—अनयोरिति ।

अनयोर्नारदऋषिः छन्दस्त्रिष्टुबनुष्टुभौ ।
आचक्राद्यैरङ्गमङ्गदिक्पालाद्यैश्च पूजनम् ।। ७८ ।।

अनयोर्नारदऋषिः यथाक्रमं त्रिष्टुबनुष्टप्छन्दसी आचक्राद्यैः पूर्वोक्तैरङ्ग-पञ्चकम् अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरावरणपूजनं पीठपूजा तु पूर्ववत् ।। ७८ ।।

इन २८ और ३२ अक्षरात्मक मन्त्रों के नारद ऋषि हैं—क्रमशः त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द हैं । पूर्वोक्त चक्रादि पञ्चाङ्ग हैं, दिक्पाल एवं वज्रादि पर्यन्त पञ्चावरण की पूजा इन मन्त्रों के जप में करनी चाहिये ।। ७८ ।।

ध्यानं दर्शयति—दक्षिण इति ।

दक्षिणे रत्नचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम् ।
करे दधानं देवीभ्यामाश्लिष्टं चिन्तयेद्धरिम् ।। ७६ ।।

हरिं चिन्तयेत् । कीदृशम् ?

दक्षिणहस्ते रत्नपात्रं वामहस्ते सुवर्णघटितवेत्रं दधानम् ? पुनः कीदृशम् ? देवीभ्यां लक्ष्मीसरस्वतीभ्यां रुक्मिणीसत्यभामाभ्यां वा आलि-ङ्गितम् ।। ७९ ।।

[अब ध्यान कहते हैं—]

दक्षिण हाथ में रत्न का प्याला और बायें हाथ में सुवर्ण निर्मित वेत धारण किये हुये लक्ष्मी, सरस्वती से अथवा रुक्मिणी सत्यभामा से आलिङ्गित श्री हरि का ध्यान करे ।। ७९ ।।

जपेदिति ।

जपेल्लक्षं मनुवरौ पायसैरयुतं हुनेत् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री त्रैलोक्यैश्वर्यभाग् भवेत् ।। ८० ।।

मन्त्रश्रेष्ठौ प्रत्येकं लक्षं जपेत् ।

अनन्तरं परमान्नेन दशसहस्रं जुहुयात् अनेन सिद्धो मन्त्रो यस्य मन्त्री लोकत्रयैश्वर्यभाजनं भवति ॥ ८० ॥

इन दोनों मन्त्रों का उपर्युक्त रूप में ध्यान कर एक एक लाख जप करे। पुनः दस हजार परमान्न (खीर) की आहुति देवे । इस प्रकार मन्त्र को सिद्ध करने वाला साधक समस्त त्रैलोक्य के ऐश्वर्य का भोक्ता हो जाता है ॥ ८० ॥

मन्त्रान्तरमाह—तारेति ।

तारश्रीशक्तिबीजाढ्यं नमो भगवते पदम् ।
नन्दपुत्रपदङेन्तं भूधरो मुखवृत्तयुक् ।
मासान्ते वपुषे मन्त्र ऊनविंशतिवर्णकः ॥ ८१ ॥

तारं प्रणवः श्रीबीजं भुवनेश्वरीबीजम् एतद्बीजत्रयाढ्य नमो भगवते इति स्वरूपं ततश्चतुर्थ्यन्तनन्दपुत्रपदं भूधरो वकारः मुखवृत्तमाकारः तद्युक्तः मांसो लकारस्तदन्ते वपुषे इति स्वरूपम् एतेन ऊनविंशतिवर्णको मन्त्र उद्धृतो भवति ॥ ८१ ॥

[अब अन्य मन्त्र कहते हैं—]

तार (प्रणव), श्रीबीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं) से युक्त 'नमो भगवते' पद । तदनन्तर चतुर्थी विभक्ति से युक्त 'नन्द पुत्र' पद, पुनः भूधर (वकार) उसे मुखवृत्त (आकार) से युक्त कर, तदनन्तर मास पद (लकार) पुनः उसके बाद 'वपुषे' पद- इस प्रकार 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे' यह १९ अक्षरात्मक मन्त्र का उद्धार कहा गया ॥ ८१ ॥

ऋषिर्ब्रह्माऽनुष्टुप्छन्दस्तथाऽन्यदुदितं समम् ।
अयं च सर्वसम्पत्तिसिद्धये सेव्यताम्बुधैः ॥ ८२ ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः छन्दोनुष्टुप् अन्यदुदितम् । अन्यत्सर्वं समानं पूर्वोक्तवद् वैदितव्यमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, अन्य सब समान है अर्थात् (श्री कृष्ण देवता हैं) । संपूर्ण संपत्ति की प्राप्ति के लिये बुद्धिमानों को इस मन्त्र का आश्रय लेना चाहिये ॥ ८२ ॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—तारमित्यादिना ।

तारं हृत् भगवान् ङेन्तो रुक्मिणीवल्लभस्तथा ।
शिरोऽन्तः षोडशार्णोऽयं रुक्मिणीवल्लभाह्वयः ॥ ८३ ॥

तारः प्रणवः हृन्नमः चतुर्थ्यन्तो भगवान् तथा चतुर्थ्यन्तो रुक्मिणीवल्लभ-शब्दः शिरोन्तः स्वाहाशब्दान्तः एतेन रुक्मिणीवल्लभाख्यः षोडशाक्षरो मन्त्रः कथितः ॥ ८३ ॥

[अब अन्य मन्त्र का उद्धार कहते हैं—]

तार (प्रणव), हृद् 'नमः' पद उसके बाद चतुर्थ्यन्त भगवान् पद (भगवते) तथा चतुर्थ्यन्त 'रुक्मिणी वल्लभ' पद (रुक्मिणी वल्लभाय) । पुनः शिरः पद (स्वाहा) शब्द । यह रुक्मिणी वल्लभ नामक षोडशाक्षर मन्त्र हुआ ।। ८३ ॥

विमर्श—इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार 'ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा' ॥ ८३ ॥

सर्वसम्पत्प्रदो मन्त्रो नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च रुक्मिणीवल्लभो हरिः ।
एकदृग्वेदमुनिदृग्वर्णैरस्याऽङ्गपञ्चकम् ॥ ८४ ॥

अस्य ऋषिर्नारदः अनुष्टप्छन्दः रुक्मिणीवल्लभो हरिर्देवतेति ।

एकेति । अस्य मन्त्रस्य पञ्चाङ्गानि भवन्ति । कैः ? मन्त्रस्य एकद्विचतुःसप्तद्विवर्णैः ॥ ८४ ॥

यह मन्त्र संपूर्ण संपदाओं को देने वाला है, इस मन्त्र के नारद ऋषि कहे गये हैं, इसका छन्द अनुष्टुप् हैं तथा रुक्मिणीवल्लभ परमात्मा श्रीकृष्ण इसके देवता हैं । इसके एक अक्षर दो, चार, सात एवं दो वर्ण के विभाग से पाँच अङ्ग कहे गये हैं ॥ ८४ ॥

ध्यानमाह—तापिच्छेति ।

तापिच्छच्छविरङ्कगाम्प्रियतमां स्वर्णप्रभामम्बुज-
प्रोद्यद्वामभुजां स्ववामभुजयाश्लिष्यन् सचिन्ताश्मना
श्लिष्यन्तीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्रियं
पायाद्वोऽसनप्रसूनपीतवसनो नानाविभूषो हरिः ॥ ८५ ॥

तापिच्छच्छविस्तमालकान्तिर्हरिर्वो युष्मान् पायात् रक्षतु। किं कुर्वन् ? अङ्कस्थां गौराङ्गीं प्रियतमां चिन्तामणिरत्नसहितेन हस्तेन आलिङ्गन्। किंभूताम् ? पद्मोल्लसत् मनोहरवामकराम्। पुनः किंभूताम् ? स्वयमात्मना आत्मानं देवं वा दक्षिणकरेण आश्लिष्यन्तीम् आलिङ्गन्तीम्। कीदृशो हरिः ? आलिङ्गनान्यहस्ते शोभमानः काञ्चनदण्डो यस्य, तथा पुनः कीदृशः ? असनवृक्षपुष्पवत्पीते वस्त्रे यस्य स, पुनः कीदृशः ? नानाप्रकारोऽलङ्कारो यस्य ॥ ८५ ॥

[अब ध्यान का वर्णन कहते हैं—]

जिन भगवान् के शरीर की छवि तमाल के समान नील वर्ण की है, जो अपनी गोद में स्थित सुवर्ण के समान गौरवर्ण वाली एवं बायें हाथ में कमल धारण करने वाली अपनी प्रियतमा को चिन्तामणियुक्त हाथों से अलिङ्गन कर रहे हैं तथा स्वयं भी उनके दाहिने हाथ से आलिङ्गित हैं और अपने दूसरे (आलिङ्गन के अतिरिक्त) हाथ में सुवर्णमय दण्ड तथा कटितट में असन पुष्प के समान पीताम्बर धारण किये हुये नाना प्रकार के अलङ्कारों से युक्त हैं ऐसे परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥ ८५ ॥

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वेति।

ध्यात्वैवं रुक्मिणीनाथं जप्याल्लक्षमिमं मनुम्।
अयुतं जुहुयात्पद्मैररुणैर्मधुराप्लुतैः ॥ ८६ ॥

एवं पूर्वोक्तं रुक्मिणीवल्लभं रुक्मिणीनाथ ध्यात्वा इमं मन्त्रं लक्षमेकं जपतु। घृतमधुशर्करासिक्तैः लोहितपद्मैरपि दशसहस्रं जुहुयात् ॥ ८६ ॥

इस प्रकार रुक्मिणीवल्लभ श्री कृष्ण का ध्यान कर ऊपर कहे गये षोडशाक्षरात्मक मन्त्र का एक लाख जप करे। पुनः शर्करा मधु एवं आज्य परिप्लुत रक्तकमल से दस हजार होम करे ॥ ८६ ॥

पूजां दर्शयति—पूजयेदिति।

अर्चयेन्नित्यमङ्गैस्तं नारदाद्यैर्दिशाधिपैः।
वज्राद्यैरपि धर्मार्थकाममोक्षाप्तये नरः ॥ ८७ ॥

पीठपूजापूर्ववत्। आवरणपूजा तु कथ्यते—प्रत्यहं तं हरिं पूजयेत्। कैरङ्गैराचक्राद्यैः सायाह्नपूजोक्तैः नारदप्रभृतिभिश्च दिशाधिपैरिन्द्राद्यैः तेषामायुधैर्वज्राद्यैः। कीदृशम् ? पुरुषार्थचतुष्टयप्रदम् ॥ ८७ ॥

नित्य पीठ पूजा करते हुये चक्रादि अङ्गों सहित एवं पूर्वोक्त सायङ्काल की पूजा के आवरण में कहे गये नारदादि ऋषियों, इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं वज्रादि आयुधों की पूजा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति के लिये करे ॥ ८७ ॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—लीलादण्डेति ।

लीलादण्डावधौ गोपीजनसंसक्तदोः पदम् ।
दण्डान्ते बालरूपेति मेघश्यामपदं ततः ॥ ८८ ॥
भगवान् विष्णुरित्युक्त्वा वह्निजायान्तको मनुः ।
एकोनत्रिंशदर्णोऽस्य मुनिर्नारद ईरितः ॥ ८९ ॥
छन्दोऽनुष्टुप् देवता च लीलादण्डधरो हरिः ।
मन्वब्धिकरणाग्न्यब्धिवर्णैरङ्गक्रिया मता ॥ ९० ॥

लीलादण्डावधौ लीलादण्डशब्दान्ते गोपीजनसंसक्तदोः पदम् अनन्तरं दण्डशब्दान्ते बालरूपेति पदं तदनु मेघश्यामेति पदं ततः शब्दोऽपि काकाक्षिवत् सम्बध्यते । तदनु भगवान् विष्णुः सम्बोधनान्तमुक्त्वा स्वाहा शब्दान्त एकोनत्रिंशदक्षरो मन्त्र उद्ध्रियतामित्यर्थः । अस्य मन्त्रस्य नारद-ऋषिरनुष्टुप्छन्दो लीलादण्डो हरिर्देवतेति ।

मन्वब्धीति । अस्य मन्त्रस्याऽङ्गक्रिया मनुश्चतुर्दशः अब्धिश्चतुष्टयं करणं पञ्च अग्निस्त्रयश्चत्वारोऽब्धिरेतत्संख्याकैर्मन्त्रवर्णैर्मता संमता पञ्चाङ्गा-नीत्यर्थः ॥ ८८–९० ॥

[अब अन्य मन्त्र का उद्धार कहते हैं—]

'लीलादण्ड' शब्द के अनन्तर 'गोपीजन संसक्त दोर्दण्ड'—पद कहे । उसके बाद 'बालरूप मेघश्याम' पद कहे। तदनन्तर 'भगवान् विष्णु' इन दो पदों का सम्बोधनान्त उच्चारण करे । पुनः 'स्वाहा' पद कहे । इस प्रकार २९ अक्षरों का यह मन्त्र उद्धृत हुआ । ['लीलादण्डगोपीजनसंसक्तदोर्दण्डबालरूपमेघश्याम भगवन् विष्णो स्वाहा' इसका स्वरूप हुआ] इस मन्त्र के ऋषि नारद हैं । अनुष्टुप् छन्द है । लीलादण्ड धारण करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण इसके देवता हैं । १४, ४, ५, ३ और ४ अक्षरों के इस मन्त्र के पाँच अङ्ग हैं ॥ ८८-९० ॥

ध्यानमाह—संमोहयन्निति ।

संमोहयन्निजकवामकरस्थलीला-
दण्डेन गोपयुवतीः सुरसुन्दरीश्च ।

दिश्यान्निजप्रियतमांसगदक्षहस्तो
देवः श्रियं निहतकंस उरुक्रमो वः ॥ ९१ ॥

देवः श्रीकृष्णः वो युष्मभ्यं श्रियं लक्ष्मीं दिश्यात् प्रयच्छतु । किं कुर्वन् ? गोपयुवतीः सुरयुवतीश्च संमोहयन् । केन ? स्वीयवामहस्तस्थविलासवेत्रेण । कीदृशो ? निजप्रियांसग-दक्षहस्तः स्वीयबल्लभाबाहुमूलस्थितदक्षिणकरः प्रियसखांसगदक्षहस्त इति पाठे निजसखांसगतदक्षिणहस्तः । पुनः कीदृशः ? उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स तथा ॥ ९१ ॥

[अब इसका ध्यान कहते हैं—]

अपने वामकरस्थ लीला नेत्र से गोप युवतियों एवं सुराङ्गनाओं को मोहित करते हुये, अपनी प्रियतमाओं के कन्धों पर दाहिना हाथ रखे हुये कंसवधकर्त्ता एवं महान् पराक्रमशाली परमात्मा श्रीकृष्ण आप सबको श्री प्रदान करें ॥ ९१ ॥

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षमयुतं तिलतण्डुलैः ।
त्रिमध्वक्तैर्हुनेदङ्गदिक्पालाद्यैः समर्चयेत् ॥ ९२ ॥

एवं पूर्वोक्तं कृष्णं ध्यात्वा लक्षमेकं जपेत् । तदनु घृतमधुशर्करासहितैस्तिलतण्डुलैर्दशसहस्रं जुहुयात् ।

अङ्गेति । पीठपूजा पूर्ववदावरणपूजापञ्चाङ्गैरिन्द्राद्यैश्चेति ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण का ध्यान कर इस मन्त्र का एक लाख जप करे और शर्करा, घृत, मधुमिश्रित तिल एवं चावल से दस हजार हवन करे। पूर्ववत् पीठ पूजा करे तथा पञ्चावरण युक्त इन्द्रादि की पूजा करे ॥ ९२ ॥

प्रात्यह्निकपूजाफलमाह—लीलेति ।

लीलादण्डं हरिं यो वै भजते नित्यमादरात् ।
स पूज्यते सर्वलोकैस्तं भजेदिन्दिरा सदा ॥ ९३ ॥

यो मनुष्यः प्रत्यहं लीलादण्डधरं हरिं सेवते, स सर्वजनैः पूज्यते । तम् इन्दिरा लक्ष्मीः सर्वदा भजते ॥ ९३ ॥

[प्रतिदिन पूजा का फल प्रतिपादन करते हैं—]

जो इस प्रकार लीलादण्डधारी परमात्मा श्रीकृष्ण का आदरपूर्वक भक्ति और

श्रद्धा से युक्त हो पूजन करता है, वह समस्त लोकों से पूजित होता है, एवं लक्ष्मी सर्वदा उसके साथ रहती हैं ॥ ९३ ॥

मन्त्रान्तरमुद्धरति—त्रयोदशेति ।

त्रयोदशस्वरयुतः शार्ङ्गी मेदः सकेशवः ।
तथा मांसयुग्मभाय शिरः सप्ताक्षरो मनुः ॥ ९४ ॥

त्रयोदशस्वरऔंकारस्तेन युतः शार्ङ्गी गकारः मेदो वकारः । कीदृशः ? सकेशवः अकारसहितः, तथा मांसयुगं लकारद्वयमिति भाय शिरः स्वाहा । अनेन सप्ताक्षरो मन्त्रः उक्तः ॥ ९४ ॥

[अब अन्य मन्त्र का उद्धार कहते हैं—]

त्रयोदश स्वर (ओ) उससे युक्त शार्ङ्गी (गकार), मेद (वकार) उसको अकार से युक्त कर तदनन्तर मांसयुग (दो लकार) फिर 'भाय' पद पुनः शिरः (स्वाहा) पद का उच्चारण करे । इस प्रकार सप्ताक्षर मन्त्र का उद्धार कहा गया है ॥ ९४ ।

विमर्श—इस मन्त्र का स्वरूप 'गोवल्लभाय स्वाहा' हुआ ॥ ९४ ॥

ऋष्यादिकमाह—आचक्राद्यैरिति ।

आचक्राद्यैरङ्गक्लृप्तिर्नारदोऽस्य मुनिः स्मृतः ।
छन्द उष्णिग्देवता च गोवल्लभ उदाहृतः ॥ ९५ ॥

आचक्राद्यैः पञ्चाङ्गकरणम् । अस्य मन्त्रस्य नारदऋषिः उष्णिक्छन्दः गोवल्लभः कृष्णो देवतेति ॥ ९५ ॥

चक्रादि इस के पञ्चाङ्ग है । इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं । उष्णिक् छन्द है गोवल्लभ परमात्मा श्री कृष्ण इसके देवता कहे गये हैं ॥ ९५ ॥

ध्यानमाह—ध्येय इति ।

ध्येयोऽच्युतः स कपिलागणमध्यसंस्थः
ता आह्वयन् दधदक्षिणदोष्णि वेणुम् ।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥ ९६ ॥

अच्युतः कृष्णो ध्येयः । कीदृशः ? कपिलागणो गोविशेषसमूहस्तस्याभ्यन्तरवर्ती । किङ्कुर्वन् ? ताः कपिला आह्वयन् अभिमुखीकुर्वन् । पुनः

कीदृशः ? अदक्षिणदोष्णि वामहस्तेन सरन्ध्रं वंशं वहन् । अपरत्र दक्षिणहस्ते दण्डसहितगोबन्धनरज्जुं दधत् । पुनः कीदृशः ? पयोदनीलो मेघश्यामः पीतवसनः । पुनः कीदृशः ? अहिरिपुर्मयूरः, तस्य पिच्छं शिखण्डः, तेन कृतोऽवतंसः कर्णालङ्कारः शिरोभूषणं वा येन स तथा ॥ ९६ ॥

[अब इस मन्त्र का ध्यान कहते हैं—]

कपिला गणों के मध्य में स्थित होकर उन्हें अपनी ओर बुलाते हुये बायें हाथ में सछिद्र वेणु धारण किये हुये एवं दाहिने हाथ में छड़ी एवं गोओं को बाँधने की रस्सी लिये हुये, मेघश्याम पीताम्बरधारी एवं मयूरपिच्छ का शिरोभूषण धारण किये हुये परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ ९६ ॥

पुरश्चरणमाह—मुनिलक्षेति ।

मुनिलक्षं जपेदेतद् धुनेत्सप्तसहस्रकम् ।
गोक्षीररङ्गदिक्पालमध्येऽर्च्यं गोगणाष्टकम् ॥ ९७ ॥

इमं मन्त्रं मुनिलक्षं सप्तलक्षं जपेत् । गोदुग्धैः सप्तसहस्रं जुहुयात् । अङ्ग-पूजाऽनन्तरं दिक्पालपूजायाः प्राक् गोगणाष्टकं पूजनीयं गोगणाष्टकं च प्रथमादि यथा स्यात् ।

सुवर्णवर्णा कपिला द्वितीया गौरपिङ्गला ।
तृतीया गौरपिङ्गाक्षी चतुर्थी गुडपिङ्गला ॥
पञ्चमी अभ्रवर्णा स्यादेताः स्युरुत्तमा गवाम् ।
चतुर्थीपिङ्गला षष्ठी सप्तमी खुरपिङ्गला ।
अष्टमी कपिला गोषु विज्ञेयः कपिलागणः ॥

इत्यनेनोक्तम् ॥ ९७ ॥

इस मन्त्र का सात लाख जप करे और सात हजार होम करे तथा अङ्गपूजा के अनन्तर दिक्पाल पूजा के पहले आठ प्रकार की कपिलाओं का पूजन करे ॥ ९७ ॥

विमर्श—कपिला गायों का स्वरूप इस प्रकार है—

१. सुवर्णवर्ण कपिला, २. गौरपिङ्गला, ३. गौरपिङ्गाक्षी, ४. गुडपिङ्गला, ५. अभ्रवर्णा ६. पिङ्गला ७. खुरपिङ्गला, और ८. कपिला में कपिलागण हैं ॥ ९७ ॥

प्रयोगान्तरमाह—अष्टोत्तरेति।

अष्टोत्तरसहस्रं यः पयोभिर्दिनशो हुनेत्।
पक्षात्स गोगणैराढ्यो दशार्णैनैष वा विधिः ॥ ६८ ॥

गौदुग्धैः प्रतिदिनं योऽष्टाधिकं सहस्रं जुहुयात् स पञ्चदशदिनाभ्यन्तरे गोसमूहेन सम्पन्नो भवति। एष विधिप्रयोगो दशाक्षरमन्त्रेण वा कार्य्यं इत्यर्थः ॥ ९८ ॥

जो इस मन्त्र से प्रतिदिन एक हजार आठ बार हवन करे तो वह एक पक्ष के भीतर गोसमूह से संपन्न हो जाता है। इसका विधान और प्रयोग दशाक्षर मन्त्र के समान समझना चाहिये ॥ ९८ ॥

मन्त्रान्तरमाह—सलवेति।

सलवो वासुदेवो हृत् ङेऽन्तं च भगवत्पदम्।
श्रीगोविन्दपदं तद्वत् द्वादशार्णोऽयमीरितः ॥ ६६ ॥

लवो बिन्दुः तत्सहितो वासुदेवः ओंकारः अर्थात् प्रणवः ॐ नमः चतुर्थ्यन्तं भगवत्पदं तथा श्रीगोविन्दपदं चतुर्थ्यन्तम्। एतेन द्वादशाक्षरो मन्त्र उद्घृतः ॥ ९९ ॥

[अन्य मन्त्र कहते हैं—]

विन्दु सहित वासुदेव (ओंकार) पुनः नमः पद चतुर्थ्यन्त भगवत्पद (भगवते)। इसी प्रकार चतुर्थ्यन्त श्री गोविन्द पद, इस प्रकार द्वादशाक्षर मन्त्र का उद्धार कहा गया ॥ ९९ ॥

विमर्श—इसका स्वरूप—'ॐ नमो भगवते श्री गोविन्दाय' इस प्रकार है ॥ ९९ ॥

ऋष्यादिकमाह—मनुरिति।

मनुर्नारदगायत्रीकृष्णर्ष्यादिरथाऽङ्गकम् ।
एकाक्षिवेदभूतार्णैः समस्तैरपि कल्पयेत् ॥ १०० ॥

क्वचिन्मुनिरिति पाठो न युक्तः असमन्वयात् पौनरुक्त्याच्च किन्तु मनुरित्येव पाठः। अयमिति पाठो युक्तयालभ्यत इति रुद्रधरः।

अथाऽङ्गपञ्चकं कल्पयेत्। कैः? एकद्विचतुःपञ्चभिः तथा ओं नमो भगवते श्रीगोविन्दाय अस्त्राय फट् इति ॥ १०० ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। श्रीकृष्ण देवता हैं। इस मन्त्र का एक, दो, चार और पाँच अक्षरों का पञ्चाङ्ग समझना चाहिये। पुनः 'ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय अस्त्राय फट्' पढ़कर चारों ओर अपने को अवगुण्ठित करे ॥ १०० ॥

ध्यानमाह—वन्द इति।

वन्दे कल्पद्रुमूलाश्रितमणिमयसिंहासने सन्निविष्टं
नीलाभं पीतवस्त्रं करकमललसच्छङ्खवेत्रं मुरारिम्।
गोभिः सप्रश्रवाभिर्वृतममरपतिप्रौढहस्तस्थकुम्भ-
प्रच्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम् ॥ १०१ ॥

मुरारिं वन्दे। कीदृशम्? कल्पवृक्षमूलावस्थिते पद्मरागमणिघटिते सिंहासने उपविष्टम्, पुनः कीदृशम्? नीलाभं श्यामं तथा पीतवस्त्रं तथा हस्तपद्मे शोभमानौ शङ्खवेत्रौ यस्य, तं तथा सप्रस्रवाभिः क्षीरस्तनाभिः गोभिर्वृतं वेष्टितम्, तथा अमरपतेरिन्द्रस्य प्रौढो बलिष्ठो यो हस्तस्तदवस्थितो यः कुम्भः घटस्तस्मात् प्रस्रवदमृत धाराभिः स्नपितं तथाऽभिनवं नूतनं यदम्भोजं पद्मं तस्य पत्रवदाभा कान्तिर्नयनयोर्यस्य तम् ॥ १०१ ॥

[अब ध्यान कहते हैं—]

कल्पवृक्ष के मूल में स्थित मणिमय सिंहासन पर बैठे हुए, नीलवर्ण वाले पीताम्बरधारी, करकमल में शङ्ख एवं वेत्रयष्टि धारण किये हुये, अपने थनों से दूध की धारा बहाती हुई गौओं से घिरे हुये, इन्द्र के बलिष्ठ भुजाओं में धारण किये गये अमृत कुम्भ की सुधामयी धारा से स्नान कराये जाते हुए, सद्यः खिले हुए कमलों के समान नेत्रों वाले परमात्मा श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ ॥ १०१ ॥

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वेति।

ध्यात्वैवमच्युतं जप्त्वा रविलक्षं हुनेत्ततः।
दुग्धैर्द्वादशसाहस्रं दिनशोऽमुं समर्चयेत् ॥ १०२ ॥

एवं पूर्वोक्तमच्युतं ध्यात्वा द्वादशलक्षं जप्त्वा दुग्धैर्द्वादशसहस्रं जुहुयात्। प्रत्यहं वा अमुं पूजयेत् ॥ १०२ ॥

[अब पुरश्चरण का प्रकार कहते है—]

इस प्रकार श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए १२ लाख ऊपर कहे गये द्वादशाक्षर

मन्त्र का जप करे एवं बारह हजार मन्त्रों द्वारा दूध से अग्नि में हवन करे और पूजा प्रतिदिन करता रहे ॥ १०२ ॥

आयतनादिषु पूजाविशेषं दर्शयति—गोष्ठ इति ।

गोष्ठे प्रतिष्ठितं चाऽऽत्मगेहे वा प्रतिमादिषु ।
समस्तपरिवारार्चास्ताः पुनर्विष्णुपार्षदाः ॥ १०३ ॥
द्वाराग्रे बलिपीठेऽर्च्याः पक्षीन्द्रश्च तदग्रतः ।
चण्डप्रचण्डौ प्राक् धातृविधातारौ च दक्षिणे ॥१०४॥
जयः सविजयः पश्चाद्बलः प्रबल उत्तरे ।
ऊद्र्ध्वे द्वारश्रियं चेष्ट्वा द्वास्थेशान् युग्मशोऽर्चयेत् ॥ १०५ ॥
पूज्यो वास्तुपुमांस्तत्र तत्र द्वाःपीठमध्यगः ।
द्वारान्तःपार्श्वयोरर्च्या गङ्गा च यमुना निधी ॥१०६॥
कोणेषु विघ्नं दुर्गाञ्च वाणीं क्षेत्रेशमर्चयेत् ।
अर्चयेद्वास्तुपुरुषं वेश्ममध्ये समाहितः ।
देवतार्चानुरोधेन नैऋत्यां वा विचक्षणः ॥ १०७ ॥

गोष्ठे गोस्थाने प्रतिष्ठित स्थापितं तथा आत्मगेहे सुवर्णादिघटित-प्रतिमादिषु प्रतिष्ठितं विष्णुं पूजयेदिति पूर्वेणान्वयः । ताः पूर्वोक्ता एव समस्तपरिवारपूजाः कार्याः, तथा वक्ष्यमाणाश्च विष्णुपार्षदाः पूर्वादि-चतुर्द्वाराग्रभागे बलिदानपीठे द्विशः पूज्याः अत्र त्रिपाठिनः ।

द्वादशाक्षरगोविन्दमन्त्रस्य पूजाप्रसङ्गेन पूर्वोक्त दीक्षापूजायां तथा त्रिकालपूजास्वपि पूर्वादिचतुर्द्वारपूजा विशेषतः कर्त्तव्यत्वेन ज्ञातव्या समस्त-परिवारायाऽच्युताय नमो नमः, विष्णुपार्षदेभ्यो नमो नमः—अनेन मन्त्रद्वयेन पूर्वादिचतुर्द्वाराग्रभागे बलिदानपीठे पूजयेदित्यर्थः ।

पक्षीन्द्रो गरुडः तदग्रतः बलिदानपीठाग्रतः पूज्यः । विष्णुपार्षदान् दर्शयति—प्रागिति ।

द्वारपूजामाह—ऊद्ध्र्वं इति । चतुरस्रचतुर्द्वारोद्ध्र्वभागे द्वारश्रियं पूज-यित्वा चण्डादीन् द्वौ द्वौ कृत्वा पूजयेत् । अनुक्रमेण पूर्वद्वारमारभ्य द्वारबलि-

पीठयोर्मध्ये वास्तुपुरुषाय नम इति पूजयेत् । द्वारान्त इति । चतुर्द्वारमध्योभयफलके गंगायमुने पूज्ये तथा शङ्खनिधिपद्मनिधी च पूज्यौ ।

तदनु मण्डपे प्रविश्याऽऽग्नेयादिकोणेषु विघ्नदुर्गासरस्वतीक्षेत्रेशाः क्रमेण पूज्याः मण्डपमध्ये ब्रह्मस्थाने पुनर्वास्तुपुरुषं संयतः सन् पूजयेत् ॥ १०३-१०७ ॥

गोष्ठ में अथवा अपने घर में प्रतिष्ठापित सुवर्णमयी प्रतिमा में 'समस्तपरिवारायाच्युताय नमो नमः' इस मन्त्र से विष्णु की पूजा करे, तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं के चारों द्वारों के अग्रभाग में जिसे बलिदान का पीठ कहा जाता है आठ विष्णु-पार्षदों की 'समस्तपरिवारायाच्युताय नमो नमः' एवं 'समस्त पार्षदेभ्यो नमो नमः' इन दो मन्त्रों से पूजा करे और उस बलि पीठ के भी आगे 'गरुडाय नमो नमः' से पूजा करे । अब पार्षदों के पूजा के प्रसङ्ग से उनका नाम कहते हैं, चण्ड प्रचण्ड पूर्व द्वार के, धाता विधाता दक्षिण द्वार के, जय विजय पश्चिम द्वार के एवं बल प्रबल उत्तर द्वार के पार्षद कहे गये हैं । प्रथम द्वार के ऊर्ध्वभाग में स्थित श्री क पूजा करे । तदनन्तर पूर्वादि द्वार पर पृथक् पृथक् दो दो द्वारपालों की पूजा करे । पुनः प्रत्येकद्वार पीठ के मध्य में सर्वत्र वास्तु पुरुष की पूजा करे । द्वार के भीतरी भाग में दोनों ओर गङ्गा और यमुना की एवं शङ्खनिधि तथा पद्मनिधि की पूजा करे । पुनः मण्डप में प्रविष्ट हो चारों कोनों में विघ्नेश्वर, दुर्गा, वाणी तथा क्षेत्रपाल की पूजा करे, पुनः समाहित चित्त हो मण्डप में वास्तु पुरुष की पूजा करे अथवा देवार्चानुरोध से नैर्ऋत्य कोण में वास्तु पुरुष की पूजा करे ॥ १०३-१०७ ॥

अस्त्रमुद्धरति—तारमिति ।

> तारं शार्ङ्गपदं ङेऽन्तं सपूर्वं च शरासनम् ।
> हुंफट् नतिरित्युक्त्वाऽस्त्रमुद्रयाऽग्रे स्थिरो हरेः ॥१०८॥
> पुष्पाक्षतं क्षिपेद्दिक्षु समासीनाऽऽसने ततः ।
> विधेयमेतत् सर्वत्र स्थापितेषु विशेषतः ॥ १०९ ॥

तारं प्रणवः शार्ङ्गपदं ङेऽन्तं चतुर्थ्यन्तं सपूर्वं सशरासनशब्दं चतुर्थ्यन्तं हुं फट् नमः इति उक्त्वा पुष्पाक्षतं चतुर्दिक्षु अस्त्रमुद्रया छोटिकया निक्षिपेत् । कीदृशः ? हरेरग्रे स्थितः ततः आसने स्वोचिते उपविशेत् । एतत्सर्वं सर्वपूजादौ कर्तव्यं स्थापितेषु प्रतिमादिषु पुनर्विशेषतः कर्तव्यमेव ॥ १०८-१०९ ॥

[अब अस्त्रमन्त्र का उद्धार कहते हैं—]

प्रथम तार (ॐ) तदनन्तर चतुर्थ्यन्त शार्ङ्ग पद (शाङ्गाय) पुनः सयुक्त शरासन पद का चतुर्थ्यन्त (सशरासनाय) फिर 'हुँ फट् नमः' उच्चारण करे। इस प्रकार विष्णु के आगे खड़े होकर 'ॐ शार्ङ्गिणे सशराशनाय हुँ फट् नमः' इस अस्त्र मन्त्र का उच्चारण कर चारों ओर चुटकी बजाते हुये पुष्पाक्षत प्रक्षिप्त करे, तदनन्तर अपने आसन पर बैठे। यह क्रिया सर्वत्र करे किन्तु स्थापित प्रतिमा में विशेष रूप से करे ॥ १०८-१०९ ॥

पीठ पूजामाह—आत्मेति।

आत्मार्चनान्तं कृत्वाऽथ गुरुपङ्क्ति पुरोक्तवत्।
श्रीगुरून् परमाद्यांश्च महास्मत्सर्वपूर्वकान् ॥ ११० ॥

स्वदेहे पूर्वोक्तस्वरूपेण पीठमारभ्य सम्पूज्य हृदि भगवन्तमभ्यर्च्याऽनन्तरं बाह्यपीठे पूर्ववत् पूर्वोक्तदीक्षाप्रकरणकथितोत्तरदिग्विभागे इतिवद् गुरुपङ्क्ति पूजयेत्।

गुरुपङ्क्तिमेवाह—श्रीगुरूनिति। श्रीशब्दपूर्वान् गुरून् परमगुरून्। प्रयोगाश्च-श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीपरमगुरुभ्यो नमः, श्रीमहागुरुभ्यो नमः, श्रीअस्मद्गुरुभ्यो नमः, सर्वगुरुभ्यो नमः ॥ ११० ॥

सर्वप्रथम अपने में श्रीकृष्ण की भावना कर उसकी अर्चना के बाद दीक्षा प्रकरण में कही गई विधि के अनुसार श्री गुरु, श्रीपरमगुरु, श्री महागुरु, श्री अस्मद् गुरु एवं सर्व श्रीगुरु रूप समस्त गुरु पंक्तियों की तत्तन्नामों में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में 'नमो नमः' पूर्वक पूजा करे ॥ ११० ॥

तत्पादुकानारदादीन्पूर्वसिद्धाननन्तरम् ।
ततो भागवतांश्चेष्ट्वा विघ्नं दक्षिणतोऽर्चयेत् ॥१११॥

तत् पादुकाभ्यः नारदादिभ्यः पूर्वसिद्धेभ्यः भागवतेभ्य इति लघुदीपिकाकारः।

श्रीगुरुपादुकाभ्यो नमः श्रीपरमगुरुपादुकाआदिगुरुपादुकामहागुरुपादुका-अस्मद्गुरुपादुकासर्वगुरुपादुकाभ्यो नमः। इति त्रिपाठिनः।

एवं गुरुपङ्क्तिपीठस्योत्तरे समभ्यर्च्य दक्षिणे गणेशं पूजयेत् ॥ १११ ॥

तदनन्तर 'श्री गुरुपादकाभ्यो नमः' इत्यादि तत्तत्मन्त्रों से श्रीगुरु, श्रीपरमगुरु, श्रीमहागुरु, श्रीअस्मद्गुरु एवं सर्व गुरु की पादुकाओं का पूजन करे। तदनन्तर गुरु पीठ के उत्तर भाग में नारदादि ऋषियों को 'नारदादि ऋषिभ्यो नमः', तदनन्तर सनकादि सिद्धों की 'सनकादि सिद्धेभ्यो नमः' मन्त्र से पूजा करे और गुरु पीठ के दक्षिणभाग में श्रीगणेश की पूजा करे ॥ १११ ॥

पूर्ववत् इति।

पूर्ववत् पीठमभ्यर्च्य श्रीगोविन्दमथाऽर्चयेत्।
रुक्मिणीं सत्यभामां च पार्श्वयोरिन्द्रमग्रतः॥ ११२॥
पृष्ठतः सुरभिञ्चेष्ट्वा केशरेष्वङ्गदेवताः।
अर्च्या हृदादिवर्मान्ता दिक्ष्वस्त्रं कोणकेषु च॥११३॥

पूर्वोक्तप्रकारेणाऽऽधारशक्त्यादिपीठमन्त्रान्तं सम्पूज्य देवमावाह्य अर्घ्यादिभिरुपचारैः पूजयेत्।

आवरणपूजामाह—रुक्मिणीमिति।

गोविन्ददक्षिणवामयोः पार्श्वयोः कर्णिकायां रुक्मिणी सत्यभामा च संपूज्या देवाग्रे च इन्द्रं सम्पूज्य देवपृष्ठे तु सुरभिं पूर्वादिचतुर्दिक्कोणेषु केशरेषु हृदादिवर्मान्ता अङ्गदेवताः पूज्याः केशरेषु कोणेषु पुनरस्त्रमङ्गं पूजयेत् ॥ ११२–११३ ॥

इस प्रकार पूर्ववत् पीठ की पूजा कर श्रीगोविन्द की पूजा करे—दोनों पार्श्वभाग में रुक्मिणी, सत्यभामा की एवं उनके आगे इन्द्र की पूजा करे। पृष्ठ भाग में सुरभी की पूजा कर अष्टदल कमल के केशर में चारों दिशाओं में हृदय से लेकर कवच पर्यन्त अङ्ग देवता का पूजन करे पुनः कोणों पर भी उसी प्रकार अङ्ग का पूजन करना चाहिये ॥ ११२-११३ ॥

कालिन्दीति।

कालिन्दीरोहिणीनाग्नजित्याद्याः षट् च शक्तयः।
दलेषु पीठकोणेषु वह्न्याद्यर्च्याश्च किङ्किणीः॥ ११४ ॥
दामानि यष्टिवेणुश्च पुरः श्रीवत्सकौस्तुभौ।
अग्रतो वनमालां च दिक्ष्वष्टासु ततोऽर्चयेत्॥ ११५ ॥

पाञ्चजन्यं गदां चक्रं वसुदेवं च देवकीम् ।
नन्दगोपं यशोदां च सगोगोपालगोपिकाः ॥ ११६ ॥

कालिन्द्याद्याः शक्तयो देवपत्न्यः पत्रेषु पूज्याः आदिपदेन सुनन्दामित्रविन्दासुलक्ष्मणापरिग्रहः आग्नेयादिपीठकोणेषु किङ्किणीदामादीन् पूजयेत् । तत्र श्रीकृष्णक्षुद्रघण्टिकाम् अग्निकोणे ॥

गोरक्षणार्थं दामानि नैर्ऋते गोप्रेरणार्थं लकुटं वायौ वंशम् ईशानकोणे देवस्याऽग्रे श्रीवत्सकौस्तुभौ श्रीवत्सकौस्तुभाग्रतः वनमालां तदुपरि अष्टदिक्षु पाञ्चजन्यादय इति ।

पाञ्चजन्याय नमः सगोगोपालगोपिकाभ्यो नमः इत्यन्ताः पूज्याः आदिपदेन गदाचक्रवसुदेवदेवकीनन्दयशोदापरिग्रहः ॥ ११४–११६ ॥

कालिन्दि, रोहिणी, नाग्नजिति, सुनन्दा-मित्रविन्दा, सुलक्षमणा आदि श्रीकृष्ण की शक्तियों का पत्रों पर पुनः पीठ के आग्नेयादि कोणों पर किङ्किणी दामादि का पूजन करे । अर्थात् किङ्किणी का अग्निकोण में गोरक्षणार्थ गृहीत रस्सी का नैर्ऋत्य में, गाय हाँकने की छड़ी का वायव्य में तथा वंश का ईशान कोण में पूजन करे । श्रीकृष्ण के आगे श्रीवत्स एवं कौस्तुभ का, उसके आगे वनमाला का पूजन करे । तदनन्तर उसके आठो दिशाओं में पाञ्चजन्य-गदा-चक्र-वसुदेव-देवकी-नन्दगोप यशोदा गौओं गोपों एवं गोपियों की पूजा करे ॥ ११४-११६ ॥

इन्द्राद्या इति ।

इन्द्राद्याः कुमुदाद्याश्च विश्वक्सेनं तथोत्तरे ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः ।
शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ११७ ॥

इन्द्राद्याः स्वस्वदिक्षु पूज्याः तदस्त्राणि वज्रादीन्यादिशब्दग्राह्याणि तथा कुमुदाद्याश्चाऽष्टगजाः तदुपरि स्वस्वदिक्षु पूज्याः तद्बहिर्देवतोत्तरे विष्वक्सेनं पूजयेत् ।

॥ कुमुदादीनां नामान्याह—कुमुदा इति ११७ ॥

पुनः इन्द्रादि देवताओं की, उनके अस्त्रों की तथा कुमुदादि अष्ट दिग्गजों की पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूजा करे । उसके बाहर उत्तर भाग में विष्वक्सेन की पूजा करें । कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और

सुप्रतिष्ठित—ये आठ दिग्गजों के नाम हैं, जिनकी पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूजा करनी चाहिये ।। ११७ ।।

पूजाफलमाह—एकेति ।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं चेति गोष्ठगम् ।
श्री गोविन्दं यजेन्नित्यं गोभ्यश्च यवसप्रदः ।।११८।।

दीर्घजीवी निरातङ्को धेनुधान्यधनादिभिः ।
पुत्रैर्मित्रैरिहाऽढ्योऽन्ते प्रयाति परं पदम् ।। ११९ ।।

गोष्ठगं व्रजग कृष्णं प्रत्यहम् एककालं द्विकालं त्रिकालं पूजयेत् । गोभ्यश्च ग्रासप्रदः सन्निह लोके चिरायुर्निर्भयो धेनुधान्यसुवर्णादिभिः पुत्रमित्रादिभिश्च सम्पन्नो भवति देहपातान्ते च विष्णुलोकं च गच्छति ।। ११८-११९ ।।

गोष्ठ (व्रज) में स्थित श्री कृष्ण का प्रतिदिन एक काल, दो काल अथवा त्रिकाल में पूजन करे और प्रतिदिन गायों को घास देता रहे तो वह पुरुष दीर्घजीवी होता है, निर्भय, प्रचुर धन-धान्य सुवर्णादि से परिपूर्ण एवं पुत्र मित्रादि समन्वित रहता है तथा देह पात के अनन्तर विष्णु लोक प्राप्त करता है ।। ११८-११९ ।।

मन्त्रान्तरमाह—उद्ध्र्वेति ।

ऊद्ध्र्वदन्तयुतः शार्ङ्गी चक्री दक्षिणकर्णयुक् ।
मांसं नाथाय नत्यन्तो मूलमन्त्रोऽष्टवर्णकः ।। १२० ।।

ऊद्ध्र्वदन्तः ओकारः तेन सहितः शार्ङ्गी गकारः चक्री ककारः दक्षिणकर्णयुक् उकारसहितः मांसो लकारः नाथायेति स्वरूपं नत्यन्तो नमः पदान्तः अयमष्टाक्षरो मूलमन्त्रसंज्ञकः ।। १२० ।।

[अब अन्य मन्त्र कहते हैं—]

ऊद्ध्र्व (ओकार) उससे युक्त शार्ङ्गी (गकार) चक्री (ककार) उसे दक्षिण कर्ण (उकार) से युक्त कर मांस (लकार) पुनः 'नाथाय' यह पद उच्चारण करे तदनन्तर 'नमः' पद कहे यह अष्टाक्षर रूप मूल मन्त्र हुआ । इस प्रकार इसका स्वरूप 'गोकुलनाथाय नमः' निष्पन्न हुआ ।। १२० ।।

ऋष्यादिकमाह—ऋषिरित्यादि ।

ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्रीछन्दः कृष्णस्तु देवता ।
युगवर्णैः समस्तेन प्रोक्तं स्यादङ्गपञ्चकम् ।। १२१ ।।

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता चशब्दोऽनुक्त-समुच्चये तेन बीजशक्त्यधिष्टातृदेवता दशाक्षरवत् तथा अस्य मन्त्रस्य मन्त्रोत्थवर्णानां चतुर्भिर्युग्मवर्णैश्चतुरङ्गं समग्रेण च मन्त्रेणाऽङ्गपञ्चकं ज्ञेयम् ।। १२१ ।।

इस अष्टाक्षर मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं । गायत्री छन्द है । श्रीकृष्ण देवता हैं । दो दो वर्ण के चार अङ्ग पुनः समस्त मन्त्र इस प्रकार इसके पाँच अङ्ग होते हैं ।। १२१ ।।

ध्यानमाह—पञ्चवर्षमिति ।

पञ्चवर्षमतिदृप्तमङ्गणे धावमानमलकाकुलेक्षणम् ।
किङ्किणीवलयहारनूपुरैरञ्जितं स्मरत गोपबालकम् ।। १२२ ।।

गोपशिशुं नमत । कीदृशम् ? पञ्चवर्षवयस्थं तथा अतिबलिष्ठं तथा प्राङ्गणे धावमानं तथा चातिचञ्चलेक्षणं तथा किङ्किणीक्षुद्रघण्टिका वलयः कङ्कणः हारो मुक्ताहारः नूपुरस्तुलाकोटिरेतै रञ्जितं भूषितम् ।। १२२ ।।

[अब इसका ध्यान कहते हैं—]

पाँच वर्ष की अवस्था वाले अत्यन्त बलवान्, आँगन में दौड़ते हुये अत्यन्त चञ्चल नेत्रों से युक्त क्षुद्रघण्टिका, वलय, हार एवं नूपुरों से सुशोभित शिशु स्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये ।। १२२ ।।

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवं प्रजपेदष्टलक्षं तावत्सहस्रकम् ।
जुहुयात् ब्रह्मवृक्षोत्थसमिद्भिः पायसेन वा ।। १२३ ।।

एवं पूर्वोक्तं ध्यात्वा अष्टलक्षं मन्त्रं जपेत् । तदनु पलाशवृक्षसमिद्भिः परमान्नेन वाऽष्टसहस्रं जुहुयात् ।। १२३ ।।

इस प्रकार के श्रीकृष्ण का ध्यान कर ऊपर कहे गये अष्टाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करे और पलास की लकड़ी, अथवा पायस से आठ हजार आहुति प्रदान करे ।। १२३ ।।

पूजाप्रकारमाह—प्रासादे इति ।

प्रासादे स्थापितं कृष्णममुना नित्यशोऽर्चयेत् ।
द्वारपूजादि पीठार्चनान्तं कृत्वोक्तमार्गतः ॥ १२४ ॥

धवलगृहे स्थापितं कृष्णम् अमुना वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रत्यहं पूजयेत् । द्वारपूजामारभ्य पीठपूजापर्यन्तं पूर्वोक्तमन्त्रवर्त्मना कुर्यात् ॥ १२४ ॥

धवलगृह में स्थापित श्रीकृष्ण की मूर्ति का प्रतिदिन इस मन्त्र से पूजा करे, यह पूजा 'द्वार पूजा से' आरम्भ कर पीठपूजा पर्यन्त करनी चाहिये ॥ १२४ ॥

मध्य इति ।

मध्येऽर्चयद्धरिं दिक्षु विदिक्ष्वङ्गानि च क्रमात् ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः ॥ १२५ ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा जाम्बवन्त्यपि ।
दिग्विदिक्ष्वर्चयेदेतान् इन्द्रवज्रादिकान् बहिः ॥१२६॥

पद्ममध्ये हरिं पूजयेत् । पूर्वादिदिक्केशरेषु हृदाद्यङ्गचतुष्टयम्, आग्नेयादिविदिक्केशरेषु अस्त्रमङ्गं पूजयेत् ।

वासुदेव इति । पूर्वादिदिक्पत्रेषु वासुदेवादीन् पूजयेत् । आग्नेयादिविदिक्पत्रेषु रुक्मिण्याद्याः पूजयेत् । तद्बाह्ये स्वस्वदिक्षु इन्द्रादीन्, तदनु वज्रादीन् पूजयेदित्यर्थः ॥ १२५-१२६ ॥

कमल के मध्य में श्रीकृष्ण का पूजन करे । उसके पूर्वादि केशरों में हृदयादि चार अङ्गों की तथा केशर के आग्नेयादि कोणों में अस्त्र की पूजा करे । पुनः पत्र के पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध की पूजा करे तथा पत्र के आग्नेयादि कोणों में रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवती की पूजा करे । पत्र के बाहर पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादिकों की तथा वज्रादिकों की पूजा करे ॥ १२५-१२६ ॥

फलमाह—योऽमुमिति ।

योऽमुं मन्त्रं जपेन्नित्यं विधिनेत्यर्चयेद्धरिम् ।
स सर्वसम्पत्संपूर्णो नित्यं शुद्धं पदं व्रजेत् ॥ १२७ ॥

यः पुमान् उक्तविधिना हरिमर्चयेत् अमुं मन्त्रं जपेत् स सर्वैश्वर्य सम्पन्नः

सन्नित्यमविनाशि शुद्धम् अविद्या तत्कार्यरहितं पदं ब्रह्माख्यं प्राप्नोति ॥ १२७ ॥

जो इस प्रकार से नित्य श्रीकृष्ण का पूजन करता है तथा इस मन्त्र का जप करता है वह सभी प्रकार संपत्तियों से परिपूर्ण हो जाता है और अन्त में नित्य शुद्ध बुद्ध ब्रह्मपद प्राप्त करता हैं ॥ १२७ ॥

मन्त्रान्तरमाह—तारेति।

तारश्रीशक्तिमारान्ते श्रीकृष्णायपदं वदेत्।
श्रीगोविन्दाय तस्योद्र्ध्वं श्रीगोपीजन इत्यपि ॥ १२८॥
वल्लभाय ततस्त्रिः श्रीः सिद्धिगोपालको मनुः।
माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाऽभिपालितौ ॥ १२९ ॥
दिव्यक्रीडासुनिरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत्।
चक्री वसुस्वरयुतः सर्गेकार्णो मनुर्मतः ॥ १३० ॥

तारः प्रणवः श्रीः श्रीबीजं शक्तिबीजं कामबीजान्ते श्रीकृष्णायेति स्वरूपं तदनु श्रीगोविन्दायेति स्वरूपं तदनु श्रीगोपीजनवल्लभायेति स्वरूपं श्रीबीजत्रयमिति सिद्धिगोपालको मन्त्र उद्घृतः ॥

ध्यानमाह—माधवीति।

रामकृष्णौ स्मरन् जपेत्। कीदृशौ ? माधवीलतामण्डपसमुपस्थितौ तथा गरुडेन सेवितौ ॥

एकाक्षरादिगोपालमन्त्रान् दर्शयति—चक्रीति।

ककारो वसुस्वरः अष्टमस्वरः ऋकारस्तेनसहित इति लघुदीपिकाकारः। मुनिस्वरः सप्तस्वरस्तेनसहित इति रुद्रधरः सर्गी विसर्गसहितः इत्येकाक्षरो मन्त्रः ॥ ११८--१३० ॥

तार (प्रणव) श्री बीज (श्रीं) शक्ति बीज (ह्रीं) मार बीज (क्लीं) के अन्त में 'श्रीकृष्णाय पद' कहे। पुनः 'श्री गोविन्दाय' उसके बाद 'श्री गोपीजनवल्लभाय' तदनन्तर तीन श्रीं बीज उच्चारण करे। इस प्रकार सिद्धिगोपालमन्त्र का उद्धार कहा गया—इसका स्वरूप 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय श्रीगोविन्दाय श्रीगोपीजन-वल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं'। माधवीलतामण्डप के मध्य में बैठे हुये श्री गरुड़ के द्वारा सेवित, दिव्य क्रीडा में संलग्न बलराम और श्रीकृष्ण को स्मरण करते हुये इस

सिद्धि गोपाल मन्त्र का जप करना चाहिये। अब एकाक्षर गोपाल मन्त्र प्रदर्शित करते हैं—चक्री 'ककार' उस पर आठवाँ स्वर 'ऋकार' उसे विसर्गयुक्त करने से एकाक्षर गोपाल मन्त्र होता है—स्वरूप 'कृः' है ॥ १२८-१३० ॥

कृष्णेति द्व्यक्षरः कामपूर्वस्त्र्यर्णः स एव तु।
स एव चतुरर्णः स्यात् ङेऽन्तोऽन्यश्चतुरक्षरः ॥१३१॥
वक्ष्यते पञ्चवर्णः स्यात्कृष्णाय नम इत्यपि।
कृष्णायेति स्मरद्वन्द्वमध्ये पञ्चाक्षरोऽपरः ॥ १३२ ॥

कृष्णेति स्वरूपं द्व्यक्षरो मन्त्रः। स एवद्व्यक्षरः कामबीजपूर्वश्चेत् तदा त्र्यक्षरो मन्त्रो भवति—

स एव त्र्यक्षरः चतुर्थीविभक्त्यन्तश्चेत्तदा चतुरक्षरो मन्त्रः अन्यः चतुरक्षरः सद्यफलप्रदम् इत्यनेनाग्रे वक्ष्यते कृष्णाय नम इति पञ्चाक्षरः कृष्णायेति स्वरूपं स्मरद्वन्द्वकामबीजद्वयस्य मध्ये यदा भवति तदा अपरः पञ्चाक्षरो मन्त्रो भवति ॥ १३१–१३२ ॥

'कृष्णः' यह द्वयक्षर गोपाल मन्त्र है, इसके पूर्व में कामबीज से युक्त 'क्लीं कृष्णः' यह त्र्यक्षर उसके आगे चतुर्थी विभक्ति 'क्लीं कृष्णाय' यह चतुरक्षर हुआ। अन्य चतुरक्षर मन्त्र 'सद्य फलप्रदम्' इस श्लोक से आगे कहेंगे। 'कृष्णाय नमः' यह पञ्चाक्षर हुआ, दो काम बीज के मध्य में कृष्णाय पद कहे तो वह दूसरे प्रकार का पञ्चाक्षर गोपालमन्त्र हो जाता है। स्वरूप 'क्लीं कृष्णाय क्लीं' ॥ १३१-१३२ ॥

गोपालायाऽग्निजायान्तः षडक्षर उदाहृतः।
कृष्णायकामबीजाढ्यो वह्निजायान्तकोऽपरः ॥ १३३ ॥
षडक्षरः प्रागुदितः कृष्ण गोविन्दकौ पुनः।
चतुर्थ्यन्तौ सप्तवर्णः सप्तार्णोऽन्यः पुरोदितः ॥ १३४ ॥

गोपालायेति स्वरूपं वह्निजाया स्वाहेति पदद्वयेन षडक्षरः कथितः। कामबीजसहितकृष्णायेति स्वाहेति पदद्वयेन च षडक्षरो मन्त्र उद्धृतस्तथाऽपरः षडक्षरः प्रागेव कथितः स च क्लीं कृष्णाय नम इति।

कृष्णगोविन्दकौ शब्दौ यदि चतुर्थ्यन्तौ भवतस्तदा सप्ताक्षरो मन्त्रोऽपरः सप्ताक्षरः प्रागुदितः स च गोवल्लभाय स्वाहेति ॥ १३३–१३४ ॥

'गोपालाय' के आगे अग्निजाया 'स्वाहा' लगावे तो कामबीज 'क्लीं' पूर्वक कृष्णाय' तदनन्तर वह्निजाया 'स्वाहा' लगावे तो दूसरे प्रकार का षडक्षर मन्त्र का उद्धार होता है। इसके प्रथम भी एवं षडक्षर मन्त्र 'क्लीं कृष्णाय नमः' कहा गया है। 'कृष्णाय गोविन्दाय' यह सप्ताक्षर हुआ। इसके पहले 'गोवल्लभाय स्वाहा, यह सप्ताक्षर मन्त्र कहा जा चुका है ॥ १३३-१३४ ॥

श्रीशक्तिमारः कृष्णाय मारः सप्ताक्षरोऽपरः।
कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तौ स्मराढ्यावष्टवर्णकः ॥ १३५ ॥

श्रीशक्तिमाराः श्रीभुवनेश्वरीमारबीजानि कृष्णायेति मारान्तोऽपरः सप्ताक्षरो मन्त्रः कृष्णगोविन्दशब्दौ ङेऽन्तौ चतुर्थ्यन्तौ। कीदृशौ? कामबीजाढ्यौ इति वसुवर्णः अष्टाक्षरो मन्त्रः ॥ १३५ ॥

श्री बीज (श्रीं) मारबीज (क्लीं) तदनन्तर 'कृष्णाय' पद पुनः मारबीज (क्लीं) यह सप्ताक्षर मन्त्र है। स्वरूप—'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं'। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है ॥ १३५ ॥

दधीति।

दधिभक्षणङेवह्निजायाभिरपरोऽष्टकः।
सुप्रसन्नात्मने प्रोक्त्वा नम इत्यपरोऽष्टकः ॥ १३६ ॥

चतुर्थ्यन्तो दधिभक्षणशब्दः वह्निजाया स्वाहा एतैर्वर्णैरपरोऽष्टाक्षरो मन्त्रः सुप्रसन्नात्मने स्वरूपमुक्त्वा नम इति वदेत् इत्यपरोऽष्टाक्षरो मन्त्रः ॥ १३६ ॥

'दधिभक्षणाय स्वाहा' यह दूसरा भी अष्टाक्षर मन्त्र है। इसी प्रकार 'सुप्रसन्नात्मने नमः' यह भी एक अष्टाक्षर मन्त्र है ॥ १३६ ॥

प्राक् प्रोक्तो मूलमन्त्रश्च नवार्णः स्मरसंयुतः।
कृष्णगोविन्दकौ ङेऽन्तौ नमोऽन्तोऽन्यो नवार्णकः ॥ १३७ ॥

प्रागुक्तश्चाष्टाक्षरो मूलमन्त्रः स्मरसंयुतः कामबीजयुक्तः सन् नवाक्षरो भवति, स च क्लीं गोकुलनाथाय नम इति, कृष्णगोविन्दकौ ङेन्तौ चतुर्थ्यन्तौ स्मरसंयुतौ यदि भवतस्तदा नवाक्षरो मन्त्रो भवति, यद्येतावेव नमोन्तकौ नमः शब्दान्तौ भवतस्तदा परो नवाक्षरो मन्त्रः ॥ १३७ ॥

पहले कहे गये अष्टाक्षर मूल मन्त्र में पहले काम बीज (क्लीं) लगा देने से वह नवाक्षर गोपाल मन्त्र हो जाता है। 'कृष्ण गोविन्द को पृथक्-पृथक् चतुर्थ्यन्त कर

उसमें 'नमः' जोड़ देने से अन्य नवाक्षर मन्त्र हो जाता है। स्वरूप यथा—'कृष्णाय गोविन्दाय नमः' ॥ १३७ ॥

क्लीँ ग्लौँ क्लीँ श्यामलाङ्गाय नमस्तु स्याद्दशार्णकः।
शिरोन्तो बालवपुषे क्लीँ कृष्णाय स्मृतो बुधैः।
एकादशाक्षरो मन्त्र एतेषां नारदो मुनिः ॥ १३८ ॥

उक्तं छन्दस्तु गायत्री देवता कृष्ण ईरितः।
कलाषड्गदीर्घकैरङ्गमथाऽमुं चिन्तयेद्धरिम् ॥ १३९ ॥

क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गय नम इति दशवर्णको मन्त्रः शिरोन्तः स्वाहान्तः बालवपुषे इति पदं क्लीं कृष्णायेति एकादशाक्षरो मन्त्रः बुधैः स्मृतः ॥

उक्तानामृष्यादिकमाह—एतेषाम् एकाक्षरमारभ्यैकादशाक्षरपर्यन्तानां द्वाविंशति मन्त्राणाम् ऋषिर्नारदः गायत्रीछन्दः श्रीकृष्णो देवता।

अङ्गान्याह—कलेति। ककारलकाराभ्यां षड्दीर्घकैर्नपुंसकरहितषड्दीर्घस्वरैः क्लाँक्लींक्लूँक्लैँक्लौँक्लः एभिरित्यर्थः ॥ १३८-१३९ ॥

'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलङ्गाय नमः' यह दशाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय बालवपुषे स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। इन सभी मन्त्रों के ऋषि नारद हैं। गायत्री छन्द है और श्रीकृष्ण देवता हैं। ककार लकार को युक्त कर उस पर क्रमशः छ प्रकार की दीर्घ मात्रा लगा देने से उसका षडङ्ग हो जाता है। यथा—क्लां, क्लीं, क्लूं क्लैं, क्लौं, क्लः' ॥ १३८-१३९ ॥

ध्यानमाह—अव्यादिति।

अव्याद्व्याकोषनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकटीरस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः।
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
गोगोपीगोपवीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ॥ ४० ॥

वो युष्मान् चिरं बहुकालं मुकुन्दोऽव्यात् रक्षतु। कीदृशः ? व्याकोशं प्रफुल्लं यल्लीलाम्बुजं तद्वद्दीप्तिर्यस्य स तथा अरुणं रक्तं यदम्भोजं पद्मं

तद्वन्नेत्रे यस्त स तथा पद्मोपविष्टः तथा बालः पाञ्चवार्षिकः तथा जङ्घापादयोः संधिः कटीरस्थलं कटी उभयोर्घटिता सम्बद्धा रणन्ती शब्दायमाना किङ्किणीक्षुद्रघण्टिका यस्य स तथा हस्ताभ्यां हैयङ्गवीनं सद्यो जातं घृतं सुपक्वं पायसं दधत् तथा गोगोपाङ्गनागोपालैर्वेष्टितः तथा रुरुः व्याघ्रस्तस्य नखेन विलसन्ती शोभमाना कण्ठभूषाऽलंकारो यस्य स तथा ॥ १४० ॥

अब ध्यान कहते हैं—आयुष्मान् श्रीकृष्ण आप की बहुत कालपर्यन्त रक्षा करें। जिसके शरीर की कान्ति फूले हुए नील कमल के समान है, फूले हुये लाल कमल के समान जिनके नेत्र हैं, जो कमलपर विराजमान हैं, जिनकी अवस्था पाँच वर्ष की है जिनके जङ्घा एवं कटिस्थल में क्षुद्रघण्टिका के शब्द हो रहे हैं, दोनों हाथों में क्रम से नवनीत और अत्यन्त शुभ्र वर्ण का पायस धारण किये हुये हैं; ऐसे विश्ववन्द्य भगवान् मुकुन्द जो गो, गोपी और गोपगणों से घिरे हुये हैं और जिनके कण्ठ में व्याघ्रनख का आभूषण शोभित हो रहा है (आप की बहुकाल पर्यन्त रक्षा करें) ॥ १४० ॥

एतेषां पुरश्चरणमाह—ध्यात्वैवमिति ।

ध्यात्वैवमेकमेतेषां लक्षं जप्यान्मनुं ततः ।
सर्पिःसितोपलोपेतैः पायसैरयुतं हुनेत् ॥ १४१ ॥

यथोक्त ध्यानं कृत्वा एतेषां मध्ये एकं मन्त्रं लक्षं जपेत्। तदनु घृतखण्डसारयुक्तैः परमान्नैर्दशसहस्रं जुहुयात् ॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण का ध्यान कर इन मन्त्रों में किसी एक का एक लाख जप करे, तदनन्तर घृत मधुशर्करायुक्त पायस से दस हजार हवन करे ॥ १४१ ॥

तर्पयेत्तावदन्येषां मनूनां हुतसंख्यया ।
तर्पणं विहितं नित्यं योऽर्चयेत्सुसमाहितः ॥ १४२ ॥
वह्न्यादीशान्तमङ्गानि हृदादिकवचान्तकम् ।
अर्चयेत्पुरतो नेत्रमस्त्रं दिक्षु बहिः पुनः ॥ १४३ ॥
इन्द्रवज्रादयः पूज्याः सपर्यैषा समीरिता ।
इत्येकमेषां मन्त्राणां भजेद्यो मनुवित्तमः ॥ १४४ ॥

करप्रचेयाः सर्वार्थास्तस्याऽसौ पूज्यतेऽमरैः ।
सद्यः फलप्रदं मन्त्रं वक्ष्येऽन्यं चतुरक्षरम् ॥ १४५ ॥
स प्रोक्तो मारयुग्मान्तरस्थकृष्णपदेन तु ।
ऋष्याद्यमङ्गषट्कं च प्रागुक्तं प्रोक्तमस्य तु ॥ १४६ ॥

तदनु तावद्दशसहस्रं तर्पयेत् । एवं प्रकारेणैकस्मिन्मन्त्रे सिद्धे जाते तदन्येषां सकृत्पुरश्चरणानाम् एकविंशति मन्त्राणां जपहोमसंख्यया विनैव हुतायुतेन तर्पणमेव पुरश्चरणं विहितं करणीयम् । एतेषां मन्त्राणां होमसंख्यया अयुतेनैव तर्पणं विहितम् ।

पूजामाह—नित्यमिति । नित्यं सर्वदा सुसमाहितः संयतः सन् पूजयेत् । वह्न्यादीशान्तम् आग्नेयकोणमारभ्य ईशानकोणपर्यन्तहृदादिकवचपर्यन्तमङ्गचतुष्टयं पूजयेत् पुरतोऽग्रे नेत्रमस्त्रं पूजयेत् ॥

पूर्वादिचतुर्दिक्षु इन्द्रादीन् पूजयेत् । तदनु—वज्रादीनिति उपसंहरति । एषां मन्त्राणां सपर्या पूजा कथिता ॥

फलमाह—इत्येकमिति । अमुना प्रकारेण यः साधकोत्तम एषां मन्त्राणां मध्ये एकं मन्त्रं भजेत् उपासीत तस्य सर्वे पुरुषार्था हस्तप्राप्याः देवैश्चासौ पूज्यते ॥

मन्त्रान्तरमाह—सद्य इति । तात्कालिकफलदायकमपरं चतुरक्षरमन्त्रं वक्ष्ये सचतुरक्षरः कामबीजद्वयमध्यस्थेन कृष्णपदेन कथितः ॥

ऋष्यादिकमस्य ऋषिश्छन्दो दैवतम् अङ्गषट्कं च प्रागुक्तं पूर्वमन्त्रसमूहे कथितं बोद्धव्यम् ॥ १४२–१४६ ॥

इसके अनन्तर दश हजार मन्त्रों से तर्पण करे । इस प्रकार एक मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर अन्य २१ मन्त्रों की सिद्धि जप होम बिना किये ही केवल दस हजार तर्पणमात्र से हो जाती है । समाहित चित्त हो इन मन्त्रों के जप के पूर्व नित्य आग्नेय कोण से आरम्भ कर ईशानकोण पर्यन्त हृदय से लेकर कवचपर्यन्त अङ्गचतुष्टय की पूजा करे एवं आगे अस्त्र की पूजा करे; पुनः पूर्वादि दिशा में इन्द्रादि देवताओं की तदनन्तर वज्रादि आयुधों की पूजा करे । इस प्रकार हमने इन मन्त्रों की पूजा का प्रकार कहा । ऊपर कहे गये मन्त्रों में जो एक मन्त्र से भी इस प्रकार पूजा करता है उसके हाथ में सब प्रकार की संपत्ति आ जाती है । वह देवताओं से भी पूजित हो जाता है । अब सद्यः फलप्रद एक और चार अक्षर का मन्त्र

कहते हैं। वह मन्त्र दो काम बीज (क्लीँ क्लीँ) उसके मध्य में कृष्ण हैं, इसके ऋषि; छन्द, देवता एवं अङ्गषट्क पूर्वोक्त हैं। मन्त्र का स्वरूप क्लीँ कृष्ण क्लीँ है ॥ १४२-१४६ ॥

ध्यानमाह –श्रीमदिति।

श्रीमत्कल्पद्रुमूलोद्गतकमललसत्कर्णिकासंस्थितोय -
स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरविगलदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः।
हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः
पायाद्वः पायसादोऽनवरतनवनीतामृताशी वशी सः ॥ १४७ ॥

वासुदेवः वो युष्मान् पायात्। कीदृशः ? यः श्रीयुक्तकल्पवृक्षमूलोद्गतपद्मे शोभमाना या कर्णिका तत्रोपविष्टः, तथा कल्पद्रुमशाखालम्बि यत् पद्मं तस्योदरं ततो विगलन्ति प्रसरन्ति यानि असंख्यातानि रत्नानि तैरभिषिक्तः तथा सुवर्णगौरः तथा स्वकान्तिभिः समस्तं त्रैलोक्यं भासयन् क्षीरान्नाशी तथा अनवरतमनुवेलं नूतनं नवनीतमेवामृतं तदश्नातीति ॥ १४७ ॥

अब ध्यान कहते हैं—

श्री युक्त कल्पवृक्ष के नीचे स्थापित कमल की कर्णिका पर बैठे हुये तथा कल्पवृक्ष की शाखा में लटकते हुये कमल के भीतर से गिरते हुये असंख्य रत्नों से अभिषिक्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान अपनी कान्ति से समस्त त्रिभुवन को प्रकाशित करने वाले परमान्न एवं निरन्तर नवनीत रूप अमृत का भोजन करने वाले वशी (जितेन्द्रिय) भगवान् वासुदेव आप की रक्षा करें ॥ १४७ ॥

पुरश्चरणमाह—ध्यात्वेति।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं चतुष्कं जुहुयात्ततः।
त्रिमध्वक्तैर्बिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् ॥ १४८ ॥

यथोक्तं ध्यानं कृत्वा लक्षचतुष्टयं जपेत्। तदनु घृतमधुशर्करायुतैर्बिल्वफलैश्चत्वारिंशत्सहस्रं जुहुयात् ॥ १४८ ॥

इस प्रकार उपरोक्त मन्त्रों में किसी एक का चार लाख जप करे तथा मधु-शर्करा आज्य परिप्लुत बिल्वफल से चालीस हजार अग्नि में आहुति दे ॥ १४८ ॥

पूजामाह—अङ्गैरिति ।

अङ्गैर्निधिभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैरर्चनोदिता ।

तर्पयेद्दिनशः कृष्णं स्वादुत्रयधिया जलैः ॥ १४६ ॥

षडङ्गैः निधिभिरिन्द्राद्यष्टनिधिभिरिन्द्राद्यैर्वज्राद्यैश्चाऽनीलार्चना पूजा कथिता ।

तर्पणमाह—तर्पयेदिति । प्रतिदिनं स्वादुत्रयधिया घृतमधुशर्कराबुद्ध्या जलैः कृष्णं पूजयेत् ॥ १४९ ॥

इन मन्त्रों के जप में षडङ्गों से, पद्मादि निधियों से, इन्द्रादिकों से तथा वज्रादि आयुधों से युक्त नील श्री कृष्ण के पूजन का विधान है; तथा मन्त्री जल में त्रिमधु की भावना कर उसी से तर्पण भी करे ॥ १४९ ॥

मन्त्रान्तरमाह—मारयोरिति ।

मारयोरस्य मांसाधोरक्तं चेदपरो मनुः ।

षडङ्गान्यस्य कलषट्दीर्घैर्मन्त्रशिखामणेः ॥ १५० ॥

अस्य पूर्वोक्तचतुरक्षरमन्त्रस्य मारयोराद्यन्तकामबीजयोर्मांसाधः लकारस्याधस्तात् चेद्यदि रक्तं रेफो भवति तदाऽपरश्चतुरक्षरः क्लीं कृष्ण क्लीम् इति मन्त्रः । अस्य मन्त्रशिखामणे मन्त्रशिरो रत्नस्य कलषट्दीर्घैः कला ईकार-सहितकामबीजेन षट्दीर्घैः कलसहितैर्नपुंसकरहितैः षाट्दीर्घस्वरैः षडङ्गानि कुर्यादिति शेषः ॥ १५० ॥

दो कामबीज के मध्य में यदि रेफ हो तो अन्य चतुरक्षर मन्त्र बन जाता है । यथा क्लीं रँ क्लीं' । इस मन्त्र शिखामणि के क् ल् को संयुक्त कर ६ प्रकार के दीर्घों से युक्त करे तो उसका षडङ्ग हो जाता है ॥ १५० ॥

विमर्श—यथा क्लीं क्लूं क्ले, क्लों, क्लौं, क्लः ॥ १५० ॥

ध्यानमाह—आरक्तेति ।

आरक्तोद्यानकल्पद्रुमशिखरलसत्स्वर्णदोलाधिरूढं

गोपाभ्यां प्रेङ्ख्यमानं विकसितनवबन्धूकसिन्दूरभासम् ।

बालं नीलालकान्तं कटितटविलुठत् क्षुद्रघण्टाघटाढ्यं

वन्दे शार्दूलकामाङ्कुशललितगलाकल्पदीप्तं मुकुन्दम् ॥ १५१॥

मुकुन्दं वन्दे, कीदृशम् ? आरक्तमरुणं यदुद्यानं तत्र यः कल्पवृक्षस्तस्य शिखरमग्रं तत्र लसन्ती या शोभमाना सुवर्णमयी दोला तत्रोपविष्टं तथा गोपाङ्गनाभ्यां प्रेख्यमानं दोलायमानं विकसितं प्रफुल्लं नवीनं यद्बन्धुजीवपुष्पं सिन्दूरं तयोरिव भावं यस्य तं तथा बालं शिशुं तथा कृष्णकेशं तथा कटितटे इतस्ततो गच्छन्ती या क्षुद्रघण्टिका घंटाक्षुद्रघण्टिका समूहस्तेन सम्बद्धं तथा शार्दूलस्य व्याघ्रस्य कामाङ्कुशेन शोभमानं यत्कण्ठाभरणं तेन शोभमानम् ॥ १५१ ॥

[अब इसका ध्यान कहते हैं—] रक्त पुष्पों से विकसित रक्तवर्ण के उद्यान में विद्यमान कल्पवृक्ष के डालियों में सुशोभित सुवर्णमयी दोला पर चढ़े हुये; दोनों ओर से दो गोपाङ्गनाओं द्वारा झुलाये जाते हुये, फूले हुये बन्धूक पुष्प एवं सिन्दूर के समान कान्ति वाले, काले काले केशों से युक्त, कटितट पर इधर उधर खिसकती हुई क्षुद्रघण्टिका समूहों से बँधे हुये एवं व्याघ्र के कामाङ्कुश से विरचित आभूषण गले में धारण किये हुये मुकुन्द का मैं स्मरण करता हूँ ॥ १५१ ॥

एवं—ध्यात्वेति ।

ध्यात्वैवं पूर्वक्लृप्त्यैनं जप्त्वा रक्तोत्पलैर्नवैः ।
मधुत्रयप्लुतैर्हुत्वाऽप्यर्चयेत् पूर्ववद्धरिम् ॥ १५२ ॥

पूर्वोक्तं मुकुन्दं ध्यात्वा एनं मन्त्रं पूर्वोक्तसंख्यमेव जप्त्वा रक्तपद्मैर्नूतनैर्घृतमधुशर्करायुतैः पूर्वोक्तसंख्यमेव हुत्वा पूर्वोक्तप्रकारेण हरिं पूजयेत् ॥ १५२ ॥

इस प्रकार के मुकुन्द का स्मरण करते हुये इस मन्त्र को भी पूर्व में कही गई मन्त्र संख्या के परिमाण में जप कर घृत-मधु और शर्करा मिश्रित रक्त कमलों से पूर्वोक्त संख्या में होम करे। तदनन्दर विष्णु का पूजन करे ॥ १५२ ॥

आरादुक्तं मन्त्रयोः प्रयोगं दर्शयति—मधुरेति ।

मधुरत्रयसंयुक्तामारक्तां शालिमञ्जरीम् ।
जुहुयान्नित्यशोऽष्टोर्द्धं शतमेकेन मन्त्रयोः ॥ १५३ ॥

घृतमधुशर्करामिश्रितां लोहितां हैमन्तिकधान्यमञ्जरीम् अष्टोत्तरशतमनयोर्मन्त्रयोर्मध्ये एकेन मन्त्रेण प्रत्येकं प्रत्यहं यो जुहुयात् तस्य पुंसः

मण्डलतः एकोनपञ्चाशद्दिनादर्वाक् षड्विंशतिदिनादिति लघुदीपिकाकारः। पञ्चचत्वारिंशद्दिनानन्तरमिति रुद्रधरः। महती पृथिवी धान्यादिसमूहव्याप्ता भवति तथा तद्गृहं शालिधान्यसमूहव्याप्तं शीघ्रं भवति ॥ १५३ ॥

[अन्य प्रयोग कहते हैं—]

घृत मधु एवं शर्करा मिश्रित हेमन्त ऋतु में होने वाली रक्तवर्ण की धान्य की मञ्जरियों से इन दोनों मन्त्रों में से किसी एक के द्वारा १०८ बार अग्नि में आहुति प्रदान करे ॥ १५३ ॥

तस्य मण्डलतः पृथ्वी पृथ्वीसस्यकुलाकुला।
स्याच्छालिपुञ्जपूर्णं च तद्वेश्माऽऽशु प्रजायते ॥ १५४ ॥

उस पुरुष को ५० दिन से पहले धन धान्य से परिपूर्ण हरी भरी पृथ्वी प्राप्त हो जाती है, उसका घर शीघ्र ही धन धान्य से परिपूर्ण हो जाता है ॥ १५४ ॥

फलमाह—यस्त्विति।

यस्त्वेतयोर्नियतमन्यतरं भजेत
मन्वोर्जपार्चनहुतादिभिराप्तभक्तिः।
श्रीमान्स मन्मथ इव प्रमदासु वाग्मी
भूयात्तनोर्विपदि तच्च महोच्युताख्यम् ॥ १५५ ॥

॥ इति केशवकाश्मीर्याचार्य विरचितायां क्रमदीपिकायां
सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

—०—

यः पुमानेतयोरेकं नियतं नियतो भजेत साधयेत्। कैः? जपपूजाहोमादिभिः। कीदृशः? प्राप्तभक्तिः स लक्ष्मीयुक्तः स्त्रीषु कामदेववत् उत्कृष्ट-

वचनभाक् भवति। तनोर्विपदि शरीरपातानन्तरं विष्णुलोकं च गच्छति ॥ १५५ ॥

॥ इति श्री विद्याविनोदगोविन्दभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिका-विवरणे सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

——०——

जो पुरुष भक्ति से युक्त हो इन दो मन्त्रों में से किसी एक के द्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण का अर्चन जप एवं होम के द्वारा यजन करता है वह श्री संपन्न हो जाता है, स्त्रियों में कामदेव के समान सुन्दर एवं प्रशस्त वाणी से परिपूर्ण हो जाता है। पुनः शरीर के पात के पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥ १५५ ॥

॥ श्री काश्मीरिक केशवभट्ट द्वारा विरचित क्रमदीपिका में डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का सातवाँ पटल समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

——०——

अष्टमं पटलम्

अथोच्यते वश्यविधिः पुरोक्त-
दशार्णतोऽष्टादशवर्णतश्च ।
स्मृत्यैव यौ सर्वजगत् प्रियत्वं
मनू मनुज्ञस्य सदा विधत्तः ॥ १ ॥

अथाऽनन्तरं वश्यकरः प्रयोगः कथ्यते—पूर्वोक्तदशाक्षरस्याऽष्टादशाक्षरस्य च यौ मन्त्रौ स्मरणमात्रेण साधकस्य सर्वजनवल्लभत्वं सर्वदा कुरुतः ॥ १ ॥

वशीकरण विधि—

अब मैं पहले कहे गये दशार्ण एवं अष्टादशार्ण मन्त्रों के द्वारा वशीकरण की विधि कहता हूँ, जिस दो मन्त्रों के स्मरण मात्र से साधक सारे जगत् का अभीष्ट पूर्ण करता है ॥ १ ॥

फुल्लैरिति ।

फुल्लैर्वन्यप्रसूनैरमुमरुणतरैरर्चयित्वा दिनादौ
नित्यं नित्यक्रियायां रतमथदिनमध्योक्तक्लृप्त्या मुकुन्दम् ।
अष्टोपेतं सहस्रं दशलिपिमनुवर्यं जपेद् यः स मन्त्री
कुर्याद्वश्यान्यवश्यं मुखरमुखभुवां मण्डलान् मण्डलानि ॥२॥

पुष्पितैः वनोद्भवपुष्पैरतिलोहितममुं मुकुन्दं नित्यं सर्वदा नित्यकर्मानुष्ठाननिष्ठं दिनादौ प्रतिः प्रत्यहं मध्याह्नोक्त पूजाप्रकारेण पूजयित्वा यो मन्त्री दशाक्षरं मन्त्रश्रेष्ठम् अष्टाधिकं सहस्रं जपेत् । मण्डलादेव पञ्चाशद्दिनादर्वाक्मुखरमुखभुवां विद्वद्ब्राह्मणानां मण्डलानि समूहानवश्यं वश्यानि कुर्याद्वशयतीत्यर्थः ॥ २ ॥

जो साधक प्रातः काल में फूले हुये रक्त वर्ण के वन्य पुष्पों से निरन्तर नित्य क्रिया में निरत भगवान् मुकुन्द का पूर्वोक्त मध्याह्न में कही गई विधि के अनुसार

पूजा कर १००८ वार दशाक्षर मन्त्र का जप करता है वह पचास दिन से पहले ही विद्वान् ब्राह्मणों के समुदाय को अपने वश में कर लेता है ॥ २ ॥

क्षत्रियवैश्यशूद्रस्याऽपि प्रयोगत्रयं दर्शयति—जातीनि ।

जातीप्रसूनैर्वरगोपवेषं
क्रीडारतं रक्तहयारिपुष्पैः ।
नीलोत्पलैर्गीतिरतं पुरोव-
दिष्ट्वा नृपादीन् वशयेत् क्रमेण ॥ ३ ॥

वरगोपवेषं श्रेष्ठगोपरूपधरं श्रीकृष्णं विचिन्त्य जातीपुष्पैः पूर्वोक्तप्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षरमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जप्त्वा क्षत्रियं वशयेत् क्रीडासक्तं ध्यात्वा रक्तकरवीरपुष्पैः पूर्वोक्तप्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षरमन्त्रमष्टोत्तरं सहस्रं जप्त्वा वैश्यं वशयेत् गीतिरतं गीतासक्तं ध्यात्वा नीलोत्पलैः पूर्वोक्तप्रकारेण पूजयित्वा दशाक्षरमन्त्रमष्टोत्तर सहस्रं जप्त्वा शूद्रं वशयेत् इत्यनेन प्रकारेण नृपादीन् वशयेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

अत्यन्त मनोहर गोपवेष धारण करने वाले, रास क्रीडा में रत एवं गान में आसक्त परमात्मा श्रीकृष्ण का, जाती पुष्पों से, लाल वर्ण के करवीर पुष्पों से और नील कमल के पुष्पों से पूर्ववत् पूजन करे एवं १०८ बार जप करे तो वह साधक क्रमशः क्षत्रियादिवर्णों को अपने वश में कर लेता है ॥ ३ ॥

विमर्श—क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों को वश में करने का प्रयोग तीन प्रकार से यहाँ कहा जा रहा है जाती पुष्प के पूजन से क्षत्रिय, रक्त करवीर पुष्पों के पूजन से वैश्य एवं नीलकमलों के द्वारा पूजन से शूद्र वश में हो जाता है ॥ ३ ॥

प्रयोगान्तरमाह—सितेति ।

सितकुसुमसमेतैस्तण्डुलैराज्यसिक्तै-
र्दशशतमथ हुत्वा नित्यशः सप्तरात्रम् ।
कचभुवि च ललाटे भस्म तद्धारयन्ना
वशयति मनुजस्त्रीं साऽपि नूनं स्तद्वदेव ॥ ४ ॥

श्वेतपुष्पसहितैः श्वेततण्डुलैर्घृतमिश्रितदशाक्षरमन्त्रेण दशशतं हुत्वा नित्यशः सप्तदिनपर्यन्तं तदनु तद्धोमभस्म कचभुवि शिरसि ललाटे च

धारयन् ना पुरुषः मनुजस्त्रीं मनुष्यनारीमिति रुद्रधरः। तरुणीं स्त्रियं वशयतीति त्रिपाठिनः। साऽपि स्त्री अनेन प्रयोगेण नॄन् वशयेदित्यर्थः ॥ ४ ॥

घृत से आर्द्र श्वेतपुष्प सहित चावलों से निरन्तर सात रात्रिपर्यन्त १००० आहुति प्रदान कर उसका भस्म शिर पर एवं ललाट प्रदेश में धारण करने वाला मनुष्य तरुणी स्त्रियों को तथा स्त्री तरुणों को वश में कर सकती है ॥ ४ ॥

प्रयोगान्तरमाह—ताम्बूलेति।

ताम्बूलवस्त्रकुसुमाञ्जनचन्दनाद्यं
जप्तं सहस्रत्रयमन्यतरेण मन्वोः।
यस्मै ददाति मनुवित् स जनोऽस्य मङ्क्षु
स्यात् किङ्करो न खलु तत्र विचारणीयम् ॥ ५ ॥

ताम्बूलं वस्त्रं पुष्पं कज्जलं चन्दनं च एतद्यदन्यद्वस्तु मन्वोदशाष्टादशाक्षरयोरन्यतरेणैकेन सहस्रत्रयं संजप्तं यस्मै जनाय ददाति साधकः स नरोऽस्य साधकस्य मङ्क्षु शीघ्रं वश्यो भवति। नाऽत्र संशय इत्यर्थः ॥ ५ ॥

इन दो मन्त्रों में किसी एक के द्वारा तीन सहस्र जप से अभिमन्त्रित ताम्बूल, वस्त्र, पुष्प, अञ्जन एवं चन्दनादि वस्तुओं को जप करने वाला साधक जिसे प्रदान करता है, वह मनुष्य शीघ्र ही उसके वश में होकर उसका दास बन जाता है—इसमें संदेह की कोई बात नहीं है ॥ ५ ॥

प्रयोगान्तरमाह—राजद्वारे इति।

राजद्वारे व्यवहारे सभाया
द्यूते वादे चाऽष्टयुक्तं शतं च।
जप्त्वा वाचं प्रथमामीरयेद्यो
वर्त्तेताऽसौ तत्र तत्रोपविष्टान् ॥ ६ ॥

राजसमीपे क्रयविक्रये सदसि अक्षक्रीडादौ वादे च यो मन्वोरेकमष्टोत्तरशतं जप्त्वा प्रथमत एव यां वाचं वदति तयैव वाचा तत्र वादादौ उपविष्टानसौ वर्तेत तज्जयी भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

[वशीकरण के लिये अब अन्य प्रयोग कहते हैं—]

राज द्वार में राजा के समीप-व्यवहार लेन देन क्रय विक्रयादि, सभा, द्यूत एवं मुकदमे में १०८ वार इन दो मन्त्रों में किसी एक से जप कर जो सर्वप्रथम वाणी का प्रयोग करता है, वह वहाँ पर बैठे हुये सभी लोगों पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥

प्रयोगान्तरमाह—आसीनमिति ।

आसीनं मुरमथनं कदम्बमूले
गायन्तं मधुरतरं व्रजाङ्गनाभिः ।
स्मृत्वाऽग्नौ मधुमिलितैर्मयूरकेध्मै-
र्हुत्वाऽसौ वशयति मन्त्रवित्त्रिलोकीम् ॥ ७ ॥

कदम्बमूले उपविष्टं मुरमथनं कृष्णं गोपीभिर्मधुरतरं गायन्तं ध्यात्वा वह्नौ मधुस्नुतैर्मयूरकेध्मैरपामार्गसमिद्भिर्हुत्वा असौ साधको लोकत्रयं वशयति ॥ ७ ॥

कदम्बवृक्ष के नीचे बैठे हुये ब्रजाङ्गनाओं के साथ अत्यन्त मधुर स्वर में गाते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान कर मधुमिश्रित अपामार्ग की समिधाओं द्वारा (१०८ वार) होम करने वाला साधक त्रिलोकी को अपने वश में कर लेता है ॥ ७ ॥

प्रयोगान्तरमाह—रासेति ।

रासमध्यगतमच्युतं स्मरन्
यो जपेद्दशशतं दशाक्षरम् ।
नित्यशो झटिति मासतो नरो
वाञ्छितामभिवहेत्स कन्यकाम् ॥ ८ ॥

यो नरः पूर्वोक्तरासमध्यगतं कृष्णं ध्यायन् दशाक्षरं मन्त्रं प्रत्यहं दशशतं जपेत् स मासैकेन शीघ्रमेव वाञ्छितां कन्यां प्राप्नोति ॥ ८ ॥

[वशीकरण के लिये अन्य प्रयोग कहते हैं—]

रास के मध्य में नृत्य करते हुये श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये प्रतिदिन एक सहस्र दशाक्षर मन्त्र का जप करने वाला साधक एक महीने के भीतर ही सुलक्षण कन्या प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥

प्रयोगान्तरमाह—तुङ्गेति ।

तुङ्गकुन्दमधिरूढमच्युतं
या विचिन्त्य दिनशः सहस्रकम् ।
साऽष्टकं जपति सा हि मण्डला-
द्वाञ्छितं वरमुपैति कन्यका ॥ ९ ॥

उच्चकदम्बवृक्षस्थं विचिन्त्य प्रत्यहम् अष्टोत्तरसहस्रं दशाक्षरं या कन्यका जपति सा हि निश्चयेन मण्डलादेकोनपञ्चाशद्दिनादर्वाक् वाञ्छितवरं प्राप्नोति ॥ ९ ॥

उच्चकदम्ब की शाखा पर बैठे हुये परमात्मा श्रीकृष्ण का निरन्तर ध्यान करती हुई प्रतिदिन एक हजार आठ दशाक्षर मन्त्र का जप करने वाली कन्या अभीष्ट वर प्राप्त करती है ॥ ९ ॥

समानफलं प्रयोगद्वयमाह—नृत्यन्तमिति ।

नृत्यन्तं व्रजसुन्दरीजनकराम्भोजानि संगृह्य तं
ध्यात्वाऽष्टादशवर्णकं मधुवरं लक्षं जपन्मन्त्रवित् ।
लाजानमथवा मधुप्लुततरैर्हुत्वाऽयुतं चूर्णकै-
रुद्वोढुं प्रजपेच्च तावदचिरादाकाङ्क्षितां कन्यकाम् ॥ १० ॥

अचिरात् शीघ्रवाञ्छितां कन्यां परिणेतुं मन्त्रवित्साधकः गोपयुवतीहस्तपद्मानि संगृह्य धृत्वा नृत्यन्तं तं प्रसिद्धं श्रीकृष्णं ध्यात्वा लक्षमात्रपरिमितमष्टादशाक्षरं मन्त्रश्रेष्ठं जपेत् अथवा लाजानां चूर्णैर्मधुद्रुततरैर्घृतमधुशर्कराप्रचुरान्वितैः मधुना द्रवीभूतैरितिरुद्रधरः । दशसहस्रं हुत्वा तावदेव संख्यं जपेदित्यर्थः ॥ १० ॥

[अब वशीकरण के लिये अष्टादशाक्षर मन्त्र की विधि कहते हैं—]

अभिलषित कन्या से विवाह करने के लिये साधक व्रजसुन्दरियों के कर कमलों को पकड़कर नृत्य करते हुये श्री कृष्ण का ध्यान करते हुये अष्टादशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करे और मधु, घृत एवं शर्करा परिप्लुत लाजा के चूर्ण से दस हजार हवन करे तो वह शीघ्र ही अभिलषित कन्या प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥

प्रयोगान्तरमाह—अष्टादशेति ।

अष्टादशाक्षरेण द्विजतरुजैस्त्रिमध्वक्तैरयुतम् ।
कुशैस्तिलैर्वा सतण्डुलैर्वशयितुं द्विजान् जुहुयात् ॥ ११ ॥

द्विजान् ब्राह्मणान् वशयितुमष्टादशाक्षरमन्त्रेण द्विजतरुजैः पलाशवृक्ष-समुद्भवैः समिद्भिस्त्रिमधुराक्तैः घृतमधुशर्करामिश्रितैरयुतं दशसहस्रं जुहुयात् अथवा त्रिमध्वक्तैः कुशैस्तिलैः तण्डुलैर्वा जुहुयात् ॥ ११ ॥

ब्राह्मणों को वश में करने के लिये घृत, शर्करा एवं मधु मिश्रित पलाश की समिधाओं से अथवा घृत, शर्करा मधुमिश्रित, तण्डुल युक्त तिलों से अष्टादशाक्षर मन्त्रों द्वारा दस हजार हवन करे तो शीघ्र ही ब्राह्मण वश में हो जाते हैं ॥ ११ ॥

प्रयोगान्तरमाह—

कृतमालभवैर्वशयेन् नृपतीन्
मुकुलैश्च कुरुण्टकजैश्च तथा ।
विशमिक्षुरकैरपि पाटलजै-
रितरानपि तद्वदथो वशयेत् ॥ १२ ॥

कृतमालभवैः राजवृक्षसमुद्भवैः मुकुलैः कलिकाभिः हुत्वा नृपतीन् क्षत्रियान् वशयेत् । कुरुण्टकजैश्च झिण्टीसमुद्भवैः मुकुलैर्हुत्वा वैश्यान् वशयेत् । इक्षुरसैः इक्षुरकैरिति पाठे कोकिलाक्षोमथीनश्च इत्यर्थः । पाटल-समुद्भवैः मुकुलैर्वा हुत्वा इतरान् शूद्रान् वशयेत् । अनुक्तसंख्या होमस्य बोद्धव्या तस्या एव प्रकरणत्वादिति ॥ १२ ॥

[अन्य प्रयोग कहते हैं—]

साधक राजवृक्ष के कलिकाओं से, अथवा कुरुण्टक की कलिकाओं से होम करे तो क्षत्रियों को वश में कर लेता है, कोकिला (तालमखानों) से हवन करे तो वैश्य वश में हो जाता है एवं पाटल के कलियों से होम करे तो शूद्र वश में हो जाता है ॥ १२ ॥

प्रयोगान्तरमाह—अभिनवैरिति ।

अभिनवैः कमलैररुणोत्पलैः
समधुरैरपि चम्पकपाटलैः ।

प्रतिहुनेदयुतं क्रमशोऽचिरा-

द्वशयितुं मुखजादिवराङ्गनाः ॥ १३ ॥

शीघ्रं मुखजादिवराङ्गना ब्राह्मणादिस्त्रियो वशयितुं चतुर्भिर्द्रव्यैः समधुरैर्मधुरत्रयमिलितैः क्रमशः प्रत्येकं सार्द्धसहस्रद्वयं कृत्वा दशसहस्रं प्रतिहुनेत् जुहुयात् । द्रव्याण्याह—

नूतनैः श्वेतपद्मैः रक्तोत्पलैश्चम्पकपुष्पैः पाटलपुष्पैः ॥ १३ ॥

[वशीकरण के लिये अन्य प्रयोग कहते हैं—]

ब्राह्मणी आदि स्त्रियों को वश में करने के लिये नवीन श्वेत कमल को मधु-शर्करा घृत से मिश्रित कर दो हजार पाँच सौ—इसी प्रकार उक्त पदार्थों से मिश्रित रक्त कमल-चम्पक एवं पाटलो से प्रत्येक से ढाई ढाई हजार कुल मिलाकर दस हजार हवन करे तो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं ॥ १३ ॥

प्रयोगान्तरमाह—हयारीति ।

हयारिकुसुमैर्नवैस्त्रिमधुराप्लुतैर्नित्यशः

सहस्रमृषिवासरं प्रतिहुनेन्निशीथे बुधः ।

सुगर्वितधियं हठात् झटिति वारयोषामसौ

करोति निजकिङ्करीं स्मरशिलीमुखैरर्दिताम् ॥ १४ ॥

हयारिकुसुमैः करवीरकुसुमैः नूतनैः त्रिमधुरमिश्रितैः प्रत्यहं सहस्रं ऋषिवासरं सप्तवासरं बुधः साधको निशीथे रात्रौ प्रत्यहं प्रतिदिनं जुहुयात् असौ अहङ्कारवतीं वारयोषां वेश्याकामवाणैः पीडितां हठात् बलात् झटिति शीघ्रं निजदासीं करोति ॥ १४ ॥

घृत, शर्करा एवं मधु मिश्रित नवीन करवीर के पुष्पों से सात दिन पर्यन्त अर्धरात्रि काल में प्रतिदिन सहस्र संख्या में जो साधक हवन करता है वह अत्यन्त गर्वीली से गर्वीली वेश्या को शीघ्रता से हठपूर्वक काम के बाणों से घायल कर अपनी दासी बना लेता है ॥ १४ ॥

प्रयोगान्तरमाह—पटुसंयुतैरिति ।

पटुसंयुतैस्त्रिमधुराद्रतरै-

रपि सर्षपैर्दशशतं त्रितयम् ।

निशि जुह्वतोऽस्य हि शचीदयितोऽ-

प्यवशो वशी भवति किन्वपरे ॥ १५ ॥

लवणसंयुतैः कटुसंयुतैरिति पाठे कटुकसंयुतैरित्यर्थः । मधुराद्रैंतरैघृंत-मधुशर्करास्निग्धैरपिः समुच्चये सर्षपैर्दशशतं त्रितयं त्रिसहस्रं निशि रात्रौ जुह्वतः पुरुषस्य शचीदयितः इन्द्रोऽपि अवशो वशी भवति किं पुनरन्ये ॥ १५ ॥

[अन्य प्रयोग कहते हैं—]

नमक; घृत; मधु एवं शर्करा मिश्रित सर्षप बीजों से तीन हजार प्रतिदिन रात्रि में होम करने वाले पुरुष के वश में सर्व तन्त्र स्वतन्त्र शचीपति इन्द्र भी हो जाते हैं, फिर और की तो बात ही क्या ? ॥ १५ ॥

प्रयोगान्तरमाह—अथेति ।

अथ विल्वजैः फलसमित् प्रसव-

च्छदनैर्मधुद्रुततरैर्हवनात् ।

कमलैः सिताक्षतयुतैश्च पृथक्

कमलां चिराय वशयेदचिरात् ॥ १६ ॥

बिल्ववृक्षोद्भवैः फलसमित्पुष्पपत्रैः श्वेतपद्मैरत्यन्तमधुराप्लुतैः सिताक्षतयुतैः शर्करातण्डुलमिश्रितैः सिताज्यसहितैरिति पाठे सिताशर्करा आज्यं घृतं तत्सहितैः, पृथक् एकैकं वस्तुत्रिसहस्रहोमात् चिरकालम् अचिरात् शीघ्रं कमलां लक्ष्मीं वशयेत् अत्र संख्यासमनन्तरोक्ता ॥ १६ ॥

बिल्ववृक्ष से उत्पन्न फल समिधा पुष्प एवं पत्रों को अथवा सफेद कमल को शर्करा; तण्डुल, मधु और घृत से आर्द्र कर पृथक् पृथक् तीन हजार हवन करे तो वह शीघ्र ही महालक्ष्मी को अपने वश में कर लेता है ॥ १६ ॥

प्रयोगान्तरमाह—अपहृत्येति ।

अपहृत्य गोपवनिताम्बराण्यामा

हृदयैः कदम्बमधिरूढमच्युतम् ।

प्रजपेत् स्मरन्निशि सहस्रमानयेद्

द्रुतमुर्वशीमपि हठाद्दशाहतः ॥ १७ ॥

हृदयैः अमा सह हठात् गोपयुवतीवस्त्राण्यपहृत्य गृहीत्वा कदम्बवृक्षमधिरूढं कृष्णं स्मरन् निशि रात्रौ सहस्रं जपेत्स दशाहतो दशदिवसमध्ये हठान्मन्त्रस्य बलात् उर्वशीमपि देववेश्यामपि वशमानयेत् निजनिकटमिति शेषः ॥ १७ ॥

गोपियों के हृदय के साथ साथ उनके वस्त्रों को भी चुराकर कदम्ब पर चढ़े हुये श्रीकृष्ण का ध्यान कर रात्रि के समय एक हजार प्रतिदिन के क्रम से जप करे तो दस दिन के भीतर वह देव वेश्या उर्वशी को भी अपने पास बुलाने में सक्षम हो जाता है ॥ १७ ॥

मन्त्रयोर्माहात्म्यमाह—बहुनेति ।

बहुना किमत्र कथितेन मन्त्रयो-
रनयोः सदृक् न हि परो वशी कृतौ ।
अभिकृष्टिकर्मणि विदग्धयोषितां
कुसुमायुधास्त्रमयवर्ष्मणोरिह ॥ १८ ॥

अत्र ग्रन्थे बहुना कथितेन किं प्रयोजनम् ? अनयोर्दशाष्टादशाक्षरयोः सदृक्समः वशीकरणे इह जगति अपरो नास्ति । किम्भूतयोर्नगरस्त्रीणामाकर्षणकर्मणि कामास्त्रशरीरयोः ॥ १८ ॥

इस विषय में बहुत क्या कहें, वशीकरण के लिये त्रैलोक्य में इन दोनों मन्त्रों के सदृश और कोई मन्त्र नहीं है । क्योंकि विदग्ध (हाव भाव में निपुण) स्त्रियों के लिये ये दोनों ही मन्त्र काम वाण के साक्षात् शरीर हैं ॥ १८ ॥

मोक्षसाधकप्रयोगान्तरमाह—वन्द इति ।

वन्दे कुन्देन्दुगौरं तरुणमरुणपाथोजपत्राभनेत्रं
चक्रं शङ्खं गदाब्जे निजभुजपरिघैरायतैराद्धानम् ।
दिव्यैर्भूषाङ्गरागैर्नवनलिनलसन्मालया च प्रदीप्तं
प्रोद्यत्पीताम्बराढ्यं मुनिभिरभिवृतं पद्मसंस्थं मुकुन्दम् ॥ १९ ॥

मुकुन्दं वन्दे । कीदृशम् ? कुन्दपुष्पं चन्द्रश्च तद्वत् शुक्लं तथा युवानं तथा रक्तपद्मसदृशलोचनं तथा दीर्घैर्निजबाहुपरिघैर्मुद्गराकारस्वबाहुभिः शङ्खं चक्रं गदां पद्मञ्च धारयन्तं तथा देवयोग्यालङ्काराङ्गरागैः नवानि यानि

पद्मानि तेषां लसन्ती देदीप्यमाना या माला तया च प्रदीप्तं तथा देदीप्यमानहरिद्राभवस्त्रयुक्तं तथा नारदादिभिर्वेष्टितं तथा पङ्कजासीनम् ॥ १९ ॥

[अब मोक्षसाधक अन्य मन्त्र का प्रयोग कहते हैं—]

कुन्दपुष्प एवं चन्द्र के समान गौर वर्ण वाले, युवावस्था से संपन्न, रक्तकमल के समान लाल नेत्र वाले, अपनी विशाल मुद्गर की आकार वाली भुजाओं में चक्र, शङ्ख, गदा और पद्म धारण किये हुये, दिव्यभूषण एवं अङ्गरागों से शोभित, नवीन कमलों की माला से देदीप्यमान, हरिद्रा के समान देदीप्यमान पीताम्बर धारण किये और मुनिगणों से परिवेष्टित कमलासन पर विराजमान भगवान् मुकुन्द की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १९ ॥

एवमिति—

एवं ध्यात्वा पुमांसं स्फुटहृदयसरोजमासीनामाद्यं
सान्द्राभोजच्छबिम्बा द्रुतकनकनिभं वा जपेदर्कलक्षम् ।
मन्वोरेकं द्वितारान्तरितमथहुनेदर्कसाहस्रमिद्ध्मैः
क्षीरद्रूत्थैः पयोक्तैः समधुघृतसितेनाऽथवा पायसेन ॥ २० ॥

एवंविधं पूर्वोक्तं मुकुन्दं ध्यात्वा प्रफुल्लहृदयपद्मासनोपविष्टं तथा आद्यं प्रथमं सजलजलदश्यामं सान्द्राभोजच्छविमिति पाठे मसृणपद्मकान्ति वा ध्यात्वा द्वितारान्तरगं प्रणवद्वयमध्यगतं मन्वोर्दशाष्टादशाक्षरयोरेकम् अर्कलक्षं द्वादशलक्षं जपेत् । अथ जपानन्तरम् अर्कसहस्रम् इध्मैः समिद्भिः क्षीरद्रूत्थैरश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधान्यतमसमुद्भवैः पयोक्तैः दुग्धप्लुतैः अथवा घृतमधुशर्करासहितेन परमान्नेन जुहुयात् ॥ २० ॥

इस प्रकार प्रफुल्ल हृत्कमल पर बैठे हुये अथवा सान्द्रकमल के समान कान्ति वाले, चमकते हुये सुवर्ण के समान जगमगाहट से पूर्ण आद्य श्रीकृष्ण का ध्यान कर दो मन्त्रों में किसी एक मन्त्र को प्रणव से संपुटित कर बारह लाख जप करे। तत्पश्चात् दूध में डुबोये गये क्षीरी वृक्ष (अश्वत्थ; उदुम्बर, प्लक्ष एवं न्यग्रोध) में किसी एक की समिधा से अथवा मधु, घृत एवं शर्करा संपृक्त पायस से बारह हजार हवन करे ॥ २० ॥

ततो लोकाध्यक्षं ध्रुवचितिसदानन्दवपुषं
निजे हृत्पाथोजे भवतिमिरसंभेदमिहिरम् ।

निजैक्येन ध्यायन्मनुममलचेताः प्रतिदिनं
त्रिसाहस्रं जप्यात्प्रयजतु सायाह्नविधिना ॥ २१ ॥

ततस्तदनन्तरं लोकाध्यक्षं लोकस्वामिनम् ।

अविनाशिज्ञानं तत्सुखस्वरूपशरीरं संसारान्धकारविच्छेदसूर्यममुं कृष्णं निजहृदयपद्मे निजैक्येन स्वाभेदेन भावयन् अमलचेताः निर्मलान्तःकरणः प्रतिदिनं त्रिसहस्रं सहस्रत्रयं जुहुयात् तथा पूर्वोक्तसायाह्नपूजाप्रकारेण पूजयतु होममपि करोतु ॥ २१ ॥

पुनः निर्मलचित्त वाला साधक, नित्य सच्चिदानन्द स्वरूप अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये सूर्य स्वरूप लोकाध्यक्ष श्रीकृष्ण को हृदय कमल में अपने से अभिन्न की कल्पना कर प्रतिदिन तीन सहस्र जप करे और पूर्वोक्त सायङ्काल की विधि से हवन करे ॥ २१ ॥

विधिमिति ।

विधिं योऽमुं भक्त्या भजति नियतं सुस्थिरमति-
र्भवाम्भोधिं भीमं विषमविषयग्राहनिकरैः ।
तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्जनिमृतिसमाख्यैः प्रविततं
समुत्तीर्याऽनन्तं व्रजति परमं धाम स हरेः ॥ २२ ॥

यः स्थिरमतिः पुमान् अमुं विधिं प्रकारं नियतं सततं भक्त्या भजति सेवते स भवाम्भोधिं संसारसागरं समुत्तीर्य हरेः अनन्यं न विद्यते अन्यो यस्मात्सर्वमयमुत्कृष्टं धाम प्राप्नोति । कीदृशम् ? अम्भोधिरिव भयङ्करं कैर्विषमा दुर्निवाराः ये विषयाः शब्दादयं अथवा स्रक्चन्दनवनिताद्याः त एव ग्राहरूपामकरकच्छपाद्यास्तेषां निकरैः समूहैः तथा जन्ममरणनामधेयैस्तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्महद्भिर्विस्तीर्णम् ॥ २२ ॥

जो साधक स्थिरचित्त हो इस प्रकार की विधि से भक्तिपूर्वक परमात्मा श्री कृष्ण का भजन करता है वह दुर्निवार्य स्रक्, चन्दन, विषयरूपी ग्राहसमूहों से महाभयङ्कर और जन्म मरणरूप विशाल ऊँचे ऊँचे तरङ्गों से विस्तीर्ण इस संसाररूपी समुद्र को पार कर अन्त में परमात्मा के परमधाम को प्राप्त कर लेता है ॥ २२ ॥

गृणंस्तस्येति ।

गृणंस्तस्य नामानि शृण्वंस्तदीयाः
कथाः संस्मरंस्तस्य रूपाणि नित्यम् ।
नमंस्तत्पदाम्भोरुहं भक्तिनम्रः
स पूज्यो बुधैर्नित्ययुक्तः स एव ॥ २३ ॥

सपुरुषः बुधैः प्राज्ञैः पूज्यः स एव च नित्ययुक्तः नित्ययोगभाक् । किङ्कुर्वन् सन् ? अस्य श्रीकृष्णस्य नामानि गृणन् वदन् तदीयाः कथा आकल्पयन् तस्य श्रीकृष्णस्य रूपाणि मूर्तीः सर्वदा ध्यायन् तत्पदाम्भोरुहं श्रीकृष्णपादपद्मं नमन् भक्तिनम्रः सेवाऽवनतः अधिकनम्रत्वख्यापनार्थं पौनरुक्त्यम् ॥ २३ ॥

जो पुरुष निरन्तर परमात्मा श्री कृष्ण के रूप में युक्त हो निरन्तर उनका नाम ग्रहण करता है, उनकी कथा सुनता है, उनके रूप का ध्यान करता है तथा भक्ति से विनम्र हो उनके चरण कमलों में नमस्कार करता है, वही पुरुष बुद्धिमानों द्वारा पूजा के योग्य है ॥ २३ ॥

इदानीं परममन्त्रद्वयं कथयति—वक्ष्य इति ।

वक्ष्ये मनुद्वमथाऽतिरहस्यमन्यत्
संक्षेपतो भुवनमोहननामधेयम् ।
ब्रह्मेन्द्रवामनयनेन्दुभिरादिमान्य-
स्तत्पूर्वको वियदृषीकयुतेशङेहृत् ॥ २४ ॥

अथाऽनन्तरमन्यत् मन्त्रद्वयमतिगोप्यं जगन्मोहनसंज्ञकं स्वल्पोक्त्या वक्ष्ये· ब्रह्मककारः इन्द्रो लकारः वामनयनं दीर्घ ईकारः इन्दुरनुस्वारः एतैः संयुक्तः कामबीजरूपः प्रथमो मन्त्र उद्धृतः तत्पूर्वकः वियत् हकारः ऋषीक इति स्वरूपं ताभ्यां युक्त ईशशब्दः हृषीकेश इति स्वरूपं ङे चतुर्थ्येकवचनं हृन्नमः क्लीं हृषीकेशाय नमः इति द्वितीयो मन्त्रः । अत्रायं पुरुषोत्तममन्त्र इति भैरव त्रिपाठिनः ॥ २४ ॥

[अब उससे भी अधिक परम मन्त्र का उद्धार कहते हैं—] अब इन दो मन्त्रों के अतिरिक्त अत्यन्त रहस्यपूर्ण दो मन्त्रों को, जिनका नाम भुवनमोहन है उसे कहता हूँ—ब्रह्मा (ककार), इन्द्र (लकार) । इन दोनों अक्षरों को ईकार से युक्त

कर उस पर अनुस्वार लगावे इस प्रकार 'क्लीं' यह प्रथम मन्त्र हुआ, दूसरा मन्त्र क्लीं के अनन्तर वियत् हकार पुनः 'ऋषीक' तदनन्तर 'ईश'। इस प्रकार 'हृषीकेश' शब्द को चतुर्थी विभक्ति से युक्त कर हृद् 'नमः' पद का प्रयोग करे ॥ २४ ॥

विमर्श—प्रयोग का स्वरूप इस प्रकार है—क्लीं हृषीकेशाय नमः'—यह पूर्ण मन्त्र हुआ ॥ २४ ॥

ऋष्यादिकमाह—मन्वोरिति।

मन्वोस्तु संमोहननारदो मुनिः
छन्दस्तु गायत्रमुदीरितं बुधैः।
त्रैलोक्यसंमोहनविष्णुरेतयोः
स्याद्देवता वच्म्यधुना षडङ्गकम् ॥ २५ ॥

अनयोर्मन्त्रयोः संमोहननारदो मुनिः छन्दः पुनर्गायत्रं मन्त्रज्ञैः कथितं त्रैलोक्यसंमोहनविष्णुर्देवतेति ॥ २५ ॥

इन दोनों मन्त्रों के संमोहन एवं नारद ऋषि हैं, बुद्धिमानों ने इन दोनों का छन्द गायत्री कहा है, तथा त्रैलोक्य संमोहन विष्णु इसके देवता हैं। अब इसका षडङ्ग कहता हूँ ॥ २५ ॥

अधुनाषडङ्गं वदामि—अक्लीवेति।

अक्लीवदीर्घैः सलवैस्तदपि च कलासनारूढैः।
उक्तं पूर्ववदासनविन्यासान्तं समाचरेदथ तु ॥ २६ ॥

ऋॠऌॡवर्जितषट् दीर्घस्वरैः बिन्दुसहितैः कलेत्यक्षरद्वयसंबद्धैः क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः एभिस्तत् षडङ्गमुक्तम्। अथानन्तरं पूर्ववद्दशाक्षरकथितपीठपूजापर्यन्तं कार्यम् ॥ २६ ॥

क्लीव वर्ण (ऋ ॠ ऌ ॡ) से वर्जित छः दीर्घस्वर एवं बिन्दुयुक्त ककार और लकार दोनों अक्षरों को मिलाकर इस प्रकार क्लां, क्लीं, क्लूं, क्लैं, क्लौं; क्लः—ये ६ इन मन्त्रों के षडङ्ग कहे गये हैं। इसके अनन्तर, दशाक्षर मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार पीठपूजन पर्यन्त सारी क्रिया करनी चाहिये ॥ २६ ॥

करयोरिति।

करयोः शाखासु तले न्यस्य षडङ्गानि चाङ्गुलीषु शरान्।
मनुपुटितमातृकार्णैर्न्यस्याङ्गेऽङ्गानि विन्यसेच्च शरान् ॥ २७ ॥

करयोः शाखासु अङ्गुलीषु उभयकरतले च षडङ्गानि विन्यस्य पुनरङ्गुलीषु च कामबाणान् विन्यस्य आद्यन्तस्थितमन्त्रमातृकाक्षरैर्मातृकास्थानेषु विन्यस्य दीर्घयुक्तकामबीजैः षडङ्गानि स्वशरीरे विन्यस्य बाणन्यासं च कुर्यात् ।। २७ ।।

दोनों हाथों की पाँचों अङ्गुलियों में तथा दोनों हाथ के तलवों में—इस प्रकार ६ स्थानों में षडङ्ग न्यास कर पुनः आगे कहे जाने वाले (८.२८) कामबाणों से युक्त पाँचों अङ्गुलियों में न्यास करे। पुनः मन्त्र संपुटित मातृकाक्षरों से मातृकास्थानों में न्यास कर पुनः कामबीज से षडङ्ग का न्यास करे। तदनन्तर पुनः वाण न्यास करे ।। २७ ।।

विमर्श—मातृका स्थान के लिऐ देखें ७.२०, २१ ।। २७ ।।

बाणन्यासस्थानान्याह—कास्येति ।

कास्यहृदयलिङ्गाङ्घ्रिषुकरशाखाभिर्नमोन्तकान् ङेऽन्तान् ।
शोषणमोहनसंदीपनतापनमादनान् क्रमशः ।। २८ ।।
पञ्चैते संप्रोक्ता ह्रांह्रींक्लींक्लूं सआदिकाबाणाः ।
समोहनमथजगतां ध्यायेत् पुरुषोत्तमं समाहितधीः ।। २९ ।।

शिरोवदनहृदयलिङ्गपादेषु अङ्गुलीभिः अङ्गुष्ठादिकनिष्ठकान्ताभिः एकैकया अङ्गुल्या चतुर्थी नमः पदसहितान् वक्ष्यमाणान् पञ्चबाणान् क्रमेण विन्यसेत् ।

बाणनामान्याह—शोषणेति ।

ह्रां ह्रीं क्लीं क्लूं सः एतानि पञ्चबीजानि एकैकानि आदौ येषां एवम् एते पञ्च बाणाः शोषणादयः प्रोक्ताः । प्रयोगस्तु—ह्रां शोषणाय नमः इत्यङ्गुष्ठेन शिरसि ह्रीं मोहनाय नमः इति तर्जन्यामुखे इत्यादि अथानन्तरम् । संयतचित्तः त्रिभुवनवश्यकरं पुरुषोत्तमं चिन्तयेत् ।। २८-२९ ।।

[अब काम बाण के स्थानों को कहते हैं—]

शिर, मुख, हृदय और लिङ्ग दोनों पैर में अँगूठे से लेकर कनिष्ठापर्यन्त एक-एक अङ्गुलियों से क्रमशः आगे (२९) श्लोक में कहे जाने वाले कामबाणों के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर तदनन्तर नमः पद का प्रयोग कर अङ्ग न्यास करे। ह्रां, ह्रीं, क्लीं, क्लूं; सः इन पाँच काम के बीज मन्त्रों से क्रमशः

शोषण, मोहन, संदीपन, तापन और मादन शब्द में लगा दें तो वे कामबाण के नाम हो जाते हैं ॥ २८-२९ ॥

विमर्श—इसके प्रयोग की विधि इस प्रकार है—'ह्रीं शोषणाय नमः' इतना कहकर अँगूठे से शिर का स्पर्श करे। 'ॐ ह्रीं मोहनाय नमः' इतना कहकर तर्जनी से मुख का स्पर्श करे। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये ॥ २८-२९ ॥

ध्यानमाह—दिव्येति।

दिव्यतरूद्यानोद्यद्रुचिरमहाकल्पपादपाधस्तात्।
मणिमयभूतलविलसद्भद्रपयोजन्मपीठनिष्ठस्य ॥ ३० ॥
विश्वप्राणस्योद्यत्प्रद्योतनसमद्युतेः सुपर्णस्य।
आसीनमुन्नतांसे विद्रुमभद्राङ्गमङ्गजोन्मथितम् ॥ ३१ ॥
चक्रदराङ्कुशपाशान्सुमनोबाणेक्षुचापकमलगदाः।
दधतं स्वदोर्भिररुणायतविपुलविघूर्णिताक्षियुगनलिनम् ॥ ३२
मणिमयकिरीटकुण्डलहाराङ्गदकङ्कणोर्भिरसनाद्यैः।
अरुणैर्माल्यविलेपैरादीप्तं पीतवस्त्रपरिधानम् ॥ ३३ ॥
निजवामोरुनिषण्णां श्लिष्यन्तीं वामहस्तधृतनलिनाम्।
क्लिद्यद्योनिं कमलां मदनमदव्याकुलोज्ज्वलाङ्गलताम् ॥ ३४ ॥
सुरुचिरभूषणमाल्यानुलेपनांसुसितवसनपरिवीताम्।
निजमुखकमलव्यापृतचटुलासितनयनमधुकरां तरुणीम् ॥ ३५ ॥
श्लिष्यन्तं वामभुजादण्डेन दृढं धृतेक्षुचापेन।
तज्जनितपरनिर्वृतिनिर्भरहृदयं चराचरैकगुरुम् ॥ ३६ ॥
सुरदितिजभुजगगुह्यकगन्धर्वाद्यङ्गनाजनसहस्रैः।
मदमन्मथालसाङ्गैरभिवीतं दिव्यभूषणोल्लसितैः ॥ ३७ ॥
आत्माभेदतयेत्थं ध्यात्वैकाक्षरमथाऽष्टवर्णं वा।
प्रजपेद्दिनकरलक्षं त्रिमधुरसिक्तैस्तु किंशुकप्रसवैः ॥ ३८ ॥

नवश्लोकानां कुलकम् ।

इत्थम् एवं वासुदेवं ध्यात्वा एकाक्षरकामबीजम् अथवाष्टाक्षरमन्त्रं दिनकरलक्षं द्वादशलक्षं जपेत् । कीदृशम् ? ध्यात्वा देवसंबन्धिवृक्षोद्याने कल्पवृक्षोद्याने उद्यन् वृद्धिगच्छन् मनोहरो यः पारिजातवृक्षस्तस्य तले गरुडस्योन्नतांसे उपविष्टम् । कीदृशस्य गरुडस्य ? पद्मरागादिघटितभू-भागशोभमानश्रेष्ठपद्मपीठोपविष्टस्य तथा सकलजीवभूतस्य परमेश्वरस्यां-शत्वात् तथा उदितसूर्यसमकान्तेः । कीदृशं वासुदेवम् ? प्रवालसुन्दराङ्गं, कामव्याकुलितं स्वदोर्भिः स्वबाहुभिर्दक्षिणवामक्रमेण चक्रशङ्खाङ्कुशपाश-पुष्पशरेक्षुचापपद्मगदाः बिभ्राणं तथा रक्तं दीर्घं बृहद्विघूर्णितं नेत्रद्वयरूपं पद्मं यस्य स तथा तम्, पद्मरागादिमणिघटितशिरोलङ्कारकर्णभूषणमुक्ता-हारबाहुभूषणकरमूलभूषणमुद्रिकाक्षुद्रघण्टिकाप्रभृतिभिः रक्तमाल्यगन्धैश्च देदीप्यमानं तथा पीते वाससी परिधानमाच्छादनं यस्य स तथा तं तथा धृतेक्षुचापेन वामबाहुदण्डेन दृढं यथा स्यादेवं श्रियमालिङ्गन्तम् ।

कीदृशीम्? स्वीयवामोरुदेशे उपविष्टां, तथा आलिङ्गन्तीं, तथा वामहस्त-गृहीतपद्मां, तथा सरसीभूतगुह्यां तथा कामेन व्याकुलीकृता अनायत्तीकृता अङ्गलता यस्यास्तां मनोहराणि अलङ्कारमालाचन्दनानि यस्यास्तां तथा श्वेतवस्त्रपरिधानां तथा कृष्णमुखपद्मे व्यापृतं सम्यग्व्यापारयुक्तं चटुलं मनोहरं चञ्चलं वा असितं श्यामं यन्नेत्रं स एव मधुकरो भ्रमरः यस्यास्तां तथा तरुणीं युवतीम् । पुनः कीदृशम् ? प्रियालिङ्गनजनितपरमसुखपूर्णहृदयं तथा जगद्गुरुं तथा देवदैत्यसर्पदेवयोनिदेवगायनविद्याधरस्त्रीसहस्रैर्मदतया कामेन च स्तम्भयुक्तम् अङ्गं येषां तैर्देवार्हणभूषणदीप्तैर्वेष्टितं कया युक्त्या आत्मैक्येन ध्यात्वा ॥ ३०–३८ ॥

जुहुयात्तरणिसहस्रं विमलैः सलिलैश्च तर्पयेत्तावत् ।
विंशत्यर्णे प्रोक्ते यन्त्रे दिनशोऽमुमर्चयेत् भक्त्या ॥ ३९ ॥

ध्यानजपानन्तरं घृतमधुशर्करासहितैः पलाशपुष्पैर्द्वादशसहस्रं जुहुयात् । होमानन्तरं निर्मलैर्जलैर्द्वादशसहस्रं तर्पणं कुर्यात् ।

विंशत्यर्णेति । पूर्वोक्तविंशत्यक्षरोदितपीठविधानेन तन्मन्त्रोद्धृतयन्त्रे अमुं कृष्णं भक्त्या प्रतिदिनं पूजयेत् ॥ ३९ ॥

कल्पवृक्ष के उद्यान में सबसे ऊँचे कल्पवृक्ष के नीचे पद्मरागादियुक्त मणिमयी भूमि में बने हुये मनोहर सुशोभित कमलासन पर विराजमान श्री गरुड़ की पीठ पर बैठे हुये, प्रवाल के समान कान्ति वाले, विश्वप्राण एवं उदीयमान सूर्य के समान

कान्ति वाले, कामार्त्त, जो श्रीकृष्ण का अपने दायें एवं बायें हाथों में क्रमशः चक्र; शङ्ख, अङ्कुश और पाश तथा पुष्पबाण, इक्षुचाप, पद्म और गदा धारण किये हुये हैं, अरुणवर्ण एवं चौड़े विशाल कमलों के समान नेत्रों से घूर रहे हैं, मणि निर्मित किरीट, कुण्डल, हार, अङ्गद, कङ्कण, अँगूठी तथा क्षुद्रघण्टिका, अरुण वर्ण के माल्य, दिव्य अङ्गराग तथा पीत वस्त्र के परिधान से अलङ्कृत हैं, अपनी बाईं ओर बैठी हुई, बायें हाथ में कमल लिये हुये, उत्कट काम की मस्ती से व्याकुल, सुशोभित अङ्गों वाली, क्लिद्यमान योनि युक्त, अत्यन्त मनोहर, भूषण, माल्य एवं दिव्यानुलेपन से शोभायमान, श्वेत वस्त्र धारण की हुई, स्वयं उनके मुख पर टकटकी लगाये दृष्टि से देखती हुई तरुणावस्था संपन्न महालक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित हैं। स्वयं भी इक्षुचाप युक्त अपने बायें हाथ से उनका आलिङ्गन कर रहे हैं। आलिङ्गनजन्य आनन्द से जिनका हृदय परिपूर्ण हैं, ऐसे समस्त संसार के पिता स्वरूप जिन श्रीकृष्ण को देवता, राक्षस, सर्प, गुह्यक तथा गन्धर्वों की स्त्रियाँ जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग विविध आभूषणों से उल्लसित हैं, एवं जो उत्कट कामाभिलाष के कारण अलसायी हुई हैं जिन्हें चारों ओर से घेरी हुई हैं। इस प्रकार के श्रीकृष्ण से अपने को अभिन्न समझते हुये ध्यान करे। तदनन्तर पूर्वोक्त एकाक्षर अथवा अष्टाक्षर मन्त्र का १२ लाख जप करे। फिर मधु, घृत तथा शर्करा से संपृक्त पलाश की लकड़ी से १२ हजार हवन करे एवं उतनी ही संख्या में जल से तर्पण करे और पूर्वोक्त विंशत्यक्षरात्मक यन्त्र में प्रतिदिन भक्ति श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण का अर्चन करता रहे ॥ ३०-३९ ॥

पूजाप्रकारमाह—सार्द्ध चतुःश्लोकेन गरुडमन्त्रमाह—पीठेति।

पीठविधौ पक्ष्यन्ते राजायशिरोऽमुनाभिपूज्याऽहिरिपुम्।
हरिमावाह्य स्कन्धे तस्यार्घाद्यैः समर्च्य भूषान्तैः॥ ४० ॥

अङ्गानि च बाणांश्च न्यासक्रमतः किरीटमपि शिरसि।
श्रवसोश्च कुण्डलेऽरिप्रमुखानि प्रहरणानि पाणिषु च ॥ ४१ ॥

श्रीवत्सकौस्तुभौ च स्तनयोरूर्ध्वे गले च वनमालाम्।
पीतवसनं नितम्बे वामाङ्के श्रियमपि स्वबीजेन ॥ ४२ ॥

इष्ट्वाऽथ कर्णिकायामङ्गानि विदिग्दिशासु दिक्षुशरान्।
कोणेषु पश्चमं पुनरग्न्यादिदलेषु शक्तयः पूज्याः ॥ ४३ ॥

पूजाविधौ पक्षिशब्दान्ते राजायेति स्वरूपं शिरः स्वाहा अनेन प्रकारेण पीठमध्ये अहिरिपुं गरुडं सम्पूज्य तस्य गरुडस्य पृष्ठे श्रीकृष्णमावाह्याऽऽवाहनादि यथावत् कृत्वाऽर्घाद्यैर्भूषान्तैरुपचारैश्च सम्पूज्य अङ्गानिच सम्पूज्य पञ्चबाणांश्च सम्पूज्य भूषणानि च सम्पूज्य दिग्दलेषु शक्तयः पूज्या इति अनेनान्वयः ।

एतदेव स्पष्टयति—न्यासक्रमत इत्यादिना ।

यत्र परमेश्वराङ्गे यस्य न्यासः तस्य पूजा बोद्धव्या तत्र शिरसि किरीटं अपिपादपूरणे श्रोत्रयोः कुण्डले अरिमुखानि चक्रादीनि प्रहरणानि आयुधानि हस्तेषु स्तनयो ऊर्द्ध्वे हृदि श्रीवत्सकौस्तुभौ गले वनमालाम् आपादलम्बिनीं पद्ममालां नितम्बे कटयां हरिद्राभवस्त्रं वामाङ्गे वामभागे लक्ष्मीं च स्वबीजेन श्रीबीजेन इष्ट्वा सम्पूज्य कर्णिकायां दिग्विदिशासु कोणेषु दिक्षु च अङ्गानि पूर्ववत्सम्पूज्य दिक्षुशरान् अग्न्यादिकोणेषु च पञ्चमं बाणं पूजयेत् पुनरग्न्यादिदलेषु अष्टौ शक्तयः पूज्याः ॥ ४०-४३ ॥

[अब यन्त्र में पूजा का प्रकार कहते हैं—]

पूजा के लिये निर्मित पीठ पर 'पक्षि' शब्द के अन्त में 'राजाय' कह कर शिरः (स्वाहा) पद का उच्चारण करे इस प्रकार 'पक्षिराजाय स्वाहा' इस मन्त्र से सर्पशत्रु गरुड़ का पूजन करे। पुनः उन गरुड़ के पृष्ठ पर श्रीकृष्ण का आवाहन कर उनका अर्घ्यपाद्यादि से लेकर 'भूषान्त' उपचारों से पूजन करे। तदनन्तर उनके अङ्गों का और पञ्चबाणों का पूजन करे। तदनन्तर परमेश्वर के अङ्ग में जहाँ जो भूषण हैं उनकी भी पूजा करे जैसे—किरीट की शिर में, दोनों कुण्डलों की कानों में, चक्रादिप्रमुख आयुधों की हाथों में, श्रीवत्स और कौस्तुम की दोनों स्तनों के ऊपर हृदय प्रदेश में, वनमाला की गले में, पीताम्बर की नितम्ब में एवं महालक्ष्मी की बायें भाग में श्री बीज (श्रीं) से पूजा करे। तदनन्तर कर्णिका पर पूर्ववत् अङ्गों की पूजा कर दिशाओं में शरों की एवं कोनों में पञ्चबाणों की पूजा कर अग्न्यादि कोणों के क्रम से अष्टदल पर श्रीकृष्ण की शक्तियों की पूजा करनी चाहिये ॥ ४०-४३ ॥

शक्तिवर्णानाह—लक्ष्मीरिति ।

लक्ष्मीः सरस्वती स्वर्णाभे अरुणतरे रतिप्रीत्यौ ।
कीर्तिः कान्तिश्च सिते तुष्टिः पुष्टिश्च मरकतप्रतिमे ॥ ४४ ॥

स्वर्णाभे पीतवर्णे अरुणतरे अतिरक्ते सिते शुक्ले मरकतप्रतिमे हरिद्रावर्णे ॥ ४४ ॥

[अब आठ शक्तियों का उनके शरीर के वर्ण सहित वर्णन करते हैं—]

लक्ष्मी एवं सरस्वती स्वर्णवर्ण की हैं, रति प्रीति अत्यन्त अरुण वर्ण की हैं; कीर्त्ति और कान्ति स्वच्छ वर्ण की हैं, तुष्टि तथा पुष्टि मरकत के समान हरे वर्ण की हैं ॥ ४४ ॥

एताः शक्तयः किम्भूताः ?

दिव्याङ्गरागभूषामाल्यदुकूलैरलङ्कृताङ्गलताः ।

स्मेराननाः स्मारार्त्ताधृतचामरचारुकरतला एताः ॥ ४५ ॥

देवयोग्यानुलेपनालङ्कारग्रन्थितपुष्पसूक्ष्मवस्त्रैर्भूषितदेहाः अङ्गलताशब्दः स्वरूपवाची तथा ईषद्धास्यवदना तथा कामबाणपीडिताः तथा गृहीतचामर-मनोहरहस्ताः ॥ ४५ ॥

[पुनः इन शक्तियों का स्वरूप कहते हैं—]

ये सभी शक्तियाँ दिव्य अनुलेपन एवं दिव्य आभूषणों से सुसज्जित हैं, तथा अङ्गलताओं पर ग्रथित पुष्पों की माला तथा मनोहर वस्त्र धारण की हुई हैं। सभी का मुखमण्डल ईषद्धास्य से युक्त है तथा सभी कामबाणों से प्रपीडित हैं और हाथों में धारण किये गये चामरों से शोभित हैं ॥ ४५ ॥

लोकेशा इति ।

लोकेशा बहिरर्च्याः कथितेत्यर्चा मनुद्वयोद्भूता ।

प्रायः पुरुषोत्तमविधिरेवं हि स नोच्यतेऽत्र बहुलत्वात् ॥४६॥

तद्बहिरिन्द्रादयः वज्रादयश्च पूज्याः इत्येवं पूजा मन्त्रद्वयसम्भवा कथिता प्रायो बाहुल्येन पुरुषोत्तममन्त्रकथितप्रकारोप्येवं परं स इह स्पष्टीकृत्य नोच्यते बहुवक्तव्यत्वात् प्रायः पुरुषोत्तमविधिरेवमिहाऽन्यतोऽवगन्तव्यमिति टीकान्तर-सम्मतं पाठान्तरम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर उस अष्टदल कमल के बाहर इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करे। इस प्रकार हमने एकाक्षर और अष्टाक्षर—इन दोनों मन्त्रों के पूजा का प्रकार वर्णन किया। इसी प्रकार से पुरुषोत्तम मन्त्र के भी जप में पूजा का प्रकार समझना चाहिये। ग्रन्थ के विस्तार के भय से हम यहाँ उनका पुनः वर्णन नहीं करेंगे ॥४६॥

संमोहनगायत्रीमाह—त्रैलोक्येति ।

त्रैलोक्यमोहनायेत्युक्त्वा विद्महे इति स्मरायेति ।

तद् धीमहीति तन्नोऽन्ते विष्णुस्तदनु प्रचोदयात् ॥ ४७ ॥

त्रैलोक्यमोहनायेति स्वरूपमुक्त्वा तदनन्तरं विद्महे इति स्मरायेति तदनु धीमहीति तन्नो विष्णुः प्रचोदयादिति स्वरूपं वदेत् ॥ ४७ ॥

[अब संमोहन गायत्री का उद्धार कहते हैं—]

'त्रैलोक्यमोहनाय' के अनन्तर 'विद्महे' कहे तदनन्तर 'स्मरायेति धीमहि' शब्द कहे। तदनन्तर अन्त में 'तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' शब्द कहे। इस प्रकार संमोहन गायत्री का उद्धार कहा गया ॥ ४७ ॥

प्रभावमाह।

जप्यैषा हि जपादौ दुरितहरी श्रीकरी जपार्चनहवनैः।
प्रोक्षयतु शुद्धिविधयेऽर्चायामनयात्मयागभूद्रव्याणि ॥ ४८ ॥

एषा गायत्रीजपात् पूर्वं जपनीया स्वमन्त्रजपपूजाहोमैः पुनः पापनाशनी लक्ष्मीप्रदा च भवति। अनया गायत्र्या च पूजायां शुद्ध्यर्थम् आत्मयागभूद्रव्याणि आत्मानं यागभुवम् द्रव्याणि च प्रोक्षयतु ॥ ४८ ॥

यह गायत्री सभी जपों के पूर्व में जपना चाहिये। इस मन्त्र के जप, पूजा तथा होम से पापों का नाश होता है, लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं समस्त प्रकार के पूजा में शुद्धि के लिये इस गायत्री को पढ़कर पूजा द्रव्यों का तथा अपना भी प्रोक्षण करे ॥ ४८ ॥

मन्त्रद्वयसाधारणतर्पणमाह—मन्वोरिति।

मन्वोरेकेन शतं तर्पयेन्मोहनीप्रसूनयुतैर्यः।
तोयैर्दिनशः प्रातः स तु लभते वाञ्छितानयत्नतः कामान् ॥४९

यः पूर्वोक्तमन्त्रयोः एकेन मोहिनीपुष्पमिश्रितैः शक्रासनपद्मासनपुष्पसहितैर्जलैः प्रति प्रत्यहं शतं तर्पयेत्। स वाञ्छितान् कामान् अनयासेन प्राप्नोति ॥ ४९ ॥

[अब दोनों मन्त्रों के लिये सामान्य तर्पण का प्रकार कहते हैं—]

जो मोहन पुष्पों से मिश्रित जल के द्वारा उक्त दो मन्त्रों में किसी एक के द्वारा प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण परमात्मा का तर्पण करता है वह बिना यत्न के ही अपने सारे मनोरथों को पूर्ण कर लेता है ॥ ४९ ॥

मन्त्रद्वयसम्बन्धिप्रयोगान्तरमाह—हुत्वेति।

हुत्वायुतं हुतशेष संपाताज्येन तावदभिजप्तेन।
भोजयतु स्वाभीकं रमणीरमणोऽपि तां स्ववशतां नेतुम् ॥५०

घृतेन वह्नावयुतं आहुतिशेषघृतेन मन्त्रजप्तेन रमणी स्ववशतां नेतुं प्रापयितुम् आत्मीयं कामुक भोजयतु कामुकः स्त्रियं भोजयतु ॥ ५० ॥

[अब उक्त दोनों मन्त्रों का अन्य प्रयोग कहते हैं—]

उक्त दोनों मन्त्रों से दस हजार हवन कर, आहुति शेष घृत (प्रति आहुति देने से किञ्चित् शेष घृत जो प्रोक्षणी पात्र में डालने से एकत्रित होता है, जिसका दूसरा नाम संस्रव है) यदि कामुकी स्त्री अपने पुरुष को पिलावे अथवा पुरुष अपनी कामुकी स्त्री को पिलावे तो दोनों ही परस्पर वश में हो जाते हैं ॥ ५० ॥

अष्टादशार्णेति ।

अष्टादशार्णविहिताविधयः कार्या वश्यत आभ्याम् ।
मन्वोरनयोः सदृगन्यो वैन मनुस्त्रैलोक्यवश्यकर्मणि जगति॥५१

अष्टादशाक्षरमन्त्रकथिता वश्यकारिणः प्रयोगा आभ्यां मन्त्राभ्यां कार्याः हि निश्चयेन जगति सकलजगदायत्तताकार्ये अनयोः समानोऽन्यो मन्त्रो नास्ति ॥ ५१ ॥

अष्टादशाक्षर मन्त्र में कहे गये वशीकरण प्रयोगों को इन दो मन्त्रों में भी करना चाहिये । वशीकरण कार्य के लिये इन दो मन्त्रों के सदृश त्रैलोक्य में कोई भी मन्त्र नहीं है ॥ ५१ ॥

अत्रैकार्णेति ।

अत्रैकार्णजपादावथवा कृष्णः सवेणुगतिर्ध्येयः ।
अरुणरुचिराङ्गवेशः कन्दर्पो वा सपाशसृणिचापेषु ॥ ५२ ॥

अत्र समनन्तरोक्तद्वयमध्ये एकाक्षरमन्त्रस्य जपपूजाहोमादौ कृष्णो भावनीयः । कीदृक् ? सवेणुगीतिरिति वंशोत्थगानपरः, तथा लोहितमनोहर-शरीराभरणः, अथवा अत्रैव मन्त्रजपादौ पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरः कामदेवो ध्येयः; मन्त्रस्यादिदेवात्मकत्वादिति भावः ॥ ५२ ॥

इन दो मन्त्रों में यदि एकाक्षर मन्त्र से पूजा एवं होम करना हो तो वंशी से गान करते हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करे, अथवा मनोहर एवं लाल वर्ण का वेश धारण किये हुये, पाश, अंकुश, धनुष एवं बाण हाथों में धारण किये हुये काम का ध्यान करना करना चाहिये । क्योंकि वशीकरण के आदि देवता कामदेव ही हैं ॥ ५२ ॥

प्रकृतमुपसंहरति—यस्त्वेति ।

यस्त्वेकतरं मनुमेतयोर्विमलधीः सदा भजति मन्त्री ।

सोऽमुत्राऽपि च सिद्धिं विपुलामिहातितरामेति ॥ ५३ ॥

यो मन्त्री अनयो मन्त्रयोरेकं मन्त्रश्रेष्ठं सदा जपादिभिः सेवते स इह लोकेऽमुत्र च अत्यर्थं विपुलां सिद्धि प्राप्नोति ॥ ५३ ॥

जो मन्त्रज्ञ साधक इन दो मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का, विशुद्ध अन्तःकरण से जपादि द्वारा सेवन करता है, वह इस लोक में तथा परलोक में उभयत्र महान् सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ५३ ॥

अथ रुक्मिणीवल्लभमन्त्रमुद्धरति—अथेति ।

अथ सत्यशौरि च तृतीयतुर्यकाः
शिखिवामनेत्रशशिखण्डमण्डिताः ।
जयकृष्णयुग्मकनिरन्तरात्मभू-
शिखिशक्तिडास्यवृतसक्तवर्णकाः ॥ ५४ ॥
प्रनिमध्यतो मुदितचेतसे तत-
स्त्यपरक्तदृग्यगुरुमारुताक्षराः ।
सचतुर्थिकृष्णपदामिक्षुकार्मुको
दशवर्णकश्च मनुवर्यकस्त्वसौ ॥ ५५ ॥
सलवाधराचलसुतारमाक्षरैः
पुटितः क्रमो क्रमगतैः समुद्गवत् ।
इति दन्तसूर्यवसुवर्ण उद्धृतः
कवितानुरञ्जनरमाकरोऽघहृत् ॥ ५६ ॥

सत्यो दकारः शौरिर्नकारः च तृतीयतुर्येति जकारः झकारश्च एते चत्वारो वर्णाः प्रत्येकं शिखी रेफः वामनेत्रमीकारः शशिखण्डो बिन्दुः एतैः शोभनाः संबद्धा इत्यर्थः । तथा च द्रीं न्रीं ज्रीं झ्रीं इति । तदनु जय कृष्णेति त्रिपाठि गोविन्दामिश्रप्रभृतयः । वस्तुतः जयकृष्णेति पदस्य युग्मं तदनु

निरन्तरेति स्वरूपम् आत्मभूः ककारः शिखी रेफः शक्तिरीकारः तथा क्री स्वरूपम् तदनु डस्वरूपं आस्यवृतमाकारः डास्वरूपं सक्त इति स्वरूपं प्रनि-मध्यतः प्रनीति अक्षरयोर्मध्ये मुदितचेतसे इति ततो निशब्दान्ते त्येति स्वरूप तदनु पस्वरूपं रक्तो रेफः दृक् इकारः प्रथमातिक्रमे कारणाभावात् ह्रस्व इकारो लभ्येत। तथा च प्रि इति स्वरूपं ततो य इति स्वरूपं गुरु-राकारः या इति स्वरूपं तदनु मारुतो यकारः तदनु सचतुर्थिकृष्णपदं कृष्णायेति स्वरूपं तदनु इक्षुकार्मुकः कामबीजं तदनु पूर्वोक्तदशाक्षरमन्त्रः तदनु लवो बिन्दुः तत्सहिता धरा ऐकार ऐं इति स्वरूपम् अचलः पर्वतः तत्सुता पार्वती भुवनेश्वरीबीजमित्यर्थः, रमा श्रीबीजम्, एभिस्त्रिभि-र्बीजैर्मन्त्रान्ते प्रतिलोमपठितैः ऐं ह्रीं श्रीं अन्ते श्रीं ह्रीं, ऐं इति समुद्गवत् सम्पुटवत् पुटितोऽयं द्विपञ्चाशद्वर्णो मन्त्रः सिद्धो भवति।

मन्त्रवर्णसंख्यामाह—इतीति।

दन्त=३२, सूर्य=१२, वसु=८ एभिर्मिलितैः संख्या द्विपञ्चाश-द्वर्णात्मको (५२) मन्त्रो भवतीत्यर्थः। कीदृशः? कवितालोकानुरागलक्ष्मी सम्पादकः तथाऽघहृत् पापहर्त्ता ॥ ५४-५६ ॥

[अब रुक्मिणीवल्लभमन्त्र का उद्धार कहते हैं—]

सत्य (दकार), शौरि (नकार), तृतीय चतुर्थ जकार तथा झकार इन चारों वर्णों में प्रत्येक को शिखी (रेफ) वामनेत्र (ईकार) से युक्त करे। इस प्रकार (द्रीं न्रीं ज्रीं झ्रीं) उसके बाद 'जयकृष्ण' पद दो बार तदनन्तर 'निरन्तर' पद पुनः आत्मभूः (ककार) उसे शिखी (रेफ), शक्ति (इकार) तदनन्तर ड पद उसे अकार से युक्त कर, इस प्रकार क्रीडा, पुनः 'प्र' और 'नि' अक्षर के मध्य में 'मुदित चेतसे', पुनः 'नि' के बाद 'त्य' शब्द तदनन्तर 'प' को रेफ और इकार से युक्त कर फिर 'य' शब्द उसे गुरु (आकार) से युक्त कर, तत्पश्चात् मारुतवर्ण (यकार) का उच्चारण करे। पुनः कामबीज, तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र, इतने वर्णों को ऐं ह्रीं श्रीं, इन वाग्बीज, शाक्तबीज तथा श्रीबीज से संपुटित करे तो दन्त (३२), सूर्य (१२), वसु (८), इस प्रकार ५२ वर्णों वाले मन्त्र का उद्धार कहा जाता है। यह मन्त्र कविता लोकानुरञ्जन महालक्ष्मी को देने वाला तथा संपूर्ण पापों का नाश करने वाला है ॥ ५४-५६ ॥

विमर्श—इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—

'ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं न्रीं ज्रीं झ्रीं जय कृष्ण जय कृष्ण निरन्तरक्रीडासक्त प्रमुदितचेतसे नित्यप्रियाय कृष्णाय क्लीं गोपीजन वल्लभाय स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं" ॥ ५४-५६ ॥

अस्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह—मुखवृत्तेति ।

मुखवृत्तनन्दयुतनारदो मुनिः
छन्द उक्तममृतादिकं विराट् ।
त्रिजगद्विमोहनसमाह्वयो हरिः
खलु देवताऽस्य मुनिभिः समीरिता ॥ ५७ ॥

मुखवृत्तमाकारः नन्देति स्वरूपम् आभ्यां युतो नारदः, तथा च आनन्द-नारदऋषिः अमृतादिकं विराट छन्दस्त्रैलोक्यमोहनो हरिर्देवता नारदादिभिर्मुनिभिः कथिता ॥ ५७ ॥

मुखवृत्त (आकार) उसके सहित नन्दपद अर्थात् आनन्द एवं नारद मुनि इस मन्त्र के ऋषि हैं, अमृत विराट् इसका छन्द है तथा तीनों जगत् को मोहित करने वाले श्री हरि इसके देवता हैं, ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ ५७ ॥

अङ्गविधिं दर्शयति—वसुमित्रेति ।

वसुमित्रभूधरगजात्मदिङ्मयै-
र्मनुवर्णकैस्त्रिपुटसंस्थितैः पृथक् ।
निजजातियुङ्निगदितं षडङ्गकम्
क्रिययैव तत् खलु जनानुरञ्जनम् ॥ ५८ ॥

वसुः=८, मित्रः=१२, भूधरः=७, गजः=८, आत्मा=१, दिक्=१० एतत् सङ्ख्याकैर्मन्त्राक्षरैस्त्रिपुटसंस्थितैः, तथा च ऐं ह्लीं श्रीं द्रीं श्रीं त्रीं ह्रीं जयकृष्ण ऐं ह्लीं श्रीं हृदयाय नमः, ऐं ह्लीं श्रीं जयकृष्णनिरन्तरक्रीडासक्त ऐं ह्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा—इत्यादि क्रिययैव षडङ्गक्रिययैव सर्वजनानुरागं जनयति ॥ ५८ ॥

[अब इस मन्त्र का अङ्ग कहते हैं—]

वसु ८ अक्षर, मित्र १२ अक्षर, भूधर ७ अक्षर, गज ८ अक्षर, आत्मा १ अक्षर, एवं दिक् १० अक्षर । इस प्रकार के ४६ अक्षरों के छ अङ्गों को तीन अक्षर ऐं ह्लीं श्रीं से संपुटित कर अङ्ग न्यास करे । इस प्रकार की षडङ्ग क्रिया समस्त मनुष्यों में अनुराग उत्पन्न करती है ॥ ५८ ॥

विमर्श—इसके प्रयोग का स्वरूप क्रमशः ऐं ह्रीं श्रीं द्रीं न्रीं त्रीं झ्रीं जय कृष्ण ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः। यह प्रथम आठ अक्षर का अङ्गन्यास हुआ। इसी प्रकार ऐं ह्रीं श्रीं जयकृष्ण निरन्तर क्रीडासक्त ऐं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा यह दूसरा १२ अक्षर का अङ्गन्यास हुआ, इसी क्रम से अन्यत्र भी अङ्गन्यास का क्रम जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

न्यासमाह—अथेति।

अथ संविशोध्य तनुमुक्तमार्गतः
विरचय्य पीठमपि च स्ववर्मणा।
करयोर्दशाक्षरविधिक्रमान् न्यसेत्
स षडङ्गसायकमनङ्गपञ्चकम् ॥ ५९ ॥

अथानन्तरं तनुं शरीरम् उक्तमार्गतः पूर्वोक्त भूतशुद्ध्याः प्रकारेण संशोध्याऽनन्तरं स्ववर्मणा स्वशरीरेण पीठमारचय्य करयोः करयुगले दशाक्षरोक्तप्रकारेण षडङ्गम् अङ्गषट्कं सायकान् च शोषणादीन् बाणान् अनङ्गपञ्चकं कामबीजमन्मथकन्दर्पमकरध्वजमनोभूतसंज्ञकं कामपञ्चकं न्यसेत् ॥ ५९ ॥

इस प्रकार ऊपर कहे गये भूतशुद्धि के द्वारा अपने अङ्गों का शोधन कर अपने शरीर में ही पीठ की भावना कर दोनों हाथों में दशाक्षर में कही गई विधि के द्वारा षडङ्गन्यास शोषणादि कामबाणों का न्यास कर कामबीज, मन्मथ, कन्दर्प-मकरध्वज मनोभूत-संज्ञक कामपञ्चक का न्यास करे ॥ ५९ ॥

इममेवार्थं विविच्य दर्शयति—मनुनेति।

मनुना त्रिशो न्यसस्तु सर्वतस्तनौ
स्मरसम्पुटैस्तदनु मातृकाक्षरैः।
दशतत्वकादिदशवर्णकीर्त्तितं
त्वथ मूर्तिपञ्जरवसानमाचरेत् ॥ ६० ॥

मनुना मूलमन्त्रेण पूर्वं शरीरे त्रिव्यापकङ्कुर्यात् तदनन्तरं प्रतिवर्णं कामबीजपुटितैर्मातृकाक्षरैः त्रिशो न्यसतु, दशवर्णकीर्तितं दशाक्षरोक्त दशतत्वादिकान् न्यसेत्, तत्त्वन्यासादि मूर्त्तिपञ्जरान्तं विन्यस्य ॥ ६० ॥

अब इसी अर्थ को विशेष व्याख्या द्वारा प्रस्तुत करते हैं—सर्वं प्रथम मूल मन्त्र पढ़कर शरीर में तीन व्यापक मुद्रा करे तदनन्तर कामबीज (क्लीं) से संपुटित मातृकाक्षरों द्वारा तीन वार न्यास करे। तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र में कही गई विधि के अनुसार दशतत्त्वों से लेकर मूर्त्तिपञ्जर पर्यन्त का न्यास करे ॥ ६० ॥

सृजतिस्थिती दशषडङ्गसायकान्
न्यसतात्ततोऽन्यदखिलं पुरोक्तवत् ।
प्रविधाय सर्वभुवनैकसाक्षिणं
स्मरतान्मुकुन्दमनवद्यधीरधीः ॥ ६१ ॥

सृष्टिस्थिती समाचरेत् दशाङ्गानि षडङ्गानि बाणांश्च देहे विन्यसेत्। तदनन्तरम् आत्मार्चनाद्यखिलं पूर्ववत् कृत्वा सकललोकद्रष्टारं श्रीकृष्णं स्मरतात् चिन्तयतु, निर्मलास्थिराबुद्धिर्यस्य स तथा तादृशः साधकः ॥ ६१ ॥

सृष्टि स्थिति न्यास कर दशाङ्ग, षडङ्ग तथा बाण (पञ्चाङ्ग) न्यास करे। तदनन्तर पूर्व कही गई विधि के अनुसार आत्मार्चन कर निर्मल चित्त वाला साधक सारे लोक के द्रष्टा प्रभु श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥ ६१ ॥

ध्यानमाह—अथेति।

अथ भूधरोदधिपरिष्कृते महो-
न्नतशालगोपुरविशालवीथिके ।
घनचुम्ब्युदग्रसितसौधसङ्कुले
मणिहर्म्यविस्तृतकपाटवेदिके ॥ ६२ ॥

अथानन्तरं स्वके पुरे मणिमण्डपे सुरपादपस्य कल्पवृक्षस्याऽधो मणिमय-भूतले परिस्फुरत् पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने स्थूलसिंहमुखाकारपादान्वित-पीठपद्मासने समुपविष्टमच्युतम् अभिचिन्तयेत्। कीदृशे पुरे? भूधराः पर्वताः उदधिः समुद्रः एतैः परिष्कृते वेष्टिते तथा महोन्नतः अत्युच्चः शालः प्रकारो गोपुरं बहिर्द्वारं च यत्र तस्मिन् तथा विशाला महती वीथिका पन्थाः यत्र तत्र कर्मधारयः तथा मेघस्पर्शि अतिशुद्धधवलगृहव्याप्ते तथा मणिमय-गृहे विस्तीर्णाः कपाटाः तथा वेदिका परिष्कृतभूमिर्यत्र तत्र ॥ ६२ ॥

[ध्यान का प्रकार कहते है—]

तदनन्तर पर्वतमालाओं एवं उदधि से परिवेष्टित, ऊँचे-ऊँचे प्रकार एवं गोपुर से युक्त विशाल राजमार्गों वाली द्वारकापुरी में कल्पवृक्ष के नीचे जहाँ की भूमि मणिमय है, जहाँ आकाश को छूने वाले ऊचे ऊचे धवल प्रासाद हैं एवं जहाँ के मणिमय गृहों में विस्तृत कपाट एवं विस्तृत वेदियाँ बनी हुई हैं—ऐसी द्वारकापुरी के मणिमण्डप में कल्पवृक्ष के नीचे मणिमयी भूमि में सिंहाकार निर्मित कमलासन पर बैठे हुये श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥ ६२ ॥

पुनः कीदृशे पुरे ?

द्विजभूपविट्चरणजन्मनां गृहै-
र्विविधैश्च शिल्पिजनवेश्मभिस्तथा ।
इभसप्त्युरभ्रखरधेनुसैरिभ-
च्छगलालयैश्च लसितैः सहस्रशः ॥ ६३ ॥

सहस्रशो लोकैर्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां नानाप्रकारगृहैः तथा शिल्पिजनानां गृहैस्तथा हस्त्यश्वमेषगर्दभधेनुमहिषच्छगलानां गृहैः शोभिते ॥ ६३॥

पुनः द्वारकापुरी का वर्णन तीन श्लोकों से करते हैं—जो द्वारका पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के नाना प्रकार के गृहों से तथा शिल्पिजनों के गृहों से एवं हाथी, घोड़े, मेष, गर्दभ, धेनु, महषि तथा छागों (बकरों) के गृहों से शोभित है ॥ ६३ ॥

पुनः कीदृशे ?

विविधापणाश्रितमहाजनाहृत-
क्रयविक्रयद्रविणसञ्चयाश्रिते ।
जनमानसाहृतिविदग्धसुन्दरी-
जनमन्दिरैः सुरुचिरैश्च मण्डिते ॥ ६४ ॥

नानाप्रकारविपणिसमाश्रिते महाजनाहृतक्रयविक्रयद्रविणसंचयव्याप्ते । पुनः कीदृशे ? जनानां चित्तापहरणे चतुराः ये वेश्याजनास्तेषां गृहैः शोभमानैरलंकृते ॥ ६४ ॥

जहाँ की दूकानों में महाजनों द्वारा खरीद कर लायी गयी विक्रय की अनेक प्रकार की वस्तुयें भरी पड़ी हैं एवं जो मनुष्यों के मन को मोह लेने वाली चतुर वेश्याओं के मनोहर गृहों से भूषित है ॥ ६४ ॥

पुनः कीदृशे पुरे—पृथुदीर्घिकेति ।

पृथुदीर्घिकाविमलपाथसिस्फुर-
द्विकचारविन्दमकरन्दलम्पटैः ।
वरहंससारसरथाङ्गनामभि-
र्विहगैर्विघुष्टककुभि स्वके पुरे ॥ ६५ ॥

स्थूलसरोवरनिर्म्मलोदके देदीप्यमानविकसितकमलमकरन्दाख्य रस-लोलुपैः श्रेष्ठहंससारसचक्रवाकसंज्ञकैः पक्षिभिर्ध्वनिता दिशो यस्मिन् ॥६५॥

जहाँ के बड़े बड़े सरोवरों के निर्मल जल में विकसित कमलों के मकरन्द को पीने के लिये लोलुप श्रेष्ठ हंस, सारस एवं चक्रवाक नामक पक्षियों का समूह दसों दिशाओं को शब्दायमान कर रहा है ॥ ६५ ॥

पुनः कीदृशे मणिमण्डपे ?

सुरपादपैः सुरभिपुष्पलोलुप
भ्रमराकुलैर्विविधकामदैर्नृणाम् ।
शिवमन्दमारुतचलच्छिखैर्वृते
मणिमण्डपे रविसहस्रप्रभे ॥ ६६ ॥

कल्पवृक्षैः सुगन्धिपुष्पलुब्धभ्रमरव्याप्तैः मनुष्याणां विविधकामदैः शुभमन्दमारुतचलदग्रभागैः तैर्वेष्टिते । सूर्यसहस्रमानप्रभे ॥ ६६ ॥

इस प्रकार की द्वारकापुरी के मणिमय मण्डप में जहाँ सुगन्धित पुष्पों के सुगन्ध के लिये लोलुप भौरों से व्याप्त, मनुष्यों की कामनापूर्ण करने वाले एवं मन्द मन्द मारुत के चलने से अपने अग्रभाग को कम्पित करने वाले कल्पवृक्ष लगे हुये हैं एवं जो सहस्रों सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है ॥ ६६ ॥

पुनः कीदृशे ? मणीति ।

मणिदीपिकानिकरदीपितान्तरे
तनुचित्रविस्तृतवितानशालिनि ।

ललिते पिकस्वरविचित्रदामभिः
सुसुगन्धि गन्धसलिलोक्षितस्थले ॥ ६७ ॥

मणिरेवदीपिका तस्याः समूहैः प्रकाशितमध्यभागे । पुनः कीदृशे ? सूक्ष्मविचित्रविस्तीर्णचन्द्रातपयुक्ते । पुनः कीदृशे ? विकसितनानाप्रकार-पुष्पमालाभिः शोभिते अतिसुरभिसलिलसिक्तस्थाने ॥ ६७ ॥

जिस मणिमय मण्डप का मध्य भाग मणिमय सहस्रों दीपकों की प्रभा से जगमगा रहा है, फूले हुये चित्र-विचित्र मालाओं से सुशोभित जिस मणिमण्डप की आभा सूक्ष्म एवं विस्तृत चन्द्रिका के समान सर्वत्र फैली हुई है और जिसके नीचे का स्थल प्रदेश सुगन्धित जल से सींचे जाने के कारण सुगन्ध युक्त हो रहा ॥ ६७ ॥

पुनः कीदृशे—प्रमदेति ?

प्रमदाशतैर्मदविघूर्णितेक्षणै-
र्मदजालसैः करविलोलचामरैः ।
अभिसेविते स्खलितमञ्जुभाषितैः
स्तनभारभङ्गुरकृशावलग्नकैः ॥ ६८ ॥

स्त्रीशतैर्मदविघूर्णितनेत्रैर्मदजनिताऽलस्यसहितैः हस्तस्थितचञ्चलचामरैः ईषत्स्खलितमनोहरवचनैः स्तनभारनम्रसूक्ष्ममध्यप्रदेशैः परितः सेविते ॥ ६८ ॥

मद से घूरती और अलसायी आँखों वाली, अपने हाथों से चामर डुलाती हुई, कुछ कुछ रुककर मनोहर बोलती हुई और स्तनभार से विनम्र कटिप्रदेशों वाली सैकड़ों युवती स्त्रियों से सेवित इस प्रकार के मणिमण्डप के मध्य में (बैठे श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ६८ ॥

कथंभूतस्य सुरपादपस्य ?

अविरामधारमणिवर्यवर्षिणः
श्रमहानिदामृतरसच्युतोऽप्यधः ।
सुरपादपस्य मणिभूतलोल्लसत्
पृथुसिंहवक्त्रचरणाम्बुजासने ॥ ६९ ॥

अविश्रान्तमणिश्रेष्ठधारावर्षिणः । पुनः कीदृशस्य ? श्रमहानिकरामृत-रसश्राविनः ॥ ६९ ॥

निरन्तर श्रेष्ठ मणियों की धारा वर्साते हुये श्रम दूर करने वाले पीयूषवर्षी कल्पवृक्ष के नीचे मणिमयी भूमि पर शोभित हो रहे सिंह के समान विशाल मुख वाले कमलाकार आसन पर (बैठे श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ६९ ॥

कीदृशमच्युतम् ?

अभिचिन्तयेत्सुखनिविष्टमच्युतं
नवनीलनीररुहकोमलच्छविम् ।
कुटिलाग्रकुन्तललसत्किरीटकं
स्मितपुष्परत्नरचितावतंसकम् ॥ ७० ॥

नूतननीलोत्पलरम्यकान्तिम् । पुनः कीदृशम् ? कुटिलाग्रकेशेषु स्फुरत् किरीटं यस्य तम् । पुनः कीदृशम् ? स्मितम् ईषद्विकसितं पुष्पं रत्नानि च तै रचितोऽवतंसो येन तम् ॥ ७० ॥

सुख से बैठे हुये; नवीन खिले हुये नील कमल के समान कोमल कुटिल और चिक्कन, घुँघराले केशों पर किरीट धारण किये हुये, ईषद्विकसित पुष्पों एवं रत्न के बने हुये कर्णाभूषण से युक्त (परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ७० ॥

सुललाटमुन्नसमुदञ्चितभ्रुवं
विपुलारुणायतविलोललोचनम् ।
मणिकुण्डलांशुपरिदीप्तगण्डकं
नवबन्धुजीवकुसुमारुणाधरम् ॥ ७१ ॥

तथा शोभमानललाटम्—तथा उच्चनासिकम् उद्गच्छद् भ्रूलताकम्; तथा स्थूलारुणवर्णदीर्घचञ्चलनयनं तथा मणिमयकुण्डलकिरणपरिशोभित-गण्डस्थलं यथा नूतनबन्धुजीवपुष्पसदृशाऽरुणाधरम् ॥ ७१ ॥

सुन्दर ललाट एवं ऊँची नासिका तथा ऊपर को उठी हुई भ्रूलताओं से युक्त विशाल चौड़े एवं अरुण नेत्रों वाले मणिमय कुण्डलों की किरणों से विराजमान; गण्डस्थल वाले और नवीन बन्धुजीव के पुष्प के समान अरुण अधर वाले (परमात्मा श्री कृष्ण का ध्यान करे) ॥ ७१ ॥

पुनः कीदृशम् ? स्मितेति ।

स्मितचन्द्रिकोज्ज्वलितदिङ्मुखं स्फुर-
त्पुलकश्रमाम्बुकणमण्डिताननम् ।
स्फुरदंशुरत्नगणदीप्तभूषणो-
त्तमहारदामभिरुपस्कृतांसकम् ॥ ७२ ॥

हासचन्द्रकिरणधवलीकृतदिङ्मुखं तथा स्फुरद्रोमाञ्चजन्यप्रस्वेदविन्दु शोभितवदनम् । पुनः कीदृशम् ? स्फुरद्देदीप्यमानकिरणरत्नसमूहप्रकाशमान-भूषणश्रेष्ठहारमालाभिः शोभितस्कन्धम् ॥ ७२ ॥

चन्द्रकिरणों के समान अपने हास्य से दिग् दिगन्तरों को प्रकाशित करने वाले, रोमाञ्च हो जाने मात्र से उत्पन्न स्वेद विन्दुओं से परिपूर्ण मुख वाले, देदीप्यमान रत्न समूहों के आभूषणों में सर्वोत्तम हारमालाओं से शोभमान कन्धों वाले (श्रीकृष्ण का ध्यान कर उनकी पूजा करे) ॥ ७२ ॥

घनसारकुङ्कुमविलिप्तविग्रहं
पृथुदीर्घषड्द्वयभुजाविराजितम् ।
तरुणाब्जचारुचरणाब्जमङ्गजो-
न्मथिताङ्गमङ्कगकराम्बुजद्वयम् ॥ ७३ ॥

पुनश्चन्दनकुङ्कुमाभ्यां परिलिप्तशरीरं पुनः स्थूलदीर्घद्वादशहस्तै-विराजितं तथा नूतनारुणवर्णपद्मसदृशचरणपद्मं पुनः कामपीडितदेहं पुनः स्वाङ्के आरोपितहस्तद्वयम् ॥ ७३ ॥

जिनका शरीर कपूर केशर आदि सुगन्धित अङ्गरागों से विलिप्त है जो विशाल और मोटी मोटी बारह भुजाओं से शोभित हो रहे हैं, जिनके दोनों चरण नवीन खिले हुए कमल के समान हैं, एवं शरीर कामपीड़ा से उन्मथित हो रहा है, एवं जो अपने दो हाथों को अपनी गोद में स्थापित किये हुये हैं (ऐसे श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजा करे) ॥ ७३ ॥

विमर्श—इसी प्रकार १३ हाथों का बर्णन है ॥ ७३ ॥

स्वाङ्कस्थभीष्मकसुतोरुयुगान्तरस्थम्
तां तप्तहेमरुचिमात्मभुजाम्बुजाभ्याम् ।

श्लिष्यन्तमार्द्रजघनामुपगूहमाना-
मात्मानमायतलसत्करपल्लवाभ्याम् ॥ ७४ ॥

पुनः स्वाङ्के स्थिताया रुक्मिण्या ऊरुद्वयाभ्यन्तरे विद्यमानं पुनस्तां रुक्मिणीं तप्तसुवर्णकान्ति स्वीयहस्तपद्माभ्यामालिङ्गन्तम् । कीदृशीं ताम् ? आर्द्रजघनां पुनरात्मानं श्रीकृष्णं दीर्घमनोहरपाणिपल्लवाभ्याम् आलिङ्गन्तीम् ॥ ७४ ॥

अपनी गोद में रुक्मिणी को स्थापित कर स्वयं उसके दोनों ऊरुओं के मध्य में स्थित होकर आर्द्रजघना, सुवर्णमयी कान्ति वाली रुक्मिणी का अपने दोनों हस्त-कमल से आलिङ्गन करते हुये तथा स्वयं भी उसके दोनों पाणिपल्लवों से आलिङ्गित (श्रीकृष्ण परमात्मा का ध्यान कर पूजा करे) ॥ ७४ ॥

विमर्श—यहाँ तक श्रीकृष्ण के ४ हाथों का वर्णन हुआ ॥ ७४ ॥

आनन्दोद्रेकनिघ्नां मुकुलितनयनेन्दीवरां स्रस्तगात्रीं
प्रोद्यद्रोमाश्वसान्द्रश्रमजलकणिकामौक्तिकालङ्कृताङ्गीम् ।
आत्मन्यालीनबाह्यान्तरकरणगणामङ्गकैर्निस्तरङ्गै-
र्मज्जन्तीं लीननानामतिमतुलमहानन्दसन्दोहसिन्धौ ॥ ७५ ॥

पुनः स्वात्मानन्दोद्रेकव्याप्तां पुनः मुद्रितनयननीलोत्पलां पुनः प्रोद्यत्तनु-पुलकजन्यनिविडप्रस्वेदबिन्दुरूपमौक्तिकशोभितदेहां पुनः आत्मनि श्रीकृष्णे सम्यग्विलीनबाह्याभ्यन्तरेन्द्रियसमूहां पुनर्व्यापाररहितैः शरीरावयवैरतिशयितमहानन्दसमूहसागरे निमग्नां पुनः विगतचञ्चलमतिम् ॥ ७५ ॥

जो रुक्मिणी श्रीकृष्ण के स्पर्शातिरेकजन्य आनन्द से व्याप्त हैं एवं जिनके दोनों नेत्र मुकुलित कमल कुड्मल के समान आनन्दोद्रेक से मुद्रित हो रहे हैं। जिसके शरीर का वस्त्र खिसक गया है, रोमाञ्चित हो जाने से मोती के समान सघन जलकणों से जिसका शरीर शोभायमान हो रहा है, जिनकी समस्त बाह्य एवं आभ्यन्तर इन्द्रियाँ श्रीकृष्ण में लीन हो रहीं है, जिसके शरीर की सारी चेष्टायें शिथिल हो रही हैं अत्यन्त महानन्द के समूह रूप सागर में गोता लगाती हुई तथा सभी प्रकार की वृद्धि की चञ्चलता को दूर कर एक मात्र श्रीकृष्ण के ध्यान में डूबी हुई इस प्रकार की रुक्मिणि को स्पर्श करते हुये (श्रीकृष्ण का ध्यान करे)॥ ७५ ॥

पुनः कीदृशं परमेश्वरम् ?

सत्याजाम्बवतीभ्यां
दिव्यदुकूलानुलेपनाभरणाभ्याम् ।
मन्मथशरमथिताभ्यां
मुखकमलचञ्चललोचनभ्रमराभ्याम् ॥ ७६ ॥

सत्यभामाजाम्बवतीभ्यामालिङ्गितम् । कथं भूताभ्याम् ? उत्कृष्टानि पट्टवस्त्रानुलेपनाभरणानि ययोस्ताभ्यां पुनः कामशरपीडिताभ्यां पुनः कृष्णमुखविषयकचञ्चलनेत्रभ्रमराभ्याम् ॥ ७६ ॥

भुजगयुगलाश्लिष्टाभ्यां
श्यामारुणललितकोमलाङ्गलताभ्याम् ।
आश्लिष्टमात्मदक्षिण
वामगताभ्यां करोल्लसत् कमलाभ्याम् ॥ ७७ ॥

पुनः परमेश्वरस्य भुजयुगलेनाऽऽलिङ्गिताभ्याम् । यथाक्रमनीलारुणवर्णे मनोहरे कोमले चाऽङ्गलते ययोस्ताभ्यां पुनः परमेश्वरस्य दक्षिणवामगताभ्यां पुनः पाणिस्फुरितपद्माभ्याम् ॥ ७७ ॥

दिव्य वस्त्र दिव्य गन्ध एवं दिव्य आभरणों से सुशोभित कामदेव के बाणों से भृशार्दित श्रीकृष्ण के मुख कमल पर आसक्त भ्रमर के समान चञ्चल नेत्रों वाली-ऐसी सत्यभामा एवं जाम्बवती को परमेश्वर की दो भुजाओं से आलिङ्गित श्याम एवं अरुण वर्ण की कान्ति से युक्त अङ्गलता वाली दाहिने एवं बाये स्थित रहने वाली सत्या तथा जाम्बवती के करकमलों से आश्लिष्ट (परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर उनका पूजन करे) ॥ ७६-७७ ॥

विमर्श—यहाँ तक ६ भुजाओं का वर्णन हुआ ॥ ७६-७७ ॥

पुनः कीदृशम् ?

पृष्टगया कलिन्दसुतया करकमलयुजा
सम्परिरब्धमञ्जनरुचा मदनमथितया ।

पद्मगदारथाङ्गदरभृद्भुजयुगलं
दोर्द्वयसक्तवंशविलसन्मुखसरसिरुहम् ॥ ७८ ॥

परमेश्वरपृष्ठदेशवर्त्तिन्या यमुनया हस्तधृतकमलया समालिङ्गितम्; किम्भूताया श्यामया ? पुनः कामपीडितया । पुनः कीदृशं परमेश्वरम् ? पद्म-गदाशङ्खचक्रयुक्तहस्तचतुष्टयं हस्तद्वयधृतवंशविलसन्मुखकमलम् ॥ ७८ ॥

परमेश्वर के पीछे रहने वाली अपने हाथों में कमल लिये हुये अञ्जन के समान छवि वाली तथा काम से उन्मथित चित्त वाली यमुना के द्वारा आलिङ्गित कमल, गदा, चक्र और शङ्ख अपने चार हाथों में धारण किये हुये-तथा दोनों हाथों को मुख कमल में विद्यमान वंशी पर स्थापित किये हुये (परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान कर पूजन करे) ॥ ७८ ॥

विमर्श—यहाँ तक १२ हाथों का वर्णन हुआ ॥ ७८ ॥

दिक्ष्विति ।

दिक्षु बहिः सुरर्षियतिभिः खेचरपरिवृढै-
र्भक्तिभरावनम्रतनुभिःस्तुतिमुखरमुखैः ।
सन्ततसेव्यमानममनोवचनविषयक-
मर्थचतुष्टयप्रदममुं त्रिभुवनजनकम् ॥ ७९ ॥

तृतीयपटलोक्त क्रमेणेत्यर्थः । पुनः बहिर्दिक्षु देवर्षियतिभिः खेचर-मुख्यैर्भक्त्यतिशयनम्रदेहैः । परिवृढैः प्रधानैः स्तुतिभिः वाचालवदनैर्निरन्तरं सेवितं पुनः मनसोवाचामगोचरं पुनर्धर्मार्थकाममोक्षफलचतुष्टयप्रदं पुनस्त्रैलोक्यजनकम् ॥ ७९ ॥

तदनन्तर दिशाओं के बाहर पूर्वोक्त तृतीयावरण में कहे गये भक्ति विनम्र शरीर वाले, स्तुति करने में पटु देवताओं, ऋषियों, सिद्धों एवं विद्याधरादि खेचर-मुख्यों के द्वारा सर्वदा सेव्यमान मन एवं वाणी से सर्वथा अगोचर धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को देने वाले, त्रैलोक्य के पिता (परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान करे) ॥ ७९ ॥

सान्द्रानन्दमहाब्धिमग्नममलं धाम्नि स्वकेऽवस्थितं
ध्यात्वैवं परमं पुमांसमनघात्संप्राप्य दीक्षां गुरोः ।

लब्ध्वामुं मनुमादरेण सितधीर्लक्षं जपेद्योषिताम्
वार्त्ताकर्णनदर्शनादिरहितो मन्त्री गुरूणामपि ॥ ८० ॥

पुनः निविडानन्दमहासमुद्रमग्नम्। स्वीये निर्मले तेजसितद्रूपेणाऽवस्थिम् एवमुक्तरूपं परमेश्वरं विचिन्त्य निष्पापात् गुरोर्दीक्षामन्त्रोपदेशविधिं प्राप्याऽमुं मन्त्रं लब्ध्वा तीक्ष्णबुद्धिः आदरात् लक्षमेकं जपेत्। कीदृशः साधकः? स्त्रीणां वृद्धानामपि कथाश्रवणनिरीक्षणपराङ्मुखः ॥ ८० ॥

अत्यन्त सघन आनन्दसमुद्र में निमग्न अपने निर्मल तेजः स्वरूप में स्थित पर पुमान परमात्मा का ध्यान कर सर्वथा निष्पाप गुरु से दीक्षा लेकर तीक्ष्णबुद्धि वाला पुरुष भक्तिपूर्वक एक लाख जप करे। अनुष्ठान काल में युवती स्त्रियों की तो बात ही क्या? वृद्धा स्त्रियों से भी बात न करे न उनकी बात सुने, इसी प्रकार उनके निरीक्षण से भी वर्जित रहे ॥ ८० ॥

होमं सेवां चाऽऽह—जुहुयादिति।

जुहुयाच्च दशांशक हुताशे
ससिताक्षौद्रघृतेन पायसेन।
प्रथमोदितपीठवर्यकेऽमुं
प्रयजेन्नित्यमनित्यताविमुक्त्यै ॥ ८१ ॥

हुताशे वह्नौ दशांशकम्। अयुतमेकं शर्करामधुघृतयुक्तेन परमान्नेन जुहुयात्। किञ्च पूर्वोक्तदशाष्टादशाक्षरकथिते पीठश्रेष्ठे नित्यममुं यजेत्। किमर्थम्, ? अनित्यः संसारस्तस्य परिहरणाय ॥ ८१ ॥

तदनन्तर इस अनित्य संसार से मुक्त होने के लिये साधक शर्करा, मधु, घृतयुक्त पायस से अग्नि में दस हजार आहुति देवे और प्रथम कहे गये दशाक्षर अथवा अष्टादशाक्षर मन्त्र की पीठ पर परमात्मा श्री कृष्ण का नित्य पूजन करता रहे ॥ ८१ ॥

आरभ्याऽथ विभूतिन्यासक्रमतः शरान्तमभ्यर्च्य।
मूर्त्याद्यङ्गान्तं चात्मानं विंशत्यर्णोदितयन्त्रवरे ॥ ८२ ॥
मध्यबीजं परितो वरुणेन्दुयमेन्द्रदिक्षु संलिख्य।
बीजचतुष्कं तदपि चत्वारिंशद्भिरक्षरैद्वर्यधिकैः ॥ ८३ ॥

शिष्टैः प्रवेष्टय शिवहरिवस्वाद्यश्रिष्वथ क्रमाद्विलिखेत् ।
वाङ्मायाश्रीमन्त्रास्तद्वद्रक्षोम्बुपानिलाश्रिषु च ॥८४॥
शेषं पूर्वोदितवद्विधाय पीठं यथा वदभ्यर्च्य ।
सङ्कल्प्य मूर्तिमन्त्राऽऽवाह्याऽभ्यर्चयतु मध्यबीजे तम् ॥ ८५ ॥

आरभ्येत्यादि विभूतिपञ्जरमारभ्य न्यासक्रमेण बाणपर्यन्तं पूजयित्वा मूर्त्तिन्यासमारभ्याऽङ्गन्यासपर्यन्तं चात्मरूपं सम्पूज्य पूर्वोक्त विंशत्यक्षर-मन्त्रोक्त यन्त्रश्रेष्ठकर्णिकामध्यस्थितवह्निपुरयुगमध्ये मध्यमबीजमध्ये बीजमिति पाठस्वरसात् हल्लेखाबीजमिति रुद्रधरगोविन्दमिश्रप्रभृतयः । परस्थमध्यमबीजमिति लगति मध्यमबीजं वाग्भवादिबीजत्रयमध्यस्थितं मारबीजमिति पाठे कामबीजं विलिख्य तत्परितश्च पश्चिमोत्तरपूर्वदक्षिण-दिक्षु बीजचतुष्कं द्रीं न्त्रीं जीं झ्रीं इति बीजचतुष्टयं विलिख्य तदपि बीज-चतुष्टयं द्विचत्वारिंशत् जपादिस्वाहान्तैः शिष्टैर्मन्त्राक्षरैरुपरि वेष्टयेत् । अनन्तरं शिव ईशानः हरिरिन्द्रः पूर्वादि दिगित्यर्थः, वसुरग्निः आग्नेयादिक एवं नैर्ऋतीवारुणीवायवीदिग् एतेषु कोणेषु क्रमेण वाग्भवभुवनेश्वरी-श्रीबीजानि त्रिरावृत्य विलिखेत् ।

अवशिष्टं पीठविधानं पूर्ववत् समाप्य पीठं यथावत् पूजयित्वा तत्र पीठे कर्णिकामध्यस्थितकामबीजे रुक्मिणीवल्लभमूर्त्ति सङ्कल्प्य ध्यात्वा तमावाह्य पूजयेत् ॥ ८२–८५ ॥

विभूतिपञ्जर न्यास से आरम्भ कर न्यास क्रम से बाणपर्यन्त पूजा कर मूर्त्तिन्यास से आरम्भ कर अङ्गन्यास पर्यन्त आत्मस्वरूप की पूजा कर पूर्व में कहे गये विंशत्यक्षरात्मक मन्त्र के यन्त्र की कर्णिका में स्थित षट्कोण के मध्य में मध्यम बीज (ह्रीं) लिखकर उसके चारों ओर पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः द्रीं न्रीं त्रीं झ्रीं— इन चार बीजाक्षरों को लिखे । पुनः उसे भी ऊपर लिखे शेष बयालीस (जय कृष्ण से स्वाहापर्यन्त) अक्षरों से घेर देवे । पुनः ईशान-पूर्व और आग्नेय में क्रम से तीन तीन बार वाग्बीज भुवनेश्वरी बीज और श्रीबीज को तीन तीन बार लिखे अर्थात् ईशान कोण में तीन वाग्बीज, पूर्व में तीन भुवनेश्वरी बीज, आग्नेय में तीन श्रीबीज लिखे । इसी प्रकार नैर्ऋत्य, पश्चिम तथा वायव्य कोणों में भी क्रमशः तीन तीन बार वाग्बीज भुवनेश्वरी बीज एवं श्री बीज लिखें । शेष पीठ विधान पूर्ववत् समाप्त कर पुनः पीठ की यथावत् पूजा कर उस पीठ की कर्णिका

के मध्य में स्थित कामबीज में रुक्मिणी वल्लभ की मूर्त्ति का पूर्ववत् ध्यान कर आवाहन करे। पुन: पूजन भी करे ॥ ८२-८५ ॥

मुखदक्षसव्यपृष्ठगबीजेष्वच्र्यास्तु शक्तयः क्रमशः।
रुक्मिण्याद्याः षट्स्वथकोणेष्वङ्गानि केशरेषु शरान् ॥ ८६ ॥

अनन्तरं देवस्य सन्मुखदक्षिणवामपृष्ठप्रदेशगतेषु बीजचतुष्टयेषु रुक्मिण्याद्याः शक्तयः पूज्याः षट्कोणेषु अङ्गानि केशरेषु शरान् पूजयेत् ॥ ८६ ॥

तदनन्तर देव रुक्मिणी वल्लभ के सामने, दायीं ओर, बायीं ओर तथा पीछे उनकी रुक्मिणी आदि शक्तियों की क्रमशः दो दो के क्रम से पूजा करे। षट्कोणो में अङ्गों की तथा केशरों में बाणों की पूजा करे ॥ ८६ ॥

लक्ष्म्याद्या दलमध्येष्वग्न्यादिषु तद्बहिर्ध्वजप्रमुखान्।
अग्रे केतुं श्यामं पृष्ठे विपमरुणममलरक्तरुची ॥ ८७ ॥
पार्श्वद्वये निधीशौ सन्ततधाराभिवृष्टधनपुञ्जौ।
हेरम्बशास्तृदुर्गाविष्वक्सेनान् विदिक्षु वह्न्यादि ॥ ८८ ॥
विद्रुममरकतदूर्वास्वर्णाभान् वहिरथेन्द्रवज्राद्यान्।
यजनविधानमितीरितमावृतिसप्तकयुतं मुकुन्दस्य ॥ ८९ ॥

अग्न्यादिपत्रमध्येषु लक्ष्म्याद्याः पूज्याः। तत्रवहिर्भागे ध्वजप्रभृतीन् पूजयेत्। अनन्तरं देवस्य सन्मुखे श्यामवर्णकेतुनामानं गणं पूजयेत्। देवपृष्ठभागे अरुणवर्णं गरुडं पूजयेत्। देवपार्श्वद्वये निर्मलरक्तरुचीनिधीश्वरौ पूज्यौ कीदृशौ? निरन्तरधाराभि वृष्टधनसमूहौ।

वह्न्यादिविदिक्षुहेरम्बादीन् प्रवालादिवर्णान् पूजयेत्। अनन्तरं बहिर्दिक्षु इन्द्रादिलोकपालान् तथा वज्राद्यायुधानि पूजयेत्। इति पूर्वोक्तप्रकारेण मुकुन्दस्य श्रीकृष्णस्याऽऽवरणसप्तकं पूजाविधानं कथितम् इति ॥ ८७-८९ ॥

पत्र के मध्य के अग्न्यादि कोणों में लक्ष्मी आदिकों की पूजा करे। उसके बाहर ध्वजादिकों की पूजा करे। तदनन्तर देव के सामने श्यामवर्ण के केतुनामक विष्णु के गण की पूजा करे और पृष्ठभाग में अरुणवर्ण के गरुड़ की पूजा करे। दोनों पार्श्व में निर्मल कान्ति वाले निरन्तरधारा से धन समूहों की वृष्टि करने वाले दो

निधीश्वरों की पूजा करे। पुनः देव के आग्नेयादि कोणों में क्रमशः प्रवाल (लाल), मरकत दूर्वा (हरे वर्ण) और सुवर्णमय वर्णवाले गणेश, यम, दुर्गा तथा विष्वक्सेन की पूजा करे। उसके बाहर इन्द्रादि दिक्पालों की तथा वज्रादिकों की पूजा करे। इस प्रकार हमने परमात्मा श्री कृष्ण के सप्तावरण पूजा का विधान कहा ॥ ८७-८९ ॥

इतीति।

इत्यर्चयन्नच्युतमादरेण
योऽमुं भजेन्मन्त्रवरं जितात्मा।
सोऽभ्यर्च्यते दिव्यजनैर्जनानां
हृन्नेत्रपङ्केरुहतिग्मभानुः ॥ ९० ॥

इति अमुना प्रकारेण यो जितेन्द्रियो अच्युतं कृष्णं भक्त्या पूजयन् अमुं मन्त्रश्रेष्ठं सेवते स पुरुषः सुरैरपि पूज्यते। कीदृशः? लोकानां हृदयपद्म-लोचनपद्मयोः सूर्यः सर्वजनवशीकरणमन्त्रः समर्थ इत्यपि पाठः ॥ ९० ॥

जो जितेन्द्रिय पुरुष इस प्रकार भक्ति से श्रीकृष्ण की पूजा करते हुये इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप करता है, वह देवताओं के द्वारा पूजित होता है तथा समस्त लोकों के हृदय पद्म एवं नेत्र पद्मों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है ॥ ९० ॥

सितेति।

सितशर्करोत्तरपयःप्रतिपत्त्या
परितर्पयेद्दिनमुखे दिनशस्तम्।
सलिलैः शतं शतमखश्रियमेष
स्वविभूत्युदन्वति करोत्युदबिन्दुम् ॥ ९१ ॥

सितशर्कराप्रधानप्रतिपत्त्या दुग्धबुद्ध्याः जलैरेव दिनमुखे प्रातःकाले प्रतिदिनं शतकृत्वस्तं तर्पयेत्। अनन्तरं साधकः स्वाधिपत्यसमुद्रे इन्द्रस्य लक्ष्मीं जलबिन्दुवत् करोति ॥ ९१ ॥

सित शर्करामिश्रित दूध की जल में भावना कर उसी से प्रतिदिन प्रातः काल इस मन्त्र से तर्पण करने वाला पुरुष अपने धन के आधिपत्य के समुद्र से इन्द्र की

लक्ष्मी को भी जल-विन्दु के समान तुच्छ बना देता है ॥ ९१ ॥

विदलदिति ।

विदलद्दलैः सुमनसः सुमनोभि-
र्घनसारचन्दनबहुद्रवमग्नैः ।
मनुनाऽमुना हवनतोऽयुतसंख्यं
त्रिजगत् प्रियः स मनुवित्कविराट् स्यात् ॥ ९२ ॥

अनेन मन्त्रेण सुमनसो जातीमालतीनामधेयस्य सुमनोभिः पुष्पैः विकसि । तैः कर्पूरयुक्तचन्दनस्य बहुद्रवव्याप्तैरयुतसंख्यं हवनतोऽयुतहोमेन सः मन्त्री त्रैलोक्यस्य प्रियः कविश्रेष्ठश्च भवति ॥ ९२ ॥

कर्पूर चन्दन आदि अनेक द्रव पदार्थों से युक्त खिले हुये मालती के पुष्पों से इस मन्त्र के द्वारा दस हजार हवन करने वाला मनुष्य त्रैलोक्य का प्रिय एवं श्रेष्ठ कवि हो जाता है ॥ ९२ ॥

ध्यानेति ।

ध्यानादेवास्य सद्यस्त्रिदशमृगदृशोवश्यतां यान्त्यवश्यं
कन्दर्पार्त्ताजपाद्यैः किमथ न सुलभं मन्त्रतोऽस्मान्नरस्य ।
स्पर्द्धामुद्धूय चित्रं महदिदमपि नैसर्गिकीं शश्वदेनं
सेवेते मन्त्रिमुख्यं सरसिजनिलया चाऽपि वाचामधीशा ॥९३॥

अस्य रुक्मिणीवल्लभस्य ध्यानात् शीघ्रं त्रिदशमृगदृशः देवाङ्गना अवश्यं वश्यतामायत्ततां प्राप्नुवन्ति । कथं भूताः ? कामपीडिता । अथानन्तरं जपहोमादिनाऽस्मात् मन्त्रात् साधकस्य किं न सुलभम्, अपितु सर्वमेवसुलभमित्यर्थः । किञ्चेदमपि महच्चित्रं यत्सरसिजनिलया लक्ष्मीः वाचामधीशा-सरस्वती च स्वाभाविकीमसूयां त्यक्त्वा नित्यमेनं साधकश्रेष्ठं सेवेते ॥९३ ॥

इस रुक्मिणी वल्लभ मन्त्र के ध्यान मात्र से देवाङ्गनायें अवश्य ही काम से पीडित हो वशीभूत हो जाती हैं । बहुत क्या कहें, इस मन्त्र के जप एवं होम से साधक को क्या क्या नहीं प्राप्त हो जाता है, (अर्थात् वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है) । एक और बड़ी बिचित्र बात यह है कि कमलवासिनी लक्ष्मी और वागधिष्ठात्री सरस्वती अपनी अपनी स्वाभाविकी ईर्ष्या त्याग कर निरन्तर इस

मन्त्र की उपासना करने वाले पुरुष की सेवा करती है ॥ ९३ ॥

आधीति ।

आधिव्याधिजरापमृत्युदुरितैर्भूतैः समस्तैर्विषै-
र्दौर्भाग्येन दरिद्रतादिभिरसौ दूरं विमुक्तश्चिरम् ।
सत्पुत्रैः सुसुतासुमित्रनिवहैर्जुष्टोखिलाभिः सदा
सम्पद्भिः परिजुष्ट ईडितयशा जीवेदनेकाः समाः ॥ ९४ ॥

किञ्च मनोदुःखरोगजरापमृत्युशोकशून्यः सकलप्राणिभिर्विषैः तथा दुरदृष्टेन तथा दरिद्रतादिभिरतिशयेन परित्यक्तो बहुकालं व्याप्यविशिष्ट-पुत्रसमेतः सत्पुत्रीमित्रसमूहेन सेवितः सदा समृद्धः ईडितयशाः स्तुतयशाः असौ साधकः अनेकाः समा हायनानि जीवेत् ॥ ९४ ॥

इस मन्त्र का उपासक पुरुष आधि (मानसिक दुःख), व्याधि (रोग), जरा, अपमृत्यु, शोक तथा पापों से छूट जाता है। वह सभी प्रकार के विषों, दौर्भाग्य एवं दरिद्रता आदि दोषों से मुक्त हो जाता है तथा उत्तम पुत्र, उत्तम पुत्री, उत्तम मित्र आदि समस्त परिजनों से युक्त रहकर संपूर्ण संपदाओं से सर्वदा समन्वित हो प्रशस्त यश की प्राप्ति करते हुये अनेक वर्षों तक जीवित रहता है ॥ ९४ ॥

मन्त्रान्तरेभ्योऽस्याऽतिशयित्वमाह—अखिलेति ।

अखिलमनुषु मन्त्रा वैष्णवा वीर्यवन्तो
महिततरफलाढ्यास्तेषु गोपालमन्त्राः ।
प्रबलतर इहैषोऽमीषु संमोहनाख्यो
मनुरनुपमसम्पत्कल्पनाकल्पशाखी ॥ ९५ ॥

सर्वेषु मन्त्रेषु वैष्णवमन्त्रा अतिशयेन सवीर्याः तेष्वपि वैष्णवमन्त्रेषु गोपालमन्त्रा अतिपूजितफलयुक्ताः तेष्वपि गोपालमन्त्रेषु एष संमोहनाख्य मन्त्रः प्रबलतरः प्रकृष्टबलयुक्तः, पुनः निरुपमैश्वर्यदानैककल्पवृक्षः ॥ ९५ ॥

ऐसे तो सभी मन्त्रों में वैष्णव मन्त्र सर्वाधिक शक्तिशाली होते हैं; किन्तु उन वैष्णव मन्त्रों में भी गोपाल मन्त्र अतिशय फलदायी होता है, उन सभी गोपाल मन्त्रों में भी यह 'सम्मोहन' नामक मन्त्र प्रवल है। क्योंकि यह मन्त्र कल्पना से परे अपरिमेय संपत्तियों को प्रदान करने के लिये कल्पवृक्ष के समान है ॥ ९५ ॥

मन्विति ।

मनुमिममतिहृद्यं यो भजेद्भक्तिनम्रो
जपहुतयजनाद्यैर्ध्यानवान्मन्त्रिमुख्यः ।
त्रुटितसकलकर्मग्रन्थिरुद्‌बुद्धचेताः
व्रजति स तु पदं तन्नित्यशुद्धं मुरारेः ।। ९६ ।।

यो मन्त्रिमुख्यः साधकश्रेष्ठः ध्यानयुक्तः भक्त्या आराध्यत्वज्ञानेन इमं मन्त्रं मनोहरं जपध्यानहोमादिभिर्भजेत् स मुरारेस्तत्प्रसिद्धं पदं व्रजति प्राप्नोति मुरा अविद्या तस्या नाशकस्य पदम् । कीदृशं पदम् ? अविनाशि सर्वकालुष्यरहितम्, स कीदृशः ? विनाशितसकलकर्मबन्धनः, पुनः कीदृशः ? उद्‌बुद्धचेता वस्तुग्रहणोन्मुखचित्तः ।। ९६ ।।

जो मन्त्रवेत्ता ध्यान एवं भक्ति से युक्त हो अत्यन्त मनोहर इस मन्त्र की उपासना जप हवन एवं पूजा के द्वारा करता है वह अपने समस्त कर्म बन्धनों के जाल को तोड़कर तत्त्व ज्ञान प्राप्त करते हुए अविनाशी एवं कालुष्य रहित परमशुद्ध भगवान् विष्णु के पद को प्राप्त कर लेता है ।। ९६ ।।

अथ योगमाह—अङ्गीकृत्येति ।

अङ्गीकृत्यैकमेषां मनुमथ जपहोमार्चनाद्यैर्मनूना-
मष्टाङ्गोत्सारितारिः प्रमुदितपरिशुद्धप्रसन्नान्तरात्मा ।
योगीयुञ्जीतयोगान्समुचितविहृतिस्वप्नबोधाहृतिः स्यात्
प्रागास्यश्चासने स्वे सुमृदुनि ससुखं मीलिताक्षो निविष्टः ।।९७।।

एषां मनूनां मन्त्राणां मध्ये एकं मनुं मन्त्रजपहोमादिभिः स्वीकृत्य वशीकृत्य अष्टाङ्गेन यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिलक्षणेन उत्सारितास्त्यक्ताः कामक्रोधादयोऽरयो येन स तथा हर्षितनिर्मल प्रसन्नचित्तो योगी प्राग्वदनः सन् योगान् चित्तवृत्तिनिरोधादीन् करोतु । कीदृशो योगी ? यथोचितविहारनिद्राप्रबोधाहारः, पुनः स्वकीये सुकोमले आसने समुपविष्टः, पुनः कीदृशः ? सुखेनाऽनायासेन संमीलिते मुद्रिते अक्षिणी यन सः ।। ९७ ।।

इन मन्त्रों के मध्य में किसी एक मन्त्र का जप, होमादि के द्वारा अपने वश में कर अष्टाङ्ग योग के द्वारा काम क्रोधादि विकारों को त्याग कर अपने अन्तःकरण

के मल को दूर कर सर्वथा शुद्ध हो यथोचित आहार विहार, निद्रा प्रबोधादि करते हुये अपने कोमल आसन पर बैठकर तथा दोनों नेत्रों को बन्द कर अपने चित्तवृत्ति निरोध के लिये योग क्रियाओं का अभ्यास करे ॥ ९७ ॥

विश्वमिति ।

विश्वं भूतेन्द्रियान्तःकरणमयमिनेन्द्वग्निरूपं समस्तं
वर्णात्मैतत् प्रधाने कलनयनमये बीजरूपे ध्रुवेण ।
नीत्वा तत्पुंसि बिन्द्वात्मनि तमपि परात्मन्यथो कालतत्वे
तं वै शक्तो चिदात्मन्यपि नयतु च तां केवले धाम्नि शान्ते ॥९८॥

एतद्वर्णात्मकं समस्तं विश्वं भूतेद्रियान्तः करणरूपं सूर्येन्द्वग्निरूपं प्रधाने प्रकृतिरूपे कलनयनरूपे कामबीजे प्रणवेन नीत्वा तत्र बिलीनं विचिन्त्य तत्कामबीजं बिन्द्वात्मनि प्रसिद्धेऽनुस्वाराख्ये तमपि बिन्द्वात्मानं नादाख्ये कालतत्वे परमात्मनि संहरेत् तमपि कालतत्वं चिद्रूपायां शक्तौ संहरेत्तामपि शक्तिं केवले तेजोमये स्वप्रकाशे धाम्नितेजसि शान्ते सर्वोपद्रवरहिते नयतु ॥ ९८ ॥

यह वर्णात्मक विश्व, जो भूतेन्द्रियाकरण रूप अथवा सूर्य, चन्द्र, अग्निस्वरूप में फैला हुआ है, उसे प्रधान (प्रकृति) रूप क्लीं बीज में प्रणव के द्वारा ले जाकर उसमें उसे विलीन कर पुनः उस कामबीज को बिन्दुस्वरूप (अनुस्वारस्वरूप) में लीन करे, पुनः उस बिन्दुस्वरूप को नाद नामक काल तत्वात्मक परमात्मा में लीन करे। उस कालतत्व को भी चिद्रूप शक्ति में लीन करे। उस शक्ति को भी केवल शान्तस्वरूप तेजोमय धाम में विलीन करे ॥ ९८ ॥

कीदृशे ?

निर्द्वन्द्वे निर्विशेषे निरतिशयमहानन्दसान्द्रेऽवसानाऽ-
पेतेऽर्थे कृष्णपूर्वामलरहितगिरां शाश्वते स्वात्मनीत्थम् ।
संहृत्याऽभ्यस्य बीजोत्तममथशनकैर्लीननिश्वासचेताः
प्रक्षीणापुण्यपुण्यो निरुपमपरसंवित्स्वरूपः स भूयात् ॥ ९९ ॥

निर्द्वन्द्वे शीतोष्णादिद्वन्द्वविशेषरहिते विशेषो वैधर्म्यं तद्रहिते अत्यन्तानन्दघने अनन्ते कृष्णगोविन्दादिनिर्मलशब्दानां प्रतिपाद्ये आत्मस्वरूपे इत्थम् अमुना प्रकारेण संहृत्य संहारं कृत्वा कामबीजं जपन् अथानन्तरं स्वयमेव

निश्चलश्वासचित्तो भूत्वा प्रक्षीणपापपुण्यश्च भूत्वा स योगी निरूपमः परमसंविन्मयो भवति ॥ ९९ ॥

शीतोष्णादि द्वन्द्व से रहित एवं सब प्रकार के वैधर्म्य से रहित अत्यन्त आनन्द घन, अनन्त कृष्ण गोविन्दादि शब्दों से प्रतिपाद्य, आनन्द स्वरूप में इस प्रकार सबका विलय कर कामबीज का जप करते हुए अचल समाधि में लीन हुआ योगी पुण्य-पाप से रहित होकर निरुपम ज्ञानस्वरूप हो जाता है ॥ ९९ ॥

मूलेति ।

मूलाधारे त्रिकोणे तरुणतरणिभाभास्वरे विभ्रमन्तं
कामं बालार्ककालानलजठरकुरङ्गाङ्ककोटिप्रभाभम् ।
विद्युन्मालासहस्रद्युतिरुचिर हसद्बन्धुजीवाभिरामं
त्रैगुण्याक्रान्तबिन्दुं जगदुदयलयैकान्तहेतुं विचिन्त्य ॥ १००॥

त्रिकोणात्मके मूलाधारे उद्यदादित्यवत् प्रकाशमाने भ्रममाणं कामबीजं नूतनादित्यप्रलयकालीनवह्निचन्द्रकोटितुल्यकान्ति पुनस्तडिन्मालासहस्र-कान्ति पुनः नूतनपुष्पितबन्धूकवन्मनोहरं सत्वादिगुणत्रयेण व्याप्तोऽनुस्वार-संज्ञको बिन्दुर्येन तं पुनः विश्वोत्पत्तिनाशैककारणम् ॥ १०० ॥

मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रकाशमान, त्रिकोणात्मक मूलाधार में भ्रमण करने वाले, नवीन उदीयमान आदित्य, प्रलयकालीन अग्नि एवं करोड़ों चन्द्रमा के, समान देदीप्यमान, सहस्रों विद्युन्माला के सामान कान्ति वाले तथा नवीन प्रफुल्लित बन्धूक पुष्प के समान क्लीं बीज का, जिसके अनुस्वार में सत्त्वादि त्रिगुण व्याप्त है; स्मरण करे ॥ १०० ॥

तस्येति ।

तस्योर्द्ध्वे विस्फुरन्तीं स्फुटरुचिरतडित्पुञ्जभाभास्वराभा-
मुद्गच्छन्तीं सुषुम्णासरणिमनुशिखामाललाटेन्दुबिम्बम् ।
चिन्मात्रां सूक्ष्मरूपां कलितसकलविश्वां कलां नादगम्यां
मूलं या सर्वधाम्नां स्मरतु निरुपमां हुंकृतोदञ्चितेरः ॥१०१॥

तस्य कामबीजस्य उपरि बिन्दुगतकुण्डलिनीं शक्तिं दीप्यमानां चिन्तयतु । किंभूताम् ? प्रव्यक्तमनोहरविद्युत्सहस्रवत् प्रकाशमानकान्तिं पुनः

ललाटचन्द्रबिम्बान्तं सुषुम्णारन्ध्रं यान्तीं पुनः अनु अनुगता बीजगत-बिम्बात्मके वह्निशिखा ज्वाला यस्यां सा तथा तां पुनः किम्भूताम् ? चित्स्व-रूपां पुनः दुर्लक्षां पुनराप्तसकलविश्वां पुनः कलारूपां, पुनर्नादानुमेयां, पुनः सर्वतेजसां मूलभूतां, कीदृशोऽधिकारी ? हुंकारेण उदञ्चित ऊध्द्र्वमुत्पाटित-इरो वायुरपानाख्यो येन स तथा ॥ १०१ ॥

तदनन्तर साधक क्लीं बीज के ऊपर बिन्दु में रहने वाली, मनोहर एवं सहस्रों विद्युत् के समान कान्ति वाली सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा अग्नि शिखा के समान ऊपर उठकर ललाट में रहने वाले चन्द्रबिम्ब तक जाने वाली, चित्स्वरूपा, अदृश्यभूता, सारे विश्व में व्याप्त, कला स्वरूपा, नादमात्र से अनुमेय, समस्त तेजों की आधारभूता एवं अपने हुंकार के द्वारा अपान वायु को उखाड़ कर फेंक देने वाली कुण्डलिनी का स्मरण करे ॥ १०१ ॥

नीत्वेति ।

नीत्वा तां शनकैरधोमुखसहस्रारारुणाब्जोदर-
द्योतत्पूर्णशशाङ्कबिम्बममुतः पीयूषधारासृतिम् ।
रक्तां मन्त्रमयीं निपीय च सुधानिस्यन्दरूपां विशेद्
भूयोप्यात्मनिकेतनं पुनरपि प्रोत्थाय पीत्वा विशेत् ॥ १०२ ॥

तां कुण्डलिनीं शक्तिं शनकैर्यथा स्यादेवमधोमुखसहस्रदलारुणकमल-मध्यद्योतमानपूर्णचन्द्रमण्डलं नीत्वा अस्माच्चन्द्रबिम्बात् अमृतधारावृष्टिं रक्तवर्णां वर्णात्मिकाम् अमृतस्रवरूपां पाययित्वा आत्मनिकेतनं मूलाधारे प्रवेशयेत् । भूयोऽनन्तरमपि तथैव तामुत्थाप्य तथा कृत्वा पुनस्तस्या निज-स्थानं प्रापयेदिति ॥ १०२ ॥

साधक पुनः उस कुण्डलिनी शक्ति को धीरे धीरे कपाल में रहने वाले अधोमुख सहस्र दल कमल के अरुण कमल के मध्य में प्रकाशित चन्द्रमण्डल तक ले जा कर उससे झरते हुये रक्त वर्ण के अमृत बिन्दुओं को पिला कर पुनः उसे मूलाधार में स्थापित करे। इसी प्रकार पुनः सुषुम्ना मार्ग से कुण्डलिनी को ऊपर उठा कर सहस्त्र दल कमल पर विद्यमान चन्द्रमण्डल से झरते हुये अमृत कणों को पुनः पिला कर पुनः मूलाधार में स्थापित करे ॥ १०२ ॥

एतादृशाभ्यासस्य फलमाह—य इति ।

योऽभ्यस्यत्यनुदिनमेवमात्मनोऽन्तं
बीजेशं दुरितजरापमृत्युरोगान् ।
जित्वाऽसौ स्वयमिव मूर्त्तिमाननङ्गः
संजीवेच्चिरमलिनीलकेशपाशः ॥ १०३ ॥

यः प्रत्यहमनेन प्रकारेण शरीरमध्ये कामबीजमभ्यस्यति आत्मनोऽन्तं मनोलयान्तमिदमभ्यस्यतीति क्रियाविशेषणम् असौ साधकः दुरितजरापमृत्युरोगान् पराभूय स्वयमेव देहधारिकन्दर्पो भूत्वा चिरकालं जीवति । कीदृशो ? भ्रमरवर्णवत् श्यामकेशसमूहः ॥ १०३ ॥

जो साधक इस प्रकार से अपने शरीर में मन के लय पर्यन्त काम बीज का अभ्यास करता है वह पाप, ताप, जरा, अपमृत्यु और रोगों का अतिक्रमण कर मूर्त्तिमान् काम के समान मनोहर शरीर वाला हो जाता है। उसके केश भ्रमर के समान काले हो जाते हैं और वह चिरकाल तक जीवित रहता है ॥ १०३ ॥

स्फुटेति ।

स्फुटमधुरपदार्णश्रेणिरत्यद्भुतार्था
झटितिवदनपद्माद्विस्फुरत्यस्य वाणी ।
अपि च सकलमन्त्रास्तस्य सिध्यन्ति मङ्क्षु
व्युपरमघनसौख्यैकास्पदं वर्तते सः ॥ १०४ ॥

अस्य साधकस्य मुखकमलाच्छीघ्रं सरस्वतीप्र भवती। किम्भूता? प्रव्यक्तमनोहरपदवर्णसमूहात्मिका अत्याश्चर्य्यविषया किन्तु अस्य साधकस्य मङ्क्षु अन्येपि मन्त्राः सिध्यन्ति किञ्च ससाधकः अविश्रान्तनिविडसुखमात्रस्थानं भूत्वा तिष्ठति ॥ १०४ ॥

उस साधक के मुखकमल से विचित्र और आश्चर्य पूर्ण अर्थों वाली, वर्ण समूहात्मिका एवं पदसमूहात्मिका वाणी धारा के समान संतत स्फुरित होती रहती है। इतना ही नहीं उसे समस्त मन्त्र शीघ्रातिशीघ्र सिद्ध हो जाते हैं। वह बिना थकावट के सान्द्र एवं सुखपूर्ण स्थान में विहार करता है ॥ १०४ ॥

भ्राम्यदिति ।

भ्राम्यन्मूर्त्ति मूलचक्रादनङ्ग
स्वाभिर्भाभीरक्तपीयूषयुग्भिः ।
विश्वाकाशं पूरयन्तं विचिन्त्य
प्रत्यावेश्यास्तत्र वश्याय साध्याः ॥ १०५ ॥

नार्यो नरो वा नगरी सभापि वा
प्रवेशितास्तत्र निशातचेतसा ।
स्युः किङ्करास्तस्य झटित्यनारतं
चिराय तन्निघ्नधियो न संशयः ॥ १०६ ॥

मूलचक्रान्मूलाधारे अत्र सप्तम्यर्थे पञ्चमी भ्रमणमूर्त्तिं कामबीजं स्वकीयाभिर्दीप्तिभिर्लोहितामृतयुक्ताभिर्ब्रह्माण्डमध्यप्रदेशं पूर्यमाणं ध्यात्वा निशातचेतसा तीक्ष्णमतिना तत्र नारीप्रभृतयः साध्यावश्यार्थं प्रत्यावेश्याः प्रक्षेप्तव्या । अनन्तरं तत्र प्रवेशिताः प्रवेश प्रापिताः स्त्रीप्रभृतयस्तन्निमग्नधियस्तेनहृतचित्ताः तस्य साधकस्य शीघ्रं चिरकालमाज्ञाकारिणो भवन्ति, नाऽत्रसन्देहः ॥ १०५–१०६ ॥

मूलाधार चक्र के मध्य में भ्रमण करते हुये अपने रक्त वर्ण की चन्द्रिका की दीप्ति से सारे ब्रह्माण्ड को पूर्ण करते हुये 'क्लीं' मन्त्र का ध्यान करे, पुनः उस ध्यान में तीक्ष्ण बुद्धि वाला साधक अपने साध्य नारी-नर, नगर एवं सभा का सन्निवेश करे । इस प्रकार उस समय ध्यान में प्रविष्ट हुये साध्य (स्त्री पुरुष नगर या सभा) अवश्य ही साधक के वश में हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १०६-१०७ ॥

तरणीति ।

तरणिदलसनाथे शक्रगोपारुणे यो
रविशशिशिखिबिम्बप्रस्फुरच्चारुमध्ये ।
हृदयसरसिजेऽमुं श्यामलं कोमलाङ्गं
सुसुखमुपनिविष्टं तं स्मरेद्वासुदेवम् ॥ १०७ ॥

तत् द्वादशदलयुक्ते हृदयकमले इन्द्रगोपाख्यो रक्तकीटविशेषः तद्वदरुणे सूर्यवह्निचन्द्रमण्डलशोभितचारुमध्यप्रदेशे अमुं श्यामवर्णं कोमलाङ्गं सुकुमाराङ्गं सुखप्रकारेणोपविष्टं वासुदेवं चिन्तयेत् ॥ १०७ ॥

हृदय स्थान में इन्द्रगोप (=बीरबहूटी) नामक कीड़े के समान अरुण वर्ण वाले, मध्य में सूर्य, चन्द्र, अग्नि एवं चन्द्रमण्डल से मनोहर प्रदेश वाले द्वादश दल कमल के आसन पर सुख से बैठे हुये, कोमलाङ्ग, श्याम वर्ण वाले वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥ १०७ ॥

पादाम्भोजेति ।

पादाम्भोजद्वयेऽङ्गुल्यमलकिशलयेष्वावलौ सन्नखाना-
सत्कूर्मोदारकान्तौ प्रपदयुजि लसज्जङ्घिकादण्डयोश्च ।
जान्वोरूर्वोः पिशङ्गे नववसनवरे मेखलादाम्निनाभौ
रोमावल्यामुदारोदरभुवि विपुले वक्षसि प्रौढहारे ॥ १०८ ॥

आदिपुंसः श्रीकृष्णस्य पादाम्भोजमारभ्य हसितान्तेषु स्थानेषु वक्ष्यमाणेषु शनैर्यथा स्यात्तथा इति क्रमतः स्थानक्रमतः स्थानक्रमेण स्वीयं मनः स्थापयतु । तथा पादपद्मद्वये प्रथमं मनः स्थापयेत् । तदनन्तरं पूर्वं पूर्वमपोह्याऽपरस्थानेषु मनो निदध्यात् अङ्गुल्य एवामलकिशलया निर्मलपल्लवास्तेषु, तदनु नखानां शोभमानपङ्क्तौ तदनु प्रपदयुजिपादद्वये । कीदृशे ? कूर्मपृष्ठवदुपरिभागे उन्नते, तदनु देदीप्यमानजङ्घाद्वये, तदनु जानुद्वये ऊरुद्वये पीतवर्णे नूतनवस्त्रयोः श्रेष्ठे क्षुद्रघण्टिकामालायां नाभिप्रदेशे तन्निष्ठरोमपङ्क्तौ च विपुलोदरस्थाने महाहारयुक्ते विस्तीर्णे वक्षसि ॥ १०८ ॥

परमात्मा आदिपुरुष श्रीकृष्ण के पाद कमल से लेकर हसित पर्यन्त सभी स्थानों में धीरे धीरे क्रमपूर्वक अपना मन इस प्रकार स्थापित करे अर्थात् पूर्व पूर्व स्थानों को छोड़कर क्रमशः ऊपर के स्थान में अपना मन स्थापित करे । सर्व प्रथम दोनों पैर के अग्रभाग में विद्यमान किसलय के समान रक्त वर्ण वाली अङ्गुलियों में, तदनन्तर दोनों पैर की उत्तम नख की पङ्क्तियों में, पुनः कूर्म पृष्ठ के समान समुन्नत दोनों पदों में, पुनः देदीप्यमान दोनों जाङ्घों में, पुनः दोनों जानुओं में, पुनः दोनों ऊरु प्रदेश में, पुनः पीतवर्ण वाले दोनों नूतन वस्त्रों में, पुनः क्षुद्र घण्टिकाओं की माला में, पुनः रोमराजि से विराजमान नाभिप्रदेश में, पुनः विशाल उत्तर भाग में, तदनन्तर महाहार धारण किये विशाल वक्षःस्थल में अपने मन को स्थापित करे ॥ १०८ ॥

श्रीवत्से कौस्तुभे च स्फुट कमललसद्वद्धहृद्दाम्नि बाह्वो-
मूले केयूरदीप्ते जगदवनपटौ दोर्द्वये कङ्कणाढ्ये ।
पाणिद्वन्द्वाङ्गुलिस्थेऽतिमधुररवसंलीनविश्वे च वेणौ
कण्ठे सत्कुण्डलोस्रस्फुटरुचिरकपोलस्थद्वन्द्वके च ॥ १०६ ॥

श्रीवत्से विप्रपादावघाततर्जन्योद्ध्वंरोमात्मके कौस्तुभे हृदयनिविष्ट-मणिविशेषे विकसितपद्ममालायां केयूरशोभितबाह्वोर्मूले संसाररक्षणदक्षे कङ्कणयुक्ते बाहुद्वये हस्तद्वयाङ्गुलिनिष्ठे अतिमधुरशब्देन मग्नं जगत्त्रयं येन एवंभूते वेणौ तदनुकण्ठे रम्यकुण्डलकिरणप्रकाशितमनोहरकपोलस्थ युगले ॥ १०७ ॥

पुनः श्रीवत्स में, तदनन्तर कौस्तुभमणि में, तदनन्तर खिले हुये कमलों की माला में, पुनः केयूर शोभित दोनों बाहुमूल में, तदनन्तर संसाररक्षणदक्ष कङ्कण संयुक्त दोनों बाहुओं में, पुनः दोनों बाहुओं की अङ्गुलियों में, पुनः जिसके मधुर शब्द में सारा त्रैलोक्य डूब जाता है इस प्रकार के वेणु में, पुनः कण्ठ में, तदनन्तर मनोहर कुण्डलों के प्रकाश में जगमगाते हुये गण्डस्थलों में (अपने मन को स्थापित करे) ॥ १०९ ॥

कर्णद्वन्द्वे च घोणे नयननलिनयो भ्रूविलासे ललाटे
केशेष्वालोलवर्हेष्वतिसुरभिमनोज्ञप्रसूनोज्ज्वलेषु ।
शोणे विन्यस्तवेणावधरकिशलये दन्तपङ्क्त्यांस्मिताख्ये
ज्योत्स्नायामादिपुंसः क्रम इति च शनैः स्वंमनः संनिधत्ताम् ॥११०

कर्णद्वये नासायुगले नेत्रपद्मद्वये भ्रूविक्षेपे ललाटे चञ्चलमयूरपुच्छ-युक्तेषु अतिसुगन्धितमनोहरपुष्पोज्ज्वलेषु केशेषु शोणवर्णे आरोपितवेणौ अधरपल्लवे दन्तपङ्क्त्यां स्मिताख्यज्योत्स्नायां स्मितमाख्यानाम यस्याः तस्यां ज्योत्स्नायां चन्द्रकान्तौ ज्योत्स्नातुल्ये स्मिते ॥ ११० ॥

पुनः दोनों कानों में, तदनन्तर दोनों नासिकाओं में, दोनों नेत्र कमलों में, भ्रवोः में, ललाट में, तदनन्तर चञ्चल मयूर पुच्छ युक्त सुगन्धित पुष्पों से युक्त मनोहर केश समूहों में, तदनन्तर वेणु संयुक्त रक्तवर्ण वाले अधर पल्लव में, पुनः दन्त-पंक्तियों में, पुनः चन्द्रकान्त की किरणों के समान मनोहर मन्द स्मित (ईषद्

मुस्कुराहट) में, इस प्रकार आदि पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण के तत्तदङ्गों पर धीरे धीरे क्रमशः मन को सन्निविष्ट कर पुनः पूर्व पूर्व स्थानों से उसे हटाकर अन्त में श्रीकृष्ण के मन्द हास में स्थापित करे ॥ ११० ॥

यावदिति ।

यावन्मनोविलयमेति हरेरुदार
मन्दस्मितेऽभ्यसतु तावदनङ्गबीजम् ।
अष्टादशार्णमथवाऽपि दशार्णकं वा
मन्त्री शनैरथ समाहितमातरिश्वा ॥ १११ ॥

हरेरुदारे शोभमाने मन्दस्मिते मनो यावत् विलयं विशेषतो लयमेति तावदनङ्गबीजम् अष्टादशार्णं दशार्णं वा प्रजपतु । किम्भूतः ? समाहितमातरिश्वा प्रत्याहारीकृत प्राणवायुः ॥ १११ ॥

जब तक मन भगवान् के मनोहर मन्द स्मित में विलीन नहीं हो जाता तब तक प्राणायाम पूर्वक काम बीज अष्टादशाक्षर अथवा दशाक्षर मन्त्रों में किसी एक का जप करते रहना चाहिये ॥ १११ ॥

आरोप्येति ।

आरोप्यारोप्य मनः पदारविन्दादिमन्दहसितान्तम् ।
तत्र विलाप्यक्षीणे चेतसि सुखचित्सदात्मको भवति ॥ ११२ ॥

मनः पदारविन्दमारभ्य ईषद्धास्यपर्यन्तं समारोप्याऽनन्तरं तत्र विलाप्य लीनं कृत्वा क्षीणे शुद्धे चित्ते सति सुखज्ञानसदात्मको भवति साधकः ॥ ११२ ॥

साधक अपने मन को भगवान् के 'पादारविन्द' से लेकर 'मन्दहास्य' पर्यन्त अङ्गों में धीरे धीरे क्रमशः स्थापित कर जब अन्त में उसको विलीन कर देता है तब वह शुद्ध चित्त हो जाने से सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है ॥ ११२ ॥

न्यासेति ।

न्यासजपहोमपूजातर्पणमन्त्राभिषेकविनियोगानाम् ।
दीपिकयैव मयोद्भाषितः क्रमः कृत्स्नमन्त्रगणकथितानाम् ॥११३॥

कृष्णमन्त्रसमूहकथितानां न्यासजपादीनां क्रमदीपिकयैव क्रमः प्रकाशितः ॥ ११३ ॥

श्रीकृष्ण विषयक अनुष्ठान के लिये न्यास, जप, होम, पूजा, तर्पण, मन्त्र और अभिषेक की तथा संपूर्ण मन्त्रों की दीपावली के समान मैंने क्रमपूर्वक यह दीपिका प्रकाशित की है ॥ ११३ ॥

संशयेति ।

संशयतिमिरच्छिदुरा सैषा क्रमदीपिका करेण सद्भिः ।
करदीपिकेव धार्या सस्नेहमहर्निशं समस्तसुखाप्त्यै ॥ ११४ ॥

सैषा क्रमदीपिका साधुजनैः सस्नेहं यथा स्यात्तथा करदीपिकेव धार्या । किंभूता ? संशयरूपान्धकारच्छेदयित्री अन्यापि तैलादिस्नेहसहितं यथा स्यात्तथा धार्यते अन्धकारनाशिनी भवति । किमर्थं धार्या ? समस्तसुखप्राप्त्यर्थम् ॥ ११४ ॥

जिस प्रकार सामान्य पुरुष सुखपूर्वक प्रकाश पाने के लिये एवं अन्धकार को दूर करने के लिये स्नेह (तेल) युक्त दीपक अपने हाथ में निरन्तर धारण करते हैं उसी प्रकार समस्त संशय रूप अन्धकारों को विनष्ट करने वाली यह दीपिका साधुजनों को स्नेहपूर्वक समस्त सुखों की प्राप्ति के लिये निरन्तर धारण करना चाहिये ॥ ११४ ॥

जगदिदमनुविद्धं येन यस्मात्प्रसूते
यदनुततमजस्रं पाति चाऽधिष्ठिता यम् ।
यदुरुमह उदर्चिर्यं विधत्ते च गोपी
तममृतसुखबोधज्योतिषं नौमि कृष्णम् ॥ ११५ ॥

जगदिदमनुविद्धमनुस्यूतं येन ज्योतिषा यस्मात्परमेश्वरात् इमं जनलोकं संसाराख्यं प्रसूते प्रसूतिं प्राप्नोतीत्यर्थः । यस्मिन्नित्यपि पाठः । तथा परमेश्वरम् अधिष्ठातारमाश्रिता सती अनुततं विस्तृतं जगत् अजस्रं सर्वदा पाति रक्षति यस्य परमेश्वरस्य ऊरु विपुलं महः तेजः तत् उदर्चिस्तत्तेजसा उदितदीप्तिः सती यं प्रतिबिम्बरूपेण धत्ते तमुक्तानन्दं स्वप्रकाशं नौमि स्तौमि ॥ ११५ ॥

जिस परमात्मा से अनुविद्ध होकर यह सारा जगत् पैदा हुआ है, तथा अधिष्ठान स्वरूप परमात्मा का आश्रय लेकर यह गोपी (=माया) जिस विस्तृत जगत् की रक्षा करती है एवं जिस विपुल महातेज का प्रकाश उस परमात्मा को धारण करता है उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११५ ॥

यश्चक्रमिति ।

यश्चक्रं निजकेलिसाधनमधिष्ठानस्थितोऽपि प्रभु-
र्दत्तं मन्मथशत्रुणाऽवनकृते व्यावृत्तलोकार्त्तिकम् ।
धत्ते दीप्तनवेन शोभनमघापेतात्तमायं ध्रुवं
वन्दे कायविमर्दनं वधकृतां भुञ्जद्द्युकं यादवम् ॥ ११६॥

॥ इति श्रीमन्महामहोपाध्यायश्रीकेशवकाश्मीरिभट्टगोस्वामिविरचितायां क्रमदीपिकायामष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

——०——

यः परमेश्वरः श्रीकृष्णः वक्ष्यमाणलक्षण चक्रं धत्ते तं वन्दे इत्यन्वयः । कथंभूतं चक्रम्? निजकेलिसाधनं निजयुद्धक्रीडाकरणम्। कीदृशः परमेश्वरः ? अधिष्ठानस्थितोऽपि समाधिस्थितोऽपि । यद्वा, बाह्यस्थितोऽपि प्रभुः स्वामी । पुनः कीदृशं चक्रम् ? मन्मथशत्रुणा महादेवेन अवने अवनकृते सर्वलोकरक्षार्थं दत्तं पुनः दूरीकृतातिवृष्टयनावृष्टयाद्युपद्रवं पुनः दीप्तनवेन इवशोभनं देदीप्यमानम् । किंभूतं कृष्णम् ? पापरहितं स्वीकृतमायं पुनर्ध्रुवमविनाशिनं पुनर्वधकृतामुपद्रवकारिणां कायविमर्दनं शरीरनाशकं पुनः भुञ्जद्द्युकं भुञ्जत्स्वर्गलोकं पुनर्जात्यायादवमित्यर्थः । अत्र पद्ये चक्रबन्धे ग्रन्थकर्ता स्वनाम प्रक्षिप्तवानिति बोध्यम् ॥ ११६ ॥

॥ इति श्रीगोविन्दविद्याविनोदभट्टाचार्यविरचिते क्रमदीपिकाविवरणेऽष्टमः पटलः समाप्तः ॥ ८ ॥

——०——

अतिवृष्टि और अनावृष्टि के भय को दूर करने वाले नित्य नवीन प्रकाश से देदीप्यमान, जगत् की रक्षा के लिये सदाशिव के द्वारा प्रदत्त चक्र को जिन्होंने अपने युद्ध क्रीडा का साधन बना कर धारण किया है, जो स्वयं स्वाधिष्ठाव में अधिष्ठित हो समाधिस्थ हैं, ऐसे निष्पाप, अपनी इच्छा से माया का शरीर धारण करने वाले, संसार में उपद्रव करने वालों का बध करने वाले, स्वर्गीय सुखों के भोक्ता यदुकुलोत्पन्न परमात्मा श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।। ११६ ।।

।। काश्मीरनिवासी केशवभट्टविरचित क्रमदीपिका में डा० सुधाकर मालवीय कृत 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या का आठवाँ पटल समाप्त हुआ ।। ८ ।।

५ ४० २
भूतवेदाभ्रयुग्माङ्के वैक्रमीये सुवत्सरे ।
चैत्रशुक्ले स पञ्चम्यां भौमे मीनगते रवौ ।। १ ।।

समाप्तिगमट्टीका सुधाकरसुधीकृता ।
सरलाख्या च भवतात् गोपालब्रह्मप्रीतये ।। २ ।।

—-०—-

अथ मुद्रालक्षणानि[1]

अङ्गुलीः करयुग्मस्य संप्रसार्य प्रबन्धयेत् ।
मध्यपृष्ठगतानाभे तर्जनीभ्यां निरोधयेत् ॥ १ ॥
मध्यमाग्रे समं कृत्वा कनिष्ठामध्यमोपरि ।
तयोरुपरि चाङ्गुष्ठौ मुद्रायोनिस्तु खेचरी ॥ २ ॥
तर्जनीशेषमाकुञ्च्यशेषाणां च निपीडयेत् ।
अङ्कुशं दर्शयेन्मन्त्री गृहीत्वा दक्षमुष्टिना ॥ ३ ॥

॥ इत्यङ्कुशमुद्रा ॥

आवाहनं स्थापनं संनिधानं संनिरोधनम् ।
संमुखीकरणं सकलीकरणं चावगुण्ठनम् ॥ ४ ॥
धेनुपीयूषकरणं महामुद्रा तथैव च ।
परमीकरणं चैव नवमुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥

एतेषां लक्षणमाह—

सम्यक् संपूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पिताञ्जलिः ।
आवाहनी समाख्याता कराभ्यां देशिकोत्तमैः ॥ ६ ॥
अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।
आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मिका ॥ ७ ॥
सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवादिभिः ।
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधसमीरिता ॥ ८ ॥
मुष्टिद्वयस्थिताङ्गुष्ठौ सन्मुखौ च परस्परम् ।
संश्लिष्टावुच्छ्रितौ कृत्वा सेयं सन्मुखमुद्रिका ॥ ९ ॥
देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
हृदयादिशरीरान्ते कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥ १० ॥
हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ।
सव्यहस्तकृतामुष्टिदीर्घाधोमुखतर्जनी ॥ ११ ॥

---

१. केशवार्चनकर्मण्युद्दिष्टा मुद्रालक्षणानीत्यर्थः ।

अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ।
अन्योन्यतर्जनीयुग्मं भ्रमणादवगुण्ठनम् ॥ १२ ॥
अन्योन्याभिमुखा श्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ १३ ॥
अमृतीकरणं कुर्यात् तया देशिकसत्तमः ।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुलिः ॥ १४ ॥
महामुद्रेयमुदितापरमीकरणं बुधैः ।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुसलं शार्ङ्गखड्गकौ ॥ १५ ॥
पाशाङ्कुशौ वैनतेयं श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा ।
वेणुं चैवाऽभयवरौ वनमालां प्रदर्शयेत् ॥ १६ ॥

एतेषां लक्षणमाह—

वामाङ्गुष्ठे विधृत्यैव मुष्टिना दक्षिणेन तु ।
तन्मुष्टेः पृष्ठदेशे तु योजयेच्चतुरङ्गुलीः ॥ १७ ॥
दक्षिणे चोन्मुखेऽङ्गुष्ठे तेषामग्राणि योजयेत् ।
कथिता शङ्खमुद्रेयं वैष्णवार्चनकर्मणि ॥ १८ ॥
अन्योन्याभिमुखाङ्गुष्ठकनिष्ठायुगलं यदा ।
विस्तृताश्चेतराङ्गुल्यस्तदासौ दर्शिनी मता ॥ १९ ॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुल्य उन्नता मध्यमौ नतौ ।
संलग्नौ चेत् तदा मुद्रा गदेयं संप्रकीर्त्तिता ॥ २० ॥
अन्योन्याभिमुखौ पाणी पद्माकारौ च मध्यतः ।
कर्णिकावनताङ्गुष्ठौ पद्ममुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ २१ ॥
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कृत्वा मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥ २२ ॥
वामस्थतर्जनीप्रान्तं मध्यमान्ते नियोजयेत् ।
प्रसार्य च करं वामं दक्षिणं करमेव च ॥ २३ ॥
नियोज्य दक्षिणस्कन्धे बाणग्रहणवत्ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्योगं कुर्यादेषा प्रकीर्त्तिता ॥ २४ ॥
शार्ङ्गमुद्रेयं मुनिभिर्दर्शयेत्कृष्णपूजने ।
कनिष्ठानामिके द्वे तु दक्षाङ्गुष्ठनिपीडिते ॥ २५ ॥
शेषं प्रसारितं कृत्वा खड्गमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
पाशाकारं नियोज्यैवं वामाङ्गुष्ठस्य तर्जनीम् ॥ २६ ॥
दक्षिणं मुष्टिमास्थाय तर्जनीं च प्रसारयेत् ।
तेनैवं संस्पृशेन्मन्त्री वामाङ्गुष्ठस्य मूलकम् ॥ २७ ॥

पाशमुद्रेयमुद्दिष्टा केशवार्चनकर्मणि ।
तर्जनीमीषदाकुञ्च्य शेषाणां च निपीडयेत् ॥ २८ ॥
अङ्कुशं दर्शयेत् तद्वद् गृहीत्वा दक्षमुष्टिना ।
अन्योन्यपृष्ठे संयोज्य कनिष्ठं च परस्परम् ॥ २९ ॥
तर्जन्यग्रं समं कृत्वाऽङ्गुष्ठाग्रं च तथैव च ।
ईषदालम्बनं कृत्वा मध्यमेन च पक्षवत् ॥ ३० ॥
प्रसार्य गारुडी मुद्रा कृष्णपूजा विधौ स्मृता ।
अन्योन्यं संमुखे तत्र कनिष्ठातर्जनीयुगे ॥ ३१ ॥
मध्यमानामिके तद्वदङ्गुष्ठेन निपीडितम् ।
दर्शयेद्वक्षःस्थले मुद्रां यत्नात् श्रीवत्ससंज्ञकाम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्याभिमुखे तद्वत्कनिष्ठे संनियोजयेत् ।
तर्जन्यनामिके तद्वत्करौ त्वन्योन्यपृष्ठगौ ॥ ३३ ॥
उच्छ्रितान्योन्यसंलग्ना दक्षहस्तकराङ्गुलीम् ।
निधाय मध्यदेशे तु वाममध्यमतर्जनीम् ॥ ३४ ॥
संयोज्य मणिबन्धे तु दक्षिणे योजयेत्ततः ।
वामाङ्गुष्ठे तु मुद्रेयं प्रसिद्धा कौस्तुभा मता ॥ ३५ ॥
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्द्धास्यं दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वाऽङ्गुलीरङ्गुलिभिः संयोज्य परिवर्तयेत् ॥ ३६ ॥
एषा संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ मता ।
अङ्गं प्रसारितं कृत्वा स्पृष्टशाखं वरानने ॥ ३७ ॥
प्राङ्मुखं तु करं कृत्वा अभयं परिकीर्त्तितम् ।
दक्षं भुजं संप्रसार्य जानूपरि निवेशयेत् ॥ ३८ ॥
प्रसृतं दर्शयेद्देवि वरः सर्वार्थसाधिनी ।
स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्यङ्गुष्ठमूलयोः ॥ ३९ ॥
कारद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ॥ ४० ॥

छोटिकालक्षणमाह—

द्वौ करौ पृष्ठसंलग्नौ भ्रामयेच्चतुरङ्गुलीः ।
छोटिका सुसमाख्याता प्रणामे तां प्रदर्शयेत् ॥ ४१ ॥

॥ इति मुद्रालक्षणानि ॥

——०——

यावन्मनोविलयमेति हरेरुदार
मन्दस्मितेऽभ्यस्तु तावदनङ्गबीजम् ।
अष्टादशार्णमथवाऽपि दशार्णकं वा
मन्त्री शनैरथ समाहितमातरिश्वा ।।

जब तक भगवान् के मनोहर मन्द स्मित में साधक विलीन नहीं हो जाता तब तक प्राणायामपूर्वक काम बीज अष्टादशाक्षर अथवा दशाक्षर मन्त्रों में किसी एक का जप करते रहना चाहिए ।

आरोप्यारोप्य मनः पदारविन्दादिमन्दहसितान्तम् ।
तत्र विलाप्यक्षीणे चेतसि सुखचित्सदात्मको भवति ।।

साधक अपने मन को भगवान् के 'पादारविन्द' से लेकर 'मन्दहास्य' पर्यन्त अङ्गों में धीरे-धीरे क्रमशः स्थापित कर जब अन्त में उसको विलीन कर देता है तब वह शुद्धचित्त हो जाने से सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है ।

क्रम० ८.१११-११२ ।

श्लोकानुक्रमणिका

—○—

क्रमदीपिका-पारिभाषिक-शब्दकोष

अग्निः-रेफ १८०, २३५, त्रयः २४०	
अग्निजाया—स्वाहा	२५४
अनिल—यकार	१२५
अङ्घ्रि—चतुष्टय	२४०
अम्बु—बकार	१२५
अर्कसहस्र—बारह हजार	
अस्थि—शकार	१८०, २३५
आत्मभूः—ककार	१२५
आत्मा—एक	२८८
आननवृत्त—अकार	३१
उत्तरदन्त—ओकार	३१
ऊर्ध्वदन्त—ओकार	२५१
ऋषिवासर—सप्तवासर	
करण—पञ्च	२४०
कामबीज—क्लीं	२१, ३५
क्रोड—हकार	१८०
गज—आठ	२८८
गोविन्द—ईकार	१८०
चक्री—ककार	२५१
चन्द्रबीज—ठकार	८०
तद्दयिताक्षर—स्वाहा (अग्निकी पत्नी)	३१
तार—प्रणव	५३
त्रयोदश स्वर—ओकार	२४२
दक्षिणकर्ण—उकार	२५१
दन्त—बत्तीस	२८७
दिक्—दस	२८८
निगम—चार	१४३
नन्दज—ठकार	१२५
नृसिंहबीज—क्ष्रौं	१९
नेत्रादि—आकार	३५
नागेन्द्र—अष्ट	१४३
पार्श्व—पकार	१२५
पौत्री—हकार	३४
पृथ्वीबीज—लम्	८
बलानुज—हकार	३१
बाल—चकार	३१
भूधर—बकार	२३७, सात २८८
मनु—औकार	१२५, चतुर्दश २४०
माया—ईकार	१८०, २३५
मारबीज—क्लीं	२५४
मांस—लकार	५३, १२५, २३७, २४०, २५१, २६१
मित्र—बारह	२८८
मुखवृत्त—आकार	३३
मुनि—सप्त	२३८
मेद—वकार	३५, २४२
रस—छः	१४३
लव—बिन्दु	१८०, २४४
वक्त्रवृत्त—आकार	३५
वसु—आठ	२८७, २८८
वरुणबीज—वम्	८
वह्निजाया—स्वाहा	३५
वह्नेर्वल्लभा—स्वाहा	३६
वामाक्षी—ईकार	३१
वायुबीज—यम्	७

—०—

टीकोद्धृतग्रन्थः ग्रन्थकारश्च

—०—

किशोर ग्रन्थमाला-

३९

श्रीमद्वैष्णवाचार्यश्रीश्रीनिवासाचार्यप्रणीतम्

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

श्रीमद्वैष्णव-पुरुषोत्तमप्रसादविरचिता 'गुरुभक्ति-
मन्दाकिन्या'-ख्यया व्याख्यया
'सरला' हिन्दीटीकया च समलङ्कृतम्

संपादकः : अनुवादकश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम. ए., पी-एच्. डी., साहित्याचार्यः
संस्कृत-विभागः, कलासंकायः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-२२१००१
१९८९

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४६

मूल्य : रु० १५-००

कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० ११९८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KISHORA GRANTHAMALA
39
****

LAGHUSTAVARAJA STOTRAM

By

SRI NIWASACHARYA

With the Sanskrit Commentary
"Gurubhakti Mandakini" of Sri Purushottam
Prasada and "Sarala" Hindi Translation

Edited & Translated by

Dr. Sudhakar Malaviya
M. A., Ph. D., Sahityacarya
Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University



KRISHNADAS Academy

VARANASI–221001
1989

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(INDIA)

Reprinted

1989

Price : Rs. 15-00



Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

भूमिका

भारतीय साहित्य में गुरु सर्वथा वन्दनीय हैं। इसी लिए काव्यारम्भ गुरु-वन्दना से ही होता आया है। समाज में सदैव गुरु का स्थान सम्माननीय है। अपनी महत्ता के ही कारण उसे ईश्वर पद की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए शास्त्र-वाक्य भी है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में होकर शिष्य के लिए मङ्गल कामना करते हैं। वह साक्षात् रूप से परब्रह्म के स्वरूप हैं। तीनों देव वस्तुतः अलग अलग एक-एक काम करते हैं किन्तु गुरु तीनों ही कार्य करते हैं।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अन्तिम श्लोक में गुरु तथा देवता की समानता स्पष्ट की गई है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। (६.२३)

इस प्रकार जैसी भक्ति की आवश्यकता देवता के लिए है, वैसी ही गुरु के लिए भी होनी चाहिए।

जिससे हमें ज्ञान प्राप्त हो वही हमारा गुरु है। अतः मुख्य रूप से इन ज्ञान दाता गुरु के तीन भेद हो जाते हैं—१. कुल गुरु, २. विद्या गुरु, और ३. धर्म गुरु। एक परिवार के गुरु कुलगुरु कहे जाते हैं। पैतृक परम्परा से हम उनके शिष्य बनते जाते हैं। उनका कार्य धार्मिक, अनुष्ठान आदि कराना है। विद्यागुरु से हम शिक्षा प्राप्त करते हैं। ये विद्यागुरु कई हो सकते हैं। किन्तु धर्म गुरु वह है जो हमें धर्म विशेष में दीक्षित करता है। इनका कार्य है मन्त्र की दीक्षा देना।

गुरु का कार्य अत्यन्त पुनीत और श्लाघ्य है। वह ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखलाता है। ईश्वर का ही अंश रूप यह 'जीव' इस संसार में आकर अंशी रूप उस मूल ईश्वर को ही भूल जाता है। माया मोह-लोभ-ईर्ष्या, एवं तृष्णा युक्त इस संसार के, अन्धकार में जीव लक्ष्यहीन भटकता रहता है और निरन्तर आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है। जिस प्रकार बालू से तेल नहीं निकल सकता, पानी के मन्थन से घी नहीं

निकल सकता, उसी प्रकार हरिभजन के अभाव में संसार सागर का संतरण नहीं हो सकता, और यह तभी हो सकता है, जब सच्चे गुरु की प्राप्ति हो जाय।

गुरु के ज्ञान के विषय में 'घरेण्डसंहिता' में कहा गया है कि वह ज्ञान का सागर है। वह शिष्य-उपयोगी ज्ञान का उपदेशक है। जिस ज्ञान को सद्गुरु ने अपने मुख से उच्चारित किया है, वह निरर्थक नहीं जाता। स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहस के कारण ही ज्ञान प्राप्त कर सके और यह तो इसी शताब्दी में हुआ है। इसलिए गुरु की सेवा मनसा, वाचा, कर्मणा करनी चाहिए। वह ज्ञान का भण्डार है। उससे लाभ प्राप्त करना शिष्य की अपनी योग्यता पर निर्भर है और यदि उस ज्ञान का उपयोग शिष्य प्राप्त न कर सके तो गुरु का क्या दोष है? वंशी में तो संगीत उत्पन्न करने की क्षमता तो है ही। किन्तु उस ध्वनि को उत्पन्न करना बजाने वाले योग्य शिष्य का ही कार्य है।

वस्तुतः सद्गुरु मिलने पर शिष्य का नया जन्म होताहै। गुरु अपने शिष्य को अपने स्पर्शमात्र से ज्ञान एवं विद्या प्रदान कर सकता है। शरीर में रहने वाली महाशक्ति का नाम कुण्डलिनी है। यह सुप्तावस्था में शरीर में विद्यमान रहती है। इसे जागृत करना योगी के लिए आवश्यक है। इसके जागृत हो जाने से योगी के लिए कुछ भी अज्ञेय नही रह जाता है। वह सब कुछ जान लेता है। किन्तु इस कुण्डलिनी को जगाने में कई जन्म लग जाते हैं किन्तु गुरु के स्पर्श से यह शीघ्र जगायी जा सकती है। इसके अनेक उदाहरण पुराण आदि में मिलते हैं। ध्रुव को मात्र शङ्ख के स्पर्श से सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति भगवान् विष्णु ने करा दी थी।

भगवान् दत्तात्रेय के चौबिस गुरु थे। उन्होंने उनसे ज्ञान ग्रहण किया था। संसार में समुचित मार्ग दर्शन के लिए गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वप्रथम गुरु माता होती है। यह बालक में जीवन्त शक्ति प्रदान करती है, उसमें संस्कारों को जन्म देती है। इसी प्रकार सद्गुरु भी माँ के ही समान है। माँ तो जन्म देकर आगे बढ़ जाती है किन्तु सद्गुरु रूपी माता शिष्य को पञ्चसंस्कारों से दीक्षित करके जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ाता है।

स्तोत्र के रचयिता श्रीश्रीनिबासाचार्य

ये निम्बार्क के प्रधान शिष्य थे। इनका निवासस्थान मथुरा जिला

गोवर्धन से एक कोस दूर श्री राधाकुण्ड, ललिता संगम पर माना जाता है। इनका जन्म वसन्तपञ्चमी को हुआ था।

ग्रन्थ

१. 'वेदान्त-कौस्तुभ' नामक शारीरिक मीमांसा भाष्य मुद्रित है।

२. लघुस्तवराजस्तोत्र ('गुरुभक्तिमन्दाकिनी' नामक टीका सहित) मुद्रित है।

३. 'ख्याति निर्णय' अप्राप्त है।

४. 'पारिजात कौस्तुभ' भाष्य अप्राप्त है।

५. 'रहस्य-प्रबन्ध' अप्राप्त है।

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

इस स्तोत्र में गुरु की स्तुति की गयी है । वैष्णवाचार्य श्रीश्रीनिवासाचार्य विरचित इस स्तोत्र में इकतालिस श्लोक हैं। श्रीनिवासाचार्य के गुरु श्रीनियमानन्द थे। उन्होंने श्रीपुरुषोत्तमदेव की आज्ञा से अनन्त श्री विभूषित आद्य वैष्णवाचार्य श्री नियमानन्द की स्तुति की है। उनकी स्तुति करते हुए फलश्रुति के रूप में '**दासोऽहमिति मां ज्ञात्वा भक्तिं देहि पदाम्बुजे**' (श्लोक ४१) से गुरु से भक्ति प्रदान की प्रार्थना की गयी है। सिद्धि में गुरुकृपा ही कारण है। उसी समय उस जीव को सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है जब गुरु उसे अपना लेते हैं। वह अपना लेने का काल ही उत्तम नक्षत्र आदि से युक्त काल है। पुष्यादि नक्षत्र, सिद्धि आदि योग, उत्तम वार तथा उत्तम तिथि के अभाव में कार्य सिद्धि नहीं होती, क्योंकि सिद्धि में गुरु की कृपा ही कारण है (श्लोक २५)। गुरु में 'यह मनुष्य' है यह बुद्धि नहीं होनी चाहिए। वे सभी प्रकार के मङ्गलों के स्थान हैं (श्लोक २४)। वस्तुतः गुरु पाँच प्रकार से शिष्य को संस्कृत करके दीक्षित करते हैं (श्लोक २६)। ये पाँच वैष्णव सस्कार हैं—

१. ताप (श्रीविष्णु के आयुधभूत शङ्खचक्रादि के चिह्न से अङ्कित होना)।

२. पुण्ड्र (विष्णु के पैर की आकृति के समान मस्तक में तिलक धारण करना)।

३. नाम (अपना नाम वैष्णवसम्प्रदायानुसारी रखना)।

४. मन्त्र (गुरु के द्वारा शुद्ध वैष्णव मन्त्रों से दीक्षित होना)।

५. योग (श्रीविष्णु अर्चावतार शालग्रामादि की नियमपूर्वक पूजा करना।)

गुरुभक्तिमन्दाकिनी

इस छोटे से स्तोत्र पर श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद वैष्णव की अत्यन्त विस्तृत टीका है। इस टीका का नाम 'गुरुभक्तिमन्दाकिनी' इसलिए है क्योंकि टीका को पढ़ने से गुरुभक्तिरूपी गङ्गा प्रवाहित होने लगती है। इस टीका में महाभारत, हरिवंश, भागवत आदि अनेक पुराणों से उद्धरण लिए गये हैं। अनेक वैदिक मन्त्रों का सन्निवेश गुरु के स्तोत्र में प्रयुक्त विशेषणों का अर्थ लगाने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

इस स्तोत्र को 'लघु' अर्थात् मिताक्षर पदों के होने से 'लघु' कहा गया है। बहुत थोड़े से पदों के द्वारा अत्यन्त गूढ़ बातों का सन्निवेश है।

गुरु की पूजा अर्चना के लिए वर्ष में एक बार 'गुरुपूर्णिमा' का दिन निश्चित है। आषाढ़ की पूर्णिमा तिथि को गुरु की पूजा के लिए होने से 'गुरुपूर्णिमा' कही जाती है। इस दिन गुरुरूप से व्यास की पूजा की जाती है। यह विशेषतः संन्यासियों द्वारा की जाती है। (स्मृतिकौस्तुभ पृ० १४४ १४५, पुरुषार्थचिन्तामणि पृ० २८४)। तमिलदेश में व्यास पूजा ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा (मिथुन) पर की जाती है। वस्तुतः लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायण के कलावतार थे। उनका वर्ण घननील था। अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नाम से विख्यात हुए। वे बदरीवन में रहने के कारण 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। महर्षि व्यास मूर्तिमान धर्म थे। हिन्दू जाति तो उनकी चिरऋणी रहेगी। वस्तुतः हिन्दूसंस्कृति का वर्तमान स्वरूप उन्हीं की देन है। भगवान् व्यास इस कल्प के अन्त तक रहेंगे। आद्य शंकराचार्य तथा अन्य कितने ही महापुरुषों ने उनका दर्शन लाभ किया था। श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न अधिकारी महात्मा उनके दर्शन अब भी पा सकते हैं। जिनके कोई गुरु न हों उनके गुरु भगवान् व्यास होते हैं।

शास्त्र में लिखा है कि जो दान का खाता है उसे अपने पुण्य में से कुछ देना पड़ता है। इसलिए किसी से भी मुफ्त का लेने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। इसलिए गुरु को दीक्षा दान के बदले में शिष्य श्रीश्रीनिवासाचार्य ने वैष्णवाचार्य गुरु श्रीनियमानन्द के प्रति कृतज्ञता स्वरूप यह 'स्तवराज' प्रस्तुत किया है। श्रुति में भी कहा है—'आचार्य देवो भव।' इसीलिए पद्मपुराण में कहा है—

भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वद्विष्टा गुरौ यदि।
समास्थितेन सत्येन स्वं दर्शयतु मे हरिः॥

सब समय और सब स्थान में जो परमात्मा का अनुभव करता है वह सद्गुरु है। गुरु सुलभ हैं किन्तु सद्गुरु दुर्लभ हैं। शुकदेव जी राजा परीक्षित को परमानन्द का दान करने के लिए ही गए थे। गुरु निरपेक्ष थे। अतएव उन्होंने कहा कि मुझे जो मिला है वही मैं देने को आया हूँ। इसी प्रकार श्रीनियमानन्द भी निरपेक्ष थे। अतः शिष्य श्रीनिवासाचार्य उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

विष्णुधर्म पुराण में कहा है—

देवतायां च मन्त्रे च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ।
भक्तिरष्टविधा यस्य तस्य विष्णुः प्रसीदति॥

मन्त्रप्रदाता गुरु में जिसकी भक्ति होती है उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।

श्रीराधिकामाधवयोरपार-
माधुर्यलीलागुणरूपनाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

'अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण के अपार माधुर्य, अपार लीलाओं, अपार गुण, अपार रूप एवं अनन्त नामावलियों का प्रतिक्षण रसास्वादन करने के लिए लालायित रहने वाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ।'

गुरुपूर्णिमा
१८. ७. १९८९
वि० सं० २०४६
३१/२१, वाराणसी-२२१००५

विदुषांवशंवदः
सुधाकर मालवीयः

आचार्य देवो भव ।

—वेदोपनिषत्

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

(श्वेता० ६-२३)

श्रीवैष्णवाचार्यश्रीश्रीनिवासाचार्यविरचितम्

लघुस्तवराजस्तोत्रम्

श्रीहयग्रीवानुग्रहजीवितस्वभूदेवपदानन्याश्रितपुरुषोत्तमप्रसाद-
वैष्णवविरचित-गुरुभक्तिमन्दाकिन्याख्यव्याख्योपेतम्

---

* गुरुभक्तिमन्दाकिनी *

वन्दे श्रीश्रीनिवासार्य्यं वेदान्ताम्बुजभास्करम् ।
प्रपन्नजनसन्त्राणलब्धदीक्षं जगद्गुरुम् ॥ १ ॥

इह खलु सकललोकस्य हितञ्चिकीर्षुर्भगवान्पाञ्चजन्यावतारो निरतिशयवात्सल्यकारुण्यादिगुणो निजाश्रितसंरक्षणलब्धदीक्षः श्रीश्रीनिवासाचार्याभिधो ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिकिरीटेडितपादपीठवेदान्तकवेद्यपरब्रह्मादिशब्दाभिधेयश्रीपुरुषोत्तमाज्ञयावनितलावतीर्णं जगदुद्दिधीर्षुं तदचिन्त्यानन्तशक्त्युपबृंहितानन्तशक्तिं श्रीसुदर्शनावतारं नियमानन्दसमाख्यं ह्याद्याचार्यं निजगुरुं मिताक्षरेण स्तोत्रेण तुष्टाव। तस्य व्याख्यानं यथामिति पदार्थमात्रेण निभाल्यते तत्प्रसादैकप्रयोजनेन ।

जय जयेति ।

जय जयेङ्गितज्ञाता नियमानन्द आत्मवान् ।
नियमेन वशे कुर्वन्भगवन्मार्गदर्शकः ॥ १ ॥

हे नियमानन्द त्वं जय जय स्वोत्कर्षमाविष्कुरु, आदरे वीप्सा, तत्र शास्त्रात्रार्यसंस्कारशून्यान्कुतर्कनिष्ठान्नियमयति औपनिषदमार्गे स्थापयतीति नियमः स्वाश्रितानानन्दयतीत्यानन्दः नियमश्चासावानन्दश्चेति नियमानन्दः । यद्वा नियमेन देशकालादिपरिच्छेदशून्येनानन्दो यस्य सः सदा तर्वत्र परिपूर्णा-

नन्द इत्यर्थः। यद्वा चेतनाचेतनवस्तुजातं नियमयति स्वे स्वे कार्ये यथाधिकारं स्थापयतीति नियमो विश्वान्तर्यामी भगवाञ्छ्रीवासुदेवस्तस्मिन्नानन्दो यस्य सः श्रीपुरुषोत्तमस्वरूपगुणादिविषयकानवच्छिन्ननिरतिशयानन्दाश्रय इत्यर्थः। यद्वा निःशेषेण यमो नियमः निःशेषेण बुद्ध्यादीनामुपरमः समाधिः तेनानन्दो यस्य सः सदा समाध्यानन्दपूर्ण इत्यर्थः। यद्वा निःशेषेण यमयति स्वाज्ञायां प्रवर्त्तयति जीवानिति नियमो वेदस्तस्यापि वेदस्यानन्दो यस्मात्तथोक्तो नियमानन्दः वेदस्य यथार्थव्याख्यानं तत्प्रवर्त्तनञ्चैवानन्दहेतुः तदर्थमेवास्यावतारत्वादित्यलं विस्तरेण तस्य संबोधनमेतत्।

तमेव विशिनष्टि—इङ्गितज्ञातेति। श्रीभगवत इङ्गितम् इदानीमेव तदाज्ञाकरणीयतया प्रवर्त्तत इति जानातीति सः, यद्वा जीवानामिङ्गितम् अनेनोपायेनाऽसौ कृतार्थः स्यात् असौ सकामः असौ निष्कामः असौ मायया मां भजति असौ श्रद्धाविश्वासार्जवादिना भजतीत्यादि तत्तच्चेष्टितं जानातीति तथा चेष्टितस्य ज्ञातेति वा विग्रहः सर्वज्ञत्वात्।

सर्वज्ञत्वे हेतुमाह— आत्मवानिति।

आत्मा शब्दोऽत्र ब्रह्मवाचकः "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" इत्यादिश्रुतेः स प्रत्यक्षेण विद्यते यस्य सः ब्रह्मज्ञ एव सर्वज्ञः "आत्मन्परेदृष्ट" इत्यादिश्रुतेः यद्वा आत्मानो जीवात्मानोऽनवच्छिन्नानुभूतिविषयतया विद्यन्ते यस्य स तथोक्तः तच्चेष्टितज्ञानाभावे बोधकत्वासम्भवात् अतएव भगवन्मार्गदर्शक इति द्रष्टुरेव दर्शकत्वनियमात् असौ सद्यो मोक्षाधिकारी असौ चिरकालेन साधनसंपत्त्या मोक्षभागी भविष्यति असौ भगवद्भागवतद्वेष्टा नित्यसंसारी औपनिषदैरुपेक्षणीय इति ज्ञात्वैव तदनुसारेण तत्तत्साधनेषु स्थापयित्वा भगवदीयमार्गं दर्शयतीति तथा "येनाक्षरं परमं वेदसत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्या"मिति श्रुतेः किं कुर्वन् नियमेन वशे कुर्वन्निति नियमोऽत्र नियमनरूपसामर्थ्यविशेषः तेन तान् क्षेत्रज्ञान् वशे कुर्वन्वाऽनुग्रहविषयीकुर्वन्। यद्वा नियमेन शरीरवाङ्मनोव्यापाराणां देशकालादिपरिच्छेदशून्यतया भगवदाज्ञापालनात्मके परभक्तियोगे नियमनं नियमस्तेन श्रीहरिं वशे कुर्वन्नित्यर्थः। भगवन्तं वशीकृत्वा तद्द्वारेण तेषां बुद्धिं प्रेरयित्वा भगवन्मार्गदर्शकस्तदुपदेष्टा भवतीति तात्पर्यार्थः अन्तःप्रेरणया विना तदन्तर्निष्ठाभावेनोपदेशमात्रस्य कार्यकारित्वायोगात् भगवन्मार्गोऽत्र साधनोपदेशक्रमस्तस्य दर्शकः यथाऽधिकारमुपदेष्टेति यावत् भगवन्मार्गोऽर्च्चिरादिमार्गो वा स चाऽध्यात्मसुधातरङ्गिण्यां विस्तृतः। यद्वा मृग्यते शास्त्रविचारेण योगादिसाधनैश्च कृत्वा मुमुक्षुभिरिति मार्गस्तत्स्वरूपगुणरूपादिः "सोऽन्वेष्टव्य" इति श्रुतेः। यद्वा

नियमेनेति निग्रहानुग्रहरूपनियमनशक्तियोगेन सर्वानपि जीवात्मनो वशे कुर्वन् भगवन्मार्गे प्रवणीकारः तत्र स्वाश्रिताननुग्रहेण बहिर्मुखांश्च निग्रहेण ।

तथा च वक्ष्यते—निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानता इति ।

भगवत्स्वरूपगुणादिविषयकसाक्षात्कारानुभूतिकारितेति यावत् तत्र स्वरूपं सर्वव्यापकः सर्वात्मा सर्वाधारो जगद्योनिः शास्त्रैकवेद्यो देशकालादिपरिच्छेदशून्यः सच्चिदानन्दोऽनन्त इति "सर्वव्यापिसर्वभूतान्तरात्मा यस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे" 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"त्यादिश्रुतिभ्यः, गुणाश्च ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यादयो वात्सल्यकारुण्यक्षमादयश्च स्वाभाविकाः कल्याणरूपा यावदात्मवृत्तिसंख्यादिपरिच्छेदशून्याः "परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" । 'समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ तेजोबलैश्वर्यमहावबोधः ।' 'स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यश्च ॥

आदिना सर्वमङ्गलविग्रहः "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं यदात्मको भगवान् तदात्मिका व्यक्तिः", "हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रुराप्रणखात्सुवर्णं" इत्यादि श्रुतिभ्यः ।

तद्विस्तारश्च श्रुत्यन्तकल्पवल्ल्यां द्रष्टव्यः ।

अथ—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इत्यादिश्रुतिबोधितभगवद्भावप्रतिपादकोऽप्ययं श्लोको व्याख्यायते—हे नियमानन्द इति ।

चेतनाचेतनात्मकं जगन्नियमयतीति नियमो विश्वान्तरात्मा भगवाञ्छ्रीपुरुषोत्तमः—"आत्मानमन्तरो यमयत्येष ते आत्मान्तर्यामी"तिश्रुतेः, आनन्दयत्यानन्द आनन्दस्वरूपो वेति "एष आनन्दयति" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादिश्रुतेः, नियमश्चासावानन्दश्चेति तथोक्तः सर्वान्तरात्मानन्दरूपो भगवान् वासुदेव इत्यर्थः, तस्य सम्बोधनमिदम् । अत एव इङ्गितज्ञातेति, सर्वान्तरात्मत्वादेव सर्वस्येङ्गितस्य बाह्याभ्यान्तरचेष्टितस्य ज्ञाता तस्यार्जवकौटिल्यादिचेष्टितं तत्तदनूकूलप्रापणं तत्तद्भोगफलं च सर्वं साक्षात्पश्यतीति यावत्,

एतेन श्रीभगवतो विश्वान्तरात्मत्वं तत्समानाधिकरणं स्वातन्त्र्यं सार्वज्ञं च प्रतिपादितम्, तेनैव च व्यतिरेकमुखेन जीवात्मनां तदात्मीयत्वं तत्परतन्त्रत्वमल्पज्ञत्वं चापि फलितम् ।

अथ सिद्धान्तमपि समासतो दर्शयन् विशिनष्टि—आत्मवानिति ।

आत्मानस्त्रिविधा अपि नित्यमुक्तबद्धविशेषयुक्ताः क्षेत्रज्ञास्तदाधेयतत्तन्त्रतद्व्याप्यतदात्मकत्वादिभ्यस्तदात्मीया विद्यन्ते यस्य स आत्मवानिति विग्रहः तदाधेयत्वादिभिः स्वरूपेण भिन्नत्वमपि जगतस्तदात्मकत्वादिना तदपृथक्सिद्धत्वादभिन्नत्वं भिन्नाभिन्नत्वमित्यर्थः । किञ्च प्रकृतिप्रत्यययोः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यात् प्रकृत्यर्थानां क्षेत्रज्ञानां परतन्त्रसत्तायोगः "यदासीत्तदधीनमासीदि"त्यादिश्रुतेः, प्रत्ययार्थस्य च श्रीमाधवस्य भगवतः कृष्णस्य स्वतन्त्रसत्तायोगो मुख्यवृत्त्यैव सिद्धः ।

"आत्मा हि परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः"

"एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत" इत्यादिश्रुतेः ।

प्रत्यग्ब्रह्मणोः संबन्धसिद्धान्तं निरूप्य तत्प्राप्तिसाधनमपि स्वयमेवेत्याह—भगवन्मार्गदर्शक इति ।

भगवतः स्वस्य वेदमुखोक्तस्वप्राप्तिमार्गं वैदिकसम्प्रदायनिष्ठसदाचारनिष्ठसदाचार्याभिगमनादिप्रभृतिस्वप्राप्तिपर्यन्तसाधनक्रमतदनुष्ठानादिरूपं मार्गं दर्शयतीति तथोक्तः वात्सल्यकारुण्यदयातितिक्षादिस्वाभाविकानन्तकल्याणगुणवरुणालयत्वात् स्वयमेव जन्मसमये कृपार्द्रकटाक्षेणावलोक्य सात्त्विकश्रद्धाविशिष्टं कृत्वा वेदान्तसम्प्रदायाचार्येणाऽऽत्माऽपरमूर्त्तिना बहिर्यामिणाऽभिसङ्गम्य तदुक्तसाधनसन्तति[1]माचारयित्वा स्वात्मानं प्रापयतीति भावेनाह—नियमेन वशे कुर्वन्निति ।

तत्तत्साधनाचरणाद्यनुकूलानुग्रहगर्भितान्तःप्रेरणात्मकेन स्वासाधारणधर्मेण वशे कुर्वन् स्वानुकूलत्वं स्थापयन्नित्यर्थः "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मन" इत्यादिश्रुतेः, यद्वा नियमोऽत्र नियमनं निग्रहणरूपासाधारणैश्वर्ययोग इति "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम" इतिश्रुतेः, तेन दुराचारान्वेदनिषिद्धार्थनिष्ठान् निग्रहाधिकारणे निग्रहेण

१. आचरयित्वेति पाठः प्रामादिकः ।

वशे कुर्वन्नित्यर्थः । तथा च दुष्कृतां निग्रहेण वेदोक्तधर्मप्रवृत्तिविरोधं परिहरन्साधूनां वेदोक्तधर्मानुगामिनां चानुगृह्णन् तेभ्यो भगवन्मार्गं पूर्वोक्तं मार्गं वेदोक्तसाधनसन्ततिं भगवद्गीताद्युपदेशरीत्या वार्ऽचिरादिरूपं स्वप्राप्तिमार्गं वा दर्शयतीति वाक्यार्थः । एतदर्थमेव भगवतोऽवतारत्वात् ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

इतिभगवदुक्तेः ॥

एवं भूतैश्वर्याद्याश्रयस्त्वं स्वोत्कर्षमाविष्कुरु इति संबन्धः ॥ १ ॥

कुतर्कनिष्ठ लोगों को नियमित करने वाले अथवा उपनिषद्ज्ञान से भक्तों को नियन्त्रित करने वाले नियमस्वरूप गुरु श्रीनियमाचार्य की जय हो । अपने आश्रितों को आनन्दित करने वाले सदा सर्वत्र परिपूर्णानन्दस्वरूप आप वैष्णवाचार्य की जय हो । जो प्राणियों की समस्त चेष्टाओं को जानने वाले हैं परब्रह्मस्वरूप निग्रहानुग्रह रूप अपने सामर्थ्य से जीवों के मन, वाणी एवं इन्द्रियों को वश में कर भगवत्साक्षात्कार रूप मार्ग में उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं (उनकी जय हो) ॥ १ ॥

विमर्श—श्रीनिवासाचार्य श्रीपुरुषोत्तमदेव की आज्ञा से सुदर्शनचक्रावतार के रूप में अवतरित अनन्त श्रीविभूषित आद्य वैष्णवाचार्य श्रीनियमानन्द गुरु की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

एतेन श्लोकेनोत्कर्षप्रादुर्भावार्थं प्रार्थना उक्ता तत्प्रार्थनया तुष्टेन स्वबुद्धौ प्रादुर्भावितमुत्कर्षं ज्ञात्वा तदेव वर्णयति ।

स्वरूपगुणकर्मादिभिरुत्तमत्वमेवोत्कर्षस्तस्यैव वर्णनार्थमुपक्रमते ।

पाखण्डद्रुमषण्डानां दाहकः पावकोपमः ।
गर्वपर्वतदम्भोलिः काम्यकर्माहिपक्षिराट् ॥ २ ॥

पाखण्डा एव द्रुमास्तेषां षण्डाः समूहास्तेषां दाहक इति, वृक्षाणां छेदेऽपि अङ्कुरादिना पुनरपि रोहदर्शनात्तथा दण्डादिभिया पाखण्डत्यागेऽपि वासनया दुस्त्यजत्वात् तद्दुर्निवृत्तत्वात् द्रुमत्वोक्तिः, दवाग्निना वनदाहेऽपि क्वचित्क्वचित्तत्तन्मूलावशेषदर्शनात् पुनस्तद्रोहदर्शनाच्च तथापि पाषण्डानां दाहे तन्मूलावशेषात्कदाचिद् भूयः प्ररोहो भविष्यतीत्याह, पावकोत्तम इति

सांवर्त्तकाग्नितुल्यः समूलवस्तुदाहकत्वान्न भूयः प्रादुर्भावसम्भावनेत्यर्थः ।

किञ्च,

गर्वपर्वतदम्भोलिरिति ।

गर्वा एव दुरुच्छेद्यत्वात्पर्वतास्तेषां छेदने दम्भोलिर्वज्रः वज्रतुल्य इत्यर्थः स्वाश्रितानां गर्वस्यात्मप्राप्तौ मुख्यप्रतिबन्धकस्य स्वानुग्रहेण सद्यो नाशक इत्यर्थः यद्वा शास्त्रमार्गबहिर्मुखानां गर्वपर्वतान् निजैश्वर्ययोगात् तन्निग्रहेण सद्यो नाशयतीति तात्कालिकनाशकत्वद्योतनाय दम्भोलिशब्दप्रयोगः ।

किञ्च, काम्यकर्माहिपक्षिराडिति ।

"स्वर्गकामो यजेत" "पशुकामो यजेत" इत्यादिकाम्यस्वर्गादिविषयोद्देशेन तत्साधनतया विधीयमानानि काम्यकर्माणि तदनादिवासनाश्चाऽहिस्थानानि यथाहिदष्टस्य परमजाड्यापत्त्या ज्ञानसामान्याभावः तद्दंशनस्येव तेषामपि श्रेयो ज्ञानाभावासाधारणहेतुत्वात् तन्नाशे पक्षिराडिव, यथा पक्षिराड् वैनतेयस्य नामात्मकमन्त्रोच्चारणादहयो भुजगाः पलायन्ते तद्दंशजन्यविषमपि सद्यो नश्यति किं पुनस्तत्साक्षात्कारेण, एवं तस्य सामान्यदृष्ट्यापि काम्यकर्मणां सवासनानां निवृत्तिः किं पुनस्तद्विशेषसंबन्धजन्यतदनुग्रहया दृष्ट्या तन्निवृत्तिरिति कैमुत्यन्यायदर्शनार्थमिदमुपमानमित्यर्थः, अत्र काम्यपदप्रयोगेन नित्यनैमित्तिकयोः परम्परया मोक्षोपयोगित्वात् कर्त्तव्यता सूचिता, अस्य विशेषनिर्णयश्च वेदान्तरत्नमञ्जूषायां श्रीपुरुषोत्तमाचार्यपादैर्विस्तृतः अत्रोपरम्यते ॥ २ ॥

पाषण्डरूप वृक्षसमूहों को जलाने के लिए जो अग्निस्वरूप हैं, गर्वरूपी महापर्वत का दलन करने के लिए महावज्र हैं, काम्यकर्म एवं वासनारूप सर्प के विष को दूर करने के लिए जो साक्षाद् गरुड़ हैं (उनकी जय हो) ॥ २ ॥

किञ्च—मत्तवादगजेन्द्राणां पञ्चाननमहोज्ज्वल इति ।

मत्तवादगजेन्द्राणां पञ्चाननमहोज्ज्वलः ।
कामादिविषयाब्धीनां शोषकः कुम्भसम्भवः ॥ ३ ॥

अनेककुतर्ककुशलानां स्वकपोलकल्पिता वादा एव गजेन्द्राः मत्ताश्च ते वादगजेन्द्राश्चेति विग्रहः, मत्तवादीतिपाठे वादिनो देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाद्यात्मवादिनः भूतसङ्घातकारणवादिनो नास्तिकाः, कर्मकालपरमाणुप्रकृत्यादिकारणवादिनो मीमांसकतार्किकादयश्च अध्यासवादिनो माया-

वादिनश्च, त एव गजेन्द्राः मत्ताश्च ते वादिगजेन्द्राश्चेति पूर्ववद्विग्रहः उत्कृष्टं मन्यानाम् उत्कृष्टताख्यापने गजेन्द्रोपमानं तेषां पराभवे पञ्चाननमहोज्ज्वलः साक्षाच्छ्रीनृसिंहोपमः यथा सामान्यनृसिंहस्य, नाममात्रमपि श्रुत्वा गजेन्द्रा दूरतः पलायन्ते किं पुनः श्रीनृसिंहस्य तथा तस्य वाग्विलासमात्रश्रवणेनैव सर्वे वादिन आत्माभिभवं निश्चिन्वाना दिशो द्रवन्तीति तात्पर्यार्थः।

किञ्च—

कामादिविषयाब्धीनां शोषकः कुम्भसम्भव इति।

आदिशब्दः क्रोधलोभमोहमदमात्सर्यविषादशोकादिसङ्ग्रहार्थः कामादि-विषया एवाब्धयः वासनाबाहुल्येनाऽगाधत्वात् दुस्तरत्वाच्चोपमानम्, एकैकस्यापि तथात्वाद्बहुवचनं, तेषां शोषकः, तत्रोपमानं कुम्भसम्भव इति, सद्योऽप्रयासेन शोषणमात्रे एवोपमा, यथा श्रीदाशरथिना रावणो हतः, श्रीभगवता वासुदेवेन रुद्रेन्द्रादयः पराजिता इत्यादिस्तुतिः, संकल्पमात्रेण निमिषार्द्धेऽप्यनन्तकोटिब्रह्माण्डोत्पादनादि कर्त्तुं समर्थस्य कियदेतत् स्तवनम् तथा प्रकृतेऽपि बोध्यम्, क्षमया पृथिवी सम इत्याद्युपमानवत्।

वस्तुतस्तु कामादिनिवारणं कुम्भसम्भवस्यापि दुष्करं बद्धकोटित्वात् प्रारब्धपरतन्त्रत्वाच्च, भवतस्तु न किञ्चिदपि दुर्लभं साक्षाद्भगवत्करस्थ-सुदर्शनावतारत्वात्॥ ३॥

निज कपोल कल्पित उन्मत्तता पूर्ण वादरूपी गजेन्द्र का विनाश करने के लिए साक्षाद् नृसिंह हैं एवं कामादिरूप विषय समुद्र के शोषण के लिए जो साक्षाद् अगस्त्य हैं (उनकी जय हो)॥ ३॥

किञ्च—भक्त्योषधिलतानां च पोषकश्चन्द्रशीतल इति।

भक्त्योषधिलतानां च पोषकश्चन्द्रशीतलः।
सम्प्रदायप्रबोधाय दीपको ध्वान्तनाशकः॥ ४॥

यथा प्राणिनां यवव्रीह्याद्योषधयो जीवनहेतवः तथा श्रेयस्कामानां हरिभक्तिरेव जीवनौषधिरिति तात्पर्येणौषधिरूपणम्, भक्तिरेवौषधिस्तस्य लतानां पोषकश्चन्द्रवत् शीतलः सदाविर्भूतस्वस्वरूपपरस्वरूपानन्दा-श्रयत्वात्, "सदा पश्यन्ति सूरय" इतिश्रुतेः,

किञ्च, सम्प्रदायप्रबोधायेति। सम्प्रदायविषयकप्रबोधाय ज्ञानाय सम्प्रदायानुगामिभ्यस्तद्विषयकज्ञानप्रकाशनार्थं तन्निरूपितसिद्धान्तविषयक-ज्ञानप्रतिबन्धकावरणनाशार्थं दीपकः, तत्र हेतुः ध्वान्तनाशकः, दीपकस्य

तमोनाशकत्वं स्वभावत एव सिद्धमित्यर्थः, "येनाक्षरं परमं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्" ।

सुदर्शनमहाबाहो सूर्यकोटिसमप्रभ ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ।।

इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः ।। ४ ।।

भक्तिरूपी ओषधिलता का पोषण करने के लिए जो चन्द्रमा के समान सर्वथा शीतल हैं । गुरुपरम्परागत सम्प्रदाय का प्रबोध करने के लिए जो अज्ञान तिमिर के विनाशक साक्षात् दीपस्वरूप हैं (उनकी जय हो) ।। ४ ।।

किञ्च—संसारकूपमग्नानां करालम्बनदायक इति ।

संसारकूपमग्नानां करालम्बनदायकः ।
सुशीतलमना नित्यं माधुर्येण विराजते ।। ५ ।।

संसार एव कूपवदुद्धरणाशक्यत्वात्कूपस्तत्र मग्नानां जीवानां करावलम्बो भागवतधर्म उद्धरणहेतुत्वात्तस्य दायकः तदुपदेष्टृत्वात् ।

तथा च शान्तिपर्वणि भीष्मः—

गजेन कश्चित्पुरुषः कानने समभिद्रुतः ।
जिघांसाभयसंत्रस्तः प्रविवेश महद्वनम् ।।
अथ पश्यति तत्रस्थं सिंहयूथमवस्थितम् ।
तं दृष्ट्वा स निवर्त्तेत दिशमन्यामधावत ।।
तत्राऽपश्यत् खड्गहस्तां भीमकन्याञ्च दारुणाम् ।
आधावन्तीमभिमुखं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।।
तां दृष्ट्वा स निर्वर्त्तित्वा दिशमन्यामधावत ।
तस्यामपश्यत्तत्रस्थं प्रदीप्तवनमग्निना ।।
स तत्र चिन्तयामास अहो कष्टमवस्थितम् ।
इतो गज इतः सिंह इतः कन्यान्वितो दवः ।।
निराशां जीविते प्राप्तस्तत्र कूपमपश्यत ।
कक्षायतनमत्यन्तमन्धकारमनन्तकम् ।।
स तत्र कूपे पुरुषः पपात भयपीडितः ।
अथाऽलोकयत त्रस्तः सर्पं कूपतले स्थितम् ।।
विजृम्भमाणं घोरास्यं श्वसन्तं लेलिहाननम् ।
वल्लीमादाय राजेन्द्र तलेऽतिष्ठदधोमुखः ।।

अलाबुरिव तत्रासौ तस्यां वल्ल्यां प्रलम्बितः ।
तस्या वल्ल्यास्तु मूलानि व्यच्छिनत्तत्र मूषकः ॥
उपद्रवास्तु तत्रान्ये दंशका मत्कुणादयः ।
तत्राप्यन्यद्रसोत्पन्नं क्षौद्रं मधुकराक्षतम् ॥
तप्तं तच्चाल्यमानं तु घृष्यमाणमभिद्रुतम् ।
अपिबन्मधु तत्रस्थः पतितं तस्य मूर्द्धनि ॥
पतितं मस्तके तस्य मधु तन्मुखमाविशत् ।
पतितं मस्तके सर्वमपिबत् स पिपासितः ॥
यथा स पुरुषो वत्स घोरे वर्त्तति सङ्कटे ।
तथा शरीरिणः सर्वे घोरे वर्त्तन्ति संशये ॥

अस्य विवरणम्—

योऽसौ गजो महावीचिर्विद्धि देहि हिताहितम् ।
सिंहान् रोगान्विजानीहि विहाराहारसम्भवान् ॥
असिहस्ता तु या कन्या सा जरा दुरतिक्रमा ।
यो दवाग्निः स शोको वै लोभमोहभयाश्रयः ॥
कूपस्तु मानुषो लोकः कालो जगदुपद्रवः ।
आयुर्वल्ली तथा प्रोक्ता मूषको मृत्युरुच्यते ॥
योऽसौ कूपतले सर्पः समयः काल उच्यते ।
कामं मधुरसं विद्धि संशयो नाऽत्र विद्यते ॥
मधुनश्चापि यत्स्वाद्यं कामस्वादो हि स स्मृतः ।
एवं श्रुतगुणो वत्स धर्मोत्कृष्टमतिर्भव ॥
संशयेनाऽजितात्मा त्वं मोक्षं यासि यथाक्रमम् ।
एवं संसारकूपस्य धर्म एव परा गतिः ॥ इति ।

एवं भूते संसारकूपे मग्नानां करावलम्बं भागवतधर्मं दत्वा तदुद्धारको भवानिति वाक्यार्थः ।

किञ्च—सुशीतलमना इति । सुष्ठु शीतलं कामादिजन्यतापास्पृष्टमोहात्मकं मनो यस्य सः नित्यमुक्तत्वात् तत्कारणकर्मप्रयुक्तप्रकृतिसंबन्धाभावात् ।

अत एव माधुर्येण गुणेन मधुरालापादिना नित्यम् एकरसं यथा स्यात्

तथा विराजते विशेषेण प्रकाशते ॥ ५ ॥

संसाररूपी कूप में डूबे हुए जनों को जो एक मात्र अपने हाथ का अवलम्ब देकर उनका उद्धार करते हैं, जो त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा दैहिक रूप) से रहित होने के कारण सुशान्त मन वाले हैं तथा सर्वदा एकमात्र माधुर्य गुण रूप एक रस से परिपूर्ण हैं (उनकी जय हो) ॥ ५ ॥

किञ्च—सुखदातेति ।

सुखदाता भवच्छेत्ता तापत्रयविनाशकः ।
श्रीकृष्णपूजनानन्दी सर्वदा शुद्धवेषवान् ॥ ६ ॥

सुखस्य परमानन्दभगवद्भावापत्तिलक्षणमोक्षाख्यस्य, तत्र द्वारमाह—भवच्छेत्तेति । भवस्य प्रकृतिसंबन्धनिरूपितजन्ममरणादिचक्रभ्रमणरूपस्य छेत्ता ध्वंसक इति ।

अत एव तापत्रयविनाशक इति ।

तापा आध्यात्मिकाधिभौतिकादित्रिविधाः, आद्यं द्विविधं शारीरं मानसञ्चेति, शिरोरोगज्वरातिसारामयाक्षिपीडादिकं शारीरम्, कामक्रोधद्वेषलोभमोहशोकासूयावमानेर्ष्यादिजन्यं मानसम्, मृगपक्षिमनुष्यराक्षससर्पादिजातमाधिभौतिकं, शीतोष्णवातवर्षाजलविद्युदादिसमुद्भवम् आधिदैविकमिति विवेकः ।

किञ्च—श्रीकृष्णपूजनानन्दीति । श्रीकृष्णस्य पूजनेनानन्दो यस्यास्तीति, तथा पूजा चात्र सर्वदेशकालाद्युचिततत्तत्सङ्कल्पानुकूलाचार इति परमभक्तिरिति यावत् ।

किञ्च—सर्वदा शुद्धवेषवानिति । सर्वस्मिन्काले परमधामावस्थाने वाऽवतारावस्थायां वा शुद्धोऽप्राकृतो वेषो यस्य सः नित्यमुक्तत्वेन प्रकृतिसम्बन्धशून्यत्वात् ॥ ६ ॥

गुरु भगवद्भावापन्न लक्षण मोक्षरूप परमानन्द के देने वाले हैं एवं उस मोक्षदान द्वारा जन्म-मरण रूप बन्धन से निकालकर जीव का उद्धार करने वाले हैं, शिरोरोगादि शारीरिक ताप, काम, क्रोधादि मानसिक ताप तथा मृग, पक्षि, सर्पादिभयजन्य आधिदैविक तापों को दूर करने वाले हैं, वह श्रीकृष्ण के पूजन से आनन्दित रहते हैं एवं स्वयं अवतारादि रूप होने पर भी शुद्ध वेष धारण करने वाले हैं (उनकी जय हो) ॥ ६ ॥

अथ प्रेमभक्तिमत्त्वं दर्शयन्नाह—आनन्दाश्रुकलापूर्ण इति ।

आनन्दाश्रुकलापूर्णः सानुरागसुधान्वितः ।
अहंममेतिदौर्जन्यनाशको बुद्धिदः स्वयम् ॥ ७ ॥

यतः सानुरागसुधान्वितः अनुरागेण सहिता सानुरागा भगवत्स्वरूप-गुणादिविषयका प्रीतिः सैव सुधा तयाऽन्वितः सम्पन्नः उक्तलक्षणनिरतिशय-प्रतीतेरेकाश्रय इत्यर्थः । स्वाश्रितसर्वदोषसमूलहारित्वमनुसंदधदाह—

अहंममेतिदौर्जन्यनाशक इति । देहादावहमिति पुत्रवित्तादौ ममेति दौर्जन्य दुर्जनानां रिपूणां भावो वैरिभावमिति यावत् आत्मनैवात्मनाशकत्वं, यद्वा अहमिति आत्मनि स्वतन्त्रसत्तावच्छिन्नाहंत्वनिश्चयः, वस्तुतः आत्मनां तदात्मकतया पुरुषोत्तमस्यैवाहंप्रत्ययस्य प्रधानविषयत्वात्, तथैव देहादौ ममेति 'यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो देवा ओकांसि चक्रिरे" इत्यादिभ्यः, तथाभूतां व्यवसायात्मिकां बुद्धिं स्वयमेव दत्वोक्तसंसरणहेतोर्दौर्जन्यदाम्भिकत्वाद्यात्म-रिपोर्विपरीतज्ञानान्मोचयतीति वाक्यार्थः,

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ इति ।

श्रीमुखोक्तेः । अत्र बुद्धिप्रदानं बहिर्यामिशास्त्राचार्यमुखेन तदुक्तानुभावनं तद्विपरीतभावनाशनं चाऽन्तर्यामिरूपेण विश्वबुद्धिनियन्त्रेति विवेकः ॥ ७ ॥

भगवत्स्वरूप नाम, गुण एवं कर्म के कीर्त्तनमात्र से सानुराग सुधा से युक्त हो आनन्दाश्रु कला से परिपूर्ण हो जाने वाले हैं। अहं मम इत्यादि माया, लोभ-मूलक दुर्जनता को जो नष्ट करने वाले हैं एवं बुद्धि के स्वयं प्रेरक हैं (उनकी जय हो) ॥ ७ ॥

स्वाश्रितदोषनाशकत्वं निरूप्य तेषां पोषकोऽपि स एवेत्याह-स्वस्य लावण्यमाधुर्यपोषकश्चाऽनुवर्त्तिनामिति ।

स्वस्य लावण्यमाधुर्यपोषकश्चानुवर्त्तिनाम् ।
नितरां शाठ्यहर्त्ता च धाता सर्वभयापहः ॥ ८ ॥

अनुवर्त्तिनां स्वाश्रितानन्यभक्तानां तदाज्ञानुवृत्त्येकजीवनानां स्वस्य लावण्यमाधुर्याभ्यां पोषको भरणपोषक इति योगक्षेमकर्त्तेति यावत्, अप्राप्त-

प्रापणं योगः प्राप्तस्य पालनं क्षेम इति विवेकः। अप्राप्तानां श्रेयोऽसाधारण-हेतूनां ज्ञानभक्तिविरागादीनां प्रापकत्वात् प्राप्तानां च तेषां तद्विरोधिभ्यः कामक्रोधादिनिरयासाधारणहेतुभ्यस्तद्रिपुभ्यो रक्षकत्वात् योगक्षेमकर्तृत्व-सिद्धिरित्यर्थः।

तत्प्रकारमाह—स्वस्येति। नित्याश्रिताभ्यां स्वाभाविकयावदात्मवृत्तिभ्यां सद्गुणाभ्यां लावण्यमाधुर्याभ्यां तत्र लावण्यं वाचः सौन्दर्यं माधुर्यं मधुर-भाषया मनोहारित्वमिति विवेकः। यद्वा रूपवृत्तिसौन्दर्यमाधुर्याभ्यां मनो-नयनाह्लादजनकतया स्वाश्रितानां पोषक इति।

योगक्षेमवाहकत्वमेवाह विशेषणाभ्याम्—धातेति। मातृपितृवत् धारण-पोषणकर्ता सर्वसम्बन्धविषयत्वात् एतेन योगकर्तृत्वमुक्तं धारणसामग्री-प्रापणयोगत्वात्।

सर्वभयापह इति। मोक्षसामग्रीदैवीसम्पद्धारिणाम् आसुरीसम्पदाख्य-रिपूणां दस्युभूतानां कामादीनां सर्वभयमपहन्तीति तथा सः नितराम्पदस्य सर्वैरपि प्रथमान्तपदैरन्वयो बोध्यः, अत एव शाठ्यहर्तेति शठस्य भावः शाठ्यं परवञ्चकत्वधौर्त्यादिदोषास्तेषां हर्त्यनेन क्षेमकरणत्वमुक्तम्। 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहमिति'— श्रीमुखोक्तेः ॥ ८॥

अपनी आत्मा में निरन्तर रहने वाले स्वाभाविक लावण्य एवं माधुर्यादि गुणों से अपने आश्रितों का पालन करने वाले हैं, उनकी वञ्चनात्मकता, धूर्तता दूर कर योगक्षेम सम्पादन करते हैं तथा जो माता-पिता के समान उनका पालन करते हैं (उनकी जय हो) ॥ ८॥

अथ गुणान्तरदर्शनेन स्तौति—अमानीति।

अमानी मानदो मान्यो भावको भावधारकः।
सर्वसंशयभेत्ता च सर्वागमविशारदः॥ ९॥

मानोऽभिमानः देहादावात्मत्वाभिमानः स विद्यतेऽस्येति मानी, न मानी अमानी नित्यं स्वपरविषयकपरोक्षानुभूतिमत्त्वात् तत्कारणप्रकृतिसम्बन्ध-शून्यत्वाच्च "सदा पश्यन्ति सूरयः" इतिश्रुतेः।

अत एव मानद इति। स्वाश्रितानामुक्तलक्षणं मानमभिमानं द्यति खण्डयतीति तथोक्तः, यद्वा मानं प्रमाणं श्रीपुरुषोत्तमस्वरूपगुणादिविषयक-प्रमाकरणं वेदान्तलक्षणं स्वचरणप्रपन्नेभ्यो ददातीति सः, यद्वा मीयते हिंस्यतेऽनेनेति मानम् अनादिपुण्यापुण्यरूपंसंसरणमूलभूतं कर्म द्यति खण्डयती-

ति सः, स्वजनकर्मात्मिकाविद्यानाशक इत्यर्थः,अत एव मान्य इति, श्रेयोऽर्थिभिः साधुभिर्नितरां पूज्यः आश्रयणीय इत्यर्थः, किञ्च ? भावकः इति, स्वभक्तान् भावयति ज्ञानवैराग्यादिसम्पत्त्या वर्द्धयतीति भावकः, किञ्च ? भावधारक इति, भावं भगवद्विषयकं प्रेम धारयतीति तथा, असाधारणमाचार्य लक्षणं निरूपयन्स्तौति ।

सर्वसंशयभेत्ता चेति । सर्वेषां संशयान् सर्वान्संशयान्वा भिनत्तीति सः, संशयास्तावद्द्विविधा आत्मपरमात्मसाधनफलादिविषयभेदात्, तथा हि भगवन्कोऽहं देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणादिष्वेकतमस्तदन्यो वेति स्वाश्रितेन पृष्टे उत्तरम् त्वं देहो न भवसि जडत्वात् उच्छित्तिधर्मत्वात् मृते चैतन्यादर्शनाच्च देहस्य घटादिवत्, नापीन्द्रियसंघातः करणत्वात् भौतिकत्वात् स्वप्ने लयदर्शनाच्च स्थूलदेहवत् दण्डचक्रादिवद्वा, अत एव न मनोबुद्धिश्च करणत्वाविशेषात् सुषुप्त्यादिष्वननुगतत्वाच्चेन्द्रियादिवत्, प्राणोऽपि न वायुत्वात् जन्यत्वाच्च व्यजनजन्यवायुवदिति, तस्माद्देहेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिजडवर्गविलक्षणो जाग्रदाद्यवस्थातीतस्तत्तदवस्थाप्रकाशको ज्ञाताहमर्थाभिन्नश्चेतनस्वरूपो ब्रह्मात्मकस्तदधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकोऽणुपरिमाणकः प्रतिदेह भिन्नो बन्धमोक्षार्हः प्रत्यगात्मा त्वमसीति सङ्क्षेपः, विशेषस्तु वेदान्तरत्नमञ्जूषायां श्रीपुरुषोत्तमाचार्यपादैर्निरूपितः, किञ्च किं वा जगत्कारणं परमाणवो वा कर्म वा कालो वा प्रकृतिर्वा परब्रह्म वेति संशये परमाण्वादीनां जडत्वात्स्वतन्त्रत्वेन कार्योत्पादनत्वासम्भवात्, ब्रह्मैव जगत्कारणं सर्वज्ञत्वे सति चेतनत्वात् श्रुतिप्रमाणकत्वाच्च,

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय नामरूपे व्याकरवाणि स्वयमात्मानमकुरुत सच्च त्यच्चाऽभवदि"त्यादिश्रुतेः,

उक्तलक्षणसङ्कल्पेक्षणादीनामचेतनेष्वसम्भवादित्यर्थः; तत्कारणं सर्वविशेषशून्यं सर्वप्रमाणागोचरं ब्रह्म वा उपहितं वा अध्यासवद्वा सर्वज्ञसर्वाचिन्त्यानन्तस्वाभाविकयावदात्मवृत्तिगुणशक्तिको वेदान्तैकवेद्यः श्रीपुरुषोत्तमो वेति संशये निर्विशेषस्य प्रमाणाभावेनैवासिद्धत्वात् निर्विशेषं वस्तु मिथ्या सर्वप्रमाणाविषयत्वात् शशश्रृङ्गादिवदित्यनुमानात् उक्तेक्षणादीनां निर्धर्मके वस्तुन्यसम्भवाच्च निर्विशेषं न जगत्कारणम् ईक्षणादिधर्मानाश्रयत्वात्प्रकृत्यादिवदित्यनुमानाच्च, नाप्युपहितं निर्धर्मकत्वसाम्यात् धर्मवत्त्वाभ्युपगमे ताटस्थ्यहानिप्रसङ्गात्, नापि तृतीयं ज्ञानेऽज्ञानाध्यासासम्भवात् इतरेतरात्यन्तविरोधित्वाच्च सूर्येऽन्धतमोऽयोगवत्, तस्माच्चरम एव वेदान्तवेद्यो मुक्तोपसृप्यो योगिध्येयो ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिसुरर्षिगणेड्यमानोऽचिन्त्यानन्त-

स्वाभाविकस्वरूपगुणशक्तिकोऽस्पृष्टदोषमहात्म्यो भगवान्वासुदेवः परब्रह्मभूतः श्रीकृष्ण एव जगदभिन्ननिमित्तोपादानकारणमिति, "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "सर्वे वेदाय यत्पदमामनन्ति" "ब्रह्मविदाप्नोति परं" "यं सर्वे देवा नमन्ति" "मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" इत्यादिश्रुतिभ्यः, अथ किं वा मोक्षसाधनं कर्मैव वा कर्मज्ञानसमुच्चयो वा निर्विशेषप्रमाणातीतज्ञानं वा सर्वज्ञसर्वशक्तिपरमेश्वरविषयकं ज्ञानं वेति, नाद्यः कर्मणः कर्मलक्षणाज्ञानविरोधित्वाभावात् "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा" इतिश्रुतेः, तस्य परम्परया ज्ञानोत्पादनद्वारा श्रेयःपरत्वाभ्युपगमे इष्टापत्तिः, नापि द्वितीयः उभयोर्विरोधिनोरेकत्र समुच्चयानर्हत्वात्।

'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।'

इतिश्री *मुखोक्तेः*। *नापि तृतीयः* तस्याज्ञानसाधकत्वाभ्युपगमात्, तस्मादुक्तलक्षणपरब्रह्मस्वरूपादिविषयकमेव ज्ञानं मोक्षासाधारणं कारणं 'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशं तन्महिमानमिति वीतशोकः' "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" "पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेती"त्यादिश्रुतिभ्यः, अथ किंवा फलं स्वर्गाद्यभ्युदयरूपं वा मोक्षो वा किं तावत्प्राप्तम् अभ्युदयमेवेति, "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृत"मित्यादिश्रुतिभ्योऽक्षयत्वादिविधानानादितिराद्धान्तः, मोक्ष एव फलं स्वार्थत्वात् निरतिशयत्वाच्च "न स पुनरावर्त्तते" अनावृत्तिशब्दात्।

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते'।

इत्यादिश्रुतिस्मृतिसूत्रेभ्यः।

न स्वर्गादीनां श्रेयस्त्वं क्षयिष्णुत्वात् "यथेह कर्मजि(चि)तो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्रपुण्याजि(चि)तो लोकः क्षीयते" इत्यादिश्रुतेः, आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुनेति—स्मृतेश्च।

ननु द्वयोरपि वाक्ययोः श्रौतत्वेन प्रामाण्यसाम्यात् अक्षयबोधकश्रुतेरेव प्राबल्यम्। किं न स्यादिति चेन्न अक्षयत्वबोधकश्रुतेस्तर्कसहकृतत्वात् प्राबल्यम् स्वर्गादिलोकाः क्षयिष्णवः कर्मजन्यत्वात् कृष्यादिवदिति प्रयोगात्, स्यादेतत्, मोक्ष एव फलं तथापि किं तस्य स्वरूपं तार्किकाणामेकविंशतिप्रकारदुःखात्यन्ताभावो वा जैमिन्याचार्याभ्युपगतसार्वज्ञादिब्राह्मधर्मापत्तिर्वा औडुलोम्याभिमतचिन्मात्रापत्तिर्वा सर्वाविरुद्धश्रीबादरायणाभ्युपगतभगवद्भावापत्तिर्वेति, नाद्यः अवैदिकत्वात् सुषुप्तावतिव्याप्तेश्च, न द्वितीयः चित्प्राप्तिविधायकवाक्यविरोधात्, नापि तृतीयः 'सर्वं ह पश्यः पश्यती'त्यादिसार्वज्ञविधायकश्रुति

व्याकोपात्, तस्मादुभयश्रुत्यविरुद्धश्चरमपक्ष एव श्रेयान् "एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायण" इति निर्णयसूत्रात्, अस्यार्थः एवं चोपन्यासात्पूर्वभावात् पूर्वोक्तब्रह्मभावात् सार्वज्ञादिविषयकापरिच्छिन्नानुभवात् ब्रह्माभावापत्तिः अपहतपाप्मत्वादिसम्पन्नविज्ञानघनीभूतस्वस्वरूपाविर्भावाच्चाऽविरोधं मोक्षस्वरूपं भगवान्बादरायणो मन्यते इत्यक्षरार्थः, एवं सर्वश्रुतीनां स्वार्थ एव प्रामाण्यात् नैकतमयापि श्रुत्या विरोधः, "निरञ्जनः परम साम्यमुपैति" "स स्वराड् भवती"त्यादिश्रुत्या सार्वज्ञसाम्यविधानात्, सर्वज्ञसादृश्यस्यापि तत्र सत्त्वात् सर्वज्ञकल्पत्वमप्यविरुद्धम्, "सर्वं ह पश्यः पश्यति" इतिश्रुतेः, सादृश्यं नाम तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्त्वं, तथा च "मुक्तस्य जगद्व्यापारवर्ज"मिति शास्त्रात् स्वतन्त्रस्वरूपस्थित्याद्यर्हत्वेन तद्भिन्नत्वे सति सार्वज्ञादीनामपहतपाप्मत्वादीनां च भूयसां ब्रह्मधर्माणां तत्र योगात् परमसाम्यलक्षणसमन्वयः, स्वराड्साम्यात्स्वाराज्ययोगोऽप्यविरुद्ध इति संक्षेपः, किंच को वा शास्त्रविषयः कर्म वा ब्रह्म वा किं तावत्प्राप्तं कर्मैव सर्वज्ञेन भगवता जैमिनिना तत्त्वविधानात् "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थाना"मित्यादिसूत्रात्, नन्वेवमपि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इत्यादिषु क्रियासम्बन्धलेशस्यादर्शनात् कथमिव क्रियापरत्वं, न चातदर्थानामानर्थक्यस्य उक्तत्वात्कथं भूयो विकल्पावकाश इति वाच्यम्, तेषामपि श्रुतित्वाविशेषणबाधायोगादध्ययनविधिविषयत्वाच्च, अन्यथाऽवैदिकत्वापत्तेर्दुर्वारत्वादिति चेन्न, तेषां क्रत्वङ्गकर्तृस्तवनपरत्वात्, अङ्गपरस्य वाक्यस्यान्ततोऽङ्गिन्येव पर्यवसानान्न बाधशङ्कावकाश इति प्राप्ते ब्रूमः, ब्रह्मण्येव शास्त्रस्य समन्वयो न कर्मणि तस्य जन्यत्वजडत्वपरतन्त्रत्वादियोगात्; न शास्त्रविषयम्, प्रत्युततद्भावापत्तिलक्षणमोक्षोपायभूतज्ञानोत्पादने एव कर्मण उपयोगश्रवणात्, "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेने"त्यादिभिः,

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।

इति स्मरणाच्च,

एते पूर्वबाधशङ्कापि दूरतो निरस्ता, विशेषस्तु आकरे द्रष्टव्यः, स्यादेतत् अखिलस्यापि शास्त्रस्य ब्रह्मण्येव समन्वयः, तस्य च तद्विषयत्वम्, तथाऽपि कीदृशं ब्रह्म वेदान्तस्य विषयः ? औपाधिकभेदाश्रयं वा, कल्पितभेदाश्रयं वा, केवलभेदाश्रयं वा, चिदचिद्विशिष्टं वा, स्वाभाविकभेदाभेदाश्रयं वेति, नाद्यः अनुपपन्नत्वात्, तथाहि सार्वज्ञादिस्वाभाविकधर्माश्रयस्य परब्रह्मण उपाधिना जीवभावापत्तिस्तत्त्वमस्यादिवाक्योपदेशजन्याभेदज्ञानात्तन्निवृत्त्या

च मोक्ष इति तस्य राद्धान्तः, अत्र प्रष्टव्यः, उपाधिना ब्रह्मणः सार्वज्ञादिधर्मा आवृत्ताः, स्वरूपं वा, नाद्यः असम्भवात् तथा हि सार्वज्ञादयो धर्माः स्वाभाविका औपाधिका वा नान्त्यः, औपाधिकत्वे उपाधेस्सत्त्वमसत्त्वं वा, सत्यत्वेऽपि ब्रह्मभिन्नत्वमभिन्नत्वं वा, भिन्नत्वे स्वप्रयुक्तोऽन्यप्रयुक्तो वा, ब्रह्मप्रयुक्तो वा, नाद्यो वक्तुं शक्यः, आत्माश्रयात्, नापि ब्रह्मप्रयुक्तोऽन्योन्याश्रयात्, नाप्यन्यप्रयुक्तोऽनवस्थानात्, अभिन्नत्वे चौपाधिकभेदसिद्धान्तभङ्गात् उपाधिरेव ब्रह्मेति प्रतीत्यापत्तेश्च, नाप्यसत्यः परमतप्रवेशात् अनभ्युपगमाच्च, स्वाभाविकत्वपक्षे तेषां स्वरूपभिन्नत्वमभिन्नत्वं वा भिन्नाभिन्नत्वं वा, अत्यन्तभेदे शास्त्रविरोधः, 'एवं गुणान् पृथक् पश्यन्' इत्यादिनिषेधश्रवणात्, नाऽप्यभिन्नत्वम् ब्रह्मणा तेषां सामानाधिकरण्यापत्त्या "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्" इति व्यधिकरणश्रुतिव्याकोपात् नापि चरमः स्वाभाविकभिन्नाभिन्नानामावरणासम्भवात्, अस्मन्मतप्रवेशाच्च, अन्यथास्वरूपस्याप्यावरणापत्तेः, स्वरूपावरणाभ्युपगमपक्षे सार्वज्ञादिहानेः, किञ्चोपाधेरपि सत्त्वनित्यत्वाभ्यामनिवृत्तिप्रसङ्गात्, तस्माद् दुरुपपादोऽयमौपाधिकभेदाभेदः, नापि कल्पितभेदवादः सम्भवति महादोषयोगात्, तथाहि ब्रह्मणि भेदकल्पनायां को वा प्रयोजकः ब्रह्म वा उपाधिर्वा अन्य अन्यद्वा, नाद्यः शुद्धबुद्धनित्यमुक्तविशेषशून्ये वस्तूनि प्रयोजकत्वाभ्युपगमे निर्विशेषत्वशुद्धत्वादिनाशात् मुक्तस्यापि भूयोऽज्ञानयोगापत्तेर्दुर्वारत्वात् किं च प्रयोजकस्य ब्रह्मणो नित्यत्वेन प्रयोज्यस्यापि नित्यत्वादनिवृत्त्या निर्मोक्षप्रसङ्गात् द्वितीये आत्माश्रयापत्तेः द्वितीयाद्युपाध्यङ्गीकारे अन्योन्याश्रयादियोगात् नापि तृतीयः अन्यस्य जीवस्य तत्कार्यत्वेनोत्तरभावित्वात् तस्मात्प्रयोजकाभावात्कल्पनासिद्धयाभेदस्य कल्पितत्वासम्भवात् अविद्यादेर्भिन्नं ब्रह्म देहादेर्भिन्नं चेतनामित्यादौ भेदस्य त्वयाऽपि सत्त्वाभ्युपगमात् अन्यथा अविद्यादिभ्यो ब्रह्मणो देहादिभ्यश्चेतनस्य चापरत्वासिद्धेरिति संक्षेपः। नापि केवलभेदाश्रयत्वं ब्रह्मण इति समीचीनं श्रुतिशतविरोधात् तद्व्याकोपात् "सर्वं तं परादाद्" इत्यादिभेदनिन्दाश्रवणाच्च, किञ्चाऽभेदोऽपि सदेव ब्रह्मणि गुणगुणिनोर्देहदेहिनोश्चाभेदस्य त्वयापि याथात्म्याङ्गीकारात्; अलं विस्तरेण, नापि चिदचिद्विशिष्टं ब्रह्म वेदान्तविषय इति पक्षो रमणीयः चिदचितोर्विशेषणत्वासम्भवात्, तथाहि व्यावर्त्तकत्वं तावद्विशेषणत्वमिति सर्वतन्त्रसम्मतलक्षणं तस्य चानयोरनन्वयात् विशेषणत्वासिद्धेश्च व्यावृत्तव्यावर्त्यसिद्धिसापेक्षत्वाद्विशेषणस्य तथा च व्यावृत्तस्य ब्रह्मणश्चिदचितो व्यावर्त्तकत्वाभ्युपगम्यमानेऽपि कस्माद् व्यावृत्तमिति व्यावर्त्योविवेचनीयः चेतनाचेतनयोर्विशेषणत्वाभ्युपगमेन व्यावर्त्तकत्वात् पदार्थान्तरस्याभ्युपगमाच्च;

किञ्च चेतनाचेतने सार्वज्ञादिविशिष्टस्य विशेषणे भवतः केवलस्य वा, नाद्यः विशिष्टवैशिष्ट्यापत्त्या विशिष्टसिद्धान्तभङ्गात् न द्वितीयः केवलत्वानभ्युपगमात्, अभ्युपगमे च सार्वज्ञादिविशिष्टं ब्रह्मभिन्नं चेतनाचेतनविशिष्टं च भिन्नमिति विशिष्टद्वयसिद्धौ सत्यां विशिष्टाद्वैतभङ्गात्, चेतनाचेतनविशिष्टदेशस्य सार्वज्ञादिहीनापत्तेश्च निर्विशेषवादप्रवेशप्रसङ्गाच्च; अलंविस्तरेण, तस्मात्स्वाभाविकभेदाभेदाश्रयभूतमेव परब्रह्म श्रीपुरुषोत्तमो वेदान्तविषय इति सिद्धम्, "एकः सन् बहुधा विचचार" "एको देवो बहुधा सन्निविष्टः" "त्वमेकोऽसि बहुधा बहून्प्रविष्ट" इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

एकत्वे सति नानात्वं नानात्वे सति चैकता ।
अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपं कस्तद्वेदितुमर्हति ॥

केचिद्बहुत्वेन वदन्ति–
देवमेकात्मना केचिदिमं पुरातनम् ॥
वेदान्तसंस्थापितसत्वयुक्तम् ।
द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्म ॥
इत्यादिस्मृतेः ।

"अंशो नानाव्यपदेशाद्" "अन्यथा चापिदासकितवादित्वमधीयते" "एक उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवदित्यादिसूत्राच्च । ननु भेदप्रयुक्तोऽभेदस्तत्प्रयुक्तश्च भेद इति स्वाभाविकभेदाभेदपक्षस्याप्यन्योन्याश्रयदोषग्रस्तत्वात् अवच्छेदकाभावाच्च कथं निर्दोषत्वमिति चेन्न, न तावद्भेदाभेदनिरूपणे भेदाभेदयोः प्रयोज्य प्रयोजकत्वं येनोक्तदोषप्रसङ्गः स्यात्, अपि तु स्वतन्त्रपरतन्त्रसत्वनिर्णयोपयिकयोर्नियन्तृत्वनियम्यत्वयोः सत्त्वान्नोक्तदोषसंसर्गावकाशः, आत्मा हि परमस्वतन्त्रोपाधिगुणः, सर्वस्य वशीसर्वस्येशानः" "एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः" "अज्ञो जन्तुरनीशश्च आत्मनः सुखदुःखयोः" "ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वाश्वभ्रमेव वे" त्यादिश्रुतिभ्यः, नाप्यनुगतावच्छेदकाभावः, अखण्डोपाधिरूपानुगतावच्छेदकस्य सत्वात्, ननु स्वाभाविकभेदाभेदवादेपि ब्राह्मणः स्वत एव जीवभावाभ्युपगमात् गुणवद्दोषाश्च स्वाभाविका भवेयुरिति निर्दोषब्रह्मतादात्म्योपदेशा विरुद्धा एवेति चेन्न, स्वरूपतो जीवेशयोरभेदानभ्युपगमात्, तथा हि ब्रह्मणश्चेतनाचेतनयोश्च स्वरूपेणाऽभेदाभावः इतरेतरात्यन्तविलक्षणत्वात् "अस्थूलमनणु" इत्यादिश्रुतेः, तत्र चेतनस्याणुत्वेन निर्देशार्हत्वम् अचेतनस्य स्थूलत्वेन ब्रह्मणश्च तयोर्विलक्षणत्वेनेति

विवेकः, एवमेव तस्य तयोश्च सर्वात्मत्वसर्वनियन्तृत्वसर्वव्यापकत्वस्वतन्त्रसत्वसर्वाधारत्वादियोगेन ब्रह्मात्मकत्वतन्नियम्यत्वतद्व्याप्यत्वात्तत्तन्त्रसत्वपराधेयत्वादियोगेन चाभेद इति सिद्धान्तजाह्नव्यां श्रीदेवाचार्यपादैर्दत्तोत्तरत्वात्, विशेषश्च तत्रैव द्रष्टव्यः, ननु भेदाभेदयोरितरेतरविरुद्धत्वात्कथं सामानाधिकरण्यमिति चेन्न, श्रुतिगम्यत्वात् न तर्केण परास्तुं शक्यः, अन्यथा "ऽणोरणीयान्महतो महीया" नित्यादिपरस्परविरुद्धत्वाद्धेयमेव भवद्भिर्वैदिकैः, न च तेषां श्रुतिप्राप्तत्वाद्व्यवस्थयैव भाव्यमन्यथाश्रुतिबाध इति वाच्यम्, प्रकृतेपि तुल्यत्वात् इत्यलं विस्तरेण, विशेषस्तु श्रुत्यन्तकल्पवल्ल्यामुक्तः, एतेषां संशयानां नाशक इत्यर्थः, चकारो विपर्ययादिसमुच्चयार्थः। भिन्नाभिन्ने स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तकल्याणगुणाब्धौ ब्रह्मणि औपाधिकभेदाश्रयत्वकल्पितभेदाश्रयत्व-केवलभेदाश्रयत्वविशिष्टाद्वैतत्वादि-पक्षेष्वेकतमस्य कल्पनं निर्गुणत्वमायाकल्पितगुणवत्त्वं वा विपर्ययज्ञानं श्रुतिविरुद्धत्वादनुपपन्नत्वाच्च, एवमन्यदप्यनुसन्धेयम्, तथा भूतविपर्ययान् भिनत्तीति विपर्ययभेत्तेति चकारार्थः।

तत्र हेतुमाह—सर्वागमविशारद इति।

सर्वेष्वपि आगमेषु शास्त्रेषु विशारदो निपुणः नित्यमुक्तत्वेनापरिच्छिन्नज्ञानत्वात् "सदा पश्यन्ति सूरयः" इति श्रुतेः, पदवाक्यप्रमाणनिर्णयविषयककौशल्यासाधारणाश्रयः, अन्यथा संशयभेत्तृत्वासम्भवात्, हेतुहेतुमद्भावो वात्र विवक्षितः सर्वसंशयभेत्तृत्वात्सर्वागमविशारदः, सर्वागमविशारदत्वाद्वा सर्वसंशयभेत्तेत्यर्थः "सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ"मितिश्रुत्युक्तलक्षणं वाऽत्र विवक्षितम्, तथा च श्रोत्रियपदस्य सर्वागमविशारद इति व्याख्यानम्, ब्रह्मनिष्ठमिति पदस्य सर्वसंशयभेत्तेति बोध्यम्, उभयविधानावच्छिन्नानुभूत्यसाधारणाश्रयत्वादाचार्यपादामिति संक्षेपः ॥ ९ ॥

जो स्वयं अमानी (देहादि में आत्मत्वाभिमान से शून्य) है और अपने आश्रितों के भी इसी प्रकार मान का खण्डन करते हैं, इसलिए मान्य हैं (पूजनीय हैं)। अपने भक्तों में ज्ञान वैराग्यादि की भावना अभिवर्द्धित करते हैं, उनमें भगद्विषयक अनुराग धारण कराते हैं, सब प्रकार के संशयों को दूर कराते हैं और सम्पूर्ण आगमशास्त्र के विशारद हैं ॥ ९ ॥

कालादिसम्बन्धाभावं दर्शयन् नित्यमुक्तत्वं दर्शयति —कालकर्मगुणातीत-इति।

कालकर्मगुणातीतः सर्वदाचारतत्परः।
श्रीकृष्णस्य कृपापात्रं प्रेमसम्पुटपुष्कलः ॥ १० ॥

कालः भूतभविष्यद्वर्त्तमानचिरक्षिप्रादिप्रत्ययासाधारणहेतुः प्राकृतद्रव्यादेः तत्सम्बन्धचेतनस्वभावादेर्ज्ञानसङ्कोचादेश्च परिणमनादिहेतुश्च, कर्माणि सञ्चितक्रियमाणप्रारब्धरूपाणि पुण्यापुण्यलक्षणानि गुणाः सत्वरजस्तमांसि; उपलक्षणं चैतत् क्लेशतापविकारादीनाम्, तत्र क्लेशः पञ्चधा, "अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः" "तापस्त्रिधा, अध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकभेदात्, विकारः षड्विधः, जन्मास्तित्ववृद्धिपरिणामापक्षयनाशभेदात्, तत्प्रयोजकप्रकृतिसम्बन्धश्च, एभ्योऽतिक्रान्तः, सर्वदेति अत्रान्वेतव्यः, एतेन नित्यमुक्तलक्षणमप्युक्तं भवति, । त्रैकालिकसंसारदुःखविषयकसामान्यज्ञानानाश्रयत्वे सति सदैव स्वभावतो भगवदनुभावितततस्वरूपगुणादिविषयकानुभववत्त्वं तत्त्वम्. अस्य च तत्र समन्वयात् तथात्वमित्यनवद्यम्;

किञ्च—सर्वदाचारतत्पर इति ॥

सर्वस्मिन्नपि काले भगवच्छास्त्रोक्ताचारपरायणः । यद्वा सर्वदश्चासावाचारतत्परश्चेति विग्रहः, सर्वेभ्यो भक्तेभ्यो वाञ्छितं ददातीति सर्वदः, यद्वा सर्वं पुरुषार्थं ददातीति तथोक्तः, यद्वा सर्वमनाचारतन्मूलदोषं सदाचारप्रतिबन्धकं द्यतिखण्डयतीति तथा, यद्वा सर्वानपि स्वाश्रितान् तद्बुद्धीश्च स्वानुग्रहेण दायति शोधयतीति तथोक्तः सर्वदः, आचारः शास्त्रोक्तभागवतधर्माचरणरूपः स एव परः प्रधानं यस्य स चासौ सचेत्यर्थः,

अत एव श्रीकृष्णस्य कृपापात्रम् इति ।

सर्वदेशकालादिषु तदनुकूलाचारपरत्वादेव तस्य प्रेष्ठः ।

किञ्च—प्रेमसम्पुटपुष्कल इति ।

प्रेम्णो भगवदीयगुणादिविषयकस्य सम्पुटः स चासौ पुष्कलश्चेति विग्रहः सदैवाविर्भूतभगवद्विषयकानुभूतित्वात् ॥ १० ॥

जो भूत, भविष्य, वर्त्तमान, क्षिप्र आदि काल से प्रकृतद्रव्यादि के संकोचनादि कर्म एवं सत्त्व, रज, तम आदि गुण से परे हैं, सर्वदा आचार में तत्पर हैं, श्रीकृष्ण के कृपापात्र हैं, और भगवदीय गुणादि से आकृष्ट होने के कारण प्रेम के सर्वोत्तम सम्पुट हैं ॥ १० ॥

निर्विकारत्वं दर्शयन्नाह—तारुण्यमित्यादिना ।

तारुण्यं वयसा प्राप्तो न विकारमनाः क्वचित् ।
एतत्सुमहिमा कोऽपि विरलो दृश्यते भुवि ॥ ११ ॥

वयसातारुण्यं प्राप्तोऽपि काले विकारमना न भवति भवानिति संबन्धः

विकारहेतोः प्रकृतिसंबन्धादेरभावात् ब्रह्मवत् ।

तथाभूतस्यात्यन्तदौर्लभ्यं दर्शयन्नन्यानपि अवतारविशेषान् सूचयन्नाह—एतत्सुमहिमेति ।

एष सुष्ठु महिमा यस्य स तथाभूतो भवादृशो भुवि विरलो दृश्यते न बहव इति यावत्, "एष महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्द्धते नो कनीया" निति श्रुतेः ॥ ११ ॥

हे गुरुदेव अवस्थावश आप युवावस्था प्राप्त कर भी कभी कामादि विकार से विकृत नहीं हुये । क्योंकि आप में प्रकृति के सम्बन्ध का अभाव है, अतः आप शुद्ध ब्रह्मस्वरूप हैं । आप के अवतारी पुरुष होने के यही लक्षण हैं । इस प्रकार की महिमा से मण्डित कोई विरला ही पृथ्वी में दिखाई पड़ता है ॥ ११ ॥

अथ स्वभक्तानां साधनाभावेऽपि पुरुषार्थसाधकत्वं श्रीभगवत आचार्यस्य व्यञ्जयन्स्तौति—किंदुरापादनं तेषां कृष्णमार्गानुवर्त्तिनामिति ।

किंदुरापादनं तेषां कृष्णमार्गानुवर्त्तिनाम् ।
असिद्धमपि सिद्धं स्यात्तत्कृपापाङ्गवीक्षणैः ॥ १२ ॥

कृष्णस्य मार्गोऽत्राऽऽचार्योपदिष्टसम्प्रदायाश्रयणम्,

तदनुवर्त्तिनां दुरापादनं दुःसाध्यं किं न किमपि दुःसाध्यमित्यर्थः, कुत इत्यत्राह असिद्धमपि सिद्धं स्यादिति, अनेकैरप्युपायैरप्यकृतात्मभिः सत्सम्प्रदायशास्त्राचार्यपराङ्मुखैरसिद्धमप्राप्यमपि तेषां तत्साधनाभावेऽपि सिद्धं स्यादिति । या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ।

तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः । इत्यादिस्मृतेः ।

ननु साधनं विना फलं सिद्धिः कथमसम्भवात् अन्यथा सर्वेषामपि तदापत्तिर्दुर्वारा साधनाभावाविशेषादित्याशङ्कानिरासार्थमाह—तत्कृपापाङ्गवीक्षणैरिति ।

तस्य कृपया सह अपाङ्गः कटाक्षस्तेन वीक्षणानि तत्कृपापाङ्गवीक्षणानि तैः तस्य कृपार्द्रकटाक्षावलोकनैरित्यर्थः, "यमेवैषवृणुते तेन लभ्य" इति श्रुतेः,

तत्प्रसादादवाप्नोषि शाश्वतं पदमव्ययम् ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

इति श्रीमुखोक्तेः ॥ १२ ॥

आचार्योपदिष्ट कृष्णमार्ग का अनुसरण करने वाले आप जैसे लोगों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है क्योंकि सत्सम्प्रदाय सच्छास्त्र एवं आचार्य से पराङ्मुख अभागा व्यक्ति लाख प्रयत्न करने पर भी जो नहीं प्राप्त कर सकता, ऐसा असाध्य भी कार्य श्रीकृष्ण कृपा कटाक्ष के वीक्षण से अनायास सिद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

अथ गुणान्तरमाह—त्यक्तसर्वदुराचार इति ।

त्यक्तसर्वदुराचारः कृष्णचर्यापरिग्रहः ।
भावनाशुद्धसर्वत्रः पक्षपातविवर्जितः ॥ १३ ॥

त्यक्तस्त्याजितः सर्वेषां स्वाश्रितानां दुराचारो येन सः सदाचारोपदेष्टृत्वात्, यद्वा लोकदृष्टचैषोक्तिः, सर्वोऽपि दुष्टो विपर्यय आचारो यस्य स सर्वदुराचारो बाह्यान्तःकरणवर्गो बुद्धीन्द्रियादिगणः "पराञ्चिखानिव्यतृणत्स्वयं भूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्म" न्निति श्रुतेः, त्यक्तः सर्वदुराचारः पराङ्दृष्टचसाधारणहेतुः करणवर्गो येन सः संयमितबाह्यान्तःकरण इत्यर्थः, यद्वा सर्वैर्दुराचारैस्त्यक्त इति त्यक्तसर्वदुराचारः सुदर्शनावतारत्वेनाऽसह्यतेजस्त्वात् तत्सकाशात्सर्वे दुराचाराः स्वयमेव पलायिताः, यथा प्रदीप्ताग्नेरिव वनं त्यक्त्वा मृगा दिशो दिशो धावन्ति तद्वदित्यर्थः ।

किञ्च—कृष्णचर्यापरिग्रह इति ।

किञ्च कृष्णचर्या एव परिग्रहः परिकरो यस्य सः नैष्ठिकत्वात् संग्रहान्तरशून्य इत्यर्थः, यद्वा कृष्णाचर्यायै एव परिग्रहः संग्रहो यस्य न स्वार्थं परार्थं वेति, यद्वा कृष्णचर्यायै तत्प्रवृत्यर्थमेव परिग्रहोऽवतारो यस्य सः ।

किञ्च—भावनाशुद्धसर्वत्र इति ।

भावनया जीवोद्दिदधीर्षालक्षणया शुद्धो भावनाशुद्धः सर्वत्रः स चासौ स चेति विग्रहः, यद्वा भावनया स्वोद्दिष्टश्रीकृष्णध्यानसन्तत्या कृत्वा शुद्धान् विगतरागादिदोषान्सर्वानपि स्वाश्रितांस्त्रातीति तथोक्तः, विसर्गाभावपाठे सम्बोधनं तद्भावे च विशेषणमिति द्विविधोऽपि पाठः सामञ्जसः समानार्थश्च बोध्यः ।

गुणान्तरमाह—पक्षपातविवर्जित इति ।

असौ शत्रुरसौ मित्रमिति पक्षपातः पशुतुल्यानां देहात्माभिमानिनां यथा भवति तेन शून्यः रागादिविषयरहित इत्यर्थः, ननु तर्हि कथमाचार्यत्वाधिकारनिर्वाहस्तस्यानुग्रहनिग्रहादिसाध्यत्वात् तद्योगे च वैषम्यादेरवश्यम्भावित्वात्कथं पक्षपातशून्यत्वमिति चेत्सत्यम् भगवदवतारवत् सर्वस्यापि

सामञ्जस्यात् तद्धितार्थं तेषां निग्रहा न वैषम्यावहः अन्यथा श्रीपुरुषोत्तमेऽपि तत्प्रसङ्गस्य दुर्वारत्वादिति सङ्क्षेपः ॥ १३ ॥

आप स्वयं सभी प्रकार के दुराचारों से दूर रहने वाले हैं। शिष्यगणों के भी दुराचार को दूर कर देते हैं, अथवा सुदर्शनावतार से अवतरित होने के कारण आप के असह्य तेज से सारे दुराचार स्वयं आप को त्याग कर भाग जाते हैं। नैष्ठिक होने के कारण आप अन्य परिग्रह शून्य कृष्णचर्यामात्र का परिग्रह करने वाले हैं। आप जीवों के उद्धार की कामना रखते हैं इसलिये भावना से सर्वत्र शुद्ध हैं। राग, द्वेष आदि विषयों से शून्य होने के कारण आप मे पक्षपात का अभाव हैं अतः आप समदर्शी हैं ॥ १३ ॥

अथ गुणविशेषान्दर्शयन्नाह—सत्यवागिति।

सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः कृतसिद्धान्तनिर्णयः।
वृद्धसेवी वृद्धिकर्त्ता भर्त्ता सर्वस्य पालकः ॥ १४ ॥

सत्यावाचो यस्य सः यथार्थवक्तेति यावत् अनेन तस्याप्तत्वमुक्तं भवति नित्यमुक्तत्वेन बुद्धिमान्द्यदुराग्रहादिभिराप्तत्वप्रतिभटैः सदैवास्पृष्टमाहात्म्यत्वात्।

अत एव सत्यसङ्कल्प इति।

अथ पूर्वोक्तसर्वशास्त्रविशारदत्वं व्यञ्जयन्नाह—कृतसिद्धान्तनिर्णय इति।

कृतो वेदानां सिद्धान्तनिर्णयो येन सः, यद्वा कृती छेदने इत्यस्य धातोः प्रयोगः कृत्तः छिन्नः सिद्धान्तविरोधिनां निर्णयो येन सः,

किञ्च—वृद्धसेवीति।

वृद्धाः ज्ञानादिवृद्धाः श्रीनारदादयस्तान् सेवनशीलः, यद्वा वृद्धो गुणशक्त्यादिभिर्बृहत्तमो भगवान्वासुदेवः परब्रह्मशब्दाभिधेयः, "बृहन्तो गुणा अस्मि"न्निति श्रुतेः तं सेवनशीलः;

किञ्च—वृद्धिकर्त्तेति।

स्वाश्रितानां वृद्धिं बृहद्ज्ञानप्रकाशरूपां करोतीति तथा

किञ्च—भर्त्तेति।

ज्ञानभक्त्यादिना भक्तान् विभर्त्तीति।

तत्रहेतुः सर्वस्य पालक इति।

"सर्वे श्रेयांसि पश्यन्तु" इत्यादि शास्त्रोक्तसर्वविषयकश्रेयः सङ्कल्पपूर्वकोपदेशप्रभावेन सर्वस्य जगतो भाविश्रेयस्कस्य पालक इति भावः ॥ १४ ॥

आप सर्वदा सत्य बोलने के कारण आप्त पुरुष हैं। नित्य मुक्त स्वरूप होने के कारण सत्य संकल्प हैं, आप वेद सिद्धान्त के निर्णेता हैं, तथा विरोधियों के सिद्धान्त का उच्छेद करने वाले हैं। वृद्ध देवर्षियों और महर्षियों की सेवा करने वाले हैं अथवा गुणशक्ति से वृद्ध (बृहत्तम) भगवान् वासुदेव की सेवा करने वाले हैं। किञ्च अपने आश्रित भक्तों के आत्मज्ञान रूप प्रकाश को बढ़ाने वाले हैं। यतः आप सभी के पालक हैं इसलिये विशेष रूप से अपने भक्तों को ज्ञान तथा वैराग्य प्रदान कर उनका पालन करते हैं ॥ १४ ॥

किञ्च मन्दानां शाठ्यनिवृत्त्या सर्वसौभाग्यदायक इति।

मन्दानां शाठ्यनिवृत्त्यासर्वसौभाग्यदायकः।
आचारवैरिणो हन्ता कार्यसिद्धिप्रदायकः ॥ १५ ॥

मन्दा अल्पबुद्धयस्तेषां शाठ्यं शठस्य भावो वञ्चकता तस्य निवृत्त्या निवारणेन सुष्ठु भगः षाड्गुण्यं यस्य स सुभगः भगवान् श्रीकृष्णः—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।

इति श्रीपराशरोक्तेः (विष्णुपुराणे)।

सुभगस्य भगवतो भावः सौभाग्यं परं श्रेयः मोक्षः सर्वस्मै तस्य दायकः। किञ्च—आचारवैरिणो हन्तेति।

आचारः शास्त्रोक्तसदाचारः भागवतधर्मस्तस्य वैरिणो बाह्यास्तान्त्रिका वा राक्षसा वा तान् हन्तीति तथा सः।

किञ्च कार्यसिद्धिप्रदायक इति।

क्रियते इति कार्याणि अनुष्ठेयानि पुरुषार्थसाधनानि कर्मज्ञानादीनि तेषां सिद्धिस्तत्प्रतिबन्धकनिरासेन स्वरूपसंपत्तिस्तां प्रकर्षेण ददातीति तथा सः ॥ १५ ॥

आप मन्द बुद्धि वाले जीवों की वञ्चकता को दूर कर उन्हें सभी प्रकार के सौभाग्य जैसे ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य प्रदान करते हैं, शास्त्रोक्त सदाचार के वैरियों के निहन्ता हैं तथा पुरुषार्थ चतुष्टय के साधन भूत कर्म तथा ज्ञान के देने वाले हैं ॥ १५ ॥

किञ्च—आचारभ्रष्टजीवानां शनैर्युक्त्या प्रबोधयन्निति ।

आचारभ्रष्टजीवानां शनैर्युक्त्या प्रबोधयन् ।
भगवन्मार्गशुद्धया च कृतार्थीकृतभूतलः ॥ १६ ॥

आचारः सम्प्रदायशास्त्रोक्तधर्मानुष्ठानं तस्माद् भ्रष्टाश्च्युतास्तद्धीना इति यावत् ते च जीवाश्च तेषामनादिकालाद्धर्महीनानां शनैस्तत्तदधिकारानुसारेण तत्तद्बुद्ध्यनुसारेण च क्रमशः यथा मन्दोऽपि जानीयात्तथाभूतया युक्त्या भगवत्प्राप्तिसाधनपरम्परोपदेशेनेत्यर्थः । अकृतार्थं कृतार्थं क्रियते इति कृतार्थीकृतं भूतलं येन सः ॥ १६ ॥

शास्त्रोक्त आचार तथा संप्रदायानुगत धर्मानुष्ठान से भ्रष्ट जीवों को भगवत्प्राप्ति रूप मार्ग से शुद्ध कर युक्तिपूर्वक उनको ज्ञान प्रदान करते हैं इस कारण आप इस पृथ्वी को कृतार्थ करने वाले हैं ॥ १६ ॥

सम्प्रदायविमुखान् शोचन्नाह—हतलोको यमिति ।

हतलोकोऽयमज्ञः स्याद्वर्त्तमाने विभावसोः ।
आचार्यरूपिणः सम्यक् जाड्यशीतेन दाह्यते ॥ १७ ॥

वर्त्तमानसमये आचार्यरूपिणो विभावसोः शरणं विनाऽयं हतलोकः स्यादित्यध्याहृत्यान्वेतव्यं, "पृथक् विना नाना" इति सूत्रात्पञ्चमी, अयं जीवसंघातः हता नष्टा लोका यस्य सः, यद्वा हतो लोकः प्रकाशो ज्ञानं यस्य सः तथाभूतः सन्नज्ञः स्यात्, सम्भावनायां लिङ् ।

अज्ञत्वे हेतुमाह—जाड्यशीतेन दाह्यते इति ।

जडस्य भावो जाड्यं तदेव शीतं तेन दाह्यते जडीकृत्य नाश्यते इत्यर्थः । तथा च मोक्षधर्मे जनकः ।

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः कृतः ।
गुरुः पारयिता तस्य ज्ञानं प्लवमिहोच्यते ॥ इति ॥ १७ ॥

वर्त्तमान काल में आचार्य रूपी अग्नि के शरण ग्रहण न करने के कारण यह सारा लोक प्रकाश हीन होकर अज्ञ हो जाता है और जड़ता रूपी शीत से नष्ट हो जाता (इसलिये आप उन्हें ज्ञान देकर मोक्ष धर्म प्रदान करते हैं) ॥ १७ ॥

सर्वानप्युपदिश्य वात्सल्याद्यसाधारणगुणयोगात्तद्धितश्रुत्युक्तासाधारणश्रेयः साधनमुपदिशन्नाह—सत्यवाक्यं च श्रृणुतेति ।

सत्यवाक्यं च शृणुत त्यक्त्वा तर्कवितर्कताम् ।
आचार्यशरणं यात कलौ निस्तारहेतवे ॥ १८ ॥

हे जना इति सम्बोधनमध्याहर्त्तव्यं, हे जनाः भवतां हितोपदेष्टुरुद्दिधीर्षोर्मम सत्यं यथार्थमबोधितविषयकं वाक्यं शृणुत।

किं तद्वाक्यम्, अस्माकं हितं चेत्तर्हि कथ्यतामित्यात्राह—तर्कवितर्कता त्यक्त्वा आचार्यशरणं यातेति।

तव वाक्यार्थाङ्गीकारे श्रेयोऽस्माकं स्याद्वानवेत्यादि सङ्कल्पविकल्पादिकं संशयं विपर्ययादिरूपमयथार्थत्वं वा त्यक्त्वा, "संशयात्मा विनश्यति" नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मन" इत्यादिशास्त्रात्, स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" "आचार्य देवो भवे"त्यादिश्रुतेः, "आचार्योपासनं शौचम्" इति भगवदुक्तेश्च।

तत्प्रयोजनमाह—कलौ निस्तारहेतव इति।

संसारादिति शेषः, संसारभ्रमणदुःखनाशार्थमिति यावत् कलिशब्दप्रयोगादस्मिन्युगे आचार्याश्रयणस्य मुख्यत्वं द्योतितम्॥ १८॥

हे हे मनुष्यों! आप लोग अपने उद्धार के लिये मेरी सत्य वाणी सुनिये। यदि इस कलियुग में अपना उद्धार चाहते हैं तो आचार्य की शरण में जाइये॥ १८॥

वात्सल्यादिगुणान् दर्शयन्नाह—भक्तानुग्रहकर्त्ता चेति।

भक्तानुग्रहकर्ता च सर्वसौख्यप्रदः शुभः।
बालबोधी कृपादृष्टिर्निर्वृत्तरहितः परः॥ १९॥

भक्तेभ्यः आत्मानन्यभजनशीलेभ्योऽनुग्रहकर्त्ता, अनुग्रहो नाम स्वात्मीयतयानुग्रहणमात्मसात्करणम् आत्मसात्कर्त्तेत्यर्थः—

अनुग्रहफलमाह—सर्वसौख्यप्रद इति।

सर्वं सौख्यं मोक्षलक्षणं ददातीति तथा, यद्वा सर्वेभ्यः सौख्यं प्रददातीति तथा,

अतः शुभ इति, सर्वमङ्गलमूर्तित्वात् स्वयं कल्याणरूपः।

किञ्च बालबोधीति, बाला अज्ञाः शास्त्रसंस्कारवर्जितास्तान् बोधनशीलः।

किञ्च कृपादृष्टिरिति, सौम्यदृष्टिरित्यर्थः।

किञ्च निर्वृत्तरहित इति, नितरां वर्त्तते इति निर्वृत्तः प्रकृतिसम्बन्धस्तद्रहितः नित्यमुक्तत्वात्, अत एव परः पूर्णः श्रेष्ठो वा॥ १९॥

अब आचार्य के गुणों का वर्णन करते हैं—

हमारे आचार्य भक्तों पर अनुग्रह करते हैं, उन्हें सभी प्रकार के ज्ञान एवं वैराग्यादि

सौख्य प्रदान करते हैं, मङ्गल स्वरूप हैं, शास्त्रसंस्कार से वजित अतएव अज्ञों को को ज्ञान देते हैं। कृपा की दृष्टि रखने वाले हैं, नित्यमुक्त होने के कारण प्रकृत सम्बन्ध से रहित अतएव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

किञ्च—आकारो भक्तिमार्गस्येति ।

आकारो भक्तिमार्गस्य भेदरत्नसमन्वितः ।
अनन्तभावभक्तिश्च लभ्यतेऽत्र समाहितः ॥ २० ॥

निगमनस्थानं भक्त्युत्पत्तिस्थानमित्यर्थः । किञ्च भेदरत्नसमन्वित इति । भिद्यतेऽनेनेति भेदः साक्षात्काररूपानुभवः संशयविपर्ययकोशहृदयग्रन्थिभेदकत्वात् ।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

इति श्रुतेः ।

स एव रत्नरूपस्तेन समन्वितो भूषित इति ।

किञ्च अनन्तभावभक्तिश्च लभ्यतेऽत्रेति । अत्र भगवति श्रीमदाचार्ये भगवद्रूपे अनन्तभावभक्तिर्लभ्यते अनन्तोऽपरिच्छिन्नो भावः स्वभावो यस्याः सा अनविच्छिन्नस्वभावा भक्तिरित्यर्थः । यद्वा त्वत्तः सकाशात् अत्र भगवति रमानिवासे श्रीकृष्णे विषयेऽनन्तभावभक्तिस्त्वद्दीयमाना त्वदनन्यभक्तैर्लभ्यते प्राप्यत इति योजना ।

तत्र हेतुमाह—समाहित इति ।

भवान्सर्वेष्वपि कालेषु स्वाश्रितानां परभक्तिदाने समाहितः सावधानः एतदर्थकावतारत्वाद्भवत इत्यर्थः ॥ २० ॥

भक्तिमार्ग के तो आप साक्षात् स्वरूप ही हैं, संशय, विपर्यय आदि हृदयग्रन्थियों के भेदन करने वाले हैं तथा रत्न रूप ज्ञान से परिपूर्ण हैं। यतः सभी कालों में आप अपने आश्रितों को पराभक्ति देने के लिये समाहित रहते हैं, इसलिये भक्ति स्वभावतः अनन्त रूप से सर्वदा आप आचार्य में निवास करती है ॥ २० ॥

किञ्च स्वार्थहीन इति ।

स्वार्थहीनः परार्थी च महोदारदयानिधिः ।
यौवनैश्वर्यसामग्री येन विष्णौ निवेदिता ॥ २१ ॥

स्वस्मै अर्थ्यन्ते इष्यन्ते इति स्वार्थाः शब्दादयो विषयास्तैर्हीनस्तत्संकल्प-

शून्यः स्वभावतोऽस्पृष्टवासनासंस्कारत्वात् ।

अत एव परार्थी चेति । परेभ्योऽर्थः परार्थः संसारदुःखनिवारणरूपः स विद्यतेऽस्येति परार्थी संसारचक्रभ्रमणदुःखपीडितजनतोद्धारणार्थवान् जगदुद्दिधीर्षुरित्यर्थः, यद्वा परस्मै भगवतेऽर्थः परार्थः तदाज्ञाप्रवर्त्तनरूपोऽस्य विद्यते स परार्थी भगवदाज्ञारूपभागवतधर्मोपदेष्टेत्यर्थः, परार्थित्वादेव महोदारदयानिधिः, अतिमन्देभ्योऽपि स्वप्रपन्नेभ्यो भगवत्स्वरूपादिविषयकज्ञानदानशीलत्वान्महोदारः "यो वा एतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैति सकृपण" इति श्रुत्युक्तकार्पण्यहर्त्तृत्वात् ।

कार्पण्यहरणोत्सुक इति वक्ष्यते च ।

कथमेवंविधस्वभावः, यतो दयानिधिः, निर्हेतुकपरदुःखदुःखित्वे सति तन्निराचिकीर्षा दया, तस्या निधिः दयासमुद्र इत्यर्थः । महोदारश्चासौ दयानिधिश्चेति तथा सः, दयागुणवश्यत्वात्प्रपत्तिमात्रेणापि तत्तदभीष्टं ददातीति भावः, ननु सर्वोऽपि जनः स्वप्रपन्नाय यथाशक्ति ज्ञानादि ददात्येव दयानिधेः कथं प्रपत्तेरपेक्षा तथात्वे वैषम्यापत्तेर्दुर्वारत्वादिति चेन्न, अप्रार्थितो न गोपाये"दित्यादिशास्त्रात्प्रपत्तिरपेक्षितैव अन्यथा सर्वमोक्षप्रसङ्गात् वैषम्यस्य तु पक्षपातविवर्जित इत्यस्मिन्पदे व्याख्यामेव परिहृतत्वादलं विस्तरेण ।

इदानीं—

या वै साधनसंपत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥

इत्यादिशास्त्रात्, साधनेषु प्रपत्तेरेव प्राधान्यं दर्शयन् तदेव सम्प्रदायनिष्ठान् शिक्षयंश्च आचार्यकृतां तामेव प्रपत्तिं दर्शयति ।

यौवनैश्वर्यसामग्री येन विष्णौ निवेदितेति ।

येन भागवताऽऽचार्येण यौवनैश्वर्यसामग्री विष्णौ सर्वेश्वरे श्रीकृष्णे निवेदिता सोऽस्मदादीनामुद्धर्ते त्यध्याहृत्य योजनीयम्, "ममोद्धर्त्ता भवार्णवा"दिति वक्ष्यति, यौवनं चैश्वर्यं चानयोः समाहारः यौवनैश्वर्यं, तच्च भुक्तिमुक्त्योरुपायत्वात्सामग्रीत्युक्तम्, तत्र यौवनं यूनो भावः कर्म वा विग्रहबलचेष्टादिकम्, ऐश्वर्यम्—निग्रहादिसामर्थ्यं—

निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानता ।

इत्यनन्तरमेव वक्ष्यते । तत्सर्वं भगवति निवेदितम् ।

त्वां विना नान्यमुद्दिश्य करिष्ये किञ्चिदप्यहम् ॥

इत्यादिशास्त्रात्, तदनुवृत्यर्थकावतारत्वात् तस्योपलक्षणं चैतदात्मनोऽपि, तथा च आत्मात्मीयं सर्वं भगवदर्थमेव, आत्मात्मीयभरन्यासो भगवति कृत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

स्वार्थ (तत्तदिन्द्रियों) से शून्य होने के कारण आप स्वार्थ (इन्द्रियार्थ) से रहित हैं। अतः सत्यसंकल्प हैं। संसार के जीवों का दुःख दूर करने के कारण आप परार्थी हैं, आप जड़ से जड़ जीवों पर दया कर स्वरूपादिविषयक ज्ञान देने से महान् उदार हैं, दूसरों को दुःखी देखकर आप निर्हेतुक होकर उनका उद्धार करते हैं इस कारण दया के निधि हैं। जिन महामहिम आचार्य ने अपना यौवन अपना समस्त वैभव, किं बहुना अपनी आत्मा भी श्री विष्णु को निवेदन कर दिया है, वे आचार्य हमारा सब प्रकार से उद्धार करें ॥ २१ ॥

अथ श्रीमदाचार्ये भगवद्भावं ख्यापन्नाह—आचार्यो विष्णुरूपो हि पुराणेष्विति निर्णय इति।

आचार्यो विष्णुरूपो हि पुराणेष्विति निर्णयः।
निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानता ॥ २२ ॥

आचार्यः साक्षाद्विष्णुरूप एव तथात्वे च सर्वैः सदोपास्य इत्यर्थः।
तत्र प्रमाणमाह—पुराणेष्विति।

तथा पद्मे देवद्युतिस्तुतौ—

भक्तिर्यथा हरौ मेऽस्ति तद्वदिष्टा गुरो यदि।
समास्थितेन सत्येन स्वं दर्शयतु मे हरिः ॥ इति ॥

विष्णुधर्मे च—

देवतायां च मन्त्रे च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ।
भक्तिरष्टविधा यस्य तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥

यद्वा पुरातनत्वात् पुराणशब्दो वेदवाचक इत्युक्तार्थः, वेदेषु निर्णयो नाम निर्णीतोऽर्थः,

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परागतिः।

"आचार्य देवो भवे"त्यादि श्रुतेः,

यस्माद्देवो जगन्नाथः कृत्वा मर्त्यमयीं तनुम्।
मग्नानुद्धरते लोकान् कारुण्याच्छास्त्रपाणिना ॥
तस्माद्भक्तिर्गुरौ कार्या संसारभयभीरुणा। इति ॥

जगदाख्यानसंहितायाम् ॥

पञ्चरात्रे—

वैष्णवज्ञानवक्तारं यो विद्याद्विष्णुवद्गुरुम् ॥
पूजयेद्वाङ्मनः कायैः स शास्त्रज्ञः स पण्डितः ।
श्लोकपादस्य वक्तापि यतः पूज्यः सदैव हि ।
किं पुनर्भगवद्विष्णोः स्वरूपं वितनोति यः ॥
यावदायुस्त्रयः पूज्याः सिद्धान्तो गुरुरीश्वरः ।
पूर्वं ज्ञानाय पश्चात्तु कृतघ्नत्वापनुत्तये ॥ इति ॥

तत्रैवान्यत्र व्यतिरेके ॥

येषां गुरौ च जप्ये च विष्णौ च परमात्मनि ।
नास्ति भक्तिः सदा तेषां वचनं परिवर्जयेत् ॥ इति ॥

एवमन्यान्यपि वाक्यान्यनुसन्धेयानि ।

ऐश्वर्यासाधारणगुणौ दर्शयन्नाह—
निग्रहानुग्रहाभ्यां वै श्रीकृष्णेन समानतेति ।

यथा श्रीकृष्णः कंसमिथ्यावासुदेवादीनां निग्रहाधिकारिणां निगृहीतवान् पाण्डवोद्धवादीनामनुग्रहाधिकारिणां चानुगृहीतवान् तथैवायमपि भगवत्पराङ्मुखानां शास्त्रबाह्यानां निग्रहं कृत्वा स्वपादभाजां सदाचारवतां ह्यनुग्रहं करोतीति तत्साम्ये दृष्टान्तः ।

"यस्य देवे पराभक्ति"रित्यादिनाऽतिदेशवाक्येन तत्साम्यभक्तिः करणीयतया निरूपिता, विशेषशङ्का तु यथा श्रीभगवदुपासनस्य स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यता श्रुतिशतैर्विधीयते, न तथाऽऽचार्योपासनेस्येति, न च "समुद्रमेवाभिगच्छे"दित्यादेः सत्वान्नोक्तदोषयोग इति वाच्यम्, तस्य विधिवाक्यस्य पराङ्गत्वेन स्वतन्त्रविधित्वाभावादिति समाधानं तूक्तवाक्यस्य पराङ्गविधानपरत्वेपि गुरोः परमेश्वरत्वश्रवणात्तदैक्यवाक्यार्थं स्वातन्त्र्यमप्यविरुद्धम् ।

तथोक्तं श्रीनारदपञ्चरात्रे—

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परं धनम् ।
गुरुरेव परः कामो गुरुरेव परायणम् ॥
गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परा गतिः ।
अर्चनीयश्च वन्द्यश्च कीर्त्तनीयश्च सर्वदा ॥
ध्यायेज्जपेन्नमेद्भक्त्या भजेदभ्यर्थयेन्मुदा ।
उपायोपेयभावेन तमेव शरणं व्रजेत् ॥

शरीरं चासुविज्ञानं वासः कर्मगुणान्वसून् ।
गुर्वर्थं धारयेद्यस्तु स शिष्यो नेतरः स्मृतः ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

गुरुपादाम्बुजं ध्यायेद् गुरोर्नाम सदा जपेत् ।
श्रीगुरोर्वार्तां कथां चैव गुरोरन्यन्न भावयेत् ।

इत्यादिना च गुरूपासनस्य स्वातन्त्र्यविधानादिति संक्षेपः ॥ २२ ॥

पुराणों में एवं वेदों में भी इस बात का निर्णय किया गया है कि आचार्य साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं, (यथा गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुदेव परा गतिः' इति पुराणे आचार्यदेवो भव' इति श्रुतेः) आप अपनी निग्रह और अनुग्रहरूप शक्तियों से श्रीकृष्ण की समानता करते हैं अर्थात् जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने कंस मिथ्यावासुदेव आदि निग्रह योग्य शत्रुओं का निग्रह किया तथा पाण्डव एवं उद्धवादि अनुग्रह के अधिकारियों पर अनुग्रह किया उसी प्रकार भगवत्पराङ्मुखों पर आप निग्रह करते हैं और अपने सेवकों पर अनुग्रह करते हैं इसलिये आप श्रीकृष्ण के समान हैं अतः जीवों का उद्धार करें ॥ २२ ॥

पूर्वश्लोकेन गुरोः श्रीभगवतासाम्यं निरूपितम् ।

शास्त्रमुखेनेदानीं ततोऽप्याधिक्यमाविष्कुर्वन् श्रीगुरुं स्तौति—हरौ रुष्ट इति ।

हरौ रुष्टेगुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यः सर्वदेहिनाम् ॥ २३ ॥

यद्यपि हरेरप्यसाधारणवात्सल्यादियोगादिना रोषो न भवति तथापि महदपराधादिना तज्ज्ञापनार्थं रोषादिसम्भावना क्रियते जीवादृष्टोपाधिर्नेति बोध्यं स च गुरुप्रार्थनया निवर्त्तत इत्याह—गुरुस्त्रातेति ।

श्रीगुरौ रुष्टे तु न कोपि त्राणहेतुरित्याह—गुरौ रुष्टेन कश्चनेति ।

वहिर्यामिणि भगवति गुरुरूपे रुष्टे सति साक्षाद्भगवानपि त्राता न भवति कुतोऽन्य इत्यर्थः ।

नारायणोऽप्ययाति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः ।
कमलं जलादपेतं शोषयति रविर्नतोषयति ॥

इति जयदाख्यानसंहितावचनात् ।

ततः किं कार्यमित्यत आह—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यः सर्वदेहिनाम् इति।

तस्मादन्यगत्यभावात्सर्वदेहिनामिति सर्वैर्देहिभिरित्यर्थः, सर्वप्रयत्नेन येन केन प्रकारेण गुरुरेव प्रसाद्यः प्रसादनीय इत्यर्थः। तत एव श्रेय इति भावः।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्॥

इति पुराणोक्तार्थसङ्ग्रहरूपोऽयं श्लोकः॥ २३॥

अब आचार्यचरण का विष्णु से भी अधिक माहात्म्य वर्णन करते हुये कहते हैं—विष्णु के रुष्ट हो जाने पर गुरु रक्षा करने में समर्थ हैं। ऐसे तो वात्सल्य गुण विशिष्ट विष्णु भी जीव पर रोष नहीं प्रकट करते। किन्तु महान् अपराध होने पर रुष्ट हो जाते हैं उनका वह रोष गुरु की प्रार्थना के द्वारा शमन किया जा सकता है; किन्तु गुरु के रुष्ट हो जाने पर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये सभी जीवों का चाहिये कि वे अपने आचार्य को प्रसन्न रखें॥ २३॥

तस्माच्छ्रीगुरुर्मर्त्यबुद्ध्या कदापि नाऽवमाननीय इत्यात्मोद्देशेन विश्वं शिक्षयन्नाह—आचार्ये मानुषी बुद्धिर्न कर्त्तव्या कदाचनेति।

आचार्ये मानुषी बुद्धिर्न कर्त्तव्या कदाचन।
अस्माभिः श्रेय इच्छद्भिर्यतः स्थानं हि श्रेयसाम्॥ २४॥

अस्माभि आचार्ये श्रीभगवन्मनुजावतारे मानुषीबुद्धिः अस्मदादिवदसावपि मनुष्य एवेति साम्यबुद्धिरध्यवसायः न कर्त्तव्य इति निषेधवाक्यसङ्ग्रहार्थः।

यो विष्णोः प्रतिमाकारे लोहबुद्धिं करोति वा।
यो गुरौ मानुषं भावमुभौ नरकपातिनौ॥

इत्यादि निषेधशास्त्रात्।

तत्राधिकारिस्वरूपं दर्शयति—श्रेय इच्छद्भिरिति।

श्रेयो विमुखानां कामचारिणां व्यावृत्त्यर्थमिदं विशेषणं तत्र हेतुमाह—यतः स्थानं हि श्रेयसामिति।

यतः श्रीगुरोः प्रसादाच्छ्रेयसां सर्वमङ्गलानां स्थानं वैष्णवपदं वैकुण्ठाख्यं परमात्मविषयकानुग्रहो वा लभ्यत इति शेषः, यद्वा यतो यस्माद्धेतोः श्रीगुरोः तदुपासनं वा श्रेयसां स्थानं तस्मान्मानुषीबुद्धिस्तत्र कदापि न कर्त्तव्येति योजना "स हि विद्यां जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म तस्मै दुह्येन्न कर्हिचि" दितिश्रुतिः।

एकाक्षरप्रदातारमाचार्यं योऽवमन्यते ।
श्यानयोनिशतं प्राप्य चाण्डाललेष्वभिजायते ॥

इत्यादिस्मृतेश्च" ॥ २४ ॥

अपना कल्याण चाहने वाले हम लोगों को मनुष्य रूप में अवतरित साक्षाद् विष्णु स्वरूप आचार्य में 'यह मनुष्य है' इस प्रकार की बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिये क्योंकि आचार्य की कृपा से ही सर्व मङ्गल स्वरूप वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति होती है इसलिये वे सभी प्रकार के मङ्गलों के स्थान हैं। अथवा अपने आचार्य से कदापि द्वेष नहीं करना चाहिये ज्योंकि वह विद्यादान के द्वारा मनुष्य को उत्तमोत्तम जन्म का अधिकार प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥

इदानीं श्रीमदाचार्याणामनन्तगुणत्वादत्तदनुग्रहस्य देशकालादिनिरपेक्षत्वं सर्वसिद्धिहेतुत्वं च निरूपयन्स्तौति—

यस्मिन्नहनि यर्ह्येवेति ।

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव करोति कृपयाऽऽत्मसात् ।
तर्ह्येव सर्वसिद्धिः स्यान्न काङ्क्षा तिथिवारयोः ॥ २५ ॥

यस्मिन्निति । सामान्यपदप्रयोगः उत्तमदिवसादिव्यावृत्त्यर्थः, कस्मिश्चिदपि दिवसे इत्यर्थः, यर्ह्येवेति,

यस्मिन्नपि मुहूर्त्तादौ नक्षत्रतिथ्यादौ न तत्र नक्षत्रतिथ्यादिविचारापेक्षेति अन्ययोगव्यवच्छेदरूपावधारणार्थः, यस्मिन्कस्मिश्चिदपि दिवसे नक्षत्रमुहूर्त्तादौ वा करोति कृपयाऽऽत्मसात् जीवमित्यध्याहरणीयं कृपयात्मसात् करोति तर्ह्येव सर्वसिद्धिः स्यात् तस्मिन्नेव क्षणे सर्वसिद्धिः स्यादिति वाक्यार्थः, एवकारो ऽन्ययोगव्यवच्छेदार्थक इति स्वयमेव व्यवच्छेद्यं दर्शयति, न काङ्क्षा तिथिवारयोरिति स्पष्टार्थः, नक्षत्रादीनामप्युपलक्षणं बोध्यम्, ननु यदि सिद्धिहेतूनां पुष्यादिनक्षत्राणां सिद्धियोगानां तथैवोत्तमबारतिथ्यादीनामभावस्तर्हि कार्यसिद्धिरपि दुर्निरूप्या कारणाभावे कार्याभावस्य नियतत्वादित्याशङ्क्यात्यन्तायोगव्यवच्छेदार्थकेन तत्र प्राप्तेनैवकारेण परिहरति स्यादेवेति नस्यादिति न अपि तु स्यादेवेत्यर्थः,

ननु कारणाभावे कथं सिद्धिरिति चेत्तत्राह—कृपयेति ।

भवतः श्रीमत आचार्यस्य कृपाकामधेनुरूपायाः प्रधानबीजभूतायाः सत्वान्न कारणाभावशङ्कावकाश इत्यर्थः,

या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थ चतुष्टये ।

तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥

इतिस्मृतेः ।

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्य" इति श्रुतेः ॥ २५ ॥

आचार्य जिस किसी दिन, जिस किसी मुहुर्त्त में, जिस किसी तिथि और जिस किसी नक्षत्र में जीव को अपना बना लेते हैं उसी समय उस जीव को सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसलिये ऐसा संदेह नहीं करना चाहिये कि पुष्यादि नक्षत्र सिद्धि आदि योग उत्तम बार तथा उत्तम तिथि के अभाव में कार्य सिद्धि नहीं होती क्योंकि सिद्धि में गुरु कृपा ही कारण है ॥ २५ ॥

अथ संस्कारदातृत्वेन स्तुवन्नाह—पञ्चसंस्कारदायी चेति ।

पञ्चसंस्कारदायी च ममोद्धर्त्ता भवार्णवात् ।
तेषां प्रत्युपकारार्हो न कोऽपि जगतीतले ॥ २६ ॥

संस्कारो नाम कार्यान्तरयोग्यतापादनम्, यथा ब्राह्मणाद् ब्राह्मण्यां जातोऽपि उपनयनं विनाऽध्ययनयोग्यता नास्ति, तेन चाध्ययनयोग्यतापादनं तथैव तापादिसंस्कारेण भगवत्परिचर्यादियोग्यतापादनं वैष्णवत्वं संस्कारः । स च पञ्चविधः ।

तापः पुण्ड्रं तथा नाममन्त्रो यागश्च पञ्चमः ॥
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः ।

इति नारदपञ्चरात्रोक्तेः ॥

तत्र तापो नाम श्रीविष्णोरायुधशङ्खचक्रादिधारणम् ।

तथा सामवेदे—"पवित्रमग्निः अग्निर्वै सहस्रारः, सहस्रारो नेमिः नेमिना तप्ततनुर्ब्राह्मणः सायुज्यसालोक्यमाप्नोतीति" "स होवाच याज्ञवल्क्यः तस्मात्पुमानात्महिताय प्रेम्णा हरिं भजेद्यत्सुश्लोकमौलेर्धर्माण्यग्निना संधत्ते तस्माद्धामैव ब्रह्मविदाप्नोति परमिति" "पवित्रं ते विततं ब्राह्मणस्य ते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः अतप्ततनुर्न तद्धामाऽश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समास" इति "एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिह्नैरङ्किता लोके सुभगा भवेम तद्विष्णोः परमं पदं येऽभिगच्छन्ति लाञ्छिता" इत्यादि श्रुतिभ्यः ।

तद्धारणनियमस्थानानि चत्वारि ज्ञेयानि ॥
नैमिषे मथुरायां च द्वारवत्यां तथैव च ।
सुदर्शनाश्रमे चैव संस्कुर्याद्देशिकः सदा ॥
तप्तैश्चक्रादिभिर्विष्णोः शिष्यस्वाराज्यलब्धये ।
एषु स्थलेषु चक्रादेराविर्भावः सदा हरेः ॥

इत्यभियुक्तोक्तेः । विशेषस्तु गुरुनतिवैजयन्त्यामुक्तः ॥

अन्यत्र स्थलेषु कञ्चित्कालं शीतलमुद्रामेव धारयेदिति भावः ॥

विस्तृतश्च पूर्वाचार्यैस्तत्प्रकारविशेषः श्रीसदाचारप्रकाशे ॥ १ ॥

अथपुण्ड्रम्— धृतोद्र्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं
नारायणं सांख्ययोगाभिगम्यम् ।
ज्ञात्वा विमुच्यते नरः समस्तैः
संसारपाशैरिह चैव विष्णुम् ॥

इति महोपनिषदि ।

धृतोद्र्ध्वपुण्ड्रः श्रितचक्रधारी ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितम् ॥
परात्परं यो महतो महान्तम् ।

इति कमठशाखायम् ।

तिलकस्वरूपं च यर्जुर्वेदे हिरण्यकेशिशाखायाम् ॥

"हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्द्र्ध्वपुण्ड्रयो धारयति स पुण्यभाग्भवति स मुक्तिभाग्भवति" इत्यादिश्रुतिभ्यः ।

तिलकद्रव्यं च प्रधानं गोपीचन्दनमेव श्रौतत्वात् ।

"स होवाच भगवान्वासुदेवो वैकुण्ठस्थानोद्भवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैः ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद् गोपीचन्दनमाख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थादिसंस्थितं शङ्खचक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं भवति ।" इत्यादिश्रुतिभ्यः । तदभावे गङ्गातीर्थाद्युद्भवं तुलसीमूलस्थितं वा द्रव्यमपि ग्राह्यमेवेति संक्षेपः ॥ २ ॥

नामेति । वैष्णवी समाख्येति यावत्, "अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम्" इत्यादिश्रुतेः, तच्च श्रीहरिगुरुतत् क्षेत्रादिसम्बन्धवदेव धार्यं नान्यत्तत्सम्बन्धशून्यं तदन्यसम्बन्धवद्वेति विवेकः ॥ ३ ॥

मन्त्रस्तु वैष्णवः स्वसम्प्रदायपरं पराप्राप्त एव ग्राह्यो देयश्च, "अमुं पञ्चपदं मनुमावर्तयेद्यः स यात्यनायासतः केवलं तत्पदं तत्" इति श्रुतेः, यच्च श्रीरामकृष्णादिमन्त्रा न मुक्तिहेतवस्तदुपासकानां फलविशेषमात्रदायका अपितु नारायणादिमन्त्र एव मोक्षहेतुरिति केषांचित्स्वबुद्ध्युत्प्रेक्षित उद्घोषः स तुच्छ एवानुपपन्नत्वात्, तथाहि श्रीकृष्णादिमन्त्राणां मोक्षहेतुत्वं प्रमाणाभावाद्वा बाधकसत्त्वाद्वेति विवेचनीयम्, नाद्यः "अमुं पञ्चपदं मनु"-मित्यादिश्रुतीनां विद्यमानत्वात्, नापि द्वितीयः अप्रसिद्धत्वात्, यदि स्वानुभव एव प्रमाणं तर्हि तद्विपरीतस्यापि वक्तुं शक्यत्वात्, किञ्च श्रीकृष्णमन्त्रस्य

मुक्तिसाधकत्वं भवतामनिष्टं तर्हि तच्चरमोपदेशश्लोकस्यापि तद्विषयकत्वेन तुल्ययोगक्षेमात्तस्यानुष्ठानमपि व्यर्थमेव, किमर्थं नित्यजाप्यतया तस्य स्थापनं मन्त्ररहस्येषु संग्रहश्च, किञ्च श्रीनारायणात् श्रीकृष्णादिलीलावताराणां भिन्नत्वमभिन्नत्वं वा भवतामभिप्रेतम्, भेदपक्षेऽपि स्वरूपभेदो गुणशक्त्यादितारतम्यं वा, नाद्यः परमेश्वरस्यानेकत्वापत्तेः, ब्रह्मैक्यप्रतिपादकं सर्वमपि वेदान्तशास्त्रं दत्ततिलाञ्जलि स्यात्, गुणशक्त्यादितारतम्याङ्गीकारेऽपि—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते॥
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।

इत्यादिश्रीमुखोक्तयः—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

इत्यारभ्य—

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव॥

इत्यन्तं श्रीपार्थोक्तयः अथ निरवधिकातिशयकल्याणैकतानानन्तज्ञानानन्दैकस्वरूपः स्वाभाविकानवधिकातिशयज्ञानशक्तिबलैश्वर्यधैर्यतेजः प्रभृत्यसंख्येयकल्याणगुणमहोदधिरित्यारभ्य परब्रह्मभूतः पुरुषोत्तमो नारायणो ब्रह्मादिस्थावरान्तनिखिलजगत्स्रष्टास्वरूपेणावस्थितो ब्रह्मादिदेवमनुष्याणां ध्यानार्चनाद्यगोचरोऽपारकारुण्यसौशील्यौदार्यमहोदधिः स्वमेव रूपं तत्सजातीयसंस्थानं स्वस्वभावमजहदेव तेषु लोकेष्ववतीर्य तैस्तैराराधितस्तत्तदिष्टानुरूपं धर्मार्थकाममोक्षफलं प्रापयन् भूभारावतारणापदेशेनास्मदादिनामपि संसारदुःखशमनाय सकलमनुष्यनयनविषयतां गत इत्यादि भाष्यारम्भः "मत्तः परतरं नान्य" दित्यस्यापि यथा सर्वस्यापि प्रकृतिद्वयस्य कारणत्वेन सर्वाचेतनवस्तुशेषिणश्चेतनस्यापि शेषित्वेन कारणतया शेषितया चाहमेव परतरस्तथा ज्ञानशक्तिबलादिगुणयोगेन चाहमेव परः मत्तो व्यतिरिक्तं सञ्चित् ज्ञानबलादिगुणयोगि परतरं नास्तीति भवतामाचार्यभाष्यम्-परं ब्रह्म परं धाम इत्यस्य श्लोकस्य भाष्ये उदाहृतानि श्रौतवाक्यानि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यारभ्य "परं ज्योतीरूपं सम्पद्य" त्यन्तानि—

"आहुस्त्वामृषयः सर्वे" इत्यस्य भाष्ये चोक्तानि—
एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः॥
नागपर्यङ्कमुत्सृज्येहागतो मथुरां पुरीम्।
पुण्या द्वारवती तत्र यत्रास्ते मधुसूदनः॥

साक्षाद्देवः पुराणोऽसौ स हि धर्मं सनातनः ।
ये च वेदविदो विप्रा ये चाध्यात्मविदो जनाः ॥
ते वदन्ति महात्मानं कृष्णं धर्मं सनातनम् ।
पवित्राणां हि गोविन्दः पवित्रं परमुच्यते ॥
पुण्यानामपि पुण्योऽसौ मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
त्रैलोक्यं पुण्डरीकाक्षो देवदेवः सनातनः ॥
आस्ते हरिरचिन्त्यात्मा तत्रैव मधुसूदनः ।
यत्र नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ॥
तत्र कृत्स्नं जगत्पार्थं तीर्थान्यायतनानि च ।
तत्पुण्यं तत्परं ब्रह्म तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ।
तत्र देवर्षयः सिद्धाः सर्वे चैव तपोधनाः ।
आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः ॥
पुण्यानामपि तत्पुण्यं माभूत्ते संशयोऽत्र वै ।
कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः ॥
कृष्णस्य हि कृते भूतमिदं विश्वं चराचरम् ।

इत्यादिन्यार्षवाक्यानि दत्ततिलाञ्जलिकानि स्युः, किञ्च गुणशक्त्यादितारतम्याङ्गीकारेऽनीश्वरत्वप्रसङ्गः स्यात् लीलावतारोऽनीश्वरः ऐश्वर्यतारतम्ययोगात् ब्रह्मरुद्रादिवदित्यनुमानात्,

"न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः ॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतिव्याकोपाच्च ।

अपिच युष्मत्संप्रदायप्रवर्त्तकस्य भाष्यकारस्य भाष्यानङ्गीकरणे भवतामेवाचार्यविमुखत्वापत्तिर्दुर्वारेति द्वितीये भवतां प्रतिज्ञाभङ्गात् अस्माकमिष्टापत्तेश्च ।

तस्मात्सर्वेषामपि वैष्णवमन्त्राणां मोक्षहेतुत्वमेव, सकामाधिकारिणां च कामपूर्त्तये ह्युपासनात्तेषां मोक्षाभावो निर्विवादः, नारायणमन्त्रेपि तस्य तुल्यत्वादित्यलं विस्तरेण ॥ ४ ॥

यागश्चेति—यागो नाम श्रीविष्णोरर्चावतारः श्रीशालग्रामादिः "यज्ञो वै विष्णु" रिति श्रुतेः, तदर्चननियमः पञ्चमसंस्कार इति संक्षेपः; पञ्चमशब्दः अधिकसंख्याव्यावृत्त्यर्थः, एषां संस्काराणां इति यावत् चकारात् तदनुष्ठानप्रकारोपदेष्टापि बोध्यम् ।

अथ स्वस्मिन् श्रीगुरुकृतोपकारान् स्मरन्नाह—ममोद्धर्ताभवार्णवादिति ।

यद्यपि नित्यमुक्तत्वात् प्रत्युत संसारिजनतोद्दिधीर्षयावतीर्णत्वाच्च न तत्र क्लेशादिसंसारिकधर्मयोगसंभावनाद्यवकाशशङ्कापि, तथापि लोकसंग्रहार्थं तथोक्तिर्न विरोधावहा, यथा श्रीनारदस्य भगवदवतारत्वेपि अज्ञजनान् गुरूपसत्तिप्रकारं संजिग्राहयिषया श्रीसनत्कुमारस्याग्रे स्वशोकादिसंसारधर्माणामाविष्कारः "सोहं भगवः शोचामि" इत्यादि श्रुतिमुखोक्त्या, यथा वा श्रीपुरुषोत्तमस्यावतारचरिते लोकवल्लीलानुकरणत्वान्ननिर्दोषादिविरोधस्तद्वदत्राप्यनुसन्धेयम्, एवमेव पूर्वोत्तर उक्तवक्ष्यमाणवाक्येष्वपि विवेको ज्ञेयः, अन्यथा "शङ्खावतारः पुरुषोत्तमस्येत्यादिविश्वाचार्यवाक्यविरोधो दुर्वार इति संक्षेपः।

एवं चेत् तर्हि त्वया तत्प्रत्युपकारार्थमवश्यं प्रयतितव्यमित्याशङ्क्याह–तेषां प्रत्युपकारार्हो न कोऽपि जगतीतल इति।

तेषां श्रीमदाचार्यकृतोपकाराणां प्रत्युपकर्त्तुं योग्यः प्रत्युपकारसमर्थ इति यावत् न कोऽपीति, जगतीतले भूतले न जातो न जनिष्यति न वर्त्तते मनुष्यमात्र इत्यर्थः, जगतीत्युपलक्षणार्थं स्वर्गादीनां तत्रत्यैर्देवैरप्यशक्यमित्यर्थः।

ब्रह्मविद्याप्रदानस्य देवैरपि न शक्यते।
प्रतिप्रदानमथवा दद्याच्छक्तित आदरात्।

इति स्मृतेः।

यद्वा न कोऽपीति धरातले उपायो लोके वेदे च नास्तीति, अदृश्यत्वादित्यर्थः॥ २६॥

[१. ताप (श्री विष्णु के आयुधभूत शङ्खचक्रादि के चिन्ह से अङ्कित होना) २. पुण्ड्र (विष्णु के पैर की आकृति के समान मस्तक में तिलक धारण करना) ३. नाम (अपनी विष्णु भक्ति परम वैष्णव संप्रदायानुसारी रखना) ४. मन्त्र (गुरु के द्वारा शुद्ध वैष्णव नारायणादि मन्त्रों से दीक्षित होना) ५. योग (श्री विष्णु के अर्चावतार शालग्रामादि की नियम पूर्वक पूजा करना) संक्षेप में] ये पाँच प्रकार के वैष्णव संस्कार कहे गये हैं इस प्रकार इन पाँच संस्कारों को देकर जो आचार्य हम जीवों का उद्धार करते हैं, उन आचार्य को जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे प्रदान कर उनके उपकारों का बदला चुकाया जा सके॥ २६॥

अथ स्वदैन्यमाविष्कुर्वन् प्रार्थयते—कश्मलक्रोधग्रस्तोऽहम् इति।

कश्मलक्रोधग्रस्तोऽहमविद्याग्रन्थिपीडितः।
मामुद्धर जगन्नाथ चिरकालस्य दुःखिनम्॥ २७॥

कश्मलक्रोधाभ्यां ग्रस्तो वशीकृतः। तत्र हेतुमाह— अविद्याग्रन्थिपीडित इति।

सर्वदोषभूतानादिकर्मात्मिकाविद्याग्रन्थिना पीडितः यन्त्रितः हे जगन्नाथ चिरकालस्यानादिकालस्य दुःखिनं तं पूर्वोक्तकश्मलादिनुन्नं मामसाधारण-कारुण्यादियोगेनोद्धर।

जगन्नाथेति संबोधनं स्वोद्धरणहेतुद्योतकम्। यस्मात्त्वं जगदुद्धारकः ममापि जगदन्तःपातित्वाविशेषादवश्योद्धरणीयत्वमिति भावः ॥ २७ ॥

अब अपनी दीनता प्रगट करते हुए आचार्य से प्रार्थना करते हैं—मैं कश्मल तथा क्रोध से ग्रस्त हूँ। इसका कारण यह है कि अविद्या की ग्रन्थि से पीड़ित हूँ। यतः हे जगन्नाथ मैं अनादिकाल से इस भीम भवार्णव में पड़कर दुःखी हूँ। अतः हे प्रभो मेरा उद्धार करो ॥ २७ ॥

ननु अन्येपि समुद्धरणहेतव उपायाः शास्त्रेषु प्रसिद्धास्ताननुष्ठाय कृतार्थो भविष्यसीति चेत्तत्राह—किं करोमीति।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वत्तोऽन्यन्न हि दैवतम्।
सर्वे स्वार्थपरिभ्रष्टा दृश्यन्ते जगतीतले ॥ २८ ॥

न किंचिदुपायानुष्ठानं कर्तुं शक्तोस्मीति, उपायानां तदनुष्ठातॄणां च स्वातन्त्र्याभावात्, अनुष्ठानेऽपि अनुग्रहसहायं विना अकिंचित्करत्वाच्च, "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन शृण्वन्तोऽपि बहवो न विद्यु" रित्यादिना साधनानां व्यभिचारश्रवणात् तस्मात्त्वमेव शरण्यत्वेन मया वरणीय इत्याह—क्व गच्छामीति। तत्र हेतुमाह 'त्वत्तोऽन्यन्न हि दैवतम्' इति। स्पष्टार्थः।

ननु अनुग्रहकर्त्तारोप्यनेके ब्रह्मादयः उपास्यत्वेन प्रसिद्धास्तदाश्रितो भूत्वा कृतकृत्यो भव किं मच्छरणेनेत्याशङ्क्याह—सर्वे स्वार्थपरिभ्रष्टा दृश्यन्ते जगतीतले। इति।

सर्वेपि ब्रह्मरुद्रेन्द्रादयो देवाः जगतीतले लोकत्रयेऽपि स्वार्थपरिभ्रष्टाः स्वार्थो भगवत्स्वरूपादिविषयकानुभूतिविशेषः स्मृतिसंतानरूपो वा तस्मात्परिभ्रष्टास्तद्रहिता इत्यर्थः, दृश्यन्ते इत्यत्र शास्त्रेष्विति योजनीये, तथा च—

प्रजापतिं च रुद्रं चाप्यहमेव सृजामि वै।
तौ हि मां न विजानीतो मम मायाविमोहितौ ॥

इत्यादिवाक्यात्।

ब्रह्माद्याः सकला देवा मनुष्याः पशवस्तथा ॥
विष्णुमायामहावर्त्तमोहान्धतमसा वृताः।

आराध्यं त्वामभीप्सन्ते कामानात्मविशुद्धये ॥

इति वैष्णवे अदितिवचनं च ।

ते परजन्यत्वात् परोपशिक्षितत्वात् परदत्तपरिच्छिन्नैश्वर्यवत्त्वात् कर्मतन्त्रत्वाच्च नाश्रयणीया इति यावत्, स्वस्य त्राण एवाशक्ताः परत्रातृत्वस्य तु का वार्त्तेति भावः, अस्य विस्तरस्तु "नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दाद्" इत्यस्य विवरणे श्रीपुरुषोत्तमाचार्यचरणैर्विशदीकृतत्वादत्रोपरम्यते "अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्ये राजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति" इति श्रुतेः, व्याख्याता चेयं श्रीपुरुषोत्तमाचार्यपादैः, भूमोपासनस्य सार्वज्ञाद्यनवच्छिन्नफलं निरूप्य, अथोक्तोपासनदार्ढ्यार्थं परिच्छिन्नोपास्यविषयकपरिच्छिन्नफलकान्यदेवाद्युपासनपरान् मूढान्निन्दति भगवतीश्रुतिः ।

अथेति पक्षान्तरे, अत उपदिष्टसिद्धान्ताद्विपर्ययं देवान्तरमुपास्यत्वेन निश्चितवन्तः कथमिव जानन्तीत्यपेक्षायां ज्ञानस्यानुकरणमाह—अन्ये राजान इति ।

अन्ये ब्रह्मरुद्रादयोऽपि राजानः उपासिताः सन्तो मोक्षदातारः स्वतन्त्रा मोक्षार्थिनोपासानीया इति ते क्षय्यलोका भवन्ति स्वर्गपशुपुत्रादयो जन्मादिलक्षणहेतवो लोकाः फलानि भवन्ति ।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥

इति भगवदुक्तेः ।

किञ्च तेषां क्षेत्रज्ञत्वाविशेषेण मोक्षदातृत्वाऽपरिच्छिन्नैश्वर्यादियोगाभावात् मोक्षदानानर्हत्वं शिवेनैवोक्तं स्वानुभूतं चाह घण्टाकर्णो हरिवंशे—

अहं कैलाशनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ।
आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् ॥
ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ।
ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥
मुक्तिं प्रार्थयमानं मा पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥
तस्माद् गत्वा बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम् ।
मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे ॥

इत्यादिना ।

भारते कर्मपारतन्त्र्यमपि स्फुटमेव ॥
युगकोटिसहस्राणि विष्णुमाराध्य पद्मभूः ।

पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुमः ॥ इति ।
महादेवः सर्वयज्ञे महात्मा
हुत्वात्मानं देवदेवो बभूव ।
विश्वांल्लोकान् व्याप्य विष्टभ्य कीर्त्या
विराजते द्युतिमान् कृत्तिवासाः ॥

इति ।

कालपरिच्छेदोऽपि श्रूयते—

'एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशान' इत्यादि ।

किञ्च "योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मिन् स वेद यथा पशुः" इत्यादिना तदुपासकानां पशुत्वश्रवणाच्च, यद्वा स्वार्थपरिभ्रष्टत्वं नाम स्वार्थपरत्वेन परेषां धर्महानिकर्त्तृत्वं तत्र सकामानां स्वर्गादिसाधनतपोयोगादिभ्रंशकत्वं कन्दुविश्वामित्रादिचरिते प्रसिद्धं, निष्कामानां साधनभ्रंशे तु तेषां सामर्थ्यमेव नास्तीतिविवेकः, "तस्य ह न देवा नाभूत्या ईशत" इति श्रुतेः, हनेत्यव्ययपदम् अप्यर्थे, देवा ब्रह्मरुद्रादयोऽप्यस्य निष्कामानन्यभक्तस्य विदुषः अभूत्यै पराभवाय न ईशते समर्था न भवन्तीत्यर्थः, तथापि विघ्नाचरणं तेषां स्वभाव एव परश्रेयोऽसहिष्णुत्वात् "यदेतद्ब्रह्म मनुष्या विद्युस्तदेषां देवानामप्रिय" मितिश्रुतेः ॥ २८ ॥

हे प्रभो मैं आपकी अनुग्राहिका शक्ति के विना तथा सर्वथा परतन्त्र होने के कारण कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। हे प्रभो ! तुम्हारे अतिरिक्त ब्रह्म रुद्र आदि देवगण एवं अन्य राजागण इस जगत् में भगवत्स्वरूप विषयक अनुभूति विशेषरूप स्वार्थ से रहित हैं। अतः उन देवताओं के शरण में कैसे जाऊँ ? आप ही हमारे देवता हैं, आप ही हमारे रक्षक हैं ॥ २८ ॥

किञ्च अनन्यशरणत्रातेति ।

अनन्यशरणत्राता रक्षकः शरसम्मतः ।
निरयक्लेशसन्त्रस्त आगतोऽस्मि तवान्तिके ॥ २९ ॥

नान्यः शरणमुपायादिश्रेयोहेतुर्येषां तेऽनन्यशरणाः स्वपादमूलैकसाधनकास्तेषां त्राता रक्षकः सर्वेषां भक्तानामिति शेषः ।

किञ्च शरसम्मत इति । श्वासात्मना शरति ब्रह्मणो निःशरतीति शरो वेदः "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद" इति श्रुतेः, तस्य सम्मतस्तत्तुल्यः यथा मात्रादेरपि वत्सलतरो वेदो जीवानां पुरुषार्थबोधनेन तद्रक्षकस्तद्वत्, यद्वा शरति निश्शरत्यस्माद्विश्वमिति शरः

श्रीभगवान् पुरुषोत्तमस्तत्सम्मतस्तत्तुल्यः तदनुकूलो वेति, तत्र त्राता रक्षक इत्यनयोः सामान्यविषयपरत्वेन पुनरुक्तिर्निरसनीया, तत्र त्रातृत्व बुद्ध्यादीनां कामादिविषयेभ्यो विमुखीकर्तृत्व रक्षकत्वं च बहिःकरणानां शब्दादिभ्यो रक्षणमिति विवेकः।

उक्तलक्षणस्य त्रातुस्तव अन्तिके च चरणयोः छायायामागतोऽस्मि प्राप्तोऽस्मि कुत इत्यपेक्षायां हेतुमाह-निरयक्लेशसंत्रस्त इति। निरये रौरवादौ ये क्लेशा यमकिङ्करयातनोद्भवास्तेभ्योऽतिशयेन त्रासमापन्नः; उपलक्षणं चैतत् जन्ममरणादिलक्षणसंसारचक्रस्य, संसारचक्रभ्रमणाच्च संत्रस्त इति ॥ २९ ॥

हे प्रभो! जिन्हें अन्य प्रकार से कोई शरण नहीं है उन अनन्य गतिक शरणार्थियों के आप माता से भी अधिक वत्सलता रखने वाले वेद के समान रक्षक हैं अर्थात् जिस प्रकार वेद पुरुषार्थ चतुष्टय का बोध कराकर निर्हेतुक मुक्ति प्रदान करता है उसी प्रकार आप भी अपने शरण में आये हुए भक्तजनों को कामादि दोष से रहित बनाकर उनकी रक्षा करते हैं। हे गुरो! मैं रौरवादि नरकों में यमदूतों द्वारा दी जाने वाली यातना से संत्रस्त होकर आपकी शरण में आया हूँ। अतः मेरी रक्षा कीजिए ॥ २९ ॥

वेदनां गर्भसम्बन्धं नाऽश्नामि त्वदनुग्रहात्।
तथा साधय मां देव पाहि पाहि कृपानिधे ॥ ३० ॥

हे देव त्वदनुग्रहात् तव कारुण्यादिगुणयोगजन्मप्रसादतः गर्भसंबन्धं जन्मादिजन्यदुःखं वेदनां मरणाद्यवस्थाजन्यं च दुःखं यथा नाश्नामि नानुभवामि तथा मां पाहि पाहि संसारादिति शेषः, अत्यादरे वीप्सा।

कथं रक्षणीय इत्यपेक्षायां तत्प्रकारं प्रार्थयते—तथा मां साधयेति॥ शिक्षयेत्यर्थः।

रक्षणे हेतुमाह—कृपानिधे इति। स्वाभाविकयावदात्मवृत्तिपरिपूर्णकृपादिसद्गुणानां निधिरनपायिनिवासस्थानम्, निधीयतेऽस्मिन्निति निधिरित्यधिकरणव्युत्पत्तिर्बोध्याः, तस्य सम्बोधनमेतत्, ननु कृपादिगुणयोगे सत्यपि सामर्थ्याभावे कथं रक्षामीति चेत्तत्रोक्तम्—देवेति।

सर्वज्ञाद्यखिलसामर्थ्यसम्पन्नस्त्वमसीति भावद्योतनार्थमिदं द्वितीयं सम्बोधनम् ॥ ३० ॥

हे प्रभो! मैं जिस प्रकार गर्भ सम्बन्ध से होने वाले जन्मादि के दुःखों का एवं मरणादि अवस्थाजन्य महादुःखों का अनुभव न करूँ उस प्रकार से मेरी रक्षा

कीजिए और वैसा मुझे उपदेश दीजिये क्योंकि आप कृपा के निधि हैं।। ३० ।।

ननु "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" तमेवविदित्वातिमृत्युमेति" त्यन्वयव्यतिरेकश्रुतेः, यद्वा "भक्तिरेवैनं दर्शयती" त्यादिश्रुतेः, परया भक्त्यैव श्रेयः प्राप्तिरिति, ते च ज्ञानभक्ती बुद्धिशुद्धिसापेक्षे, बुद्धिशुद्धिश्च स्ववर्णाश्रमोचितधर्मानुष्ठानेन, धर्मानुष्ठानं शास्त्रोक्तविध्यपेक्षितमिति वैदिकानां प्रक्रिया, तथा च विधिनिर्णीतस्ववर्णाद्यनुकूलधर्मानुष्ठानेनान्तः शुद्धिं सम्पाद्य ज्ञानभक्त्येकतरेण मुक्तः स्याः किं मच्छरणेनेति चेत्तत्राह—विध्यविधी न जानामीति।

विध्यविधी न जानामि न जानामि त्वदर्चनम् ।
स्वीयानुग्रहभावेन मनःकामं प्रपूरय ।। ३१ ।।

अयं विधिस्तेनायं धर्मो विधेयः अयमविधिर्निषेधस्तेनायमधर्मो निषिद्ध इत्येतदहं न जानामि तथाभूतं ज्ञानं नास्तीत्यर्थः, यदि तद्विषयकज्ञानमेव नास्ति, तर्हि तदनुष्ठानस्य का वार्त्तेति भावः, ननु कर्मणो दुर्ज्ञेयत्वात् "गहना कर्मणो गति" रिति भगवद्वचनात्, तथापि अर्चनादेः सौकर्यात्तदेवानुष्ठेयम्, तस्यापि श्रेयोमूलत्वादिति चेत्तत्राह, न जानामि ।

त्वदर्चनविषयकज्ञानस्यैवाभावस्तदनुष्ठानस्य तु को वा प्रसङ्ग इत्यर्थः, ननु साधनाभावे कथमिव फलसिद्धिरित्याशङ्क्याह—

स्वीयानुग्रहभावेन मनःकामं प्रपूरय ।। इति ।

स्वीयश्चासावनुग्रहश्च स्वीयेष्वनन्यभक्तेषु वाऽनुग्रहस्तस्य भावो विषयता तेन स्वीयानुग्रहविषयीकरणेनेति यावत्, मनःकामं काम्यते मुमुक्षुभिरिति कामः श्रीभगवद्भावापत्तिलक्षणो मोक्षः मनःकामशब्दाभिधेयस्तं सर्वेषां साधनानां तवानुग्रह किंकरत्वात् तेनैव सर्वसिद्धिः सुलभेति तात्पर्यार्थः, "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" "तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मन" इत्यादि श्रुतेः, ननु साधनान्तराभावेऽनुग्रहमात्रेण सिद्ध्यङ्गीकारे नैर्घृण्यादिदोषप्रसङ्गात्साधनविषयकशास्त्रव्याकोपाच्चेति चेत्सत्यम्, त्वदनुग्रहयोगात् तत्क्षणमेव सर्वसाधनसम्पत्तेः सम्भवात् उभयोरपि साधनसाध्ययोस्त्वदनुग्रहप्रयुक्तत्वादिति ब्रूमः, यथा स्तनन्धयबालस्य रोगापत्तौ औषधभक्षणानर्हत्वेन तन्मात्रौषधभक्षणादेवौषधभक्षणरोगनाशौ तत् स्तनपानेनैव भवतः, तथा सर्वसाधनानुष्ठानानर्हस्यापि मम त्वदनुग्रहेणैव साधनसाध्ययोः सिद्धिः सम्भवत्येवेति भावः ।। ३१ ।।

(मेरी शरण में क्यों आते हो ? स्वयं अपनी रक्षा करो, इसके लिए कहते हैं—)

हे प्रभो ! मैं विधि—यह करना चाहिये—अविधि यह नहीं करना चाहिये—इस प्रकार के धर्माधर्म प्रापक विधि निषेधों को नहीं जानता, इतना ही नहीं त्वदर्चन विषयक ज्ञान का भी मुझमें अभाव है। अतः स्वयं अपना अनुग्रह प्रदान कर मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए ॥ ३१ ॥

सर्वसाधनहीनत्व दर्शयन् प्रार्थयते द्वाभ्याम्—नियताचारहीनोऽहमिति ।

नियताचारहीनोऽहं कामुको लोभलम्पटः ।
नियमानन्ददासोऽयमित्याकर्ण्य गिरां प्रभो ॥ ३२ ॥

यथा न लज्जसे धीमन् यथा सम्पादय क्रमात् ।
तवावतारो भूतानां लोकद्वयविधायकः ॥ ३३ ॥

"अहरहः संध्यामुपासीत्" ":यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोती" इत्यादि-विधिना विहितो धर्मो नियताचारस्तेन हीनोऽस्मि ।

नियतस्य तु सन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्त्तितः ।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

इत्यादिनिषेधस्य विषयोऽस्मीतिभावः । अत एव कामुको लोभलम्पट इति । शुद्धिहेतुभूतधर्मयोगाभावात् प्रत्युत तत्प्रतिभटकामलोभादियोगात् सर्वपापिष्ठाधिराजो नरकनिष्ठार्होऽस्मीति भावः ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

इति भगवदुक्तेः ।

ननु यद्येवं भूतोऽसि तर्हि—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

इत्यादिशास्त्रात्स्वकृतं त्वयाऽवश्यं भोक्तव्यमेव कथं मयाऽनुग्रहणीय इत्याशङ्क्य स्वस्य लज्जानिवारणार्थमित्याह—नियमानन्ददासोऽयमिति ।

अयममुको नियमानन्दस्य सर्वज्ञसर्वशक्तिविष्णुरूपस्य दासो भूत्वा कामादिदोषग्रस्तत्वान्नरकं प्राप्स्यते इति या लोकानां गिरा—

राज्ञि चामात्यदोषाः स्युः पत्नीदोषाश्च भर्त्तरि ।
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चितम् ॥

इति शास्त्रीया च या गिरा तामाकर्ण्य श्रुत्वा त्वं तथा न लज्जसे लज्जां न गच्छसि तथा मां क्रमात्सम्पादय, आर्त्तिदानादिभिः पूरणीयोऽहं भवता,

हे प्रभो हे धीमन् इति सम्बोधनाभ्यां सर्वसामर्थ्यसार्वज्ञादि पराभ्यां समर्थानां सर्वज्ञानां स्वाकीर्त्तिगिराश्रवणमतिदुःसहमिति सूचयति, अस्माकं तु न दोषावह निरयप्राप्तिश्रवणवत् दुःखहेतुत्वं नास्ति नुकूल्यसङ्कल्पादि-षडङ्गान् सम्पा'दयित्वा स्वात्मसात्कृत्वा परमपरं तु भवतोऽकीर्त्तिश्रवण-मस्माकमपि दुःसहमेव, अतो ममानङ्गीकारे उभयत्राऽनिष्टतमो दोषयोगः, अङ्गीकारे च उभयत इष्टयोगः इति विचार्य स्वकीर्त्तिलाभाय चाहमवश्य-मनुग्रहणीय इति भावः, यद्वा ननु स्यादेतद्यदि तथाभूताधमोद्धरणे मम शक्तिः स्यान्न तु साऽस्ति तस्मादकीर्त्तिश्रवणोद्भवं दुःखं मयाऽवश्यं सोढव्यमित्या-शङ्कामुक्ताभ्यां सम्बोधनाभ्यां निराकरोति हे प्रभो सर्वसामर्थ्याश्रय हे धीमन्! सर्वज्ञानाश्रय तव किञ्चिदप्यशक्यं नास्तीति भावः।

ननु सर्वशक्त्यादियोगेऽपि किमिति आत्मसात्करणीयोऽसि हेत्वभावादि-त्याशङ्क्याह—तवाऽवतारो भूतानां लोकद्वयविधायक इति। लोकद्वय विधानं चात्र निःश्रेयोभिकाङ्क्षिणां साधनसाध्यरूपयोगक्षेमवहनमेव बोध्यम्॥ ३२-३३॥

(अब दो श्लोकों के द्वारा अपनी सर्वसाधनहीनता प्रकट करते हैं–)

मैं नित्य करणीय सन्ध्योपासनादि आचार से हीन होने के कारण अशुचि हूँ इतना ही नहीं, कामुकता, लोभ तथा लम्पटता आदि दोषों के कारण शुद्धि का मुझ में अभाव भी है। मैं तो केवल 'नित्यानन्द का दास कभी नरक में नहीं जाता' इस वाणी को सुनकर आपकी शरण आया हूँ, अतः हे धीमन् जिस प्रकार आप लज्जित न हों वैसा व्यवहार कीजिए, क्योंकि सर्वसमर्थ लोगों के लिए अपनी अप-कीर्त्ति की वाणी असह्य हो जाती है, आपकी अपकीर्त्ति सुनकर मुझे भी दुःख होगा। इस प्रकार मुझे न स्वीकार करने से उभयथा दोष की प्रसक्ति होगी, स्वीकार करने पर उभयत्र यश होगा—ऐसा विचार कर मुझ पतित के उद्धार का यत्न कीजिए॥ ३२-३३॥

एवं प्रार्थितेन श्रीमदाचार्येणाऽऽत्मसात्कृतमात्मानमाकलय्यस्वभाग्यमभिनन्दयन्नाह—धन्योस्मीत्यादिना।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि विष्णुना प्रभविष्णुना।
यच्छिरसि स्थितं नाम नियमानन्द इत्यपि॥ ३४॥

अहं धन्योऽस्मि सफलजन्माऽस्मि कृतकृत्य इति यावत् कृत्यशेषाभावात् किमत्रकारणमित्याशङ्क्याह – विष्णुनाऽनुगृहीतोस्मीति। विष्णवनुग्रह एव कृतार्थत्वे हेतुरिति भावः।

१. सम्पादयित्वेति पाठः प्रमादिकः, सम्पाद्य इति तु भवितुं युक्तम्।

अथ विष्णोर्विशेषणम्—प्रभविष्णुनेति ।

प्रभवनशीलेनेति "बहुस्यां प्रजायेय" इति श्रुतेः, यदि विष्णोरनुगृहीतो न स्यां तर्हि एतादृशदुर्लभस्य लाभो मम मन्दभाग्यस्य दुष्प्राप्यः स्यादित्यर्थः ।

तदनुग्रहस्यैव को वा ज्ञापक इत्यपेक्षायामाह—यच्छिरसि स्थितं नाम नियमानन्द इत्यपीति । यस्य पूर्वोक्तदोषाद्यसाधारणाश्रयस्यापि मम शिरसि नियमानन्द इति नाम स्थितमस्ति नियमानन्द दास इति लौकिक्यामपि वाण्यां नियमानन्द इति शब्दस्य नित्यसंबन्धो ज्ञात, एष नित्यसंबन्धः श्रीभगवदनुग्रहं विना दुर्लभ इत्यर्थः, यदि नाम संबन्धमात्रेणापि कृतार्थोऽस्मीति तर्हि पूर्णानुग्रहेण कृतार्थः स्यामिति किं वक्तव्यमिति कैमुत्यन्यायसूचकोऽत्रापीति शब्दः, यथा लोके राज्ञो नामाङ्कितपत्रधारिणमपि पुमांसं लोका बहु मन्यन्ते किं पुनः साक्षात्संबन्धेन तद्वत् प्रकृतेरपीति भावः ।। ३४ ।।

मैं सर्वसमर्थ, सब के उत्पत्ति के स्थानभूत विष्णु के द्वारा अनुगृहीत हूँ, इसलिए कृतकृत्य हो गया । क्योंकि मेरे मस्तक पर नियमानन्द का यह दास है, ऐसा लिखा हुआ है । अर्थात् जिस प्रकार नियमानन्द कहने से लोक में नित्य सम्बन्ध का ज्ञान होता है उसी प्रकार नियमानन्द लिखे जाने के कारण मेरा भी आप से नित्य का सम्बन्ध हो गया । जब राजा नामाङ्कित पत्र को धारण करने वाले पुरुष की लोक में प्रतिष्ठा होती है तब तो मैं विष्णु नामाङ्कित होने के कारण मुक्ति का अधिकारी हो ही गया ।। ३४ ।।

अथ हर्षभरेण पुनस्तद्गुणान्वर्णयन् स्तौति—देवनद्यां समाश्लिष्ट इति ।

देवनद्यां समाश्लिष्टः शोभी सर्वाङ्गसुन्दरः ।
निःस्पृहो निर्ममः शान्तः पूर्वाचारसमन्वितः ।। ३५ ।।

देवनदी गोदावर्याख्या गङ्गा तस्यां सम्यक् स्नातः । किञ्च शोभीति । शोभास्यास्तीति शोभी, तदेव दर्शयति सर्वाङ्गसुन्दरः, अङ्गप्रत्यङ्गनिरतिशयसौन्दर्याश्रयः; लावण्यमाधुर्यादीनामप्युपलक्षणमेतत् ।

एवं रूपाश्रितगुणानुक्त्वा स्वरूपगुणानाह—निःस्पृह इति । स्वभावतो निर्गता स्पृहा यस्मात्सः आत्मरतित्वेनाप्तकामत्वाच्च "आत्मरतिरात्मक्रीड" इत्यादिश्रुतेः, किञ्च निर्मम इति । ममकारास्पदस्य भगवदात्मकत्वेन तदीयत्वनिश्चयात् ।

द्व्यक्षरं तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ।।

इति सूत्रकारोक्तेः ।

किञ्च शान्त इति। संयतचित्तमनाः नित्यमुक्तत्वेन क्षोभादिहेतु-प्रकृतिसम्बन्धास्पृष्टमाहात्म्यात्।

किञ्च? पूर्वाचारसमन्वित इति। पूर्वेषां श्रीसनत्कुमारनारदादीना-माचारः श्रीपञ्चरात्रनिरूपितभागवतधर्मस्तेन समन्वितः, तदनुष्ठानतत्परः लोकसंग्रहार्थमिति शेषः, तदर्थमेवावतारत्वात् ॥ ३५ ॥

(अब हर्षातिरेक से पुनः आचार्य के गुणों का वर्णन करते हैं—) जो गोदावरी रूप देव नदी में निरन्तर स्नान करते हैं, अङ्गप्रत्यङ्ग सर्वातिशयशायी सौन्दर्य के कारण शोभा से संयुत हैं। (यह तो रूपाश्रित गुण हुआ। अब उनके स्वरूपानुकूल गुणों को कहते हैं—जो आत्माराम पूर्णकाम होने से) निस्पृह हैं जगत् की सभी वस्तुओं से सब प्रकार की ममता से रहित हैं, अथवा भगवान् ही हमारे हैं और कोई नहीं इस प्रकार ममता के आस्पद हैं, शान्त स्वभाव से युक्त हैं। जो पूर्वाचार्य सनत्कुमारादि द्वारा प्रतिपाद्य अथवा पाञ्चरात्र में प्रतिपाद्य आचार का अनुष्ठान करते हैं ॥ ३५ ॥

किञ्च—गम्भीरमतिः।

गम्भीरमतिर्गोस्वामी स्वाश्रयाणां सुखावहः।
द्वन्द्वातीतस्वभावश्च कार्पण्यहरणोत्सुकः ॥ ३६ ॥

गम्भीरा इयत्तावच्छेदेनाकलयितुमशक्या कुतर्कैर्मतिर्यस्य सः अक्षतज्ञान-त्वात्। किञ्च? गोस्वामीति।

गवामिन्द्रियाणां स्वामी स्ववशकर्तृत्वात्, यद्वा गवां श्रुतीनां स्वामी-तदुक्तार्थप्रवर्त्तकत्वात् गोः पृथिव्या वा स्वामी तद्भारभूताधर्मिनाशकत्वेन तद्रक्षकत्वात्। किञ्च? स्वाश्रयाणां सुखावह इति।

स्वमेव भगवांछ्रीमदाचार्य आश्रय उपायोपेयसम्बन्धादिरूपो येषां ते स्वाश्रया अस्मदादयः तेषां सुखं परमनिःश्रेयो लक्षणमावहति प्रापयतीति तथा। किञ्च—द्वन्द्वातीतस्वभावश्चेति। द्वन्द्वानि शीतोष्णसुखदुःखानि तान्यतिक्रम्य स्थितः स्वभावो यस्य सः। किञ्च कार्पण्यहरणोत्सुक इति। स्वाश्रितानां कार्पण्यम् अनात्मज्ञत्वं

यो वा एतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैति स कृपण" इति श्रुतेः तस्य हरणे नाशने उत्सुकः सदोद्युक्तः ॥ ३६ ॥

जिनकी बुद्धि की इयत्ता नहीं है, जो इन्द्रियों को अपने वश में करने के कारण गोस्वामी पद वाच्य हैं, जो हमारे जैसे प्रपन्न लोगों के उपाय एवं उपेय बन कर सब प्रकार से सुख प्रदान करते हैं, जो स्वभाव से शीतोष्ण सुख-दुःख आदि समस्त

द्वन्द्वों से ऊपर उठे हुए हैं एवं जीवों के अक्षरस्वरूप परमात्मा के अज्ञान रूप कार्पण्य को हरण करने के लिए सर्वदा उत्कण्ठित रहते हैं ॥ ३६ ॥

किञ्च वेदाध्ययनविख्यात इति ।

वेदाध्ययनविख्यातः परमार्थपरायणः ।
श्रीकृष्णप्रियदासश्च श्रीकृष्णे कृतमानसः ॥ ३७ ॥

वेदाध्ययनं जगति विख्यातं येन सः परमार्थपरायणः । "परमार्थस्त्वमेव" इति स्मृतेः परमार्थः परमपुरुषरूपः सर्वज्ञो जगज्जन्मादिहेतुर्मुक्तोपसृप्यो मुमुक्षु ध्येयो ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिवन्दितपादपीठः शास्त्रयोनिर्मुकुन्दो भगवांछ्रीकृष्णः स्वतन्त्रसत्ताश्रय एवोत्कृष्टमयनं निवासस्थानं यस्य सः सदैव तत्करस्थत्वात्, यद्वा अयनं आश्रयो निष्ठास्पदं यस्य सः, यद्वा परायणं प्राप्यं यस्य सः । तत्र हेतुमाह—श्रीकृष्णप्रियदास इति । दासेषु प्रियदासः श्रीकृष्णस्य प्रियदासस्तथोक्तः, यद्वा प्रियश्चासौ दासश्चेति तथोक्तः प्रेष्ठप्रेष्ठतमत्वयोरप्युपलक्षणं सर्वसम्बन्धाश्रयत्वात्, अत एव श्रीकृष्णे कृतमानस इति । श्रीकृष्णे कृतं स्थापितं मानसं मनो येन सः एतेन तदनुयायिभिरपि मनः श्रीकृष्ण एव योजनीयमिति सूचितम् ॥ ३७ ॥

जिनके द्वारा इस जगत् में वेदाध्ययन की ख्याति हुई है, जो परमार्थस्वरूप विष्णु में परायण हैं, अथवा परमात्मा श्रीकृष्ण जिनके निवासभूत स्थान हैं, इसलिए श्रीकृष्ण के दासों में सबसे प्रिय दास हैं तथा जिन्होंने अपना मन श्रीकृष्ण में निछावर कर दिया है, इसलिए उनके अनुयायियों को भी अपना मन परमात्मा श्रीकृष्ण में लगाना चाहिए ॥ ३७ ॥

किञ्च ? वैष्णवैः श्लाघनीय इति ।

वैष्णवैः श्लाघनीयश्च वैष्णवानां प्रियङ्करः ।
वैष्णवप्रियसर्वार्थो वैष्णवैकपरायणः ॥ ३८ ॥

वैष्णवैर्विष्णुदेवताकैस्तदनन्याश्रितैः साधुभिः साम्प्रदायिकैः स्तवनार्चनादिविषयीकर्त्तुं योग्य इत्यर्थः । तत्र हेतुमाह—वैष्णवानां प्रियंकर इति । स्वप्रियकर्त्ताऽवश्यमेव पूज्य इत्यर्थः । किञ्च—वैष्णवप्रियसर्वार्थ इति । वैष्णवानां प्रियाः प्रेमविषयाः सर्वेऽप्यर्था आचारविशेषा यस्य सः, यद्वा सर्वश्चासावर्थः पुरुषार्थश्च सर्वार्थः वैष्णवानां प्रियश्चासौ सर्वार्थश्चेति विग्रहः ।

तत्रहेतुः—वैष्णवैकपरायण इति। वैष्णव एव एकं मुख्यं परमुत्कृष्टमयनं निष्ठाविषयो यस्य सः, वैष्णवशब्दोऽत्र विष्णोराराधनाख्यो धर्मो विवक्षितः, तस्यैव वैष्णवानां मुख्योत्कृष्टनिष्ठाविषयत्वात्, यद्वा विष्णोर्भावो वैष्णवस्तद्भावापत्तिलक्षणो मोक्षो विवक्षितः, मुक्तगम्यत्वात्, यद्वा विष्णोरिदं वैष्णव वैकुण्ठाख्यं मुक्तप्राप्यं परमं धाम तदेव मुख्यमुत्कृष्टं निवासस्थानं यस्येति विग्रहः, यद्वा वैष्णवानामेकं प्रधानं परं केवलमाश्रयत्वादयनं शरणं यस्य स तथोक्तः ॥ ३८ ॥

किञ्च—वैष्णवोद्वेगहारी चेति।

वैष्णवोद्वेगहारी च सदा वैष्णवदुःखहा।

शोभाढ्यो वैष्णवाकीर्णः शोभते उडुराडिव ॥ ३९ ॥

वैष्णवानामुद्वेगः संशयविपर्ययमूलभूतो बुद्धिदोषस्तं हरणशीलः, यद्वा उद्वेगः कदा प्राप्स्यामः कदा चक्षुषा साक्षात् पश्याम इत्यादिस्वरूपकः, यद्वा संसारचक्रभ्रमणासाधारणहेतुरात्मविषयकलक्षणोऽविवेक उद्वेगशब्दाभिधेयस्तं हरणशीलः, यद्वा—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

इत्यादिश्रीमुखोक्तेः, परेभ्य उद्विजनं परोद्वेजनं वा उद्वेगः स्वभावविशेषस्तं हरणशीलः, चकारात् उद्वेगादिकारणानादिदैवीमायासम्बन्धनिवारकोऽपीति ज्ञेयम्, अत एव सदा वैष्णवदुःखहेति। वैष्णवानां दुःख हन्तीति तथा सः, दुःखं मोक्षप्रतिबन्धकमनादिकर्मरूपं बोध्यम्, सर्वदुःखमूलत्वात्। किञ्च—शोभाढ्य इति। प्रपन्नरक्षणरूपस्वाराज्यश्रियाभिषिक्तः श्रीभगवदनवच्छिन्नानुभूतिलक्षणशोभासम्पन्नो वा वैष्णवाकीर्णः शोभत इति, वैष्णवैः स्वश्रितैः साम्प्रदायिकैरावृतः विराजते इति। अत्र दृष्टान्तमाह—उडुराडिवेति। तारागणैरावृतो निशाकरो यथा शोभते तद्वत् ॥ ३९ ॥

जो विष्णुदेवताक बिष्णुभक्तों द्वारा प्रशंसनीय हैं। वैष्णवों का प्रिय करने वाले हैं, इसलिए पूज्य हैं, जिनके सभी अर्थ विष्णुभक्तों के लिए समर्पित हैं और जिनकी निष्ठा के एकमात्र विषय वैष्णव ही हैं। अथवा जो वैष्णवों के एकमात्र आधार हैं, जो विष्णुभक्तों में होने वाले संशय विपर्यय आदि बुद्धिगत उद्वेगों को दूर करने वाले हैं इतना ही नहीं जो वैष्णवों के मोक्ष प्रतिबन्धक अनादि अविद्यारूप कर्म के दुःखों को भी दूर करने वाले हैं, जो स्वसम्प्रदायानुगत विष्णु भक्तों से निरन्तर आवृत्त होने के कारण नक्षत्रगणों से परिपूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित हैं ॥ ३८-३९ ॥

अथात्मदैन्यकथनपूर्वकं तस्य महिम्नोऽपरिच्छिन्नत्वेन दुर्ज्ञेयत्वं व्यञ्जयन् स्तौति ।

बाल इत्यादिना ।

बालो लाल्यस्त्वया स्वामिन् देशकालविमोहितः ।
न जानामि न जानामि कीदृशो महिमा तव ॥ ४० ॥

हे स्वामिन् अहं त्वया लाल्यः अनुकम्पनीयः । कीदृशोऽहम् ? बालः तत्रापि देशकालविमोहित इति । देशकालादिविषयकमोहाश्रयः देशकालादिविवेकशून्यत्वादेवानुकम्प्य इत्यर्थः । यदि देशकालादीनामेव ज्ञानं नास्ति तर्हि त्वन्महिमविषयकज्ञानाभाव इति का वार्त्तेति कैमुत्यं सूचयन्नाह—न जानामीति । कीदृशो महिमा तवेति ? कीदृशः किम्प्रकारकः केनोपमानीकर्त्तुमर्हं कियान् वा परिमाणत इति को वा स्वरूपत इति न जानामि अज्ञानोत्कर्षद्योतनाय वीप्सा ।। ४० ।।

हे स्वामिन् ! एक तो मैं बालक (अज्ञानी) ठहरा, दूसरे देश काल आदि का मुझ में विवेक नहीं है, अथवा देश काल विषयक मोह से मैं ग्रस्त हूँ जब देश काल की महिमा का ही मुझे ज्ञान नहीं है, तो भला आपकी महिमा किस प्रकार जान सकता हूँ कि वह किस प्रकार की है और उसका क्या परिमाण है अतः आपके विषय में मैं कुछ नहीं जानता ।। ४० ।।

अथात्माभिप्रेतं विज्ञापयन् ग्रन्थमुपसंहरति—लघुस्तवेनेति ।

लघुस्तवेन भो नाथ भो आचार्यशिरोमणे ।
दासोऽयमिति मां ज्ञात्वा भक्तिं देहि पदाम्बुजे ॥ ४१ ॥

॥ इति वैष्णवाचार्यश्रीनिवासाचार्यविरचितं
'लघुस्तवराजस्तोत्रं' सम्पूर्णम् ॥

——०——

लघुनि मिताक्षरपदानि यत्र स लघुः स चासौ स्तवस्तेन स्तुतिव्याजमात्रेणेति भावः, यद्यपि बालबुद्धित्वात् मम महिमवर्णनज्ञानानधिकरणं तथाप्ययं मम दासः दासत्वेन जगति विख्यातस्तस्मान्मयाऽऽत्मसात्करणीय इति मां ज्ञात्वा स्वपदाम्बुजे भक्तिं देहीति वाक्यार्थः ।

तत्रानुग्रहविशेषे त्वरां प्रार्थयन् संबोधयति ॥

भो नाथ इति ।

"नाथृवाच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु" ज्ञानभक्त्यादियाच्ञापादानभूतः परिपूर्णैश्वर्यो वा नाथपदार्थो विवक्षितः, तत्र प्रथमव्याख्यानेन ज्ञानभक्त्यादेः प्रार्थना, द्वितीयेन तद्दानयोग्यरूपसामर्थ्याविष्कार इति विवेकः।

ननु स्यादेतत् भक्त्यादीनां दातृत्वं तद्दानादिशक्त्याश्रयत्वयोगश्च यदि कश्चिदन्यो मत्समोऽभ्यधिको वा आचार्यान्तरो न स्यान्नत्वेतदस्तीत्याशङ्क्य सम्बोधनान्तरमाह—भो आचार्यशिरोमणे इति ।

आचार्येषु मुख्यस्त्वमेव सम्प्रदायप्रवृत्यर्थावतीर्णत्वात् अन्येषां तु तव मतैकैकदेशानुयायित्वादिति आचार्यशिरोमणित्वप्रयोगाभिप्रायः ॥ ४१ ॥

श्रीश्रीनिवासगिरिजा ह्याद्याचार्याधिगामिनी ।
श्रेयस्तनोतु साधूनां गुरुभक्तिसरिद्वरा ॥ १ ॥
श्रीगुर्वनुग्रहो ध्येयः संसाराब्धेश्च कुम्भजः ।
अज्ञानतमसो भानुर्मुक्तिदाने हरिर्यथा ॥ २ ॥
वन्दे श्रीनियमानन्दं नियमेन निजाश्रितान् ।
आनन्दयन्तमाचार्यं चक्ररूपिणमीश्वरम् ॥ ३ ॥
वैकुण्ठाब्धिसमुद्भूतः श्रीनिवासार्यचन्द्रमाः ।
मताम्बुद्धौ जयत्यद्धा कर्मतापतमोपहः ॥ ४ ॥

॥ हरिः ॐ तत् सदिति श्रीहयग्रीवानुग्रहजीवनेन स्वभूदेवपदानन्याश्रितेन पुरुषोत्तमप्रसादाख्येन वैष्णवेन विरचिता गुरुभक्तिमन्दाकिनी समाप्ता ॥

हे नाथ ! हे आचार्य शिरोमणि । मैंने इस छोटे से स्तोत्र के द्वारा आपकी स्तुति की । अतः आप मुझे अपना दास समझकर अपने चरण कमलों की भक्ति प्रदान करें ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीयात्मज डा० सुधाकर मालवीयकृत 'लघुस्तवराजस्तोत्र' की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

—०—

